साधना-सूत्र

प्रवचन-क्रम

1. महत्वाकांक्षा...2
2. जीवन की तृष्णा...20
3. द्वैतभाव..31
4. उत्तेजना एवं आकांक्षा...45
5. अप्राप्य की इच्छा...58
6. स्वामित्व की अभीप्सा...69
7. मार्ग की शोध..85
8. मार्ग की प्राप्ति...100
9. एकमात्र पथ-निर्देश...114 10...जीवन-संग्राम में साक्षीभाव
.... 127
11...जीवन का संगीत
.... 142
12...स्वर-बद्धता का पाठ
.... 157
13...जीवन का सम्मान
.... 173
14..अंतरात्मा का सम्मान
.... 188
15..पूछो--पवित्र पुरुषों से
.... 205
16...पूछो--अपने ही अंतरतम से
.... 218
17...अदृश्य का दर्शन
.... 233

साधना-सूत्र
पहला प्रवचन

महत्वाकांक्षा

ये नियम शिष्यों के लिए हैं।
इन पर तुम ध्यान दो।
इसके पहले कि तुम्हारे नेत्र देख सकें,
उन्हें अश्रुपात की क्षमता से मुक्त हो जाना चाहिए।
इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें,
उन्हें बहरे हो जाना चाहिए।
और इसके पहले कि तुम सदगुरुओं की उपस्थिति में बोल सको,
तुम्हारी वाणी को चोट पहुंचाने की वृत्ति से मुक्त हो जाना चाहिए।
इसके पहले कि तुम्हारी आत्मा सदगुरुओं के समक्ष खड़ी हो सके,
उसके पैरों को हृदय के रक्त से धो लेना उचित है।

1. महत्वाकांक्षा को दूर करो।

महत्वाकांक्षा पहला अभिशाप है।
जो कोई अपने सहयोगियों से आगे बढ़ रहा है,
उसे यह मोहित करके अपने पथ से विचलित कर देती है।
सत्कर्मों के फल की इच्छा का यह सबसे सरल रूप है।
बुद्धिमान और शक्तिशाली लोग इसके द्वारा
बराबर अपनी उच्च संभावनाओं से स्खलित होते रहते हैं।
फिर भी यह बड़ी आवश्यक शिक्षा का साधन है।
इसके फल चखते समय मुंह में राख और धूल बन जाते हैं।
मृत्यु और वियोग के समान इससे भी अंत में यही शिक्षा मिलती है कि स्वार्थ के लिए,
अहं के विस्तार के लिए कार्य करने से परिणाम में निराशा ही प्राप्त होती है।

मैं ने तुम्हें बुलाया और तुम आ भी गए हो, लेकिन बाहर से आ जाना बहुत आसान है। और जब तक भीतर से भी मेरे पास न आ जाओ, तब तक आने और न आने का बहुत अर्थ नहीं है। लेकिन जो बाहर चल कर आ सकता है--जिसकी प्यास है और आकांक्षा है--वह भीतर भी चल कर आ सकता है। बाहर चल कर आना सबूत है कि खोज है, लेकिन उतना सबूत काफी नहीं है। उससे इशारा तो होता है और शुभ इशारा होता है। जरूरी है, लेकिन पर्याप्त नहीं। भीतर भी चलना होगा। और भीतर की यात्रा शुरू हो सके, उसके पहले कुछ बातें तुम्हारे संबंध में समझ लेनी जरूरी हैं। क्योंकि तुम्हीं यात्रा करोगे, कोई और तुम्हारे लिए यात्रा नहीं कर सकता है।
न तो इस जगत में दूसरे की आंखों से देखा जा सकता है और न दूसरे के चरणों से चला जा सकता है। यहां तो मरना भी स्वयं ही पड़ता है स्वयं के लिए और जीना भी। यहां दूसरा आपकी जगह नहीं ले सकता। इसलिए सबसे पहले कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं तुम्हारे संबंध में। क्योंकि वहां अगर भ्रांति है, तो ठीक रास्ता भी गलत जगह पहुंचाएगा। अगर तुम्हें अपने संबंध में ही ठीक समझ नहीं है, तो तुम ठीक रास्ते को भी गलत मंजिल तक ले जाने वाला बना लोगे। और अगर तुम्हें समझ है अपने संबंध में, तो ऐसा कोई भी रास्ता नहीं है, जो तुम्हें ठीक जगह न पहुंचा दे। गलत रास्ते भी ठीक मंजिल पर पहुंच जाते हैं-- ठीक आदमी चाहिए, चलने वाले पर सब कुछ निर्भर है।
रास्ता नहीं पहुंचाता, चलने वाला ही पहुंचता है।
रास्ता बदल जाता है तुम्हारे साथ। तुम जैसे हो, वैसा ही रास्ता हो जाता है। इसलिए कोई बंधे-बंधाए रास्ते नहीं हैं, जिन पर तुम अंधे की तरह चल सको।

पहली बात, अपने संबंध में ठीक समझ लें। क्योंकि तुम्हारे से ही निकलेगा रास्ता और अंत में तुमसे ही पैदा होगी मंजिल।
तुम्हीं सब कुछ हो। बीज भी तुम्हीं हो, वृक्ष भी तुम्हीं बनोगे। और जब फूल खिलेंगे और सुगंध निकलेगी, तब उन फूलों में, उस सुगंध में भी तुम ही रहोगे। अपने संबंध में गलत समझ हो, तो सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है।
पहली बात--पहली बात तो यह ठीक से समझ लो कि तुम्हें कुछ भी पता नहीं।
काश, तुम्हें पता ही होता तो फिर मेरे पास आने की कोई भी जरूरत न थी। सूरज की एक किरण भी तुम्हें मिल जाए, तो सूरज तक पहुंचने का मार्ग खुल गया। क्योंकि उसी किरण को पकड़ कर तुम सूरज के मूल स्रोत तक पहुंच जाओगे। और सागर की एक बूंद भी तुम चख लो, तो तुमने सारा सागर चख लिया।
अगर तुम्हें थोड़ा भी पता हो जीवन का, तो फिर किसी से पूछने की कोई भी जरूरत नहीं है। वह जो थोड़ा सा पता है, उसके सहारे चलो। तो जैसे कोई आदमी एक छोटा सा दीया ले कर अंधेरे में चले, तो दो ही कदम पर प्रकाश पड़ता है; लेकिन जब वह दो कदम चल लेता है, तो दो कदम और आगे प्रकाश पड़ता है। फिर वह और दो कदम चल लेता है, तो दो कदम और आगे प्रकाश पड़ता है। दो कदम प्रकाश पड़ता हो जिस दीए से, उससे भी हजारों मील की यात्रा तय की जा सकती है। कोई हजारों मील के रास्ते को प्रकाशित करने की जरूरत नहीं है। हाथ में दीया हो छोटा, तो भी बड़े से बड़े अंधकारपूर्ण रास्ते को पार किया जा सकता है। दो कदम ही काफी हैं।
अगर तुम्हें थोड़ा भी पता हो अपने संबंध में तो मेरे पास आने की कोई भी जरूरत नहीं है। किसी के भी पास जाने की कोई जरूरत नहीं।
तो पहली बात तो यह ठीक से समझ लेना कि तुम्हें अपने संबंध में कुछ भी पता नहीं है अभी। और तुम जो भी जानते हो, वे सब शब्द हैं। शब्दों में न तो कोई प्राण होते हैं, न कोई अर्थ होता है। शब्द से ज्यादा असत्य इस जगत में और कुछ भी नहीं है।
अनुभव--अनुभव में अर्थ है। मैं कितना ही कहूं, जो मैं जानता हूं, उसे मैं शब्दों में न डाल पाऊंगा। कभी भी कोई नहीं डाल पाया। और कभी कोई डाल भी नहीं पाएगा। क्योंकि जो मैं जानता हूं, वह मेरा अनुभव है। और जब मैं उसे शब्द बनाता हूं, तो तुम्हारे कानों में जो सुनाई पड़ता है, वह अनुभव नहीं है, वह कोरा शब्द है।
मैं कहता हूं--परमात्मा। तुम सुन लेते हो। और मैं कहता हूं--आत्मा। और
वह भी सुन लिया जाता है। लेकिन न तो आत्मा से कुछ अर्थ प्रकट होता है और न परमात्मा से। शब्द सुनाई पड़ते हैं और बहुत बार सुन लेने पर ऐसा भ्रम भी पैदा हो जाता है कि हम समझ गए। शब्दों की समझदारी नासमझी का दूसरा नाम है। तुम्हें कुछ भी पता नहीं, यह बात ख्याल में ले लें। यह आधारभूत है। क्योंकि जो व्यक्ति यह समझ ले बिना कुछ जाने कि मैं जानता हूं, उसके जानने का द्वार बंद हो जाता है। बीमार समझ ले कि स्वस्थ है, तो चिकित्सा की तलाश बंद हो जाती है। अज्ञानी को ख्याल हो जाए ज्ञान का, तो अज्ञान जितना नहीं भटकाता था, उतना ज्ञान भटका देगा।
इस बात का ख्याल आ जाए कि मुझे कुछ भी पता नहीं, तो यह ज्ञान की पहली किरण है। अब तुम ईमानदार हुए। अब तुमने कम से कम एक सच्ची बात स्वीकार की कि मुझे कुछ पता नहीं। तुमने अपने शास्त्र हटा कर रख दिए और तुमने अपने शब्दों को छोड़ दिया। और तुम ईमानदार हुए, प्रामाणिक हुए अपने प्रति कि न मुझे आत्मा का पता है, न मुझे मोक्ष का। मुझे पता ही नहीं कि जीवन क्या है? यह अज्ञान की स्वीकृति--ज्ञान का पहला चरण है।
यहां अगर कोई ज्ञानी आ गया हो--वापस लौट जाए। मैं उन्हीं के साथ काम कर सकूंगा, जिन्हें इस बात का बोध है कि वे अज्ञानी हैं। तुम्हारा ज्ञान बाधा बन जाएगा। फिर ज्ञान हो ही गया हो तो व्यर्थ श्रम उठाने की जरूरत नहीं है। इसलिए इसे ठीक से समझ लेना, कि तुम अगर बीमार हो तो मैं दवा दूंगा। तुम अगर अज्ञानी हो तो मैं ज्ञान की तरफ ले चलने की कोशिश करूंगा। तुम अगर अंधेरे में हो तो मैं तुम्हें प्रकाश का रास्ता बताऊंगा। लेकिन अगर तुम प्रकाश में ही खड़े हो, तो मेरा श्रम और अपना श्रम व्यर्थ मत करना। जो आदमी सोया हो

उसे जगाना बहुत आसान है। जो आदमी जाग कर पड़ा हो और सोचता हो कि सोया है--उसे जगाना बहुत मुश्किल है।
दूसरी बात, जीवन सबका एक ही बात को खोज रहा है--कैसे दुख मिटे? कैसे आनंद उपलब्ध हो? एक ही तलाश है और एक ही प्यास है। वह वृक्ष भी अगर उठ रहा है जमीन से आकाश की तरफ, तो इसी तलाश में है। अगर पक्षी उड़ रहे हैं और पशु चल रहे हैं और आदमी जी रहा है--तलाश वही है। एक पत्थर भी अगर अस्तित्व में है, तो उसकी भी भीतरी खोज आनंद की है। तो दूसरी बात ख्याल में ले लेना कि खोज क्या रहे हो?
बहुत लोग परमात्मा को खोजने निकल पड़ते हैं, लेकिन परमात्मा की खोज मुश्किल है। मुश्किल इसलिए है कि परमात्मा के संबंध में कोई भी तो भीतर गहरी प्यास नहीं है। अपनी प्यास को पकड़ कर चलें--एक दिन शायद वही प्यास परमात्मा की प्यास बन जाए। लेकिन अभी नहीं है। अभी तो आप ठीक से समझ लें कि आपकी तलाश आनंद की तलाश है। शायद यह खोज आगे बढ़े, और यह छोटी सी गंगोत्री से निकली गंगा आनंद की तलाश में चले। और धीरे-धीरे जैसे-जैसे खोज गहरी हो, वैसे-वैसे पता चले कि आनंद तो परमात्मा का ही एक नाम है। और शायद पता चले कि आनंद तो परमात्मा का ही एक गुण है। और शायद पता चले कि हमारी खोज सिर्फ आनंद की नहीं है, कुछ और ज्यादा की है। लेकिन प्रारंभिक खोज आनंद की है, परमात्मा की नहीं है।
कुछ लोग पहले से ही परमात्मा की बात में पड़ जाते हैं, तो कठिनाई हो जाती है। बीज बिना हुए वृक्ष होने की कोशिश शुरू हो जाती है। फिर अड़चन होती है। फिर दौड़-धूप बहुत होती है, परिणाम कुछ भी नहीं आता। और जब परिणाम नहीं आता, तो निराशा पकड़ती है, विषाद घेर लेता है।
तो एक बात--आनंद की तलाश के लिए यहां आए हैं। छोड़ें परमात्मा को, जल्दी नहीं है। आप आनंद की खोज पर यात्रा शुरू करें और अंत परमात्मा की उपलब्धि पर होगा। लेकिन शुरुआत परमात्मा से मत करें। पहली सीढ़ी से ही चढ़ना उचित है, और क ख ग से ही शुरुआत करनी ठीक है। आनंद सबकी समझ में आता है--फिर वह नास्तिक हो तो भी, फिर वह हिंदू हो, या मुसलमान हो, या ईसाई हो, या जैन हो तो भी। ईश्वर को मानता हो, न मानता हो; धर्म में आस्था रखता हो या न रखता हो-- कोई भी हो, आनंद की खोज सार्वभौम है। उससे ही शुरू करें, जो सबकी खोज है। यह दुनिया में इतने धर्मों का विवाद न हो, हिंदू और मुसलमान और ईसाई
की लड़ाई न हो, जैन और हिंदू के बीच कलह न हो--अगर हम सार्वभौम खोज को स्वीकार करें। लेकिन हम ईश्वर की खोज से शुरुआत करते हैं। और ईश्वर का हमें न कोई पता है और न ईश्वर को खोजने की कोई प्रबल आकांक्षा है, न हमें प्रयोजन है। तो शब्दों पर लड़ते हैं। तो जिस ईश्वर का हमें कोई पता नहीं, उसकी हम अलग-अलग शाब्दिक व्याख्याएं करते हैं। फिर इन व्याख्याओं में विरोध होता है, फिर मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे खड़े होते हैं और आदमी व्यर्थ ही परेशान होता है।
आनंद से शुरू करें, फिर आपकी नास्तिक से भी कोई दुविधा नहीं है, द्वंद्व नहीं है। फिर हिंदू हो या मुसलमान हो, कुछ लेना-देना नहीं है। क्योंकि जब हम आनंद की खोज कर रहे हैं, तो हम उस तत्व की खोज कर रहे हैं, जो प्रत्येक प्राणी खोज रहा है, किसी का इंकार नहीं है। और धीरे-धीरे जैसे- जैसे खोज गहरी होगी, वैसे-वैसे पता चलेगा कि आनंद की खोज अंत में परमात्मा की खोज बन जाती है।
तीसरी बात, याद रखें--आनंद खोजना चाहते हैं, लेकिन त्यागेंगे क्या? चुकाएंगे क्या? किस चीज से आनंद की खोज करना चाहते हैं? आपके पास क्या है, जो आप देंगे?
अगर आदमी एक कदम भी चलता है, तो उसे वह जमीन छोड़ देनी पड़ती है, जिस पर खड़ा था, तो ही आगे बढ़ पाता है। इस जगत में कोई गति नहीं है, अगर हम कुछ छोड़ने को राजी न हों। त्याग के बिना एक कदम भी नहीं उठता है। अगर हाथ में मिट्टी, कंकड़, पत्थर भरे हुए हैं--और हीरे-जवाहरात चाहिए--तो छोड़ देने पड़ेंगे। कम से कम हाथ खाली करना पड़ेगा, व्यर्थ को हटा देना पड़ेगा, ताकि सार्थक उतर सके। क्या है आपके पास?

आप डर मत जाना! न तो मैं कहूंगा कि आप धन छोड़ दें, क्योंकि वह आपके पास
है नहीं, किसी के पास नहीं है। इस दुनिया में बड़े से बड़ा धनी भी दरिद्र ही होता है। वह है ही नहीं किसी के पास।
दो तरह के दरिद्र होते हैं--एक गरीब दरिद्र होते हैं, एक अमीर दरिद्र होते हैं। बाकी दरिद्र ही होते हैं। अभी तक मैंने अमीर आदमी नहीं देखा। पैसे वाले बहुत दिखाई पड़ते हैं, पर अमीर नहीं। वे भी पकड़ने की दौड़ में उतने ही हैं, जितना गरीब से गरीब आदमी। जैसा भिखमंगा अपने हाथ में जो उसे मिल गया है, उसे पकड़े हुए है; वैसा बड़ी से बड़ी तिजोरी जिसके पास है, वह भी उतने ही जोर से पकड़े हुए है। वह पकड़ एक सी है, तो गरीबी एक सी है।
तो आपके पास धन तो है नहीं--किसी के पास नहीं है--इसलिए मैं नहीं कहता
कि आप धन छोड़ दें। जो नहीं है, उसे आप छोड़ेंगे भी कैसे? मैं आपसे नहीं कहता कि आप अपना जीवन दे दें--वह भी आपके पास नहीं है। जिसका आपको पता ही नहीं, वह आपके पास कैसे हो सकता है? और आप कंप रहे हैं प्रतिपल मृत्यु के भय से। अगर आप जीवन ही होते, तो आप मृत्यु से डरते क्यों?
जीवन की तो कोई मृत्यु नहीं होती। जीवन तो मृत्यु बन कैसे सकता है? लेकिन आप कंप रहे हैं मृत्यु से। प्रतिपल मौत आपको घेरे हुए है। सब तरह से आप अपने को बचाने की कोशिश कर रहे हैं कि मैं मिट न जाऊं, मर न जाऊं, समाप्त न हो जाऊं। जीवन भी आपके पास नहीं है। इसलिए मैं आपसे न कहूंगा कि जीवन दान कर दें। जो है ही नहीं, उसका आप दान भी कैसे करेंगे?
मैं तो आपसे वह मांगूंगा जो आपके पास है। और वह मांगूंगा जो सभी के पास है। जैसा मैंने कहा कि सभी की खोज है आनंद, ऐसी एक संपदा सभी के पास है-- और वह है दुख। वह आपके पास काफी है, वह आपके पास जरूरत से ज्यादा है। जन्मों-जन्मों से आपने उसके अतिरिक्त और कुछ इकट्ठा ही नहीं किया है। आपके पास राशियां लग गई हैं। गौरीशंकर छोटा पड़ जाए, आपने जो दुख के ढेर लगाए हैं, वे उससे बड़े हैं, वह भी शरमा जाए। और शायद हिलेरी और तेनसिंह आपके दुख के ढेर पर चढ़ने में सफल न होंगे, वे बड़े हैं। वह जन्मों-जन्मों की आपकी मेहनत है, आपने दुख के सिवाय कभी कुछ कमाया नहीं है। आप अभी भी कमा रहे हैं।
मैं आपसे चाहूंगा कि आप दुख छोड़ दें, आप दुख का त्याग कर दें। कोई आपसे दुख मांगता नहीं, मैं आपसे दुख मांगता हूं। और अगर आप दुख दे सकें, तो आनंद के लिए रास्ता निर्मित हो जाए। और अगर आप दुख छोड़ सकें, तो आपको पता लगे कि जो आप सोचते थे कि आप दुख में जी रहे हैं, वह आपकी भ्रांति थी। और दुख ने आपको नहीं पकड़ा था, आपने ही दुख को पकड़ा हुआ था। मगर एक बार छोड़ें तो ही पता चले कि कौन किसको पकड़े हुए है।
आप सदा यही पूछते रहते हैं कि दुख से कैसे छुटकारा हो? आपकी बातों से ऐसा लगता है कि जैसे दुख ने आपको पकड़ा है, और छुटकारा चाहिए। अगर दुख आपको पकड़े हुए है, तो फिर आप छूट न पाएंगे। फिर पकड़ ही आपके हाथ में नहीं है, दुख के हाथ में है। फिर तो आप विवश हैं, असहाय हैं। और जन्मों-जन्मों से नहीं छूट पाए हैं, तो अब कैसे छूट जाइएगा?
मैं आपसे कहता हूं कि दुख ने आपको नहीं पकड़ा हुआ है, आप दुख को पकड़े हुए हैं। और अगर आप राजी हुए, तो आपको यह समझ में आ जाएगा। न केवल समझ में, बल्कि आप छोड़ कर भी अनुभव कर लेंगे कि यह छूटता है। और जब आप दुख को छोड़ने की कला में कुशल हो जाते हैं, तब आपको पता लगता है कि जो भी आप ढो रहे थे, उसके लिए आपके अतिरिक्त और कोई भी जिम्मेवार नहीं था। और आपने जो भी भोगा है, कोई और कसूरवार नहीं है। यह आपकी मर्जी थी, आप दुख चाहते थे। जो हम चाहते हैं, वही होता है। और जो भी आप हैं, आप अपनी चाहों का फल हैं। न तो कोई परमात्मा जिम्मेवार है, न कोई भाग्य जिम्मेवार है; किसी को प्रयोजन नहीं है आपको दुखी करने के लिए।
सच तो यह है कि यह पूरा अस्तित्व आपको आनंदित करने के लिए तत्पर है।
यह पूरा अस्तित्व चाहता है कि आपका जीवन एक उत्सव बन जाए। क्योंकि जब आप दुखी होते हैं, तो आप चारों तरफ दुख भी फेंकते हैं। जब आप दुखी होते हैं तो आपके घाव की दुर्गंध सारे अस्तित्व में पहुंचती है। और जब आप दुखी होते हैं तो यह अस्तित्व भी पीड़ा पाता है। यह सारा जगत आपके साथ पीड़ित होता है

और आपके आनंद के साथ आनंदित होता है। कोई अस्तित्व की चाह नहीं है कि आप दुखी हों। क्योंकि यह तो अस्तित्व के लिए ही आत्मघात है। पर आप दुखी हैं और दुखी होने में आपने कुछ व्यवस्था बना रखी है। और उस व्यवस्था को जब तक आप न तोड़ दें, तब तक आप कभी भी आनंद की तरफ आंख न खोल पाएंगे।
आपकी व्यवस्था क्या है? मनुष्य की व्यवस्था क्या है दुख संगृहीत करने की? वह कैसे इकट्ठा करता है? यह समझ लें थोड़ा, तो शायद छोड़ने में आसानी हो। कल सुबह से हम प्रयोग में उतरना शुरू होंगे।
आप रोना चाहते हैं अगर... । एक छोटा बच्चा रोना चाहता है--मनस्विद कहते हैं कि बच्चे की रोने की प्रक्रिया, रेचन की प्रक्रिया है। जब भी बच्चे में तनाव भर जाता है, तो वह रो कर अपने तनाव को बहा देता है। एक छोटा बच्चा है। आप छोटे बच्चे थे। उसे भूख लगी है, वक्त पर उसे दूध नहीं मिल रहा है तो वह रो रहा है, क्योंकि तनाव से भर गया है। और तनाव को बाहर निकालना जरूरी है। वह रो लेगा, तनाव बाहर निकल जाएगा, वह हल्का हो जाएगा। लेकिन हम उसे समझाते हैं कि रोओ मत। हम सब तरह के उपाय करते हैं कि वह रोए न, हम हाथ में खिलौना दे देते हैं, ताकि वह भूल जाए। हम मुंह में झूठी कोई चीज लगा देते हैं, उसका अंगूठा उसके मुंह में दे देते हैं, ताकि वह समझ ले कि मां का स्तन मिल गया, और भूल जाए। हम उसे हिलाने लगते हैं, डुलाने लगते हैं, ताकि उसका ध्यान विचलित हो जाए और वह रोए न। हम सब तरह के उपाय करते हैं, हम उसे रोने नहीं देते। वह जो तनाव निकल जाता रोने से, वह इकट्ठा हो जाएगा, वह निकलेगा नहीं। ऐसे हम इकट्ठे होने देते हैं। और हर व्यक्ति न मालूम कितना रुदन, न मालूम कितनी पीड़ा संगृहीत कर लेता है। उसके ढेर पर इकट्ठा बैठ जाता है। आपने न मालूम कितने तनाव इकट्ठे कर लिए हैं। न तो आप कभी दिल भर कर रोए
और न आप कभी दिल भर कर हंसे। न रोने से रुक गया है कुछ, न हंसने से रुक गया है कुछ। न आपने कभी दिल भर कर क्रोध किया है और न कभी दिल भर कर क्षमा ही की है। आप बिल्कुल अधूरे-अधूरे रह गए हैं। सब तरफ आप की शाखाएं निकलना चाहती हैं, लेकिन निकल नहीं पाईं। सब तरफ पत्ते निकलना चाहते थे, लेकिन नहीं फूट पाए। आपका वृक्ष ठूंठ की तरह रह गया है। इस संगृहीत पीड़ा, अविसर्जित पीड़ा का नाम नर्क है। और यह नर्क आप ढो रहे हैं।
यहां मैंने आपको बुलाया है, ताकि आपके नर्क को फेंका जा सके। और आप इसे फेंक सकते हैं। इस शिविर में आप छोटे बच्चे की भांति हो जाएं। आप भूल ही जाना कि आप बड़े सुसंस्कृत हैं, कि आप बड़े शिक्षित हैं, कि आप बड़े पद पर हैं, कि आपके पास धन है, कि गांव में इज्जत है--आप सब छोड़ देना। आप ऐसे हो जाना, जैसे कि आप पहले दिन के पैदा हुए बच्चे हैं--न कोई प्रतिष्ठा है, न कोई शिक्षा है, न कोई पद है, न कोई धन है, न कोई मान-मर्यादा है। अगर मान-मर्यादा, पद, इस सबको बचाना हो, तो कल सुबह के पहले आप यहां से जितनी जल्दी हो भाग जाना और लौट कर मत देखना--उनके लिए मैं नहीं हूं। आपकी पद-मर्यादा, आपकी इज्जत, आपकी समझदारी सुरक्षित रहे--आप भाग जाना, आप यहां मत रुकना। यहां तो मैं उनके लिए हूं, जो छोटे बच्चों की तरह सरल होने को तैयार हैं। तो ही मैं कुछ कर पाऊंगा, क्योंकि सिर्फ बच्चों को ही कुछ सिखाया जा सकता है। और सिर्फ बच्चों को बदला जा सकता है। और सिर्फ बच्चों के जीवन में क्रांति हो सकती है।
ध्यान के इन प्रयोगों में, जो यहां चलेंगे, आपके हृदय में जो भी दुख हो, उसे उलीच डालना, उसे बाहर फेंक देना। क्रोध हो उसे आकाश में उलीच देना, हिंसा हो उसे आकाश में उलीच देना। किसी पर हिंसा करनी नहीं है, खुले आकाश में विसर्जित कर देनी है। दुख, पीड़ा, संताप, जो भी भीतर हो; उसे फेंक देना है। उसे इतनी तरह से उलीचना, जितनी तरह से आप में सामर्थ्य हो। आप सारी ताकत लगा देना, कि भीतर जो भी दुख है, वह प्रकट हो जाए। यह आप समझ लें कि दुख जब अचेतन में दब जाता है, तो जब तक उसे प्रकट न किया जाय पुनः, वह आप से बाहर नहीं जाता, भीतर दबा रहता है। उसे प्रकट करें, उसे चेतन में ले आएं। वह जो भीतर अंधेरे में दबा है, उसे खींच लें बाहर, रोशनी में ले आएं।
कुछ चीजें रोशनी में मर जाती हैं। वृक्ष की जड़ों को आप अगर खींच कर रोशनी में ले आएं, वे मर जाएंगी। उनको अंधेरा चाहिए, अंधेरे में ही वे रहती हैं, अंधेरे में ही उनका जीवन है। दुख का जीवन भी अंधेरे में है, जड़ों की

भांति। आप उसे खींच कर बाहर ले आएं, और आप पाएंगे कि मृत्यु हो गई उसकी। आप उसको भीतर दबाते जाएं, वह जन्मों-जन्मों तक आपका सगा-साथी रहेगा, संगी रहेगा। दुख को लाना है बाहर।
एक बात और समझ लें। दुख को आप बाहर से ही भीतर ले गए हैं। उसे कृपा करके बाहर ही वापस लौटा दें। दुख भीतर नहीं है। दुख सब बाहर से ही भीतर ले जाया जाता है। आप जब पैदा होते हैं, आपका जो निज-स्वभाव है, वहां कोई दुख नहीं है। दुख बाहर से भीतर लाया जाता है। एक आदमी है, उसने आप को गाली दे दी, आप दुखी हो गए। आप बाहर से गाली को भीतर ले आए। अब इस दुख को आप भीतर सम्हालेंगे, संजोएंगे, दबाएंगे; तो यह बढ़ेगा, फैलेगा, आपकी रग-रग में, रोएं- रोएं में जहर बन जाएगा। आप एक दुखी व्यक्तित्व हो जाएंगे। दुख हम बाहर से भीतर लाते हैं, वह हमारा स्वभाव नहीं है।
इसीलिए कहता हूं कि दुख से मुक्त हुआ जा सकता है। क्योंकि स्वभाव से मुक्त नहीं हुआ जा सकता, केवल पर-भाव से मुक्त हुआ जा सकता है। जो अपना नहीं है, उसी से हम मुक्त हो सकते हैं। जो अपना ही है, उससे मुक्त होने का कोई मार्ग नहीं है।
दुख को बाहर उलीचना है। इन आने वाले दिनों में जितना उलीच सकें, उलीचना। और जैसे-जैसे उलीचेंगे, उतनी-उतनी समझ बढ़ेगी कि अजीब पागलपन था कि हम इसे सम्हाले थे। इसे तो सहज ही फेंका जा सकता था, यह तो हमारे हाथ में था, लेकिन हम नाहक ही हाथ को रोके हुए थे।
और दूसरी बात--जैसे-जैसे दुख उलीचेंगे, बाहर से आया हुआ दुख जैसे ही बाहर वापस भेज दिया जाएगा, भीतर आपको आनंद की स्फुरणा शुरू हो जाएगी। आनंद भीतर है। उसे कोई बाहर से नहीं लाता, वह बाहर से नहीं आता, वह आपका स्वभाव है। वह आप हैं। वह आपके भीतर छिपा है, वह आपकी आत्मा है।
अगर यह बाहर से इकट्ठा कचरा बाहर फेंक दिया जाए, तो वह भीतर की आत्मा फैलने लगती है, विस्तीर्ण होने लगती है। उसकी रोशनी आपको दिखाई पड़ने लगती है। और आपको उसका नाद सुनाई पड़ने लगता है। और आप एक भीतर के संगीत में डूबने लगते हैं। लेकिन यह होगा तभी, जब आप बाहर का कचरा बाहर फेंक देंगे, ताकि भीतर आकाश निर्मित हो जाए, जगह बने। उस जगह में, भीतर जो छिपा है, वह फैल सके।
दुख को बाहर फेंकना है, ताकि आनंद भीतर से फैलने लगे। और जब आनंद भीतर
से फैलने लगे, तो दूसरी बात और भी समझ लेनी जरूरी है।
दुख को अगर दबाएं तो बढ़ता है। दुख को अगर दबाएं तो बढ़ता है, दुख को अगर प्रकट करें तो घटता है। आनंद बिल्कुल उलटा है। आनंद को अगर दबाएं तो घटता है, आनंद को अगर प्रकट करें तो बढ़ता है।
तो पहले तो दुख को फेंकना है, क्योंकि वह फेंकने से घटता है। उसको दबाना मत, क्योंकि वह दबाने से बढ़ता है। और जब आनंद की झलक भीतर से आने लगे तो आनंद को बाहर फेंकना है। क्योंकि आनंद को जितना बाहर फेंकें, उतना भीतर बढ़ता है, उतनी ताजी पर्तें टूटने लगती हैं। जैसे कुएं से कोई पानी उलीचता जाए, तो झरने से नए स्रोत कुएं को भरते चले जाते हैं। आनंद का स्रोत भीतर है, इसलिए डरना मत कि आनंद उलीचने से कम हो जाएगा। दुख उलीचने से कम होता है, क्योंकि भीतर उसका स्रोत नहीं है। वह बाहर से ली गई चीज थी, अगर उलीचेंगे तो कम होगी।
अगर दुख बचाना हो तो यह तरकीब ध्यान में रख लेना, कभी उलीचना मत। दुख अगर बढ़ाना हो, यही कश्त कर लिया हो--और लगता है कि बहुत लोग यही तय किए बैठे हैं--तो दुख को कभी उलीचना मत, प्रकट मत करना। आंसू आते हों तो पी जाना, क्रोध आता हो तो दबा लेना। कुछ भी भीतर से पैदा होता हो उपद्रव, तो उसे भीतर ही दबा देना, वह बढ़ जाएगा। आप एक महानर्क बन जाएंगे।
दुख को घटाना हो तो उलीचना, आनंद को बढ़ाना हो तो उलीचना। क्योंकि आनंद भीतर है, और नई पर्तें टूटती जाएंगी। और जैसे-जैसे आनंद को आप उलीचेंगे ज्यादा शुद्धतर आनंद की झलक मिलनी शुरू होगी। आनंद बांटने से बढ़ता है। इसलिए तो भाग जाते हैं बुद्ध और महावीर जंगल में, जब दुख में हैं, क्योंकि दुख उलीचना है। अच्छा है एकांत में उलीचें, ताकि किसी को स्पर्श भी न करे। लेकिन जब आनंद से भरते हैं तो वापस लौट आते हैं जनसमूह में,

क्योंकि अब बांटना है। और जब बांटना ही है तो अब जनसमूह में आ कर ही बांटना उचित है। शायद किसी को लग जाए, शायद कोई पकड़ ले धुन, शायद कोई नाच उठे, शायद किसी के हृदय की वीणा को छू जाए और वीणा बजने लगे।
तो ध्यान रखना, चाहे क्राइस्ट, चाहे मोहम्मद, चाहे महावीर, चाहे बुद्ध, जब दुख में हैं तब एकांत में चले जाते हैं। क्योंकि उलीचना है दुख, उचित है अकेले में उलीच दें, किसी को पता भी न हो। और जब भर जाते हैं आनंद से, तो लौट आते हैं समूह में, भीड़ में। क्योंकि अब उलीचना है आनंद और अब जितना बंट जाए उतना अच्छा है।
दुख उलीचना है। और जब आनंद की झलक आने लगे, तो आनंद भी उलीचना है। और
हो जाना है बिल्कुल छोटे बच्चे की भांति, जिसे न चिंता है अतीत की, न फिक्र है भविष्य की। जिसे कोई पता भी नहीं है कि दूसरे उसके संबंध में क्या सोचते हैं। तो ही जिस घटना के लिए मैंने आपको पुकारा है, वह घट पाएगी। और जिस यात्रा पर चाहता हूं आपको गतिमान कर दूं, वह यात्रा गतिमान हो पाएगी। थोड़े से साहस की जरूरत है और आनंद के खजाने बहुत दूर नहीं हैं। थोड़े
से साहस की जरूरत है और नर्क को आप ऐसे ही उतार कर रख सकते हैं, जैसे कि कोई आदमी धूल-धवांस से भर गया हो रास्ते की, राह की, और आ कर स्नान कर ले और धूल बह जाए। बस ऐसे ही ध्यान स्नान है। दुख धूल है। और जब धूल झड़ जाती है और स्नान की ताजगी आती है, तो भीतर से जो सुख, जो आनंद की झलक मिलने लगती है, वह आपका स्वभाव है।
अब हम सूत्र को लें।
मैबल कॉलिन्स की यह छोटी सी पुस्तिका, लाइट आन दि पाथ, पथ-प्रकाशिनी है। मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत मूल्यवान थोड़ी सी पुस्तिकाओं में से एक है। मैबल कॉलिन्स इस पुस्तिका की लेखिका नहीं है। यह पुस्तिका उन थोड़े से सार शब्दों में से है, जो बार-बार मनुष्य आविष्कृत करता है, और बार-बार खो देता है।
सत्य कठिन है बचाना। सत्य जब उतरता है, तो परम-ऊंचाई के व्यक्तित्व हों, तभी! जो बहुत शिखर पर खड़े होते हैं जीवन चेतना की, वे ही सत्य की झलक उपलब्ध कर पाते हैं। वे कहते हैं, वे लिखते हैं, वे हजार तरह के उपाय करते हैं कि जो झलक उन्हें मिली है, वह सभी की संपदा बन जाए, सभी के लिए धरोहर हो जाए। लेकिन जो उन ऊंचाइयों पर नहीं हैं, वे उनके शब्दों को कभी भी ठीक से समझ नहीं पाते। और वे जो भी समझते हैं, वह गलत होता है। और वे जो भी व्याख्या करते हैं, वह भी गलत होती है। और फिर धीरे-धीरे, धीरे-धीरे वह जो सत्य की पहली किरण थी, खो जाती है और असार शब्द हाथ में रह जाते हैं। कभी- कभी तो वे शब्द भी खो जाते हैं और तब पुनः-पुनः उन सार शब्दों की खोज करनी पड़ती है।
मैबल कॉलिन्स का कथन है कि ये जो शब्द इस पुस्तिका में उसने संगृहीत किए हैं, ये उसने लिखे नहीं हैं, वरन ध्यान की किसी गहराई में उसने देखे हैं। उसका कहना है--और कहना ठीक है--कि किसी विलुप्त हो गई संस्कृत पुस्तिका में ये शब्द उल्लिखित थे। वह पुस्तिका विलुप्त हो गई है, खो गई है। आदमी से उसका संबंध छूट गया है। और उसने उस पुस्तिका को पुनः देखा है। उसने उसी पुस्तिका को वैसा का वैसा उतार कर रख दिया है।
इस जगत में जो भी मूल्यवान है, उसके खोने का डर है, लेकिन बिल्कुल खो जाने का डर नहीं है। क्योंकि जब भी कोई उसी ऊंचाई पर पहुंचेगा--कोई भी व्यक्ति--तब उसे फिर खोजा जा सकता है। दुनिया के बहुत से शास्त्र इसी तरह बार-बार खोजे जाते रहे हैं।
कुरान इसी तरह अवतरित हुई। जब पहली दफा मोहम्मद को सुनाई पड़ा कि पढ़,
तो मोहम्मद तो बेपढ़े थे, पढ़े-लिखे नहीं थे, तो उन्होंने कहा, मैं क्या पढूं? उनके सामने कुछ अक्षर तैर रहे हैं ध्यान में और आवाज भीतर से आती है, पढ़। तो मोहम्मद ने कहा, मैं क्या पढूं? क्योंकि मैं तो पढ़ा-लिखा नहीं हूं! तो भीतर से आवाज आती है कि इन शब्दों को पढ़ने के लिए बाहर की पढ़ाई की जरूरत भी नहीं है--तू पढ़। मोहम्मद खुद इतने घबड़ा गए कि यह जो हो रहा है कोई भ्रम है, कोई स्वप्न है या मैं विक्षिप्त हो गया हूं। घर आ कर कंबल ओढ़ कर सो रहे, बुखार आ गया, सारा शरीर कंपने लगा। उनकी पत्नी ने पूछा, आपको हुआ क्या है?

तो तीन दिन तक तो पत्नी को भी नहीं बताया, क्योंकि खुद पर ही भरोसा नहीं आ रहा था कि जो देखा है, वह सच्चा हो सकता है। और यह भी पक्का नहीं था, कि जब अपने को ही भरोसा नहीं आ रहा है, तो पत्नी को क्या भरोसा आएगा! कहेगी कि पागल हो गए हो, सन्निपात हो गया है। डाक्टर को बुलाएं, चिकित्सक को बुलाएं, इलाज करवाएं। तीन दिन तक अपने को रोके रखा। लेकिन वह बार-बार होती रही घटना--कि पढ़। और वे ही अक्षर बार-बार दोहरते रहे। और धीरे-धीरे मोहम्मद उन अक्षरों को पहचानने लगे और कुरान की आयतें उतरनी शुरू हो गईं। कुरान इस तरह अवतरित हुई।
यह मैबल कॉलिन्स के ऊपर इसी तरह यह पुस्तिका, लाइट आन दि पाथ, अवतरित हुई है। इस पुस्तिका का एक-एक सूत्र मूल्यवान है। यह हजारों-हजारों साल की और हजारों-हजारों लोगों की साधना का सार-निचोड़ है। एक-एक शब्द को बहुत ध्यानपूर्वक सुनना।
"ये नियम शिष्यों के लिए हैं।"
सभी के लिए नहीं, सिर्फ शिष्यों के लिए हैं। क्या अर्थ है? ये नियम सिर्फ उनके लिए हैं, जो सीखने को तैयार हैं। ये नियम सबके लिए नहीं हैं। क्योंकि बहुत से लोग हैं, जो सीखने को तैयार ही नहीं हैं।
इसीलिए मैंने कहा कि अगर तुम अज्ञानी हो, इसका तुम्हें पता है, तो रुकना, अन्यथा भाग जाना। क्योंकि जो अज्ञानी है, वह शिष्य हो सकता है। जो अज्ञानी है और समझता है कि मैं अज्ञानी हूं, उसने शिष्य की योग्यता पा ली है, वह सीखने को तैयार होगा। ज्ञानी सीखने को तैयार नहीं होता। इसलिए ज्ञानी अज्ञानी रह जाते हैं, क्योंकि वे सीखने को तैयार नहीं होते। और अज्ञानी ज्ञानी हो जाते हैं, क्योंकि वे सीखने को तैयार होते हैं। और सीखने की कुशलता और कला का नाम शिष्यत्व है।
ये नियम उनके लिए हैं, जो शिष्य हैं। शिष्य का क्या अर्थ है? शिष्य का अर्थ है, जो झुकने को राजी है। जो ज्ञान को अपने अहंकार से ज्यादा मूल्यवान मानता है। और जो कहता है, मैं सिर झुकाऊंगा, मैं सिर धरती पर रख दूंगा, अगर मुझे प्रकाश की थोड़ी सी किरण भी मिलती हो। मैं सब खोने को तैयार हूं, मैं अपने को भी देने को तैयार हूं।
शिष्य का अर्थ है--एक गहन विनम्रता।
शिष्य का अर्थ है--अपने को झुका कर, हृदय को एक पात्र बना लेना।
नदी बहती है और प्यासे आप खड़े रहें और झुकने को राजी न हों, तो नदी छलांग लगा कर आपके हाथों में नहीं आएगी। नदी आप पर नाराज भी नहीं है। नदी आपकी प्यास को मिटाने को प्रतिपल तत्पर भी है। पर झुकना पड़े, झुक कर नदी में अंजुलि बनानी पड़े, तो नदी आपके हाथों में भी आ जाएगी। बस, ज्ञान भी झुके बिना उपलब्ध नहीं होता।
तो ये नियम उनके लिए हैं, जो झुकने को राजी हैं। सिर्फ प्यासे हैं, इतना काफी नहीं है। जो अंजुलि बना कर झुकते भी हैं। और जो कहते हैं कि मैं मिट जाऊं तो भी हर्ज नहीं है, लेकिन जीवन का रहस्य मेरे बोध में आ जाए। मैं धूल की तरह चरणों में पड़ जाऊं तो भी कोई हर्ज नहीं है, लेकिन जान जाऊं कि जीवन का स्वाद क्या है, अर्थ क्या है, प्रयोजन क्या है? मैं क्यों हूं और किसलिए हूं?
जो अपने को बचाने की कोशिश में लगे हैं, जिनकी झुकने की जरा सी भी वृत्ति नहीं है, उनके लिए ये नियम नहीं हैं। तो आप सोच लेना कि आपकी वृत्ति अगर शिष्य की है, तो ही ये नियम आपकी समझ में आएंगे। और समझ में आएं तो ही इनका प्रयोग आप कर सकेंगे।
रोज मैं देखता हूं--लोग आते हैं, वे जानना चाहते हैं, लेकिन सीखना नहीं चाहते। जानने का अर्थ होता है, मुफ्त में जान लेना। सीखने का अर्थ होता है, अपने को देना, चुकाना। सीखने का अर्थ होता है, झुकना। और जानने का अर्थ है कि ठीक!
एक मित्र मेरे पास आए। मैंने उनसे पूछा... बहुत बार लिखते थे कि आना चाहता हूं, आना चाहता हूं। तो मैंने पूछा, आप बहुत बार लिखते थे कि आना चाहता हूं, किसलिए? तो उन्होंने कहा कि विचारों का आदान-प्रदान करना है। तो मैंने कहा, अगर आपको पक्का भरोसा हो कि आपको कुछ मिल गया है, तो मैं

शिष्य-भाव से उसे सीखने को तैयार हूं। अगर आपको पक्का भरोसा न हो--मुझे पक्का भरोसा है कि मुझे कुछ मिल गया है--तो आप शिष्य-भाव से सीखने को तैयार हो जाओ। आदान-प्रदान का उपाय नहीं है। या तो मुझे दे दें अगर आपके पास हो, या मैं आपको दे दूं अगर आपकी लेने की तैयारी हो। आदान-प्रदान का क्या मतलब है? अगर आपको भी मिल गया और मुझे भी मिल गया, तो बात ही खतम हो गई, लेना-देना क्या है? और अगर दोनों को नहीं मिला है, तो लेंगे-देंगे क्या? अगर दोनों में से एक को मिल गया हो तो लेन-देन हो सकता है। तो मैंने कहा, पहले हम पक्का कर लें।
वे बड़ी बेचैनी में पड़ गए। यह भी नहीं कह सकते कि उनको मिल गया है, मिला नहीं है; यह भी नहीं मान सकते कि लेने की दीनता बताएं, यह भी नहीं मान सकते। कहने लगे, मैं सोच कर आऊंगा। मैंने कहा, अगर मिल गया हो तो सोचना क्या है? और नहीं मिला हो तो क्या सोचना है--साफ ही होगा! और मैंने उनसे कहा कि सोच कर आप न आ पाएंगे। अभी तक तो नहीं आ पाए। वह आदान-प्रदान कर सकते थे। झूठे शब्द हैं, जैसे दो अंधे एक-दूसरे को रास्ता बताएं--तो आदान-प्रदान।
बुद्ध और महावीर एक बार एक ही धर्मशाला में ठहरे थे, मिलना नहीं हुआ।
तो चिंता की बात मालूम पड़ती है। दो भले आदमी मिलते तो अच्छा होता। और न मालूम कितने लोग सोचते रहे कि क्यों नहीं मिले। जिनकी धर्म में कोई आस्था नहीं, वे समझते होंगे कि दोनों अहंकारी रहे होंगे इसलिए नहीं मिले। जैनी समझते हैं कि महावीर क्यों मिलें, वे तो ज्ञानी हैं! बुद्ध को मिलना हो तो आ जाएं मिलने। बौद्ध सोचते हैं कि बुद्ध क्यों मिलें, वे तो ज्ञानी हैं! अगर महावीर को मिलना हो तो आ जाएं मिलने। लेकिन बुद्ध और महावीर के न मिलने का कारण दूसरा है--मिलने का कोई अर्थ ही नहीं है, कोई प्रयोजन ही नहीं है।
दो अज्ञानी मिलें, कोई सार नहीं है। दो ज्ञानी मिलें, तो भी कोई सार नहीं है। एक अज्ञानी और ज्ञानी मिले तो कुछ सार घटित होता है, नहीं तो क्या सार घटित होगा! दो ज्ञानी के मिलने से क्या फायदा है, क्या अर्थ है--कुछ भी नहीं। दो अज्ञानी के मिलने से क्या अर्थ है, क्या फायदा है--कुछ भी नहीं है। एक ज्ञानी और एक अज्ञानी के मिलने से कुछ क्रांति घटित हो सकती है। "ये सूत्र शिष्य के लिए हैं।"
इसका अर्थ यह है कि जब किसी गुरु के पास जाएं, और अगर सच में चाहते हों कोई क्रांति घटित हो, तो इस हालत में जाना--जो जानता है उसके पास इस भांति जाना--कि आप नहीं जानते। उनके लिए ये सूत्र हैं, तो क्रांति घटित होगी, जीवन बदलेगा।
"इन पर तुम ध्यान दो।"
"इसके पहले कि तुम्हारे नेत्र देख सकें, उन्हें अश्रुपात की क्षमता
से मुक्त हो जाना चाहिए।"
तुम्हारी आंखें इतने आंसुओं से भरी हैं कि तुम देख न सकोगे। तुम इतने दुख से भरे हो कि तुम देख कैसे सकोगे! तुम्हारा दुख सब विकृत कर देगा। आंखों से आंसुओं को बह जाने दो। आंसुओं को आंखों से निकल जाने दो। रो लेने दो आंखों को और उस जगह पर आ जाने दो, जहां रोने को भी कुछ न बचे।
तुम्हें पता ही नहीं कि अगर तुम्हारे सारे आंसू बह जाएं तो तुम्हारी आंखें ऐसी उज्ज्वल हो जाएंगी कि तुम्हें तीसरे नेत्र की कोई भी जरूरत न होगी। या समझें कि तीसरा नेत्र उपलब्ध हो जाएगा, यही आंखें इतनी स्वच्छ हो जाएंगी।
यह सिर्फ आंख के लिए ही सच नहीं है, तुम्हारा यही शरीर इतना पारदर्शी
हो जाएगा, अगर दुख से मुक्त हो जाए। तुम्हारे यही हाथ अगर दुख से खाली हो जाएं, तो इनके स्पर्श में वही गरिमा आ जाएगी, जो कि परमात्मा के स्पर्श में होगी। लेकिन दुख से भरे, तुम सब तरफ से बंद हो। तुम्हारी आंखें लगता है कि देखती हैं, लेकिन अंधी हैं। उन पर इतना बोझ है कि उनसे देखा नहीं जा सकता। तुम्हारे हाथ छूते हैं, लेकिन वह छूना मुर्दा होता है। क्योंकि भीतर से जो जीवन की धारा बहती और उस स्पर्श को जीवंत करती, वह तो दुख और पीड़ा के अवरोध के कारण बाहर तक आ नहीं पाती।

इन आठ दिनों में तुम अपनी आंखों को आंसुओं से मुक्त कर लेना। आंसुओं
से मुक्त करने का उपाय यह नहीं कि तुम आंसुओं को दबा लेना, क्योंकि दबाओगे तो वे और भी भर जाएंगी। आंसुओं से मुक्त करने का अर्थ है कि तुम आंसुओं को बह जाने देना। रोकना ही मत। आंसू अदभुत है। कीमिया है उसकी, उसका रहस्य है। छोटे बच्चों की आंखों में जो ताजगी मालूम पड़ती है, जो भोलापन, उसका कारण है। छोटे बच्चे रो पाते हैं हृदयपूर्वक, आंखों को खाली कर लेते हैं। जीसस ने कहा है कि जब तक तुम छोटे बच्चों की भांति न हो जाओ, तब तक मेरे प्रभु के राज्य में तुम्हारा प्रवेश नहीं होगा।
रोना और देखना।
सूत्र कहता है, "इसके पहले कि तुम्हारे नेत्र देख सकें, उन्हें अश्रुपात की क्षमता से मुक्त हो जाना चाहिए।"
भीतर अश्रु न बचें। और जब भीतर अश्रु नहीं बचते, और रोने का कोई भाव नहीं बचता, दुख की कोई संगृहीत राशि नहीं बचती, तब तुम तैयार हो गए। अब तुम कुछ देख सकते हो।
यहीं, अभी और यहीं, अगर आंखें खाली हों आंसुओं से तो उसे देखा जा सकता है, जिसे हम जन्मों-जन्मों से खो रहे हैं। यह अस्तित्व ही--ये कंकड़-पत्थर, पौधे, आकाश के तारे, तुम, तुम्हारे आसपास बैठे हुए लोग--इन सबके भीतर वही परम आनंद की घटना घट रही है और वही परम-जीवन प्रवाहित हो रहा है। लेकिन अंधी आंखें नहीं देख पातीं। और आंखें अंधी हैं, क्योंकि दुख से भरी हैं। आंखों को खाली कर डालना। आंख तो प्रतीक है। दुख से स्वयं को खाली कर लेना है।
"इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें, उन्हें बहरे हो जाना चाहिए।"
क्या मतलब है?
"इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें, उन्हें बहरे हो जाना चाहिए।"
अभी तुम सुनते हो बहुत, लेकिन अभी तुम वही सुनते हो, जो तुम सुनना चाहते हो। अभी तुम वह नहीं सुनते हो, जो है। जो कहा जाता है, वह सुनाई नहीं पड़ता। जो सुनना चाहते हो, वही सुन लेते हो। अभी तुम्हारे कान चुनाव करते हैं। छांट लेते हैं मतलब की बात, गैर मतलब की बात छोड़ देते हैं। जिससे तुम्हारा प्रयोजन पूरा होता है, उसे पकड़ लेते हैं। जिससे तुम्हारा प्रयोजन पूरा नहीं होता, उसे छोड़ ही देते हैं, या सुनते ही नहीं, या सुन कर भी अनसुनी कर देते हैं।
"इसके पहले कि तुम सुन सको... ।"
क्या सुन सको? जिसके पास तुम सीखने गए हो, इसके पहले कि उसकी वाणी तुम्हारी समझ में आ सके, तुम्हारे कान बहरे हो जाने चाहिए।
"तुम्हारे कान बहरे हो जाने चाहिए।"
तुम्हारा जो सुनने का ढांचा और आदत है, वह जो चुनाव है, वह जो तुम्हारा मतलब को प्रविष्ट कर देने की चेष्टा है, जो तुम्हारा अपने स्वार्थ के आधार पर सोचने की व्यवस्था है--वह सब टूट जानी चाहिए। तुम जिन कानों को अब तक जानते रहे हो तुम्हारे कान, वे बहरे हो जाने चाहिए। उनके बहरे होते ही तुम्हारे कान भी वैसे ही निर्मल हो जाएंगे, जैसी आंखें। और तब जो कहा जाएगा, वही सुना जाएगा।
ऐसा हुआ कि बुद्ध ने एक रात अपने भिक्षुओं को कहा कि अब तुम जाओ और रात्रि का अंतिम कार्य करो। उस दिन एक चोर भी सुनने आ गया था। बुद्ध ने भिक्षुओं से कहा कि जाओ और रात्रि का अंतिम कार्य करो। रात्रि का अंतिम कार्य था, रात्रि की अंतिम ध्यान की प्रक्रिया। इसके पहले कि निद्रा में प्रवेश करें, तुम समाधि में डूब जाओ और फिर नींद को आ जाने दो। तो भिक्षु उठ कर ध्यान करने चले गए। और चोर ने सोचा कि ठीक याद दिलाया! आधी रात होने के करीब है, अब मैं जाऊं और अपने काम में लगूं। पर चोर ने सोचा कि बुद्ध भी गजब के आदमी हैं, कहां से इनको पता चला कि मैं अपने काम में लगूं! जाओ और अपने आखिरी काम में लगो। और एक वेश्या भी आई थी। उसने भी सुना, शब्द वही थे, लेकिन उसने सोचा कि अब उठूं और मेरे बाजार और मेरी दुकान का वक्त हो गया। तो बुद्ध बाद में निरंतर कहते थे कि उस रात मैंने तो एक ही बात कही थी, लेकिन समझने वालों ने अलग-अलग समझी।

तुम वही समझ लेते हो, जो तुम समझना चाहते हो। चोर का कान कुछ और सुनता है, वेश्या का कान कुछ और सुनता है, संन्यासी का कान कुछ और सुनता है। लेकिन जो कान भी अपना अर्थ डाल देते हैं, वे कान उचित नहीं हैं, वे कान बहरे हो जाने चाहिए। तभी तुम गुरु का वचन सुन सकोगे। नहीं तो गुरु के वचन में भी तुम अपना ही अर्थ निकालोगे। और गुरु के वचन से तुम वही समझोगे, जो तुम समझना चाहते हो। यह बड़ी होशियारी की बात है। और तब जिम्मेवारी भी तुम गुरु पर डाल देते हो और मतलब भी अपना पूरा कर लेते हो। और जो कभी नहीं कहा गया था, जैसा कोई अभिप्राय भी नहीं था, उसके आधार पर तुम चलना शुरू कर देते हो। अगर तुम भटकोगे, तो तुम कहोगे कि गुरु ने भटकाया। तुम न कहोगे कि तुम्हारे कान सुनते समय गलत थे। अगर तुम गलत करोगे, तो तुम कहोगे कि गुरु ने कहा था, इसलिए हमने ऐसा किया। तुम यह न समझोगे कि तुम्हारे कान ही व्याख्या गलत करते हैं।
इसलिए सूत्र कहता है, "इसके पहले कि तुम्हारे कान सुन सकें, उन्हें बहरे हो जाना चाहिए।"
तुम अब तक अपने सुनने की जो आदतें यहां ले आए हो, वह अलग कर देना। तुम सीधे सुनना। व्याख्या मत करना, अर्थ मत निकालना। जैसा मैं कहूं उसमें से तुम अपना हिसाब मत निकालना। जैसे कि अगर मैं कह रहा हूं कि इससे पहले कि तुम्हारी आंखें आंसुओं से खाली हो जाएं, तुम देख न पाओगे। तुममें से अनेक ने अपने मन में सोचा होगा, लेकिन मेरे भीतर तो कोई आंसू ही नहीं हैं। इसलिए यह बात किसी और से कही जा रही है। मैंने कहा कि इसके पहले कि तुम कुछ जान सको, तुम्हें झुकना होगा। तुम्हारे मन ने कहा होगा, लेकिन मैं तो सदा ही झुका हुआ हूं! गुरु के चरण छूता हूं, गुरुओं के पास जाता हूं, साधुओं की सेवा करता हूं। मैं तो पहले से ही... । यह बात किसी और के लिए कही गई है। तब तुम बच गए। तब तुमने अपने को हटा लिया और जो कहा गया था, वह नहीं सुना। यहां जो भी बात कही जा रही है, वह तुमसे कही जा रही है, किसी और से नहीं। इसलिए दूसरे का तुम विचार ही मत करना। तुम सिर्फ अपना ही ख्याल करना। और अपना भी जब ख्याल करो तो ईमानदारी बरतना।
"और इसके पहले कि तुम सदगुरुओं की उपस्थिति में बोल सको, तुम्हारी वाणी को चोट पहुंचाने की वृत्ति से मुक्त हो जाना चाहिए।"
सदगुरु की उपस्थिति में बोल सको तो एक शर्त है--तब तक मत बोलना गुरु से कुछ, जब तक कि तुम्हारी वाणी चोट पहुंचा सकती है। तब तक तुम जो भी बोलोगे, व्यर्थ होगा। और तब तक तुम जो भी बोलोगे, वह तुम्हारे और तुम्हारे गुरु के बीच फासले को बढ़ाएगा, घटाएगा नहीं।
हम वाणी से बड़ी हिंसा करते हैं। हम चाहें तो मौन से भी कर लेते हैं। हम हिंसा करने में कुशल हैं। कभी-कभी तुम नहीं भी बोलते हो। और इसलिए नहीं बोलते हो कि तुम्हारा न बोलना चोट पहुंचाएगा। कभी तुम बोलते भी हो, तो तुम्हारे बोलने में धार होती है। तुम्हारे शब्द भला ऊपर से मीठे दिखाई पड़ते हों, भीतर उनमें जहर होता है। तुम्हारी हंसी में, तुम्हारे उठने- बैठने में, तुम्हारे इशारों में, तुम्हारी आंखों में, चोट पहुंचाने की, हिंसा करने की वृत्ति होती है।
यह सूत्र कहता है कि यह तुम सब जगह कर रहे हो, वह ठीक है, लेकिन गुरु के सामने तब ही बोलना है, जब तुम्हारी यह वृत्ति जा चुकी हो। तो ही तुम गुरु के करीब बोलने से आओगे। अन्यथा बेहतर है कि तुम चुप रहना। तुम सुनना, बोलना मत। ठीक भी है, क्योंकि सुनने से ही तुम्हें कुछ मिलेगा, तुम्हारे बोलने से नहीं। और लोग बहुत अदभुत हैं।
एक सज्जन मेरे पास आते थे, वह मुझसे घंटे, दो घंटे बातें करते थे। वह जमाने-भर की बातें करते थे। मुझे सिर्फ "हां", "हूं" ही भरना पड़ता था। "हां", "हूं" भी इसलिए भरना पड़ता था कि उन्हें कहीं ऐसा न लगे कि उनकी बातें बेकार हैं। बातें बिल्कुल बेकार थीं, उनमें कहीं कोई सार न था, उनसे कोई संबंध भी मेरा न था। लेकिन उन्हें कहीं ऐसा न लगे कि मैं समझ रहा हूं कि उनकी बातें बेकार हैं, इसलिए मैं "हां", "हूं" भरता था। घंटे, दो घंटे, न मालूम कहां-कहां का कचरा मुझ पर डाल कर, जब वे जाने लगते, तो मुझसे एक बात कहना कभी नहीं भूलते थे कि आज आपने जो बातें कहीं, उनसे बड़ा आनंद आया।

मुझसे कह जाते थे जाते वक्त, कि आज आपने जो बातें कहीं, उनसे बड़ा आनंद आया! मैं कुछ बोला ही नहीं था, मुझे बोलने का अवसर ही नहीं था। बोलते वे ही, सुनता मैं। लेकिन जाते वक्त वे मुझसे हमेशा कह जाते थे कि जो बातें आपने कहीं, बड़ी मूल्यवान हैं।
और मैं ऐसा नहीं सोचता हूं कि वे कुछ झूठ बोलते थे, ऐसा उनको लगता होगा। ऐसा भी नहीं कि वे कोई धोखा देते थे। वे बड़े भाव से, बड़ी निष्ठा से कहते थे। धोखे का भी कोई कारण नहीं, ऐसी उनकी प्रतीति होती होगी। यह जो हमारी स्थिति है, इस स्थिति को ले कर अगर आप एक गुरु के पास जाते हैं और कुछ भी कहते रहते हैं, तो आप समय खो रहे हैं अपना, जो कि सुनने में सार्थक हो सकता था और आप फासले पर हट रहे हैं।
गुरु और शिष्य के बीच, गुरु की तरफ से आए हुए शब्द तो निकट लाते हैं, शिष्य की तरफ से आए हुए शब्द दूर ले जाते हैं। गुरु और शिष्य के बीच जो मिलन है, वह शिष्य के मौन और गुरु के शब्द में होता है। और एक घड़ी ऐसी आती है, जब गुरु भी शब्द को हटा देता है। जब शिष्य का मौन गहन हो जाता है, तब दोनों का मौन मिलन बनता है। लेकिन शिष्य को मौन की तरफ से शुरू करना चाहिए।
तो यह शर्त है कि जब तक तुम्हारे शब्द हिंसा की वृत्ति से मुक्त न हो जाएं... ।
इसे पहचानना पड़ेगा, यह जटिल है, क्योंकि तुम्हें पता ही नहीं चलता कि तुम्हारे कौन से शब्द क्या हिंसा कर सकते हैं!
मैं एक घर में मेहमान था। पिता ने अपने बेटे को बुलाया और मुझसे कहा
कि मिलिए इनसे, आप हैं मेरे सुपुत्र! सुपुत्र शब्द बहुत अच्छा है, लेकिन जिस ढंग से उन्होंने कहा, उसका मतलब था कुपुत्र! ये खड़े हैं मेरे सुपुत्र, उन्होंने मुझे बताया। फिर अपने सुपुत्र से बोले, क्या खड़े देख रहे हो? पैर छुओ।
कभी-कभी तो छुरी से भी ऐसे घाव नहीं किए जा सकते जैसे शब्द से किए जा सकते हैं। यह बेटा अपने बाप को कभी भी क्षमा नहीं कर पाएगा। बहुत कठिन है मां-बाप को क्षमा कर देना, बहुत मुश्किल है। क्योंकि मां-बाप को पता ही नहीं कि वे क्या बोल रहे हैं। और कोई डर भी नहीं है। बच्चे का डर क्या है? कुछ भी बोल रहे हैं। आपको पता नहीं है आप क्या बोल रहे हैं अपनी पत्नी से, क्या बोल रहे हैं अपने पति से, किस तरह बोल रहे हैं आप अपने नौकर से, किस भांति आप बोल रहे हैं अपने मित्र से, आप क्या कर रहे हैं अपने चारों तरफ! थोड़ा पहचानने की जरूरत है।
इस शिविर के काल में अच्छा हो चुप रहना। और जब भी शब्द बोलें, तो सोच
कर बोलना कि इस शब्द से किसी को भी चोट न पहुंचे। आप पाएंगे कि आपके शब्दों का गुण-धर्म बदल गया। और आप पाएंगे कि आपके भीतर की चेतना की स्थिति बदलने लगी। एक निर्णय कर लेना है कि कम से कम शब्द बालेंगे। अनिवार्य होगा तो बोलेंगे। बिल्कुल अनिवार्य होगा। अगर एक वाक्य में काम चल जाएगा, तो एक ही वाक्य बोलेंगे। और अगर एक शब्द में काम चल जाएगा, तो एक ही शब्द में चला लेंगे। अगर हाथ के इशारे से चल जाएगा, तो फिर शब्द का उपयोग न करेंगे। और अगर मौन से ही चल जाएगा, तो श्रेष्ठतम है। फिर भी अगर किसी शब्द का उपयोग करना पड़े, तो उतने ही शब्दों का उपयोग करना, जिनसे किसी को चोट न पहुंच रही हो।
कोई आदमी ध्यान में खड़ा है। आप सिर्फ हंसते हुए उसके पास से निकल जाते हैं। आपके मन का भाव होता है कि क्या पागलपन कर रहे हैं! आपने हिंसा की। और हो सकता है कि आपका यह भाव, वह भी आदमी नासमझ हो और पकड़ ले। और यह भी हो सकता है कि जो घटना उसके जीवन में घटने जा रही थी, वह न घट पाए। तो आप जिम्मेवार हो गए, आपने बड़ी हिंसा की।
लोग एक-दूसरे से कुछ भी कह देते हैं। वे कह देते हैं कि किस पागलपन में पड़े हो! ऐसे कहीं ध्यान हुआ है? जैसे कि उन्हें ध्यान हो गया हो और जैसे कि उन्हें पता हो कि कैसे ध्यान होता है। मगर कोई भी किसी से कुछ भी कह देता है। सोच-समझ कर बोलना। एक-एक शब्द को ख्याल में ले कर बोलना। और तब तुम देखोगे कि तुम्हारा मन किस तरह की हिंसा में लीन है। और जब तक ऐसी स्थिति न

आ जाए कि तुम्हारे शब्दों से हिंसा तिरोहित हो जाए, तब तक सूत्र कहता है, गुरु के सामने मत बोलना।
"इसके पहले कि तुम्हारी आत्मा सदगुरुओं के समक्ष खड़ी हो सके, उसके पैरों को हृदय के रक्त से धो लेना उचित है।"
अपनी आत्मा को अपने ही रक्त से धो लेना उचित है, इसके पहले कि सदगुरुओं के समक्ष खड़े होने में समर्थ हो सको। प्रतीक है! अपने ही जीवन को सब भांति अग्नि से गुजार लेना जरूरी है। ताकि तुम निखर जाओ, ताकि तुम्हारा कचरा जल जाए, और सोना सोना ही बच रहे--तब, तब गुरु के समक्ष खड़े होने की... । अन्यथा गुरु के समक्ष ऐसे उपस्थित होना चाहिए, जैसे मैं उपस्थित नहीं हूं।
इसलिए तिब्बत में गुरु के चरणों में सैकड़ों दफे दिन में नमस्कार करता
है शिष्य। जब देखता है तब नमस्कार करता है, तब लोट जाता है।
एक युवक मेरे पास आया और उसने कहा कि मैं एक तिब्बती लामा के पास ध्यान सीख रहा था और यह बात मुझे बिल्कुल नहीं जंचती थी कि बार-बार चरणों में लेटने की क्या जरूरत है। मैंने उससे कहा, तू जरूरत की फिक्र छोड़, तू तीन महीने लोट कर आ। और फिर मेरे पास आना। उसने कहा, लेकिन इससे फायदा क्या होगा? मैंने कहा कि तीन महीने गंवाएगा और क्या होगा। ऐसे भी तूने तीस साल जिंदगी के गंवा दिए हैं, तीन महीने और समझ लेना। पर तू पहले लोट कर आ और लोटते वक्त सोचना मत। तू तो पूरे भाव से सिर को जमीन पर रख देना कि जैसे मिट्टी हो गया।
तीन महीने बाद वह युवक आया और उसने कहा कि यह आपने क्या कर दिया। मैं
तो सोचता था कि यह सब व्यर्थ है, इसमें क्या सार है, यह तो कवायद है! यह बार-बार लोटने से क्या होगा! लेकिन तीन महीने निरंतर... तब मुझे ख्याल आया कि वह जो अहंकार है, वह जो अकड़ है, वह तरकीबें खोजती है। वह कहती है, इससे क्या होगा? लेकिन तीन महीने चरणों में गिर-गिर कर वह मेरे भीतर से अहंकार भी झुका। और जो बातें मैं उस गुरु की कभी भी नहीं समझ सकता था, वे मेरी समझ में आनी शुरू हुईं। और जो मैंने कभी नहीं सुना था और सदा उसने कहा था, वह मुझे सुनाई पड़ा।
अपने को गलाना, जलाना और मिटाना, ताकि खाली हो सकें और उस खालीपन में गुरु से संबंधित हो सकें। सूत्र कहता है कि ये बातें स्मरण में आ जाएं। "महत्वाकांक्षा को दूर करो।"
यह पहला सूत्र है, जो गुरु कहेगा। अगर इतने चरण पूरे हुए तो संसार के सारे गुरुओं ने जो कहा है, वह पहला सूत्र है, "महत्वाकांक्षा को दूर करो।" क्या है महत्वाकांक्षा? कुछ होने की वासना। कुछ होने की वासना कि राष्ट्रपति हो जाऊं, कि प्रधानमंत्री हो जाऊं, कि राकफेलर हो जाऊं, कि आइंस्टीन हो जाऊं, या कि बुद्ध या महावीर हो जाऊं। कुछ होने की वासना, कुछ होने का पागलपन।
पहला सूत्र है, "महत्वाकांक्षा को दूर करो।"
क्यों? क्योंकि जब तक तुम कुछ होना चाहते हो, तब तक तुम वह न हो पाओगे,
जो तुम होने को पैदा हुए हो। जब तक तुम कुछ होना चाहते हो, तब तक तुम अपने स्वरूप को न पा सकोगे। क्योंकि तुम्हारा जो स्वरूप है, वह तो तुम हो ही, वह तुम्हें होना नहीं है। और जो भी तुम होना चाहते हो--वह वंचना होगी, वह अपने से भागना होगा, वह अपने से बचना होगा। ऐसा समझो कि एक गुलाब का फूल, कमल का फूल होना चाहता है। वह हो नहीं सकता। लेकिन भ्रम में जी सकता है और नष्ट हो सकता है। और नष्ट होने में यह होगा कि वह गुलाब का फूल भी न हो पाएगा, कमल का फूल तो हो नहीं सकता।
तुम जो हो, परमात्मा तुम्हें वैसा ही स्वीकार करता है, अन्यथा तुम होते ही नहीं। तुम जैसे हो, परमात्मा तुम्हें वैसा ही स्वीकार करता है, अन्यथा वह तुम्हें बनाता ही नहीं। वह दोहराता नहीं, पुनरुक्ति नहीं करता। बुद्ध कितने ही प्यारे हों, फिर भी दुबारा नहीं बनाता। दुबारा तो बनाते ही वे कारीगर हैं, जिनकी प्रतिभा इतनी कम है कि नए को नहीं खोज पाते। परमात्मा प्रत्येक को अनूठा और नया बनाता है। एक-एक को अद्वितीय बनाता है। राम कितने ही प्यारे हों, लेकिन दुबारा? और सोचो, अगर बहुत राम पैदा

होने लगें तो बहुत बेमानी हो जायेंगे, उबाने वाले भी हो जाएंगे। और अभी राम के दर्शन की इच्छा होती है, फिर उनसे भागने की इच्छा होगी। बस राम एक काफी हैं। एक से ज्यादा में बात बासी हो जाती है। परमात्मा बासापन पसंद नहीं करता।
तो तुम्हें इसलिए पैदा नहीं किया है कि तुम राम बन जाओ, कि कृष्ण बन जाओ, कि बुद्ध बन जाओ। तुम्हें पैदा किया है, कुछ जो तुम्हीं बन सकते हो और कोई भी नहीं बन सकता है। न पहले कोई बन सकता था, न बाद में बन सकेगा। अगर तुम चूक जाते हो, तो अस्तित्व से वह घड़ी चूक जाएगी। वह तुम्हीं बन सकते थे, तुम्हारे अतिरिक्त कोई और उस नियति को नहीं पा सकता था।
महत्वाकांक्षा दूर करो, ताकि तुम अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सको। महत्वाकांक्षा दूसरे की नकल में दौड़ाती है--किसी जैसे बन जाओ--भागो, दौड़ो, कुछ करो। झूठा होगा सब करना। ऊपर-ऊपर होगा, आवरण होगा, नकली होगा। और तुम जो असली हो, वह भीतर छिपे रह जाओगे बीज की तरह, और बाहर कागज के फूल चिपका लोगे।
"महत्वाकांक्षा को दूर करो।"
छोड़ ही दो ख्याल कि तुम्हें कुछ और होना है। तुम्हें तो सिर्फ एक ही ख्याल होना चाहिए कि तुम्हें परमात्मा ने क्या बनाया है, उसे तुम्हें जानना है। होना भी नहीं, वह तुम हो। एक ही ख्याल रखो कि तुम जो हो उसको उघाड़ना है, तुम्हें कुछ होना नहीं है। कोई आदर्श नहीं चाहिए, कोई तुम्हारे लिए ब्लू-प्रिंट की जरूरत नहीं है कि इस भांति तुम हो जाओ।
अध्यात्म की खोज आदर्श की खोज नहीं, अध्यात्म की खोज तुम्हारे भीतर
जो मौजूद ही है, उसका आविष्कार है, उसको उघाड़ लेना है।
जो भी चाहिए, वह है। और जो भी तुम हो सकते हो, वह तुम हो--अभी इसी क्षण, उसमें रत्ती भर भी जोड़ना नहीं है। सिर्फ कुछ घटाना है। जो कचरा इकट्ठा कर दिया है, वह भर हटाना है। जोड़ना कुछ भी नहीं है। हीरा मौजूद है कचरे के एक ढेर में। और तुम किसी और की नकल मत करना। और किसी और जैसे होने की कोशिश मत करना। यह किसी और जैसे होने की कोशिश है महत्वाकांक्षा, एंबीशन। "महत्वाकांक्षा को दूर करो। महत्वाकांक्षा पहला अभिशाप है। जो कोई अपने सहयोगियों से आगे बढ़ रहा है, उसे यह मोहित करके अपने पथ से विचलित कर देती है। सत्कर्मों के फल की इच्छा का यह सबसे सरल रूप है। बुद्धिमान और शक्तिशाली लोग इसके द्वारा बराबर अपनी उच्च संभावनाओं से स्खलित होते रहते हैं। फिर भी यह बड़ी आवश्यक शिक्षा का साधन है। इसके फल चखते समय मुंह में राख और धूल बन जाते हैं। मृत्यु और वियोग के समान इससे भी अंत में यही शिक्षा मिलती है कि स्वार्थ के लिए, अहं विस्तार के लिए कार्य करने से परिणाम में निराशा ही प्राप्त होती है।"
महत्वाकांक्षा का एक रूप मैंने कहा। एक और रूप है, जो गौण है, लेकिन वह
भी हमें काफी जोर से पकड़े रहता है, उसके अंधड़ में भी हम काफी प्रवाहित होते हैं। दूसरे से आगे होने की आकांक्षा।
दूसरे जैसे होने की आकांक्षा, एक।
दूसरे से आगे होने की आकांक्षा, दो।
महत्वाकांक्षा का दूसरा अर्थ है, सदा यह फिक्र लगी रहती है कि पड़ोसी
से मेरा मकान बड़ा कैसे हो जाए? कि पड़ोसी से मेरी इज्जत ज्यादा कैसे हो जाए? कि पड़ोसी से मैं आगे कैसे निकल जाऊं? किसी न किसी की तुलना में आप अपने को सोचते रहते हैं। जब तक आप दूसरे की तुलना में अपने को सोच रहे हैं, आपने अपने को सम्मान ही नहीं दिया, आप अपना अपमान कर रहे हैं। क्योंकि न तो पड़ोसी आप जैसा है, और न आप पड़ोसी जैसे हैं। दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती। सब तुलना भ्रांत और गलत है। और आपको दूसरे से आगे होने के लिए नहीं भेजा गया है, आपको तो अपने ही जैसा होने के लिए भेजा गया है। और दूसरे से आगे हो कर भी क्या होगा? क्योंकि आप फिर पाएंगे कि कोई उसके भी आगे है। इस दुनिया में कोई कभी नहीं पाता ऐसी जगह, जहां उससे आगे कोई न हो।
जिंदगी बड़ी जटिल है। अगर आप राष्ट्रपति हो जाते हैं, तो यह भी हो सकता
है कि सड़क पर चलते हुए एक भंगी, सड़क साफ करते भंगी को देख कर भी आपके मन में महत्वाकांक्षा जग जाए। क्योंकि उसके पास जैसा स्वस्थ शरीर है, वैसा आपके

पास नहीं है। एक साधारण आदमी को देख कर आपके मन में ईर्ष्या जग जाए। क्योंकि उसके पास जैसा सुंदर चेहरा है, वैसा चेहरा आपके पास नहीं है, भला आप राष्ट्रपति हों। कोई न कोई आगे है, कहीं न कहीं आगे है। जिंदगी में हजार उपाय हैं आगे होने के। और कोई आदमी कभी नहीं पाता कि वह सबसे सब बातों में आगे पहुंच गया। पीड़ा बनी ही रहती है।
सिर्फ वही आदमी आनंद को उपलब्ध होता है, जो आगे होने की दौड़ ही छोड़ देता है। और जो कहता है, जहां मैं हूं, वहां मैं पूरी तरह हो जाऊं, आगे होने का सवाल नहीं है। जो मैं हूं, वह मैं पूरी तरह हो जाऊं, किसी से तुलना का सवाल नहीं है। जो भी मैं हूं, वह अधूरा न रह जाए। मेरा फूल पूरा खिल जाए, वह जैसा भी है। घास का फूल ही सही, मगर पूरा खिल जाए। परमात्मा ने जो मुझे बनाया है, वह मैं पूरा-पूरा हो जाऊं। इसमें किसी और से तुलना नहीं है।
एक गुलाब का फूल खिलता है, वह फिक्र नहीं कर रहा है कि बड़ा फूल पड़ोस में खिला है। वह छोटा सा फूल सही, लेकिन वह उतना ही आनंदित है। और परमात्मा उसे स्वीकार कर रहा है। पूरा अस्तित्व उसे स्वीकार कर रहा है। वह नाच रहा है हवाओं में उसी तरह जैसा बड़ा फूल नाच रहा है।
एक झेन फकीर हुआ बोकोजू। उससे किसी ने पूछा कि मैं तुम जैसा कैसे हो जाऊं? तो उसने कहा कि तू रुक, जरा लोगों को चला जाने दे। वह दिन भर बैठा रहा आदमी--थक गया, परेशान हो गया, कोई न कोई मौजूद था। फिर सांझ जब सब चले गए तो उसने कहा कि अब देर न करो, दिन भर हो गया है बैठे-बैठे, मैं तुम जैसा कैसे हो जाऊं? तो बोकोजू ने कहा कि तू मेरे साथ बाहर आ।
बाहर वृक्ष लगे थे बहुत, कोई छोटा था, कोई बड़ा था। बोकोजू ने कहा, देख,
यह छोटा वृक्ष छोटा है, यह बड़ा वृक्ष बड़ा है। इन दोनों को मैंने कभी नहीं सुना चर्चा करते। न तो छोटे ने बड़े से पूछा कि मैं तेरे जैसा कैसे हो जाऊं? न बड़े ने छोटे से पूछा कि मैं तेरे जैसा कैसे हो जाऊं? क्योंकि छोटे में जो फूल खिलते हैं, वह बड़े में नहीं खिलते, बड़े सुगंधित हैं। और बड़े की आसमान में ऊंचाई है, और छोटा आसमान में ऊंचा नहीं है। लेकिन ये एक-दूसरे से पूछते ही नहीं हैं, न तुलना करते हैं। ये मेरी खिड़की के पास वर्षों से हैं। मैंने इनमें कभी गुफ्तगू नहीं सुनी, न कोई प्रश्न उठा। और ये दोनों एक से आनंदित हैं, इनके आनंद में रत्ती भर फर्क नहीं है। क्योंकि प्रत्येक ने अपने को स्वीकार कर लिया है। वह जैसा है, है। तू भी मुझसे मत पूछ, अगर तू सच में शांति चाहता है। तू मुझसे भी मत पूछ। तू जैसा है, वैसा है। और मैं जब तुझसे नहीं पूछता कि तेरे जैसा कैसे हो जाऊं, तो तू क्यों मुझसे पूछ रहा है?
वह आदमी कहने लगा, लेकिन इसीलिए तो पूछ रहा हूं कि आप इतने शांत और आनंदित हैं और मैं इतना अशांत और दुखी हूं। इसीलिए तो पूछ रहा हूं कि तुम्हारे जैसा कैसे हो जाऊं! तो बोकोजू ने कहा, मैं तुझे तरकीब भी बता रहा हूं, लेकिन तू सुन ही नहीं रहा। मैं तुझे तरकीब तो बता रहा हूं कि मैं भी पहले तेरे जैसा ही दुखी और अशांत था, क्योंकि मैं भी किसी और जैसा होने की कोशिश कर रहा था। जब से मैं अपने ही जैसा होने को राजी हो गया, पीड़ा समाप्त हो गई।
तुलना में दुख है, तुलना में ईर्ष्या है, तुलना में हिंसा है।
छोड़ें तुलना! किसी से मत तौलें अपने को। कोई अर्थ भी नहीं है, कोई उपाय
भी नहीं है। राजी हो जाएं, जैसे हैं। और एक ही बात की फिक्र लें कि जो मैं हूं, जैसा हूं, वह पूरा का पूरा मेरे सामने कैसे प्रकट हो जाए।
यहां हम इसी बात की खोज करेंगे। न तो मैं आपको बनाना चाहता हूं बुद्ध,
न राम, न कृष्ण। कोई जरूरत नहीं है, वे हो चुके। मैं आपको बनाना चाहता हूं वही, जो आप हो सकते हैं। जो बीज आपमें है, वही अंकुरित हो। दूसरे से भी आपको आगे-पीछे नहीं रखना चाहता। कोई किसी से आगे-पीछे नहीं है। हर एक आदमी अपनी जगह है। आप अपनी ही जगह पर खिल सकें, जो भी सुगंध छिपाई है आपने अपने हृदय में, वह बाहर आ सके। मैं आपको आप ही बनाना चाहता हूं।
कल सुबह हम ध्यान करेंगे। दस-दस मिनिट के चार चरण होंगे। पहले चरण में श्वास--जितनी तीव्र हो सके, लोहार की धौंकनी की भांति, श्वास ही श्वास रह जाए।

दूसरे दस मिनिट के चरण में भावों का रेचन। जो भी भीतर दबा पड़ा है-- रुदन, आंसू, चीख, चिल्लाहट, क्रोध, हिंसा--सबको बाहर फेंक देना। और विचार ही नहीं करना, शरीर के द्वारा बाहर फेंक देना। शरीर जो करना चाहे, उस क्षण में उसे करने देना, ताकि सब भार गिर जाए।
तीसरे चरण में "हू" मंत्र का प्रयोग--इतने जोर से कि आकाश गूंजने लगे। बाहर फेंकना है, "हू" की चोट और हुंकार। इस हुंकार का परिणाम होता है कुंडलिनी पर हथौड़े की तरह। भीतर कुंडलिनी पर चोट पड़ती है, और कुंडलिनी की शक्ति ऊपर उठनी शुरू हो जाती है। यह अनुभव प्रकट होगा। जैसे ही चोट पड़नी शुरू होगी, आपको लगेगा कि भीतर शक्ति के तेज तूफान ऊपर की तरफ उठने शुरू हो गए। और उनके उठते ही आप दूसरे जगत में प्रवेश करने लगते हैं।
चौथे चरण में दस मिनिट का होगा मौन--पूर्ण मौन, जिसमें परम-सत्ता से मिलन होगा।
अब हम सुबह मिलेंगे।

साधना-सूत्र
दूसरा प्रवचन

जीवन की तृष्णा

2. जीवन की तृष्णा को दूर करो।

3. सुख-प्राप्ति की इच्छा को दूर करो।

किंतु जो महत्वाकांक्षी हैं,
उन्हीं के समान परिश्रम करो।
जिन्हें जीवन की तृष्णा है,
उन्हीं के समान प्राणिमात्र के जीवन का सम्मान करो।
जो सुख के लिए ही जीवन-यापन करते हैं,
उन्हीं के समान सुखी रहो।
हृदय के भीतर पाप के अंकुर को
ढूंढ़कर उसे बाहर निकाल फेंको।
यह अंकुर श्रद्धालु शिष्य के हृदय
में भी उसी प्रकार बढ़ता और पनपता है,
जैसे कि वासनायुक्त मानव के हृदय में।
केवल शूरवीर ही उसे नष्ट कर डालने में सफल होते हैं।
दुर्बलों को तो उसके बढ़ने-पनपने,
फूलने-फलने और फिर नष्ट होने की राह देखनी होती है।

जीवन का नियम बहुत विरोधाभासी है, पैराडाक्सिकल है। उलटे परिणाम आते हैं। जैसे कोई व्यक्ति अपनी छाया से भागना चाहे, तो जितना भागेगा, उतना ही पाएगा कि छाया भी उसके साथ भाग रही है। भाग कर छाया से बचने का कोई उपाय नहीं है। रुक जाए कोई, तो छाया भी रुक जाती है। भागे कोई, तो छाया भी उतनी ही शक्ति से पीछा करती है। छाया से छूटने का एक ही उपाय है, यह जान लेना कि वह छाया है, वह है ही नहीं। और तब है या नहीं, कोई अंतर नहीं पड़ता। छाया से बचने का, भागना मार्ग नहीं है, छाया के प्रति जागना मार्ग है। और जब कोई जान लेता है कि छाया मात्र छाया है, तो उससे बचने की चेष्टा भी छोड़ देता है। क्योंकि जो है ही नहीं, उससे बचना भी क्या?
और जैसे ही कोई बचने की चेष्टा छोड़ देता है, बच जाता है--यह विरोधाभास है।
जब तक बचना चाहते हैं, बच न सकेंगे। और जब बचना ही नहीं चाहेंगे, तब बच जाएंगे।
जैसे नदी में कोई जीवित आदमी डूब जाता है, मुर्दा नहीं डूबता, मुर्दा नदी पर तैर आता है। जीवित डूब जाता है, मुर्दा तैर आता है, बड़ी उलटी बात मालूम पड़ती है। नदी के नियम बड़े बेबूझ मालूम पड़ते हैं। जिंदा आदमी को बचाना चाहिए, मुर्दा डूब भी जाए तो हर्ज नहीं है। लेकिन जिंदा आदमी डूब जाता है और मुर्दा बच जाता है। शायद मुर्दा आदमी नदी के नियम को ज्यादा ठीक से समझता है। उसे पता है कि नदी के साथ क्या करना है। और जिंदा आदमी जो भी करता है, झंझट में पड़ता है।
क्या पता है मुर्दा आदमी को जो जिंदा को पता नहीं है?
मुर्दा को एक कला आती है, वह नदी के हाथों में अपने को छोड़ देता है। नदी जो करना चाहे, करे। फिर नदी नहीं डुबाती, फिर नदी तैराने लगती है। जिंदा आदमी नदी से लड़ता है। लड़ कर ही टूटता है और डूबता है। नदी नहीं डुबाती, आदमी खुद ही लड़ कर अपने को नष्ट कर लेता है और डूब जाता है। नदी तो उबारती है, क्योंकि मुर्दे को उबार देती है। अगर जिंदा आदमी भी मुर्दे की भांति नदी के साथ व्यवहार करे तो नदी उसे डुबाने में असमर्थ है। लेकिन अति कठिन है।
जिंदा आदमी मुर्दे की भांति व्यवहार करे--वही संन्यासी का लक्षण है।
और जिस दिन कोई आदमी जीते जी मुर्दे की भांति व्यवहार करने लगता है, उसे

परम-जीवन उपलब्ध हो जाता है। और जो जिंदगी को पकड़ने और बचाने की कोशिश करते हैं, उनके हाथ से जिंदगी छूटती चली जाती है।
जीसस ने कहा है कि बचाओगे तो तुम खो दोगे और अगर तुम खोने को राजी हो,
तो तुम्हें पूरा जीवन मिल जाएगा, परम-जीवन मिल जाएगा।
ये सूत्र इस विरोधाभास की तरफ ही इंगित करते हैं।
पहला सूत्र है, "जीवन की तृष्णा को दूर करो।"
लेकिन क्यों? जीवन की तृष्णा को क्यों करें दूर? इसीलिए, ताकि जीवन तुम्हें मिल सके, ताकि तुम पा सको, जान सको, जी सको--क्या है जीवन।
जिनके मन में तृष्णा है जीवन की, वे जीवन को जानने से वंचित रह जाते हैं। उलटा है। होना तो यही चाहिए कि जो जीवन की तृष्णा रखते हैं, उन्हें जीवन मिले। लेकिन उन्हें नहीं मिलता, उन्हें मिलती है केवल मौत। वे केवल मरते हैं। और मरने में ही उनका समय व्यतीत होता है। लेकिन जो व्यक्ति जीवन की तृष्णा छोड़ देता है, जो कह देता है, मुझे चिंता नहीं जीवन की और न कोई वासना है, अगर मौत आती हो तो अभी आ जाए, मैं राजी हूं--उस आदमी को अमृत के दर्शन हो जाते हैं। उलटा है। मगर उलटा होने का कारण है। जब बहुत घने काले बादल घिरते हैं आकाश में तो ही बिजली दिखाई पड़ती है। अंधेरे की पृष्ठभूमि होती है, कालेपन की, तो बिजली उभर कर प्रकट होती है। बिजली को देखना हो, तो काले बादल होने जरूरी हैं।
जिन्हें जीवन को देखना है, उन्हें मृत्यु की पृष्ठभूमि को स्वीकार कर लेना जरूरी है। जो मृत्यु से राजी हो जाता है, उसके भीतर की जीवन-चिंगारी बहुत प्रकट हो कर दिखाई पड़ने लगती है। जो मृत्यु से डरता है, भयभीत होता है, जो मृत्यु से बचता है, उसे जीवन की चिंगारी दिखाई नहीं पड़ती। मृत्यु के स्वीकार के साथ ही अमृत की उपलब्धि है। और हम सब मरने से डरते हैं। ऐसा नहीं है कि इस डर से हम मरने से बच जाते हैं। मृत्यु तो आती ही है, लेकिन इस डर के कारण वह जो जीवन हमारे निकट था, उसे हम देखने से वंचित रह जाते हैं। हम भयभीत होते हैं मृत्यु से और जीवन हमारे पास से गुजर जाता है। हमारी आंखें लगी रहती हैं मृत्यु पर और जीवन हमारे निकट से गुजरता है।
जीवन तो अभी और यहीं है। जीवन को पाने के लिए कहीं भविष्य में जाने की कोई जरूरत नहीं है। जीवित तो आप अभी हैं और यहां हैं। न तो पीछे लौटना आवश्यक है, न आगे जाना जरूरी है। जीवन तो मिला ही हुआ है, लेकिन मन आपका या तो पीछे डोलता रहता है उन क्षणों में जो जा चुके हैं, और या फिर भविष्य की चिंताओं में, भविष्य की कल्पनाओं में और योजनाओं में भटकता रहता है। उन क्षणों में जो अभी आए नहीं हैं। और इस भांति जीवन की पतली धारा आपके पास से बहती चली जाती है और आप उससे अपरिचित ही रह जाते हैं। उसमें कभी स्नान भी नहीं हो पाता। उससे आपका कभी कोई संबंध ही नहीं जुड़ पाता।
"जीवन की तृष्णा को दूर करो।"
क्यों? इसलिए ताकि जीवन तुम्हें उपलब्ध हो सके।
जीवन की तृष्णा का अर्थ है--भविष्य। सभी तृष्णाएं भविष्य में होती हैं। कोई भी वासना अभी नहीं होती। यह बहुत आश्चर्य की बात है। इसी क्षण में आप कोई वासना में नहीं डूब सकते। वासना होती ही भविष्य में है। वह होती ही कल है। वासना के लिए समय चाहिए, उसकी पूर्ति के लिए समय चाहिए, स्थान चाहिए। जब भी आप कुछ चाहते हैं तो सदा भविष्य में चाहते हैं। अगर भविष्य न हो तो चाह मर जाती है, अगर चाह न हो तो भविष्य समाप्त हो जाता है। दो उपाय हैं। या तो चाह छूट जाए तो आदमी वर्तमान में आ जाता है। और या आदमी वर्तमान में आ जाए तो चाह छूट जाती है। क्योंकि अभी और यहीं चाह को निर्मित करने का उपाय नहीं है।
क्या चाहिएगा अभी और यहीं? थोड़ा सोचें। इसी क्षण आप कौन सी वासना कर सकते हैं? और वासना करेंगे कि आप भविष्य में चले गए। वर्तमान और वासना का संबंध नहीं बनता। आपने कुछ चाहा कि आपने क्षण को छोड़ दिया। आप हट गए कल, आने वाले कल में, आपका मन दौड़ गया।
जीवन की तृष्णा का अर्थ हुआ कि आप जीवन को भी कल में खोज रहे हैं, भविष्य में। और जीवन यहां है, जीवन अभी है। जीवन तो आप हैं। आप खड़े हैं

उसके बीच में। और आपकी आंखें कल पर लगी हैं। इसलिए जो आज है, वह दिखाई नहीं पड़ता और चूक जाता है।
इसलिए सूत्र कहता है कि जीवन की तृष्णा दूर करो, ताकि तुम जीवन को जान सको। सुख-प्राप्ति की इच्छा से बचो, ताकि सुख तुम्हें उपलब्ध हो सके।
सभी हैं दुखी, इसलिए नहीं कि जीवन का स्वभाव दुख है, बल्कि इसलिए कि हमें सुखी होने की कला नहीं आती। और हमें दुखी होने की इतनी कला आती है, जिसका कोई हिसाब नहीं। हम दुख की तलाश में हैं। जो आदमी भविष्य में वासना करेगा--और सभी वासनाएं भविष्य की होती हैं--वह दुख में पड़ेगा। क्योंकि भविष्य कभी आता नहीं, सिर्फ आता हुआ दिखाई पड़ता है। आता है जो, वह तो वर्तमान है। जो नहीं आता, वह भविष्य है। कुछ भी करो, जो भी मिलेगा, वह वर्तमान होगा। और अगर आपके मन की आदत हो गई भविष्य में जीने की, तो आप आज भी भविष्य में जीएंगे, कल भी, परसों भी। जो भी दिन आएगा, आप भविष्य में हट जाएंगे। और भविष्य में जो भी आप चाहते हैं, वह मिलेगा कैसे? जब भविष्य ही नहीं आता, तो भविष्य में चाही गई चाहें पूरी कब होंगी? दुख परिणाम होगा, इसलिए वासना का फल दुख है।
जीवन दुख नहीं है, वासना दुख है। जितनी ज्यादा वासनाएं, उतना ज्यादा दुख। अगर आप बहुत दुखी हैं, तो यह मत समझना कि परमात्मा आप पर नाराज है। अगर आप बहुत दुखी हैं, तो सिर्फ इतनी ही खबर दे रहे हैं कि बहुत वासनाएं हैं। और वे वासनाएं अतृप्त रह जाती हैं, तो दुख के घाव हृदय में बन जाते हैं।
अगर दुख ज्यादा हो तो दुख से बचने की कोशिश मत करना, वासना को छोड़ना।
क्योंकि दुख तो फल है, वासना बीज है।
और जिसने बीज बो दिया, उसका तीर चल पड़ा। और तीर रोका जा सकता है, जब तक उसने प्रत्यंचा न छोड़ी। प्रत्यंचा छोड़ देने के बाद, तीर को रोकने का कोई उपाय नहीं है।
जिसने वासना की, वह दुख पाएगा। उसने बीज तो बो दिया, उसने फसल तो बिठा दी, फल भी उसी को काटने पड़ेंगे। जो दुख आप पा रहे हैं, वे अतीत में बोई गई वासनाओं के बीज हैं। और अगर चाहते हैं कि भविष्य में दुख न हो, आगे दुख न हो, तो आज, वर्तमान में वासना के बीज मत बोना। क्योंकि जो बीज आज बोए जा रहे हैं, वे ही आज नहीं कल फल निर्मित हो जाएंगे।
यह भी समझ लेने जैसा है कि जितना सुख चाहो, उतना दुख मिलता है। ज्यादा दुख चाहिए, ज्यादा सुख मांगो।
अगर सच में ही सुख चाहिए, तो सुख मांगना ही मत। फिर तुम्हें कोई दुखी न
कर सकेगा। फिर इस दुनिया की कोई शक्ति तुम्हें दुखी नहीं कर सकती। फिर यह सारा जगत भी इकट्ठा हो जाए तो तुम्हें रत्ती भर भी दुख नहीं दे सकता।
अगर तुमने सुख न मांगा तो तुम दुख की परिधि के बाहर हो गए। तुमने सुख मांगा कि तुम दुख के जगत में प्रवेश कर गए। तुम जितना मांगोगे सुख, उतना ही दुख तुम्हें मिल जाएगा।
यह गणित हमारे ख्याल में नहीं आता है। यह पैराडाक्सिकल, विरोधाभासी नियम ख्याल में नहीं आता, इसलिए हम बड़े परेशान होते हैं। मांगते हैं सुख और मिलता है दुख। हम सब प्रयास करते हैं सुख को पाने के, लेकिन मौलिक भूल हो जाती है। सुख का संबंध प्रयास से नहीं है, सुख का संबंध सुख न मांगने से है।
लाओत्से कहता है, मुझ जैसा सुखी कोई भी नहीं, क्योंकि मैं सुख कभी मांगता ही नहीं।
बिन मांगे मोती मिले--वह जो नहीं मांगता, उसे सब कुछ मिल जाता है। और
वह जो मांगता है, वह सब कुछ खो देता है। भिखारी की तरह इस जगत में जो जीएगा, वह दुखी जीएगा। सम्राट की तरह इस जगत में जो जीएगा, वह सुखी जीएगा। लेकिन किसको कहता हूं मैं सम्राट?
सम्राट मैं उसको कहता हूं, जो सुख मांगता नहीं। और भिखारी मैं उसे कहता हूं, जो सुख मांगता है। तो जिन्हें हम सम्राट कहते हैं आमतौर से, वे तो भिखारी हैं, वे भी मांगते हैं। इसलिए कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है कि ऊपर से दिखाई पड़ने वाला भिखारी भीतर से सम्राट होता है।

बुद्ध को हमने देखा, भिक्षा का पात्र लिए सड़कों पर भीख मांगते हैं। लेकिन वह आदमी सम्राट है, वह कुछ भी नहीं मांग रहा है। सुख की वासना छोड़ दी। और तब आदमी सुखी हो जाता है।
इसे थोड़ा प्रयोग करें। आप इन दिनों में यहां मेरे पास होंगे। कोई सुख
की कामना न रखें, और देखें कि मन कैसा सुख से भर जाता है। शांति की कामना न करें, और देखें कि अशांति कैसे विसर्जित हो जाती है। संतोष की भीख न मांगें, और देखें कि कैसी संतोष की वर्षा होने लगती है। इसे करके ही देखें तो ही ख्याल में आ सकेगा।
जीवन का गहनतम प्रयोग है यह। और जीवन के संबंध में जो भी खोज की जा सकी है, उनमें बड़ी से बड़ी खोज है--सुख मत मांगो, अगर सुखी होना चाहते हो। शांति मत मांगो, अगर शांति चाहते हो। जो मांगोगे, वही खो जाएगा। जो नहीं मांगोगे, वही मिल जाएगा। मांग कर तो बहुत देख भी लिया, अब न मांग कर भी देख लो!
मुझ पर भरोसा करने की जरूरत नहीं है, प्रयोग करने की जरूरत है। मेरे कहने से क्या होगा। यह बात बुद्धि में समझ भी आ जाए कि ऐसा है, तो भी परिणाम न होंगे--इसे करना ही होगा। ये थोड़े से दिन हमारे पास हैं, इन थोड़े से दिनों में निर्णय कर लो कि इतने दिनों के लिए कम से कम सुख न मांगें, कोई शांति न मांगें, कोई संतोष न मांगें। और देखो क्या परिणाम घटित होता है!
और एक बार ख्याल में आ जाए कि सुख मिलता है न मांगने से, तो फिर मैं नहीं सोचता कि आप दुबारा कभी मांगने की भूल करेंगे। क्योंकि दुख तो कोई भी नहीं चाहता। इतना पता भर चल जाए कि मांगने से ही दुख मिलता है तो मांगना छोड़ा जा सकता है। मांगने की क्या मजबूरी है! मांगने में किसी को अच्छा भी कहां लगता है। लेकिन यह रहस्य सूत्र अनुभव में आ जाए तभी।
"किंतु जो महत्वाकांक्षी हैं, उन्हीं के समान परिश्रम करो।"
छोड़ो महत्वाकांक्षा, लेकिन जो महत्वाकांक्षी हैं, उन्हीं के समान परिश्रम करो। महत्वाकांक्षियों को देखते हैं, कितने पागल हो कर श्रम करते हैं। किसी को एम.एल.ए. होना है, किसी को एम.पी. होना है, किसी को मिनिस्टर होना है--कितने पागल की तरह श्रम करते हैं! कैसी उनकी दौड़ है! न सोते हैं, न विश्राम करते हैं। चौबीस घंटे एक ही चिंतन। कैसी उनकी भक्ति है! कैसा उनका भाव है!
यह सूत्र कहता है, महत्वाकांक्षा तो छोड़ दो, लेकिन महत्वाकांक्षी जैसा श्रम करता है, वैसा ही श्रम करो।
वह जैसा पागल की तरह दौड़ता है धन के लिए, पद के लिए, यश के लिए--उसके पागलपन में बड़ी खूबी है, उसका पागलपन सीखने योग्य है। कभी देखा है, एक आदमी जब धन के लिए खोज करता है, तो उसकी ध्यानस्थ अवस्था देखी है? और जब आप ध्यान के लिए बैठते हैं तब, तब आप ऐसे बैठे होते हैं कि ठीक है, हो जाए तो हो जाए। लेकिन जब आप धन के लिए दौड़ते हैं, तब आप ऐसा नहीं कहते कि हो जाए तो हो जाए, तब आप जीवन लगा देते हैं। आप सब कुछ लगा देते हैं, जो आपके पास है। मिट्टी की खोज में आदमी सब कुछ लगा देता है। अमृत की खोज में कुछ भी नहीं लगाना चाहता।
उससे भी सीखो, वह जो पागल है धन के लिए। धन का पागलपन तो छोड़ दो, लेकिन पागलपन बचा लो। वह पागलपन काम में आएगा। वही पागलपन अगर सत्य की खोज में लग जाए, तो सत्य से तुम्हें कोई वंचित न रख सकेगा।
मजनू को देखो, लैला के लिए जैसा दीवाना है, वैसे अगर तुम परमात्मा के लिए दीवाने हो जाओ, तो कौन तुम्हें रोक सकेगा? कौन सी दीवाल? लेकिन लैलाओं के लिए तो बहुत लोग मजनू होते हैं। व्यर्थ के लिए तो बहुत लोग दीवाने होते हैं, सार्थक के लिए लोग दीवाने नहीं होते। सार्थक में बड़ी बुद्धिमानी दिखलाते हैं!
मेरे पास लोग आते हैं। एक मित्र हैं। राजनीति, राजनीति, पद की खोज में लगे रहते हैं। मेरे पास आते हैं कि कुछ कृपा करें और ध्यान हो जाए। मैं उनसे बोला कि जब तुम्हें ध्यान करना है, तो तुम मेरी कृपा मांगने आते हो, लेकिन जब तुमको मिनिस्टर होना है, तब तुम खुद ही मेहनत करते हो। कहीं ऐसा तो नहीं है कि यह कृपा सिर्फ एक झूठा शब्द है? यह सिर्फ तुम्हारी तरकीब है, यह सिर्फ तुम मुफ्त में पाना चाहते हो। तुम भी जानते हो कि अगर राजनीति

में आगे बढ़ना है तो मेहनत करनी पड़ेगी। लेकिन ध्यान में अगर आगे बढ़ना है, तो तुम सोचते हो कोई और। कहीं ऐसा तो नहीं है कि ध्यान में तुम जाना ही नहीं चाहते? जहां तुम जाना चाहते हो, वहां तुम मेहनत करते हो। और जहां तुम नहीं जाना चाहते, वहां तुम लफ्फाजी, शब्दों में पड़ते हो। पर मैंने उनसे कहा कि ध्यान रखो, जिस दिन तुम इतनी ही मेहनत ध्यान के लिए भी करोगे, उसी दिन कृपा भी संभव हो पाएगी।
कृपा भी मुफ्त नहीं मिलती, उसे भी अर्जित करना होता है, उस तरफ भी यात्रा करनी होती है। और केवल उन्हीं को सहायता मिलती है, जो अपने को सहायता देने में कंजूसी नहीं करते। केवल वे ही पाते हैं प्रसाद, जो प्रयास करते हैं। वह भी मुफ्त नहीं। मुफ्त कुछ भी नहीं है। और परम-सत्य की और परम-आनंद की खोज तो मुफ्त कैसे हो सकती है!
यह सूत्र कहता है, छोड़ो महत्वाकांक्षा, लेकिन जो महत्वाकांक्षी हैं, उन्हीं के समान परिश्रम करो।
"जिन्हें जीवन की तृष्णा है, उन्हीं के समान प्राणिमात्र के जीवन का सम्मान करो।"
छोड़ दो जीवन की तृष्णा, लेकिन जो जीवन के लिए दीवाने हैं और जो जीना चाहते हैं किसी भी कीमत पर, वह जो उनकी गुणवत्ता है, उसे मत छोड़ देना। अपने जीवन की तृष्णा छोड़ दो, लेकिन प्राणिमात्र के जीवन का सम्मान करो।
"जो सुख के लिए ही जीवन-यापन करते हैं, उन्हीं के समान सुखी रहो।"
लेकिन सुख की वासना मत करो। सुख को मांगो मत, सुख में जीयो।
यह जरा समझ लेने जैसा है।
लोग पूछते हैं, सुख में कैसे जीएं? उनसे मैं कहता हूं कि तुम सुख में इसी क्षण जीयो, कैसे मत पूछो। श्वास लो तो सुख से, हाथ उठाओ तो सुख से, चलो तो सुख से, बैठो तो सुख से। तुम जो भी करो, उसे इतने सुखी मन से करो कि तुम्हारी प्रत्येक क्रिया सुख का झरना हो जाए। सुख के लिए रुको मत और यह भी मत पूछो कि कैसे? तुम जो भी कर रहे हो, क्षुद्र से क्षुद्र कार्य भी-- बुहारी लगा रहे हो घर के बाहर, उसे भी सुख से लगाओ, उसमें भी आनंद लो।
जो भी तुम्हें करना पड़ रहा है, जहां भी तुम खड़े हो, उसे दुख से मत करो। नहीं तो तुम अगर मोक्ष में भी प्रवेश कर जाओ, तो भी तुम दुख से ही प्रवेश करोगे। तुम वहां भी दुख खोज लोगे। तुम्हारी दुख खोजने की दृष्टि तुम्हारे साथ होगी, तुम वहां भी अंधेरा निर्मित कर लोगे। परमात्मा भी मौजूद हो, तो तुम कुछ न कुछ भूल-चूक निकाल लोगे, ताकि तुम दुखी रह सको।
जो भी कर रहे हो, उसे सुख से करो, सुख को मांगो मत।
इन शिविर के दिनों में इसे ख्याल रखना। सुख में जीना, सुख मांगना मत।
जो भी हो, उसमें खोज करना कि सुख कहां मिल सकता है, कैसे मिल सकता है। तब एक रूखी-सूखी रोटी भी सुख दे सकती है, अगर तुम्हें लेने का पता है। तब साधारण सा जल भी गहरी तृप्ति बन सकता है, अगर तुम्हें सुख लेने का पता है। तब एक वृक्ष की साधारण छाया भी महलों को मात कर सकती है, अगर तुम्हें सुख लेने का पता है। तब पक्षियों के सुबह के गीत, या सुबह सूरज का उगना, या रात आकाश में तारों का फैल जाना, या हवा का एक झोंका भी गहन सुख की वर्षा कर सकता है, अगर तुम्हें सुख लेने का पता है। सुख मांगना मत और सुख में जीना। मांगा कि तुमने दुख में जीना शुरू कर दिया।
अपने चारों तरफ तलाश करना कि सुख कहां है? सुख है। और कितना मैं पी सकूं कि एक भी क्षण व्यर्थ न चला जाए, और एक भी क्षण रिक्त न चला जाए, निचोड़ लूं। जहां से भी, जैसा भी सुख मिल सके, उसे निचोड़ लूं। तो तुम जब पानी पीयो, जब तुम भोजन करो, जब तुम राह पर चलो, या बैठ कर वृक्ष के नीचे सिर्फ सांस लो, तब भी सुख में जीना। सुख को जीने की कला बनाना, वासना की मांग नहीं।
इतना सुख है कि तुम समेट भी न पाओगे। इतना सुख है कि तुम्हारी सब झोलियां छोटी पड़ जाएंगी। इतना सुख है कि तुम्हारे हृदय के बाहर बाढ़ आ जाएगी। और न केवल तुम सुखी हो जाओगे, बल्कि तुम्हारे पास भी जो बैठेगा, वह भी तुम्हारे सुख की छाया से, वह भी तुम्हारे सुख के नृत्य से आंदोलित हो उठेगा। तुम जहां जाओगे, तुम्हारे चारों तरफ सुख का एक वातावरण चलने लगेगा। तुम जिसे छुओगे, वहां सुख का संस्पर्श हो जाएगा। तुम जिसकी तरफ

देखोगे, वहां सुख के फूल खिलने लगेंगे। तुम्हारे भीतर इतना सुख होगा कि तुम उसे बांट भी सकोगे। वह बंटने ही लगेगा। सुख अपने आप ही बंटने लगता है। वह तुम्हारे चारों तरफ फैलने लगेगा। सुख की तरंगें तुमसे उठने लगेंगी, और सुख के गीत तुमसे झरने लगेंगे। लेकिन सुख मांग नहीं है, सुख जीने का एक ढंग है।
इस बात के फर्क को ठीक से समझ लेना। सुख कोई इच्छा नहीं है, सुख जीने
की एक कला है। मांगा कि चूक जाओगे। सीखो कला को। इसी क्षण से शुरू कर देना। इसी क्षण क्या कमी है? पक्षी गीत गा रहे हैं, सूरज की किरणें तुम पर बरस रही हैं, चारों तरफ जीवन प्रफुल्लित है और तुम जीवित हो। इसी क्षण सुख की कहां कमी है? इसी क्षण सुख से भरा है सब कुछ।
लेकिन वासना करो और तुम दुखी हो जाओगे इसी क्षण। मत वासना करो। खाली, मौन... फिर कौन तुमसे ज्यादा सुखी हो सकता है!
यह सूत्र कहता है, "जो सुख के लिए ही जीवन-यापन करते हैं... ।"
और दुख ही पाते हैं। जो सुख के लिए ही जीते हैं और सुख कभी पाते नहीं। तुम उनकी फिक्र छोड़ो। तुम सुखी रहो।
"हृदय के भीतर पाप के अंकुर को ढूंढ़ कर उसे बाहर निकाल फेंको। यह अंकुर श्रद्धालु शिष्य के हृदय में भी उसी प्रकार बढ़ता और पनपता है, जैसे कि वासनायुक्त मानव के हृदय में। केवल शूरवीर ही उसे नष्ट कर डालने में सफल होते हैं। दुर्बलों को तो उसके बढ़ने-पनपने, फूलने-फलने और फिर नष्ट होने की राह देखनी पड़ती है।"
मन में वर्षों के, जन्मों के संस्कार हैं। और जन्मों-जन्मों तक तुमने सिवाय दुख के कुछ और इकट्ठा नहीं किया है। वे संस्कार धक्के मारते हैं और तुम्हें बार-बार दुख के वर्तुल में प्रविष्ट करा देते हैं। पाप का एक ही अर्थ है, दुखी होने की वृत्ति पाप है। यह जरा अजीब लगेगा। यह परिभाषा तुमने कभी सुनी न होगी, दुखी होने की वृत्ति पाप है।
क्यों? क्योंकि जो आदमी खुद दुखी होता है, वह अनिवार्यतः दूसरों को दुख देने में रस लेता है--इसलिए पाप है। पाप का अर्थ है, दूसरे को दुख देना। लेकिन दूसरे को अगर दुख देना हो, तो पहले अपने को दुख देने की कला में निष्णात होना चाहिए। क्योंकि जो तुम्हारे पास नहीं है, तुम दूसरों को दुख कैसे दे सकोगे? अगर तुम दुखी नहीं हो तो तुम दूसरों को दुख कैसे दे सकोगे? तुम्हें दुखी होना ही चाहिए। और साधारण रूप से नहीं, तुम्हें दुख का बड़ा वैज्ञानिक होना चाहिए, कि तुम दुख की कई तरकीबें खोज सको, कि तुम हर जगह से दुख को निकाल लो। जहां स्वर्ग भी बह रहा हो, वहां से भी तुम नर्क की धुन निकाल पाओ, तो ही तुम दुखी हो सकोगे। और स्वर्ग चारों तरफ मौजूद है और बह रहा है, तो तुम उसमें से नरक खोज लेते हो!
खुद दुखी होना जरूरी है, दूसरे को दुख देने के लिए। दूसरे को दुख देना पाप है। तो इसका अर्थ यही हुआ कि मौलिक रूप से स्वयं को दुख देना पाप है। और जो आदमी स्वयं को दुख नहीं देता, वह किसी को भी दुख नहीं देता। वह दे नहीं सकेगा, वह सोच भी नहीं सकेगा। और जो स्वयं को दुख नहीं देता, वह इतने सुख से भर जाएगा, महासुख से कि वह उसे बांटना चाहेगा, वह उसे दूसरों को देना चाहेगा। क्योंकि जितना बांटा जाए, सुख उतना बढ़ता है।
दुख क्यों हम दूसरे को देना चाहते हैं? हम दुखी हैं बहुत। और जब भी हम किसी को अपने से ज्यादा दुखी कर लेते हैं, थोड़ी सी सुख की झलक हमें मिलती है। बस वही हमारा सुख है, उतना ही सुख हम जानते हैं। दूसरा अगर आपसे ज्यादा दुखी हो जाए, तो आपको थोड़े से सुख की झलक मिलती है। वह सुख है नहीं, लेकिन तुलनात्मक, रिलेटिवली है। जब आप एक बड़ी लकीर खींच देते हैं दुख की अपने पास, तो आपका दुख छोटा मालूम पड़ता है।
इसलिए हम अपने चारों तरफ दुख की लकीरें खींचते रहते हैं। दुखी पति पत्नी को दुखी करेगा। और जब तक ठीक से दुखी न कर ले, तब तक उसे सुख की झलक न मिलेगी। दुखी पत्नी पति को दुखी करेगी, दुखी बाप बेटे को दुखी करेगा, दुखी बेटे बाप को दुखी करेंगे। यह पूरा समाज हमारा दुख का एक अंतरजाल है, जिसमें हम एक-दूसरे को दुखी कर रहे हैं। और जब भी हम अपने चारों तरफ दुख के

डबरे बना लेते हैं, तो बीच में हमें थोड़ी सुख की सांस मिलती है, कि चलो मैं इतना दुखी नहीं हूं, जितने और लोग दुखी हैं।
और फिर जब हम दूसरों को दुख देने में लग जाते हैं, तो हमें अपना दुख भूल ही जाता है। हमें ख्याल ही नहीं रहता कि मैं भी दुखी हूं। हम इतने व्यस्त हो जाते हैं दूसरे को दुख देने में कि हमें अपनी चिंता ही भूल जाती है। इसलिए दूसरों को दुख देने वाले लोग एक लिहाज से सुखी मालूम पड़ते हैं, उन्हें अपनी फिक्र ही नहीं। अपने को भुलाने का उपाय है।
पाप है दूसरे को दुख देना, तो पाप हुआ अपने को दुख देना।
यह सूत्र कहता है, "पाप के बीज को, अंकुर को निकाल फेंको।"
जब भी तुम्हें दुखी होने की कोई वृत्ति पकड़े, उसे उसी वक्त निकाल फेंकना। उसके साथ मत जाना, उसमें बहना मत, उसके साथ तादात्म्य मत करना। जब भी तुम्हें दुखी होने की कोई वृत्ति पकड़े, तो तत्क्षण चारों तरफ देखना और सुख को खोजना। और दुख की वृत्ति को निकाल कर बाहर फेंक देना। अगर तुम दुखी होने से बच जाओ, तो तुम दूसरों को दुख देने से बच जाओगे। तुम्हारे जीवन से पाप समाप्त हो जाएगा।
आनंद पुण्य है। और जब तुम आनंदित होते हो, तो तुम पुण्यात्मा हो।
इसलिए मैं नहीं कहता कि तुम दान दोगे, तुम पुण्यात्मा हो जाओगे। मैं नहीं कहता कि तुम मंदिर और मस्जिद और गुरुद्वारे बनाओगे, तुम पुण्यात्मा हो जाओगे। जरूरी नहीं है। हो सकता है, वे भी दूसरे को दुख देने की वृत्ति से पैदा हो रहे हों। हो सकता है, वे भी दूसरे को दुखी करने की वृत्ति से पैदा हो रहे हों। तुम्हारे पड़ोसी ने लाख रुपए दान दिया हो, तो तुम दो लाख रुपए दान दे सकते हो। क्योंकि तुम्हारा अहंकार जब तक पड़ोसी से बड़ा न हो जाए, तब तक तुम उसे दुखी न कर पाओगे।
सुना है मैंने, एक नगर में एक बहुत बड़ा दानी आदमी था, जिसने कभी एक पैसा भी दान नहीं किया। लेकिन दानी वह बड़ा था। उसके दान की बड़ी कथा थी। और कभी उसने एक पैसा दान नहीं किया। लेकिन गांव में किसी को भी दान चाहिए हो तो पहले उसी बड़े दानी के पास जाना पड़ता था। वह दानी लिखवा देता था लाख, दो लाख, पांच लाख; क्योंकि उसे देना कभी भी नहीं पड़ता था, देता वह कभी भी नहीं था। मगर जब वह पांच लाख लिखवा देता था, तो पूरे गांव के धनपतियों के प्राणों में आग लग जाती थी, उनको भी लिखाना पड़ता था। वह कभी देता नहीं था। यही उसका दान था कि वह पांच लाख लिखवा देता था, दस्तखत कर देता था। फिर गांव भर के पैसे वाले कुछ न कुछ देते थे। क्योंकि फिर पीड़ा मालूम होने लगती है।
और ऐसे दानी आपको हर गांव में मिल जाएंगे। और जो लोग दान इकट्ठा करते हैं, वे भलीभांति जानते हैं कि दो-चार नाम होने चाहिए लिस्ट पर। फिर किसी के पास जाओ तो उसके अहंकार को भी चोट लगती है, अब उसे भी कुछ न कुछ देना ही पड़ता है। साधारण भिखमंगा भी जानता है कि जब घर से निकलता है, तो अपने पात्र में कुछ पैसे डाल लेता है, खुद के ही। क्योंकि जब वह पैसे बजाता है अपने पात्र में, तो आपको भी लगता है कि कोई दे चुका है। खाली पात्र में तो आप भी डालने को राजी न होंगे, क्योंकि कोई अहंकार को चोट नहीं लगेगी। कोई दे चुका है तो पीड़ा मालूम पड़ती है कि अगर अब मैंने न दिया तो इस भिखमंगे के सामने मैं दीन हो रहा हूं।
भिखमंगा भी समझता है कि जब आप अकेले हों तो आपसे नहीं मांगना है, जब चार आदमी सामने मौजूद हों तब आपका पैर पकड़ लेगा, क्योंकि चार के सामने अब इज्जत का सवाल है। दूसरे को दुख देने के लिए हम दान भी दे सकते हैं। दूसरे को दुख देने के लिए हम मंदिर भी बना सकते हैं। दूसरे को दुख देने के लिए हम कुछ भी कर सकते हैं। तब सब पाप हो जाता है।
आनंद पुण्य है, क्योंकि जब आप आनंदित होते हैं, तो जो भी आप करते हैं, उससे आनंद ही बहता है। जो भी आप करते हैं, जब तक उससे आनंद न बहने लगे, तब तक आप समझना कि पुण्य की आपको कोई प्रतीति नहीं है। पर पाप के अंकुर उखाड़ न फेंके जाएं, तो पुण्य का जन्म भी न होगा। क्योंकि पाप के पत्थर पुण्य के झरनों को रोके रखते हैं।

तो एक बात ख्याल रखना कि जहां भी पता चले कि मैं दुख की वृत्ति में पड़ रहा हूं, किसी भी कारण से, तो देर मत करना, उसे तत्क्षण उखाड़ कर फेंक देना। उसके साथ थोड़ी सी भी दोस्ती उचित नहीं है। क्योंकि थोड़ी देर भी आप रुक गए, तो दुख जड़ें फैला लेगा, आपके भीतर प्रवेश कर जाएगा। बड़े साहस की जरूरत है। सूत्र कहता है, "केवल शूरवीर ही उसे नष्ट कर डालने में समर्थ होते हैं। दुर्बलों को तो उसके बढ़ने-पनपने, फूलने-फलने और फिर नष्ट होने की राह देखनी पड़ती है।"
बड़ी कमजोरी होती है। खुद के दुख को उखाड़ फेंकने में भी हम कमजोर होते हैं। क्या कारण होगा? क्योंकि लगता तो ऊपर से ऐसा है कि जब हम दुखी नहीं होना चाहते, तो दुख की किसी भी चीज को हम उखाड़ फेंकेंगे। लेकिन नहीं, पुराने दुखों से हमारी दोस्ती और निकटता और सामीप्य बन जाता है। वे हमारे संबंधी हो जाते हैं।
आपको ख्याल में न हो, लेकिन आदमी का मन बड़ा जटिल है। अगर आपको कोई बीमारी है, और आप सोचते हैं कि बड़ी बीमारी है और डाक्टर के पास आप जाते हैं, और वह कहता है कि कुछ भी नहीं, सर्दी-जुकाम है। तो आपके मन में बड़ी पीड़ा होती है कि अच्छा, तो सिर्फ सर्दी-जुकाम। तो आना बेकार हुआ! डाक्टर अगर कह दे कि छोटी-मोटी बीमारी है, तो मन को अच्छा नहीं लगता। आप जैसे बड़े आदमी को छोटी-मोटी बीमारी! बड़े आदमी को बड़ी बीमारी ही होनी चाहिए। मन में कुछ पीड़ा होती है।
अगर आपकी सारी बीमारियां एकदम से छीन ली जाएं, तो आप राजी न होंगे, हालांकि आप एकदम से कहेंगे कि नहीं, मैं राजी हूं सारी बीमारियां छोड़ने को। लेकिन आप फिर से सोचना, आप राजी न होंगे। क्योंकि आपकी बीमारियों के बिना आप रहेंगे कैसे? आप खाली-खाली हो जाएंगे। आप करेंगे क्या? आप रोना किस बात का रोएंगे? आप शिकायत किस बात की करेंगे? आप पड़ोसियों का सिर किस बात को ले कर खाएंगे? आप चारों तरफ घूमेंगे कौन सा झंडा ले कर, अगर आपकी सारी बीमारियां अलग कर ली जाएं? आप बिल्कुल खाली और बेकार हो जाएंगे-- अनएंप्लायड, अनआक्युपाइड, सारी व्यस्तता नष्ट हो जाएगी। आप अचानक पाएंगे कि बिल्कुल बेकार हैं इस जगत में, न कोई बीमारी है, न कोई शिकायत है, तब करें क्या?
अभी तो शिकायतें बहुत हैं, तो दिन बीत जाता है, समय मजे से कटता है। अभी तो बड़े दुख हैं तो उनकी चर्चा कर-करके काफी रस मिलता है। सोचा कभी आपने कि आपकी बीमारियां कोई जादू से छीन ले एक क्षण में, आप राजी न होंगे। क्योंकि आपकी बीमारियों का जोड़ ही तो आप समझते हैं कि आप हैं। आप ही मिट जाएंगे।
जंजीरें भी बहुत दिन तक हाथों में रह जाएं, तो आभूषण मालूम पड़ने लगती हैं। बीमारियां भी जिंदगी का एक ढंग हो जाती हैं, ए वे आफ लाइफ, एक व्यवस्था बन जाती हैं। बीमार अपनी बीमारी को भी बचाता है, दुखी अपने दुख को भी सम्हालता है, ये संपदाएं हो जाती हैं। और जब मैं यह कह रहा हूं, तो ध्यान रखना कि मैं आप सबके बाबत कह रहा हूं। यह मन का नियम है। इसलिए ऐसा मत सोचना कि यह किसी पागल के संबंध में बात सच होगी, मैं तो अपने दुख छोड़ना चाहता हूं। क्योंकि अगर तुम ही अपने दुख छोड़ना चाहते हो तो तुम उन्हें कभी के छोड़ दिए होते। उन्हें तुमने पकड़ा है, तो तुमने कोई जरूर तरकीब निकाली है, जिससे तुम उन्हें सम्हाले हुए हो। अन्यथा कौन रोकता था, तुम उन्हें फेंक दिए होते। कोई नहीं रोकता है, कोई तुम्हें दुखी नहीं कर रहा है, लेकिन तुम्हारे मन के भीतर कोई जाल है, जो तुम्हारे दुखों को ही बचाता है।

अब मनस्विद कहते हैं कि दुख में भी इनवेस्टमेंट है, दुख में भी पूंजी लगी है तुम्हारी। एक छोटा बच्चा है, वह देखता है कि जब बीमार होता है तो मां भी पास बैठती है, सिर पर हाथ रखती है। जब बीमार होता है तो बाप भी पास आता है, सिर पर हाथ रखता है। जब बीमार होता है तो न कोई डांटता है, न कोई डपटता है, सभी प्रेम करते हैं। जब बीमार होता है तो चारों तरफ से करुणा, सहानुभूति उसे मिलने लगती है। बच्चे के मन में अनजाने एक बात बैठ जाती है कि जब वह बीमार है, तब भला है, तब अच्छा है। और जब वह स्वस्थ होता है तो कोई

उसके पास भी नहीं बैठता, कोई उसके सिर पर हाथ भी नहीं रखता। न बाप उसकी फिक्र करता है, न मां उसकी चिंता करती है। डांट-डपट, और सभी उसको सुधारने की कोशिश में लगे रहते हैं। तब सभी, सारा जगत कठोर मालूम पड़ता है।
तो बच्चा अनुभव करता है कि स्वस्थ होने में कुछ न कुछ खराबी है। बीमार होने में कुछ न कुछ भलाई है। बीमारी में सारा जगत अपना हो जाता है और स्वास्थ्य में सारा जगत पराया हो जाता है। बच्चे के मन में बीमार रहने का रस पैदा हो गया। अब जब भी इसको जीवन में कठिनाई मालूम पड़ेगी, और जब भी यह पाएगा कि दुनिया कठोर है, तब अनजाने यह बीमारी की वासना करेगा। और जब भी यह पाएगा कि दुनिया में हार रहा है, कोई संगी-साथी नहीं, अकेला है, तभी यह बीमार होना चाहेगा। और जो तुम चाहोगे, वह हो जाएगा।
मनस्विद कहते हैं कि सौ में से नब्बे बीमारियां, तुम्हारे निमंत्रण
पर आती हैं। और इन नब्बे के कारण बाकी दस को आने का रास्ता बनता है। मूलतः तुम बुलाते हो, वही आता है। तुम्हारे घर में कोई भी मेहमान बिना बुलाया नहीं है। लेकिन यह हो सकता है कि तुम्हें पता ही न हो कि निमंत्रण कब भेजा? किस नींद में निमंत्रण भेज दिया, यह तुम्हें पता न हो। या हो सकता है, निमंत्रण भेजे वर्षों बीत गए हों, और मेहमान अब आया हो, और बीच का तुम्हें कोई तारतम्य पता न हो। जब भी कोई मुसीबत होती है और तुम सहानुभूति चाहते हो, दया चाहते हो, प्रेम चाहते हो, तुम बीमार पड़ जाते हो। अगर कोई आदमी इसलिए बीमार पड़ा है कि वह सहानुभूति चाहता है, तो वह अच्छा नहीं होना चाहेगा। ऊपर से वह चिकित्सक के पास जाएगा, डाक्टर की खोज करेगा और भीतर गहरे अचेतन में चाहेगा कि बीमार बना रहूं। उसकी बीमारी में इनवेस्टमेंट है।

कभी ख्याल किया, आदमी दुखी भी नहीं होना चाहता, अगर उससे कुछ फायदा न हो। एक बच्चा गिर पड़े और उसकी मां पास न हो तो वह चारों तरफ देखता है। अगर मां पास नहीं, तो वह रोता नहीं। यह बड़ी हैरानी की बात है--क्योंकि रोना बेकार है, उसमें कोई फायदा नहीं, उसमें कोई इनवेस्टमेंट नहीं होता, उससे आगे कोई लाभ मिलने वाला नहीं दिखता। क्योंकि जिससे लाभ मिल सकता था, वह पास मौजूद नहीं है। तो बच्चा चारों तरफ देख लेता है। गिरने से नहीं रोता, देख कर रोता है चारों तरफ कि मां मौजूद है या नहीं। अगर मां मौजूद है, तो छाती पीट कर रोने लगता है। अगर मां मौजूद नहीं है, तो बात को आई-गई कर देता है।
क्या मामला है? अभी दुखी होना भी व्यर्थ है। अभी दुखी होने में कोई सार नहीं है। अभी ठीक मौका नहीं। दुखी होने का कोई फायदा नहीं। लगने से, चोट से दुख नहीं आ रहा है। दुख मन की एक वृत्ति है, उससे भी लाभ हम लेना चाहते हैं! अगर तत्क्षण इसको मां दिखाई पड़ जाए, यह रोना शुरू कर देगा। अब इससे कुछ लाभ हो सकता है।
आपने देखा है, स्त्रियां घर में बड़े मजे से बैठी रहती हैं, प्रसन्न रहती हैं, गपशप करती हैं। पति आया, उनके चेहरे में फर्क हो जाता है, उनके सिर में दर्द होने लगता है, कमर दुखने लगती है, पेट दुखने लगता है, कुछ न कुछ उपद्रव शुरू हो जाता है! पति के घर में प्रवेश के साथ ही, न मालूम कितनी बीमारियां पत्नियों में प्रकट होती हैं! और ऐसा नहीं है कि वे कोई जान कर या झूठ इनको पैदा कर लेती हैं। पैदा होती हैं, इनवेस्टमेंट है। पति को देखते से ही!
प्रेम की आकांक्षा है। और कोई पति, जब तक पत्नी बीमार न हो, तब तक प्रेम देता नहीं। पत्नी बीमार हो तो प्रेम देना मजबूरी हो जाती है। प्रेम देना ही पड़ता है, न दे तो अपराधी मालूम पड़ता है। तो वह पत्नी बीमार हो कर आपमें अपराध का भाव पैदा कर रही है, कि तुम गिल्ट अनुभव करो, कि मैं इतनी बीमार पड़ी हूं और तुम क्लब की तरफ जा रहे हो। मैं इतनी बीमार पड़ी हूं और तुम ध्यान कर रहे हो। और मैं इतनी बीमार पड़ी हूं और तुम पुस्तक या अखबार पढ़ रहे हो। मैं इतनी बीमार पड़ी हूं! वह यह कह रही है, उसकी गहरे अचेतन की मांग है कि मुझे प्रेम दो। और अगर प्रेम नहीं मिलता तो दुख के द्वारा प्रेम को मांग रही है। तो अब इस पत्नी को स्वस्थ करना बहुत मुश्किल है। क्योंकि अब

यह मामला बीमारी का नहीं है। यह मामला तो बहुत गहरे अचेतन दुख की पकड़ का है--दुख में लाभ है।
तुम दुखी हो, क्योंकि तुम दुख में लाभ देख रहे हो। और जब तक तुम दुख में लाभ देखते रहोगे, तब तक तुम दुखी रहोगे। दुख में कोई भी लाभ नहीं है, क्योंकि दुख आत्मघात है। और दुख की कोई भी वृत्ति पैदा हो और कितना ही प्रलोभन दे और कितना ही लाभ का आश्वासन दे, उसे उखाड़ कर फेंक देना। वे सब आश्वासन झूठे हैं, धोखे भरे हैं। और अगर कोई व्यक्ति अपने भीतर से दुख की वासना को ऐसे उखाड़ता-फेंकता रहे, तो बहुत शीघ्र पाएगा कि जहां-जहां दुख पैदा होता था, वहीं-वहीं सुख के झरने प्रकट होने शुरू हो गए हैं।
सुख बहुत निकट है, तुम्हारे भीतर भरा है। लेकिन दुख की आदत जब तक हट न जाए और दुख में सुख देखने की वृत्ति न खो जाए, तब तक वे सुख के स्रोत उपलब्ध नहीं हो सकते हैं।

साधना-सूत्र
तीसरा प्रवचन

द्वैतभाव

4. द्वैतभाव को समग्ररूप से दूर करो।

यह न सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से
या मूर्ख मनुष्य से दूर रह सकते हो।
वे तो तुम्हारे ही रूप हैं।
यद्यपि तुम्हारे मित्र अथवा गुरुदेव से कुछ कम ही वे तुम्हारे रूप हों,
फिर भी वे हैं तुम्हारे ही रूप।
स्मरण रहे कि सारे संसार का पाप व उसकी लज्जा,
तुम्हारी अपनी लज्जा, तुम्हारा अपना पाप है।
तुम संसार के एक अंग हो और तुम्हारे कर्मफल
उस महान कर्मफल से अकाट्यरूप से संबद्ध हैं।
और ज्ञान प्राप्त करने के पहले
तुम्हें सभी स्थानों में से होकर निकलना है,
अपवित्र और पवित्र स्थानों से एक ही समान।

जैसे-जैसे मनुष्य ज्यादा सभ्य हुआ है, जैसे-जैसे ज्यादा शिक्षित, सुसंस्कृत हुआ है, वैसे-वैसे ज्यादा चिंतित, बेचैन और परेशान भी हो गया है। क्या होगा कारण? जैसे-जैसे मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है, दुख क्यों बढ़ जाता है?
दुख बढ़ जाता है इस कारण कि बुद्धि का सारा विकास द्वैतभाव पर निर्भर है।
बुद्धि तोड़ती है, बुद्धि अलग करती है, विश्लेषण करती है। बुद्धि सीमाएं खींचती है, परिभाषाएं करती है।
हृदय जोड़ता है, सीमाएं तोड़ता है। परिभाषाएं समाप्त हो जाती हैं, रहस्य का जन्म हो जाता है। और जितना हो जीवन में हृदय, उतनी ही चिंता कम होती है। और जितनी ज्यादा हो बुद्धि, उतनी ही चिंता ज्यादा होती है। बुद्धि की प्रक्रिया खंड-खंड करने की प्रक्रिया है। जैसे कांच का प्रिज्म हो और सूरज की किरण उसमें से निकले, तो तत्क्षण उसके सात टुकड़े हो जाते हैं, सात रंग दिखाई पड़ने लगते हैं। वही किरण प्रिज्म के पहले शुभ्र थी, वही किरण प्रिज्म से पार हो कर सात टुकड़ों में बंट जाती है, सतरंगी हो जाती है।
वर्षा में आकाश में इंद्रधनुष बन जाता है, क्योंकि वर्षा की बूंदें प्रिज्म का काम कर देती हैं, किरण को तोड़ देती हैं और सात रंगों में बांट देती हैं। बुद्धि ठीक प्रिज्म जैसा काम करती है। जहां भी बुद्धि से देखेंगे, वहां चीजें टूट जाएंगी, अलग-अलग हो जाएंगी। यही बुद्धि का खतरा भी है, यही उसकी उपयोगिता भी है। क्योंकि अगर किसी भी चीज पर सीमा खींचनी हो, ठीक-ठीक जानना हो कि क्या है, तो उसे तोड़ना ही पड़ेगा। अन्यथा फिर कुछ भी न जाना जा सकेगा, क्योंकि जगत में तो सभी कुछ जुड़ा हुआ है।
अगर वस्तुतः एक चीज भी जाननी हो, तो तभी जानी जा सकती है, जब सब जान लिया जाए। और यह तो असंभव मालूम होता है। एक छोटा-सा कंकड़ का टुकड़ा भी इस पूरे अस्तित्व से जुड़ा है। उस कंकड़ के टुकड़े के होने में इस पूरे अस्तित्व ने भाग लिया है। सूरज ने दान दिया है, आकाश ने जगह दी है, पृथ्वी ने वस्तु दी है--इन सबसे मिल कर बना है पत्थर का टुकड़ा। अनंत ने अनंत प्रकार से उसे जीवन दिया है। तो जब तक हम सबको ही न समझ लें, तब तक उस पत्थर के टुकड़े को भी हम समझ न पाएंगे।
पर यह तो अति कठिन है। तब तक रुकना पड़ेगा, जब तक सब न जान लिया जाए! और कैसे हम सबको जान पाएंगे? क्योंकि सब है इतना विराट। और यहां एक को भी

जानना हो, तो शेष को जानना जरूरी है। तो इसका अर्थ तो यह हुआ कि अज्ञान होगा शाश्वत, हम कभी भी जान न पाएंगे।
बुद्धि जानने में सहायता देती है। सहायता इसलिए देती है कि वह तोड़ देती है, खंड बना देती है। वह कहती है, सबको जानना जरूरी नहीं है, एक खंड को भी बांट कर जाना जा सकता है। विज्ञान बुद्धि के सहारे खड़ा हो पाता है। लेकिन खतरा भी है। और खतरा यह है कि जो अनबंटा है, उसे बुद्धि बांट देती है। जो अपने आप में अखंड है, उसको खंड-खंड कर देती है। इसलिए बुद्धि से कुछ भी जान लिया जाए, वह ज्ञान परम-ज्ञान नहीं हो पाता। वह अधूरा ही होगा। क्योंकि बहुत से हिस्से अनजाने रह गए, बहुत सी मौलिक बातें बिना खोजी रह गईं। इसलिए विज्ञान कहता है कि उसकी सारी जानकारी अस्थाई है, वह कभी स्थाई नहीं हो सकती। और इसलिए विज्ञान को हर रोज अपना ज्ञान बदल लेना पड़ता है। ज्ञान भी रोज बदलता है।
धर्म कहता है, ऐसे ज्ञान का मूल्य ही क्या, जो रोज बदल जाता हो? अस्थाई ज्ञान का मूल्य ही क्या? तब तो इसका यह अर्थ हुआ कि जो कल ज्ञान था और आज अज्ञान हो गया, वह था तो कल भी अज्ञान, हमें पता नहीं था। जो आज ज्ञान है, वह कल अज्ञान हो जाएगा। तब तो अर्थ हुआ कि आज भी वह है तो अज्ञान ही, लेकिन हमें पता नहीं। जैसे-जैसे हमें पता चलेगा, हमारा ज्ञान अज्ञान होता जाएगा। तो फिर ज्ञान क्या है?
धर्म कहता है, जब तक हम पूर्ण को पूर्ण की तरह ही न जान लें, तब तक हम अज्ञानी ही रहेंगे।
पूर्ण को बांट कर जानने में भ्रांति है। उपयोगिता है, लेकिन भ्रांति है। और भ्रांतियां भी उपयोगी हो सकती हैं। विज्ञान ऐसी ही भ्रांति है, जो बड़ी उपयोगी है। लेकिन धर्म एक दूसरे ज्ञान की खोज करता है, जो वस्तुतः ज्ञान है। और जो एक बार जान लिए जाने पर फिर कभी अज्ञान नहीं हो सकता, जो शाश्वत है।
इस शाश्वत ज्ञान के लिए क्या करना होगा?
जैसे विज्ञान तोड़ता है, अगर हमें शाश्वत ज्ञान को पाना है तो हमें जोड़ने की कला सीखनी पड़ेगी। इस सूत्र में उसी कला की ओर इशारा है।
यह सूत्र कहता है, "द्वैतभाव को समग्ररूप से दूर करो।"
दुई न रह जाए, दो न बचे, एक ही बचे। और जिस दिन तुम्हारे बीच और अस्तित्व के बीच कोई फासला न रह जाएगा, कोई दूरी न रह जाएगी; ऐसा भी न लगेगा कि मैं जानने वाला हूं, और वह जो जगत है, उसे मैं जान रहा हूं; वह जाना जाने वाला है; जिस दिन ज्ञेय और ज्ञाता का भी फासला न रह जाएगा; जिस दिन सब द्वैत टूट जाएगा, सब सीमाएं गिर जाएंगी और तुम अस्तित्व के साथ एक हो जाओगे; जैसे ओस की बूंद कमल के पत्ते से गिरे और सरोवर के साथ एक हो जाए, ऐसा जिस दिन मिलन हो जाएगा अस्तित्व से--उस दिन ही जो जानने योग्य है, वह जाना जाता है। उस दिन ही जो जाना जाता है, फिर उसे खोने की कोई संभावना नहीं है। उस दिन ही जो जाना जाता है, वह मुक्ति लाता है।
विज्ञान शक्ति दे सकता है, लेकिन मुक्ति नहीं। क्योंकि विज्ञान उपयोगी तथ्य दे सकता है, लेकिन शाश्वत सत्य नहीं। शाश्वत सत्य की खोज की एक ही प्रक्रिया है और वह यह है--एकत्व की अनुभूति।
लेकिन बड़ा कठिन है। क्योंकि हमारे तो सारे देखने के ढंग ही बुद्धि पर निर्भर हैं। जहां से भी देखें, वहीं से चीजें दो हो जाती हैं।
अभी मैं बोल रहा हूं, आप सुन रहे हैं। यह घटना एक है। यहां बोलने वाला
एक छोर है, वहां सुनने वाला दूसरा छोर है--घटना एक है। यहां एक ही घटना घट रही है। यहां बोला जा रहा है, सुना जा रहा है। ये दो चीजें नहीं हैं। एक छोर से बोला जा रहा है, दूसरे छोर पर सुना जा रहा है। यह एक ही अनुभव के दो कोने हैं। घटना एक है, लेकिन जैसे ही विचार करेंगे, वैसे बोलने वाला अलग हो गया, सुनने वाला अलग हो गया। सुनने के क्षण में जब आपका मन कोई काम नहीं कर रहा है, मौन सुन रहा है, तब दो नहीं होते। बोलने के क्षण में जब मन कोई काम नहीं कर रहा है, कोई विचार नहीं कर रहा है, शुद्ध बोलना और शुद्ध सुनना जहां मिलते हैं, वहां तो एक ही रह जाता है। न सुनने वाला होता है, न बोलने वाला होता है। और वहीं समझ आती है और वहीं संवाद भी होता है। जहां सुनने वाला

अलग, बोलने वाला अलग, वहां तो विवाद होता है। वहां तो भीतर विवाद चलता ही रहता है।
वस्तुतः जितने गहरे हम उतरते हैं, उतनी एकता का पता चलता है। लेकिन जैसे ही सोचते हैं लौट कर, वैसे ही लगता है चीजें बंट गईं, दो हो गईं, अलग-अलग हो गईं। वह जो सुनने वाला है, अलग हो गया; वह जो बोलने वाला है, अलग हो गया।
जब दो व्यक्ति गहरे प्रेम में होते हैं, या गहरी मैत्री में, तो उनके प्रेम में दो नहीं होते। उनके प्रेम में प्रेम ही रह जाता है। वहां प्रेमी भी खो जाता है, प्रेयसी भी खो जाती है। और जब यह खोना होता है, तभी प्रेम का जन्म होता है। जब तक यह खोना न हो, तब तक प्रेम का कोई जन्म नहीं होता। लेकिन जब हम सोचेंगे प्रेम के संबंध में, तो प्रेमी अलग हो जाएगा, प्रेयसी अलग हो जाएगी।
जब भक्त अपनी पूरी लीनता में होता है, तो भगवान और भक्त में कोई फासला नहीं होता। अगर फासला हो तो भक्ति अधूरी है, भक्ति है ही नहीं। वहां भक्त भी मिट जाता है और भगवान भी मिट जाता है, दोनों के बीच एक की ही उपस्थिति रह जाती है। ये दोनों छोर लीन हो जाते हैं और एक ही अस्तित्व रह जाता है। लेकिन जब हम सोचेंगे भक्ति के संबंध में, तो भगवान अलग है, भक्त अलग है। छोड़ें! शायद आपको प्रेम का भी अनुभव न हो, क्योंकि प्रेम का अनुभव भी बहुत मुश्किल हो गया है। और भक्ति का तो होगा ही नहीं, क्योंकि वह तो करीब-करीब असंभव हो गया है। जिस समाज में प्रेम का ही अनुभव मुश्किल हो जाए, उस समाज में भक्ति का अनुभव संभव नहीं रह जाता। जो प्रेम ही नहीं जानते, वे भक्ति कैसे जान पाएंगे।
प्रेम ही संसार की सीढ़ी है, जिससे व्यक्ति भक्ति के मंदिर तक उठ पाता है। लेकिन जिन्होंने प्रेम ही नहीं किया जीवन में, वे भक्ति के रस को भी कभी न समझ पाएंगे। इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रेम ही भक्ति है, इसका इतना ही अर्थ है कि प्रेम भक्ति का प्रशिक्षण है। इसका इतना ही अर्थ है कि इस जगत में भक्ति के करीब से करीब अगर कोई घटना है, तो वह दो व्यक्तियों का प्रेम है।
क्यों? क्योंकि दो व्यक्तियों के गहरे प्रेम में भी अद्वैत की झलक उपलब्ध होती है। झलक ही उपलब्ध होती है, लेकिन झलक भी काफी है। और अंधेरे में जब घनघोर चारों तरफ अंधेरा हो, तो बिजली की एक कौंध भी बहुत कुछ साफ कर जाती है। फिर खो जाती है, बिजली फिर खो जाती है। बिजली कोई दीया नहीं है आपके हाथ में कि आप उससे रास्ते को खोज लेंगे। लेकिन अंधेरे रास्ते पर अंधेरी रात में बिजली कौंध जाए, एक दफे एक झलक भी रास्ते की मिल जाए--तो आपकी दृष्टि बदल जाती है, भय बदल जाता है। आप जानते हैं कि रास्ता है, आप जानते हैं कि रास्ता देख लिया है, अब आप निर्भीक हैं, अब आप खोज सकते हैं, अब आप टटोल सकते हैं। अब भूल भी होगी, भटकन भी होगी, तो भी आस्था न खोएगी, क्योंकि आपने रास्ते की एक झलक देख ली है, रास्ता है। अंधेरे में भूल सकते हैं, भटक सकते हैं, देर-अबेर लगेगी, लेकिन मंजिल पर पहुंचना हो जाएगा। क्योंकि रास्ता है! अब एक आस्था पैदा हो जाएगी।
जिन लोगों के जीवन में प्रेम की घटना घट जाती है, उनके जीवन में भक्ति
की संभावना शुरू हो जाती है। एक आस्था है। दो मिट सकते हैं, इसका कम से कम एक अनुभव हो गया। दो मिट सकते हैं, ऐसी घड़ी भी आ गई। ऐसा क्षण भी आया, पल भर को आया, बिजली की तरह कौंधा और मिट गया, लेकिन देखा कि वहां दो नहीं थे--एक था। तो फिर भगवान और भक्त के बीच की संभावना भी विश्वास के योग्य हो जाती है। फिर आस्था लाई जा सकती है, फिर भरोसा किया जा सकता है।
इसलिए कहता हूं कि भक्ति की संभावना तो बहुत मुश्किल हो गई, क्योंकि प्रेम की ही संभावना अति कठिन हो गई है। लेकिन एक बात समझनी जरूरी है, दो के मिटने की घटना को समझना जरूरी है। तब हम किन्हीं और पहलुओं से सोचें, शायद किसी क्षण में आपको भी ऐसा लगा हो कि आप मिट गए हैं।
वह क्षण कैसे भी उपलब्ध हुआ हो, वह क्षण कहीं से भी उपलब्ध हुआ हो, लेकिन अगर आपके जीवन में कोई भी एक क्षण है, कोई एक सौंदर्य की अनुभूति हो-- आप किसी फूल के पास बैठे हों, और फूल को देखते-देखते आप मिट गए हों और फूल

भी मिट गया हो, और मात्र फूल की सुगंध, मात्र फूल का सौंदर्य शेष रह गया हो, दोनों छोर मिट गए हों और एक पारदर्शी सौंदर्य का बोध-मात्र रह गया हो--तो आपको ख्याल आ सकता है कि यह सूत्र किस तरफ इशारा कर रहा है। या संगीत के सुनते क्षण में, संगीतज्ञ भी भूल गया हो, आप भी भूल गए हों, मात्र संगीत रह गया हो, तो भी आपको ख्याल आ सकता है कि अद्वैत की बात की क्या प्रतीति होगी।
अंतिम प्रतीति क्या होगी, यह तो जब अनुभव होगा, तभी होगा। लेकिन अभी आपके जीवन में कभी भी ऐसा कोई क्षण घटा हो, सौंदर्य का, प्रेम का, किसी रस-बोध का--जहां ऐसा लगा हो कि यहां जानने वाला और जाना जाने वाला दो नहीं रह गए हैं, विषय और विषयी मिट गए हैं, एक अनुभव की तरंग मात्र रह गई है, एक लहर जिसमें दोनों छोर खो गए हैं और मध्य का भाग ही रह गया है--ऐसी प्रतीति अगर आपको कभी भी हुई हो, तो इस सूत्र को समझना आसान हो जाएगा।
अगर ऐसी प्रतीति न हुई हो, तो ध्यान में इस प्रतीति को करने का उपाय है। ध्यान में इस भांति डूबने की कोशिश करना कि ध्यान ही न रह जाए। आपको यह ख्याल ही न बचे कि मैं ध्यान कर रहा हूं। आपको यह ख्याल ही न बचे कि मैं किसी का ध्यान कर रहा हूं। आप इतने आनंदमग्न हो जाना कि दो मिट जाएं। दोपहर के कीर्तन में संभव है। अगर आप पूरी तरह लीन हो जाएं नृत्य में,
तो नर्तक मिट जाएगा, बाहर का जगत भी खो जाएगा, भीतर की अस्मिता भी खो जाएगी, सिर्फ एक कृत्य रह जाएगा, शुद्ध कृत्य, प्योर एक्ट--नृत्य का, आनंद का, एक महोत्सव का--उस क्षण में किसी ऊंचाई पर दो का सारा बोध नष्ट हो जाता है और एक ही शेष रह जाता है। वह एक विराट है, उस एक में सब समाया हुआ है। उसमें ये पास खड़े हुए वृक्ष भी भागीदार होंगे, उसमें यह आकाश भी भागीदार होगा, उसमें यह पृथ्वी भी भागीदार होगी, उसमें यह सारा अस्तित्व भागीदार है। फिर उस अनुभूति के बाहर कुछ भी नहीं है, सभी कुछ उस अनुभूति में समा जाता है।
ऐसी प्रतीति का नाम ही ध्यान है। और ऐसी प्रतीति जब इतनी प्रगाढ़ हो जाए कि खोए ही ना, आप कुछ भी करें, बनी ही रहे। चलें या उठें, बैठें या खाएं, या पीएं, संसार में हों, कि संन्यास में हों, कि दुकान में हों, कि मंदिर में हों, जब ऐसी प्रतीति के मिटने का कोई उपाय न रह जाए, तो वही ध्यान की प्रतीति समाधि बन जाती है।
इस समाधि की यात्रा पर ही हम निकले हुए हैं। इसलिए इस सूत्र को बहुत ठीक से समझ लेना जरूरी है। सूत्र कहता है--
"द्वैतभाव को समग्ररूप से दूर करो। यह न सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से
या मूर्ख मनुष्य से दूर रह सकते हो। वे तो तुम्हारे ही रूप हैं। यद्यपि तुम्हारे मित्र अथवा गुरुदेव से कुछ कम ही वे तुम्हारे रूप हों, फिर भी वे हैं तुम्हारे ही रूप। स्मरण रहे कि सारे संसार का पाप व उसकी लज्जा, तुम्हारी अपनी लज्जा, तुम्हारा अपना पाप है। तुम संसार के एक अंग हो और तुम्हारे कर्मफल उस महान कर्मफल से अकाट्य रूप से संबद्ध हैं। और ज्ञान प्राप्त करने के पहले तुम्हें सभी स्थानों में से हो कर निकलना है, अपवित्र और पवित्र स्थानों से एक ही समान।"
बहुत सी बातें कही गई हैं। और बहुत विचारणीय हैं। यदि यह सच है कि अस्तित्व एक है, और मैं अस्तित्व से अलग-थलग नहीं हूं, मैं कोई द्वीप नहीं हूं, मेरी सीमाएं कामचलाऊ हैं, मैं किन्हीं सीमाओं पर समाप्त नहीं होता हूं, तो फिर दूसरा भी कोई नहीं है। तो फिर दूसरे के साथ भी जो घट रहा है, वह मेरे साथ ही घट रहा है। थोड़ी दूरी पर सही, लेकिन मेरे साथ ही घट रहा है। अगर महावीर ने यह कहा है कि चींटी को भी मत मारना, तो इसी अर्थ में कहा है। अहिंसा की पूरी जीवन-दृष्टि अद्वैत के इसी भाव पर निर्भर है। चींटी को मत मारना--इसका यह अर्थ नहीं है कि चींटी पर दया करना या कि दया की जा सकती है। इसका कुल अर्थ इतना ही है कि जब भी तुम किसी को चोट पहुंचा रहे हो, या दुख पहुंचा रहे हो, या मार रहे हो, तो तुम्हें पता नहीं कि तुम आत्मघात में ही संलग्न हो।
सभी हिंसा आत्महत्या है। अगर सारा जीवन मेरे साथ एक है, तो कहीं भी मैं चोट पहुंचाऊं, मैं अपने को ही चोट पहुंचा रहा हूं। इसलिए इस बात को

ख्याल में रखना, जब भी तुम किसी को चोट पहुंचाते हो तो तुम जानो या न जानो, तुम्हें भी चोट पहुंच ही जाती है। क्योंकि दूसरा तुमसे अलग नहीं है। फासला हो सकता है, दूरी हो सकती है, और बीच की यात्रा लंबी हो सकती है, लेकिन हम जुड़े हैं और संयुक्त हैं। इसलिए तुम किसी को भी दुख पहुंचाओ, तो तुम्हें दुख भोगना ही पड़ेगा। तुम अपने को दुख पहुंचाए बिना किसी को दुख पहुंचाने में सफल नहीं हो सकते। कोई उपाय नहीं है।
किसी को भी दुखी करके देखो, तुम दुखी हो ही जाओगे। और इससे उलटा भी सही है। तुम किसी को सुखी करके देखो और तुम पाओगे कि सुख न मालूम कितने रूपों में तुम्हारे हृदय में भी गुंजरित हो उठा है। और तुम किसी के रास्ते से एक छोटा सा कांटा भी हटाओ, तो तुम्हारे अपने रास्ते से अनेक कांटे हट जाते हैं। और तुम किसी के रास्ते पर एक छोटा सा फूल भी रखो, तो तुम्हारे रास्ते पर फूल की शय्या बिछ जाती है। क्योंकि तुम जो भी कर रहे हो, उसकी अनंत गूंज चारों ओर हो जाती है। और इसीलिए हो जाती है अनंत तक उसकी गूंज, क्योंकि तुम जुड़े हो, संयुक्त हो।
एक छोटा सा भी विचार तुम्हारे भीतर पैदा होता है, तो सारा अस्तित्व उसे सुनता है। और थोड़ा सा भाव भी तुम्हारे हृदय में उठता है, तो सारे अस्तित्व में उसकी झंकार सुनी जाती है। और ऐसा ही नहीं है कि आज ही, अनंत काल तक वह झंकार सुनी जाएगी। तुम्हारा यह रूप खो जाएगा, तुम्हारा यह शरीर गिर जाएगा, तुम्हारा यह नाम मिट जाएगा, तुम्हारा कोई नामो-निशान भी पता लगाना मुश्किल हो जाएगा--लेकिन तुमने जो चाहा था, तुमने जो किया था, तुमने जो सोचा था, तुमने जो भावना बनाई थी, वह सब इस अस्तित्व में गूंजती रहेगी। क्योंकि तुम यहां से भले ही मिट जाओ, तुम कहीं और प्रकट हो जाओगे। और तुम यहां से खो जाओगे, लेकिन किसी और जगह तुम्हारा बीज पुनः अंकुरित हो जाएगा। हम जो भी कर रहे हैं, वह खोता नहीं। और हम जो भी हैं, वह भी खोता नहीं। क्योंकि हम एक विराट के हिस्से हैं। लहर मिट जाती है, सागर बना रहता है। और वह जो लहर मिट गई है, उसका जल भी उस सागर में शेष रह गया है।
इसे बहुत तरह से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इसका व्यापक परिणाम तुम्हारे जीवन, तुम्हारे आचरण, तुम्हारे भविष्य पर होगा। अगर यह बात ठीक से ख्याल में आ जाए तो तुम दूसरे ही आदमी हो जाओ। एक ढंग की जिंदगी तुमने बनाई है, उस जिंदगी का मूल आधार यह है कि मैं अलग हूं। और इसीलिए आदमी इतना चिंतित और दुखी और परेशान है। क्योंकि तुम अलग हो नहीं, तुम्हारे अलग होने की सब कोशिश निष्फल जाती है, आखिर में तुम पाते हो कि विफल हो गए।
मृत्यु क्या है? मृत्यु सिवाय इसके कुछ भी नहीं है कि तुम्हें जो वहम
था कि मैं अलग हूं, वह इस वहम को तोड़ देती है। मृत्यु तुम्हें अद्वैत में वापस ले जाती है। काश, तुम खुद ही अद्वैत में वापस जा सकते, तो फिर मृत्यु तुम्हारे लिए घटती ही नहीं। लेकिन तुम्हारे लिए मृत्यु बिल्कुल जरूरी है, क्योंकि तुम अपनी तरफ से अद्वैत में लौटने की कोई आकांक्षा नहीं रखते। जन्म के पहले भी तुम अद्वैत में थे और मृत्यु के बाद भी तुम अद्वैत में वापस पहुंच जाते हो। बीच में थोड़ी देर की लहर, बीच में थोड़ी देर का लहर का शोरगुल, थोड़ी देर के लिए लहर का उठना, सूरज की किरणों में नाचना, थोड़ी देर के लिए लहर को भी यह ख्याल पैदा हो जाता है कि मैं भी हूं। और हर लहर को यह लगता होगा कि सागर से अलग है। लगता ही होगा। और यह भी लगता होगा कि मेरे आस-पास जो लहरें उठ रही हैं, मुझसे भिन्न हैं। और यह भी लगता होगा, क्योंकि इसके पीछे तर्क भी हैं।
लहर का भी अगर तर्क हो, उसके पास भी बुद्धि हो, तो लहर भी सोचेगी कि मैं
एक कैसे हो सकती हूं दूसरी लहरों से! कोई लहर बहुत छोटी है, मैं इतनी बड़ी हूं। मैं बहुत छोटी हूं, कोई लहर पहाड़ जैसी बड़ी है। हम सब भिन्न-भिन्न हैं, हम कैसे एक हो सकते हैं? और फिर यह भी तो ख्याल लहर को आएगा ही कि कोई लहर गिर रही है और मैं तो अभी जन्म पा रही हूं, उठ रही हूं--तो गिरती हुई लहर से मेरी एकता कैसे हो सकती है! अगर मैं गिरती हुई लहर से एक होती तो उसके साथ गिरती। और अगर गिरने वाली लहर मेरे साथ एक होती तो मेरे साथ उठती।

आप देखते हैं, कोई मर रहा है। आप जवान हैं, कोई बूढ़ा हो गया है, कोई बच्चा है--आप एक कैसे हो सकते हैं? जब आप मरेंगे तो सभी आपके साथ मर जाते, अगर एक होते।
लेकिन हम जानते हैं कि एक लहर उठ रही है, दूसरी लहर गिर रही है, फिर भी लहरें एक हैं; भीतर, नीचे जुड़ी हैं। और जिस जल से यह उठ रही है लहर, उसी जल से गिरने वाली बाहर वापस लौट रही है। इन दोनों के नीचे के तल में कोई फासला नहीं है। यह एक ही सागर का खेल है। थोड़ी-सी देर के लिए लहर ने एक रूप लिया, फिर रूप खो जाता है और अरूप शेष रह जाता है।
हम भी लहरों से ज्यादा नहीं हैं। इस जगत में सभी कुछ लहरवत है। एक वृक्ष भी एक लहर है, एक पक्षी भी एक लहर है, एक पत्थर भी, एक मनुष्य भी। अगर हम लहरें हैं एक ही सागर की, तो इसकी तो व्यापक निष्पत्ति होगी।
इसकी निष्पत्ति इस सूत्र में है।
"यह मत सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से या मूर्ख मनुष्य से दूर रह सकते हो।"
यह मत सोचो कि बुरा आदमी बुरा है और तुम भले हो। क्योंकि बुरा भी तुमसे जुड़ा है। और सच तो यह है कि अगर बुरा जगत से मिट जाए, तो भले भी उसी दिन मिट जाएंगे। अगर जगत में शैतान न हो, अगर जगत में असाधु न हो, अगर चोर, हत्यारा, बेईमान न हो, तो उनके साथ ही साधु भी मिट जाएंगे। साधु असाधु के बिना कैसे जी सकता है? यह कभी सोचा! साधु जीता ही असाधु के साथ है। वह एक ही सिक्के का दूसरा पहलू है। वह जो अच्छा आदमी है, शुभ आदमी है, नैतिक है, धार्मिक है, वह भी जीता है अधार्मिक के कारण। अधार्मिक के बिना वह भी जी न सकेगा।
रावण के बिना राम के होने का कोई उपाय नहीं है। न ही राम के बिना रावण
के होने का कोई उपाय है। इसलिए जो ऊपर-ऊपर देखते हैं, वे सोचते हैं कि राम और रावण में बड़ी दुश्मनी है। जो भीतर देखते हैं, वे पाते हैं कि उनसे ज्यादा गहरी मैत्री खोजनी कठिन है। क्योंकि जिसके बिना हम हो ही न सकें, उसको शत्रु कहिएगा? जिसके बिना हम हो ही न सकें, वही हमारा मित्र है। जिसके बिना अस्तित्व ही संभव न होगा, जो हमारा आधार है, उसको शत्रु कहिएगा? तो फिर शत्रु की सारी परिभाषा ही बदलनी पड़ेगी। फिर तो शत्रु मित्र से भी निकट हो गया।
राम हो सकते हैं रावण के बिना? कभी सोचा!
राम की कथा में रावण को काट दें, तो राम की सारी कथा एकदम व्यर्थ हो जाएगी। रावण के कारण ही सारा रस है। रावण की मौजूदगी के कारण ही राम की सारी गरिमा है। वह जो राम का शुभ है, वह रावण के अशुभ की पृष्ठभूमि में ही उभरता है।
रावण के बिना राम वैसे ही होंगे, जैसे ब्लैक-बोर्ड के बिना उस पर लिखे हुए सफेद अक्षर हो जाएंगे। ब्लैक-बोर्ड हट जाए, सफेद अक्षर खो जाएंगे। वे सफेद अक्षर उभर कर दिखते थे, इसलिए नहीं कि वे सिर्फ सफेद थे, बल्कि इसलिए भी कि काले तख्ते पर थे। उनकी सफेदी में काले तख्ते का हाथ था। काले तख्ते के कारण ही वे इतने शुभ्र मालूम होते थे। काला तख्ता हट गया, वे शुभ्र अक्षर भी खो गए।
बड़े मजे की बात है कि अगर साधुओं की आकांक्षाएं पूरी हो जाएं, और सारा जगत साधु हो जाए, तो सबसे पहले मिटने वाली जो चीज होगी, वह साधुओं का अस्तित्व होगा। साधु अपने को ही मिटाने में लगे रहते हैं। अभी तक सफल नहीं हो पाए। कभी भी सफल नहीं हो पाएंगे। क्योंकि वे हो ही नहीं सकते, असाधु के बिना। जैसे रात के बिना दिन का होना असंभव है, और जैसे अंधेरे के बिना प्रकाश का होना असंभव है, और जैसे मृत्यु के बिना जन्म का होना असंभव है, वैसे ही सभी विपरीत आपस में जुड़े हैं।
तो यह कोई बुद्धिमान न सोचें कि जो मूढ़ हैं, उनसे वे अलग हैं। कोई सुंदर व्यक्ति यह न सोचे कि कोई कुरूप है, तो उससे वह अलग है। और कोई स्वस्थ आदमी यह न सोचे कि बीमार से वह भिन्न है। हम सब जुड़े हैं। हम सब गहरे में जुड़े हैं।

अगर यह जोड़ ख्याल में आ जाए, तो बुद्धिमान का अहंकार गिर जाएगा। क्योंकि बुद्धिमान अहंकार ही क्या कर रहा है? वह यही अहंकार कर रहा है कि मैं मूढ़ नहीं हूं। लेकिन मूढ़ के बिना वह हो नहीं सकता। वह मूढ़ के आधार पर ही खड़ा है। अहंकार का भी क्या बल है? अहंकार से ज्यादा नपुंसक कोई चीज है जगत में? बुद्धिमान का अहंकार यही है कि मैं मूढ़ नहीं हूं। लेकिन मूढ़ के बल पर ही वह खड़ा है।
नेता सोचता है कि मैं अनुयायी नहीं हूं। लेकिन अनुयायियों के बिना क्या नेता हो सकता है? अनुयायियों की वजह से ही वह नेता है। महान पुरुष सोचते हैं कि वे महान हैं, तो वे महान नहीं हैं। क्योंकि वे इस बात को भूल गए हैं कि वे क्षुद्र लोगों के कारण ही महान दिखाई पड़ रहे हैं। महान व्यक्ति को यह बात भी ख्याल में आ ही जाएगी कि मैं क्षुद्र लोगों के कारण ही महान दिखाई पड़ रहा हूं। तब तो महानता भी क्षुद्र हो गई। क्योंकि जिस महानता को क्षुद्रता की दीवाल का सहारा चाहिए हो, उस महानता में महानता भी क्या रही! और बात दोनों तरफ एक सी है।
अगर बुद्धिमान को यह दिखाई पड़ जाए कि मूढ़ता भी मेरे ही सिक्के का दूसरा पहलू है, तो मूढ़ के प्रति उसका जो अपमान है, जो अवमानना है, वह खो जाएगी। मूढ़ के प्रति एक बंधु-भाव पैदा हो जाएगा। अगर साधु को यह दिखाई पड़ जाए कि असाधु मेरे ही सिक्के का दूसरा अंग है, तो साधु के मन में जो असाधु की निंदा है, वह समाप्त हो जाएगी। असाधु के प्रति भी गहरी मैत्री और प्रेम का उदय हो जाएगा। और जब तक किसी साधु में ऐसी करुणा पैदा न हो, तब तक जानना कि उसे अभी अद्वैत का कुछ भी पता नहीं है।
अद्वैत का पता होते ही, वह जो विपरीत है, वह भी मेरा हिस्सा हो जाता है। तो फिर पुण्यात्मा जानता है कि मेरा दूसरा हिस्सा पापी है। और पुण्यात्मा यह भी जानता है कि जब तक पृथ्वी पर पाप हो रहा है, तब तक मैं भी भागीदार हूं।
जरा जटिल है यह बात, समझ लेनी पड़ेगी।
जब तक पृथ्वी पर पाप हो रहा है, तब तक मैं भी भागीदार हूं, चाहे मैं पाप करूं या चाहे मैं पाप न करूं। अगर मैं पाप करूं, तब तो मैं भागीदार हूं ही, अगर मैं पाप न भी करूं तो भी चूंकि मैं इस जगत-चेतना का एक हिस्सा हूं, और यह चेतना पाप करती है, तो मैं भागीदार हूं।
बुद्ध ने कहीं कहा है कि जब तक एक भी व्यक्ति बंधन में है अज्ञान के,
तब तक कोई भी मुक्त कैसे हो सकेगा? एक भी लहर अगर सागर की गंदी है, तो कोई दूसरी लहर पवित्र कैसे हो सकेगी? यह तो तभी हो सकता था, जब लहरें अलग-अलग होतीं, तब एक लहर पवित्र हो जाती और एक अपवित्र रह जाती। लेकिन अगर लहरें एक ही सागर का हिस्सा हैं, तो पवित्रता-अपवित्रता का द्वंद्व हमें छोड़ देना पड़ेगा, पुण्य और पाप का भेद हमें छोड़ देना पड़ेगा। और हमें यह जानना पड़ेगा कि ये दोनों ही एक साथ हैं। और जो व्यक्ति ऐसा समझ लेता है, देख लेता है कि दोनों एक साथ हैं, वह दोनों के पार चला जाता है। और वह जो दोनों के पार चला जाता है, वही संत है।
इसे हम थोड़ा ख्याल में लें। साधु के विपरीत असाधु है, असाधु के विपरीत साधु है। संत के विपरीत कोई भी नहीं है! इसलिए हम बुद्धत्व को ज्ञान से अलग रखते हैं। ज्ञानी के विपरीत अज्ञानी है, लेकिन अज्ञान और ज्ञान को जो एक ही जैसा समझ लेता है और अज्ञान और ज्ञान को देख लेता है कि दोनों जुड़े हैं, उसको हम बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, प्रज्ञा को उपलब्ध हुआ, ऐसा कहते हैं। वास्तविक ज्ञान अज्ञान के विपरीत नहीं है, ज्ञान और अज्ञान दोनों से छुटकारा है।
यह जरा कठिन है। यह भी हमारी समझ में आता है कि अज्ञान से छुटकारा कर लें और ज्ञानी हो जाएं। यह भी हमारी समझ में आता है कि पाप को छोड़ दें और पुण्यात्मा हो जाएं। यह भी हमारी समझ में आता है कि दुश्चरित्रता को छोड़ दें, सच्चरित्र हो जाएं। लेकिन यह समझ द्वैत पर खड़ी है। गहरे धर्म से इसका कोई भी संबंध नहीं है। यह समझ बचकानी है! यह समझ नासमझी से भरी है। यह ऊपर-ऊपर समझ मालूम पड़ती है, भीतर-भीतर बिल्कुल नासमझी है। क्योंकि ये दोनों चीजें विपरीत दिखाई पड़ती हैं, लेकिन भीतर जुड़ी हैं।

इसका तो यह भी अर्थ हुआ... गुरजिएफ कहता था कि तुम दुनिया में जितना चरित्र बढ़ाओगे, उतना ही तुम दुश्चरित्रता भी बढ़ाओगे। समझना अड़चन की बात मालूम पड़ती है। और गुरजिएफ ठीक कहता है। क्योंकि दोनों का अनुपात सदा समान होगा। इसलिए दुनिया में जितनी नीति बढ़ती है, उतनी अनीति भी बढ़ती है। आमतौर से लोग सोचते हैं कि एक युग था जब नीति ही नीति थी। गलत है, ऐसा कोई युग नहीं हो सकता। ऐसा कोई युग नहीं हो सकता, जब नीति ही नीति रही हो। इसका एक ही मतलब हो सकता है कि नीति इतनी कम रही होगी कि अनीति भी बहुत कम रही होगी। इसलिए हमें पता नहीं चलता कि अनीति थी। आज दोनों चीजें बहुत बढ़ गई हैं। आज नीति भी है तो शिखर पर है, और अनीति भी है तो भी शिखर पर है। इसलिए दोनों चीजें बहुत साफ दिखाई पड़ती हैं। आज फासला स्पष्ट दिखाई पड़ता है, क्योंकि दोनों अति पर पहुंच गई हैं। दोनों एक साथ घटती और बढ़ती हैं। इसे हम ऐसा समझें कि अगर आप चाहते हों कि पहाड़ छोटा रहे, तो छोटी खाई बनेगी पास। अगर आप चाहते हैं कि पहाड़ बहुत बड़ा हो, आकाश को छुए, तो उतनी ही बड़ी खाई भी पास में बन जाएगी। आप सोचते हों कि पहाड़ तो बहुत बड़ा हो और खाई बिल्कुल न हो, तो आप नासमझ हैं, यह नहीं हो सकता।
नीत्शे ने कहा है कि जिस वृक्ष को आकाश को छूने की आकांक्षा हो, उसको अपनी जड़ें पाताल तक भेजनी पड़ती हैं।
जितना वृक्ष ऊपर उठता है, उतनी ही जड़ें नीचे जाती हैं। आप यह सोचते हों कि वृक्ष तो आकाश छू ले और जड़ें बिल्कुल नीचे न जाएं, तो आप पागल हैं।
कोई मौसमी पौधा आकाश नहीं छू सकता, उसकी जड़ें ही इस योग्य नहीं होतीं। जितना ऊपर उठना हो, उतना ही नीचे भी जाना पड़ता है। यह है जीवन का अनुपात। तो अगर आप चाहते हैं कि समाज बहुत चरित्रवान हो जाए, तो आपको तैयार होना चाहिए कि समाज में उसी हैसियत के चरित्रहीन लोग भी पैदा होंगे। अगर आप चाहते हैं कि समाज बहुत बुद्धिमान हो जाए, तो ठीक उसी अनुपात के गैर-बुद्धिमान भी पैदा होंगे। अगर आपको बड़े बुद्धिमान चाहिए, तो बड़े मूढ़ स्वीकार करने होंगे। उनसे बचने का कोई उपाय नहीं है। जीवन का गणित ऐसा है, इसमें कुछ भी किया नहीं जा सकता। अगर आप चाहते हैं बहुत सुंदर लोग हों, तो आपको बहुत कुरूप लोगों को बर्दाश्त करना होगा। क्योंकि सुंदर हो ही सकते हैं कुरूप के विपरीत। ज्ञानी हो ही सकते हैं अज्ञानी के विपरीत। कोई दूसरा उपाय नहीं।
और अगर आप चाहते हैं कि दुनिया में पाप बिल्कुल न हो, तो आपको पुण्य को
भी छोड़ देने के लिए तैयार होना होगा। फिर पाप नहीं हो सकते। आप चाहते हों दुनिया में कुरूपता न हो, तो आपको सौंदर्य के सब मापदंड तोड़ डालने चाहिए। आपको सौंदर्य की बात ही छोड़ देनी चाहिए। फिर कोई भी कुरूप न होगा। क्योंकि बिना सौंदर्य के मापदंड के कुरूप को कैसे खोजिएगा? आप चाहते हैं कि दुनिया में मूढ़ता न हो, तो आपको बुद्धिमानों को समाप्त कर देना होगा। चाहते हों कि असाधु न हों, तो साधुओं को नमस्कार कर लेनी होगी। ये दोनों साथ-साथ होंगे। सभी विपरीत साथ-साथ होते हैं।
पर एक उपाय है--विपरीत में चुनो ही मत।
यही यह सूत्र कह रहा है--विपरीत में चुनो ही मत। जान लो कि दोनों एक ही हैं। सौंदर्य और कुरूप दोनों एक ही मापदंड के कारण हैं। बुद्धिमान और बुद्धू दोनों एक ही मापदंड के कारण हैं। दोनों के पार उठ जाओ। दोनों के जो पार उठ गया, उसे ही हम संत कहते हैं, परमहंस कहते हैं। ये दोनों के जो पार उठ गया, उसको ही हम परम-ज्ञानी कहते हैं। क्योंकि वही जान पाएगा कि सत्य क्या है। जो दो में कहीं भी उलझा है, इधर या उधर, वह सत्य को कभी भी न जान पाएगा। क्योंकि सत्य दोनों को समाहित करता है।
और जो चुनाव करता है, वह एक को चुनता है, दूसरे को काटता है। तो वह दूसरा कहां जाएगा? वह दूसरा भी है। आप कहते हैं, परमात्मा प्रकाश है, तो फिर अंधेरे का क्या होगा? अच्छा लगता है आपको प्रकाश, इसलिए आप परमात्मा को प्रकाश कह लेते हैं। यह आपकी पसंदगी की ही खबर देता है, लेकिन फिर अंधेरे का क्या होगा? अंधेरा भी है। और अगर परमात्मा है सिर्फ प्रकाश, तो इसका अर्थ हुआ कि जगत में फिर दो परमात्मा होंगे, एक अंधेरे का भी परमात्मा होगा। और तब बड़ी झंझट होगी। और ये दो परमात्मा लड़ते रहें, कोई भी

जीत नहीं सकता। यह द्वंद्व अंतहीन और व्यर्थ होगा। और यह द्वंद्व झूठा होगा। क्योंकि प्रकाश के होने के लिए अंधेरे की जरूरत पड़ती है और अंधेरे के होने के लिए प्रकाश की जरूरत पड़ती है। तो यह द्वंद्व झूठा होगा। यह लड़ाई, माक-फाइट होगी।
जैसे पहलवान अक्सर लड़ते हैं। वे सब भीतर मिले होते हैं, सिर्फ दिखावा होता है और काफी शोरगुल मचता है। बड़ी कुश्ती होती है, देखने वाले बड़े प्रभावित होते हैं, बड़े आंदोलित होते हैं। किंतु सब सौदा होता है, सब भीतर से तय होता है। और कौन जीतेगा यह भी तय होता है। कौन हारेगा इस बार, यह भी तय होता है। एक बार एक जीत जाता है, दूसरी कुश्ती में फिर दूसरा जीत जाता है, तीसरे नगर की कुश्ती में फिर दूसरा जीत जाता है। और यह सब साझा है। ठीक अंधेरे और प्रकाश के बीच ऐसी ही साझेदारी है। उनके बीच कोई लड़ाई नहीं है। और लड़ाई जिनको दिखती है, वे नाहक ही उत्तेजित हो रहे हैं, वे नाहक ही परेशान हो रहे हैं। लेकिन दोनों के पार उठा जा सकता है। दोनों के पार में दोनों ही समाविष्ट हो जाते हैं। परमात्मा दोनों है और दोनों नहीं है। न तो परमात्मा प्रकाश है, और न परमात्मा अंधकार है। परमात्मा दोनों है। और जब दोनों है, तो फिर हम उसे प्रकाश भी नहीं कह सकते, अंधकार भी नहीं कह सकते। वह द्वंद्वातीत है, वह दोनों के पार है, वह बियांड है।
यह सूत्र कहता है, "यह न सोचो कि तुम बुरे मनुष्य से या मूर्ख मनुष्य
से दूर रह सकते हो, वे तो तुम्हारे ही रूप हैं। यद्यपि तुम्हारे मित्र अथवा गुरुदेव से कुछ कम ही वे तुम्हारे रूप हों, फिर भी वे हैं तुम्हारे ही रूप।"
भला तुम सोचो कि तुम्हारे जो निकटतम हैं, उतने निकट वे नहीं हैं। लेकिन कितने ही दूर हों, सब दूरी निकटता का ही रूप है। इससे उलटा भी सच है। चाहे तुम कितना ही किसी के पास रहो, सब पास होना भी दूरी का ही एक नाम है। कितने ही पास रहो। किसी के कितने ही निकट आ जाओ, दूरी तो बनी ही रहती है।
छाती से छाती मिला कर बैठ जाओ, तो भी दूरी बनी रहती है। वह जो निकटतम भी है, वह भी दूरी का एक रूप है। थोड़ी होगी दूरी, लेकिन थोड़ी और ज्यादा दूरी में क्या फर्क है? दूरी तो दूरी है, क्या फर्क है? एक कोस का फासला है मेरे और तुम्हारे बीच कि एक इंच का फासला है--फासला तो फासला है।
जो निकट है, वह भी दूर है। जो दूर है, वह भी निकट है। क्योंकि दूरी और निकटता एक ही मापदंड पर तौले जाते हैं--फासला। दोनों ही फासले के नाम हैं। दूरी और निकटता दोनों ही दूरी के नाम हैं। मित्र पास होगा, शत्रु दूर होगा। जो तुम्हें प्रिय है, पास लगता होगा। जो तुम्हें अप्रिय है, वह दूर लगता होगा। लेकिन थोड़ा गहरे खोजेंगे, तो पाएंगे ये सब संबंध हैं। और सभी संबंध दूरियों के बीच होते हैं। जिससे तुम्हारी निकटता इतनी ज्यादा हो गई कि फासला न रहा, उससे तुम्हारा कोई संबंध भी न रह जाएगा। संबंध के लिए दूरी चाहिए। तुम कहते हो यह मेरी पत्नी है, यह मेरी प्रेयसी है, यह मेरा बेटा है, यह मेरा पिता है, ये सब दूरी के नाम हैं। संबंध तो दूरी में ही तय होता है। अगर नदी के दोनों किनारे इतने पास आ जाएं, इतने पास कि फासला ही न रहे,
तो फिर बीच में सेतु बनाने की कोई जरूरत न रहेगी। और अगर नदी के किनारे इतने पास आ जाएं कि उनमें कोई फासला न रहे, तो नदी खो जाएगी और वे किनारे न रह जाएंगे, वह एक ही किनारा हो जाएगा।
हमारे सब संबंध दूरियों के नाम हैं, या दूरियों को छिपाने की तरकीबें हैं। जब हम संबंध के नाम रख लेते हैं, तो ऐसी भूल हो जाती है कि दूरी समाप्त हो गई। कहते हैं किसी को कि मेरी पत्नी है, तो ऐसा लगता है कि दूरी मिट गई। लेकिन पति और पत्नी उतनी ही दूरी पर हैं, जितनी दूरी पर कोई हो सकता है। फासला मिटता ही नहीं। फासला इस संसार में मिट ही नहीं सकता। इस संसार में तो फासले रहेंगे ही। हां, इस संसार के ऊपर जो अपनी चेतना को उठा लेता है, वह अचानक पाता है कि फासले खो गए। तब नदी किनारा हो जाती है, किनारा नदी हो जाता है। तब कोई अंतर नहीं है। तब नाव नदी हो जाती है, नदी नाव हो जाती है। तब फासले बिल्कुल गिर जाते हैं, क्योंकि विपरीत के बीच में भी एक का अनुभव हो जाता है।

वह जो एक की प्रतीति है विपरीत के बीच, वह ख्याल में आ सके, इसलिए ये नियम और ये सूत्र हैं।
"स्मरण रहे कि सारे संसार का पाप व उसकी लज्जा, तुम्हारी अपनी लज्जा
है और तुम्हारा अपना पाप है।"
इस जगत में अगर किसी को साधु होने का गौरव है, तो समझना कि वह आदमी अभी
तक साधुता को समझ नहीं पाया है। और अगर कोई कहता हो कि मैं हूं पुण्यात्मा और तुम हो पापी, तो समझना कि यह आदमी बड़ी भ्रांति और बड़े अज्ञान में पड़ा है। जिसको भी प्रतीति होगी थोड़ी-सी भी जीवन के सत्य की, उसे तत्क्षण दिखाई पड़ेगा कि जहां भी कहीं भी कुछ हो रहा हो, मैं भी उसमें भागीदार हूं। अगर वियतनाम में युद्ध होता हो, वहां आदमी कटते हों, अगर बंगला देश में युद्ध होता हो, वहां आदमी कटते हों, या कहीं भुखमरी हो, या कहीं हत्या हो, हिंसा हो, लूट हो, तो मैं भी भागीदार हूं।
निश्चित ही सीधे-सीधे मैंने कुछ भी नहीं किया है--न तो मैं वियतनाम में युद्ध करने गया हूं, न बंगला देश में किसी की हत्या की है--तो सीधा लगता है कि मेरी क्या जिम्मेवारी होगी? मेरा क्या संबंध होगा? लेकिन इस जगत में जो भी हो रहा है इस क्षण, मैं इस जगत का हिस्सा हूं। और इस जगत में जो भी कहीं प्रकट हो रहा है, उसमें मेरा हाथ है। क्योंकि मैं इस जगत में हूं, मेरा होना भागीदारी है। होने मात्र से मैं भागीदार हो गया हूं। और जरूर जाने-अनजाने मैं ऐसे काम कर रहा होऊंगा, जो बहुत फासले पर होंगे, लेकिन जिनका परिणाम वहां प्रकट होता होगा।
अगर मैं कहता हूं कि मैं हिंदू हूं, मुसलमान नहीं हूं, तो मैं दुनिया में कलह पैदा करवा रहा हूं। भला मैं हिंदू-मुस्लिम दंगे में भाग न लूं। और जब हिंदू-मुस्लिम दंगा हो, तो यह भी हो सकता है कि मैं समझौता करवाने जाऊं। और अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम हैं, यह भी गीत गाऊं। और लोगों में भाईचारा पैदा करवाने की कोशिश करूं। लेकिन मैं कहता हूं कि मैं हिंदू हूं, दूसरा मुसलमान है, हम दोनों अलग हैं। दंगा-फसाद में मैं भागीदार नहीं होऊंगा, लेकिन दंगा-फसाद में मेरा हाथ है। नहीं मैं लड़ने जाता हूं वियतनाम में या चीन में या बंगला देश में या कहीं और, लेकिन मैं मानता हूं कि मैं भारतीय हूं, तो मैं दुनिया को बांटता हूं, मैं जमीन को टुकड़ों में देखता हूं। और जब मैं जमीन को टुकड़ों में देखता हूं, तो युद्ध में भागीदार हो जाता हूं। दुनिया की राजनीति में जो भी कुछ हो रहा हो, या तो परोक्ष में मेरा हाथ होगा या अपरोक्ष में मेरा हाथ होगा। इधर बचने का कोई उपाय नहीं है। सार्त्र ने कहीं कहा है कि आदमी बच नहीं सकता, वह कुछ भी करे।
यह हो सकता है कि आपके गांव में दो लोग चुनाव के लिए खड़े हों, और आप दोनों में से किसी को भी वोट न दें। पर आप यह मत सोचना कि आप बच गए, क्योंकि आपका वोट का न देना भी उतना ही निर्धारक है, जितना आपका वोट का देना होता है। यह हो सकता है कि आपके वोट के न देने से एक आदमी जीत गया, आप वोट देते तो दूसरा आदमी जीतता। तो आप दें तो कोई जीतता है, आप न दें तो कोई जीतता है। आप बच नहीं सकते, आप भाग नहीं सकते। आप यह नहीं कह सकते कि मैं नहीं दूंगा वोट तो मैं भागीदार नहीं हूं, क्योंकि आपके न देने से किसी की जीत हो सकती है। तो फिर आप भागीदार हो गए। जरा दूरी से हुए, लेकिन भागीदार हो गए। अगर आप चुप हैं, कुछ भी नहीं बोलते, तो भी भागीदार हो सकते हैं। आपकी चुप्पी समर्थन बन सकती है। जीवित होते हुए इस संसार से बचने का कोई उपाय नहीं है। जो व्यक्ति इस भांति अनुभव कर पाता है कि संसार में मैं जुड़ा हूं, इस संसार का सब पाप, सब पुण्य मेरा भी है, वही व्यक्ति वस्तुतः संतत्व की तरफ विकसित हो रहा है। तब न तो उसके मन में किसी की निंदा है, क्योंकि किसी की भी निंदा अपनी ही निंदा है। और तब न उसके मन में किसी की प्रशंसा है, क्योंकि किसी की प्रशंसा अपनी ही प्रशंसा है। तब निंदा और प्रशंसा के पार, जीवन को द्वंद्व से अलग हट कर देखने की क्षमता पैदा होती है। तब कोई व्यक्ति साक्षीभाव को उपलब्ध हो पाता है।
जब मैं यह अनुभव कर लेता हूं कि मेरे कर्तृत्व के जगत में मेरे मुक्त होने का कोई उपाय ही नहीं है, तभी कोई व्यक्ति कर्तृत्व से मुक्त होता है और साक्षी बनता है। साक्षी का मतलब यह है कि मैं सिर्फ देखने वाला हूं और

जो कुछ भी हो रहा है, उसमें मैं भी भागीदार हूं, क्योंकि मैं हूं। इसलिए न तो मैं कहूंगा कि तुम पापी हो, क्योंकि मैं भी हूं। और न मैं कहूंगा कि तुम पुण्यात्मा हो, क्योंकि ये फासले ऊपरी हैं, भ्रांत हैं, खतरनाक हैं। तब तो मैं इतना ही कहूंगा कि पाप हो कि पुण्य, अच्छाई हो कि बुराई, युद्ध हो कि शांति, मैं दोनों के बीच साक्षी हूं, मैं दोनों का द्रष्टा हूं।
और जो व्यक्ति साक्षी-भाव को जन्मा लेता है, वह व्यक्ति अद्वैत में प्रवेश कर जाता है।
"तुम संसार के एक अंग हो और तुम्हारे कर्मफल उस महान कर्मफल से अकाट्य रूप से संबद्ध हैं। और ज्ञान प्राप्त करने के पहले तुम्हें सभी स्थानों में से हो कर निकलना है, अपवित्र और पवित्र स्थानों में से एक ही समान।" इस जगत में चाहे बुरा हो, चाहे भला, दोनों ही साधक के लिए शिक्षण हैं। चाहे पाप हो, चाहे पुण्य, दोनों से हो कर गुजरना है और अपने को निखारना है। पाप का भी उपयोग कर लेना है और पुण्य का भी, पार जाने के लिए। पाप को भी सीढ़ी बना लेना है और पुण्य को भी, पार जाने के लिए।
अगर तुम्हारे भीतर कोई बुराई हो तो उसका भी सृजनात्मक उपयोग है। उससे
भी कुछ सीखा जा सकता है। और उसकी पीड़ा और उसके दुख को भोग कर भी तुम्हारे भीतर निखार आएगा--तुम जगोगे। जलोगे, पीड़ा होगी, कष्ट होगा, लेकिन वह कष्ट भी तुम्हें जगने में सहयोगी होगा। वह पीड़ा भी तुम्हें वापस उसी भूल को करने से रोकेगी। इस जगत में सभी कुछ उपयोग किया जा सकता है। और ऐसे उपयोग की समझ का नाम ही साधना है।
साधना का अर्थ नहीं है कि बुराई को छोड़ो, भलाई को पकड़ो। साधना का अर्थ है, बुराई में से भी सत्य की तरफ उठो, भलाई में से भी सत्य की तरफ उठो। बुराई और भलाई में मत चुनो, दोनों से अनुभव का निचोड़ ले लो और दोनों से प्रौढ़ बनो। दोनों से तुम्हारी समझ गहरी हो, तुम्हारा हृदय विस्तीर्ण हो। दोनों के बीच से तुम अपनी नाव को, अपनी नदी को बहाओ कि वह सागर तक पहुंच सके। पाप और पुण्य तुम्हारे किनारे बन जाएं।
तुम चुनना मत। अगर तुम पाप चुन लोगे तो भी किनारे को चुन लोगे और नदी में न बह पाओगे। और अगर पुण्य चुन लोगे तो भी किनारे को चुन लोगे और नदी में न बह पाओगे। और किनारे चाहे पाप के हों, चाहे पुण्य के, अपनी जगह ही बने रहते हैं, सागर तक नहीं पहुंचते। सागर तक तो नदी पहुंचती है, जो दोनों के बीच बहती है, दोनों का उपयोग कर लेती है। अगर तुम्हारे जीवन में कोई बुराई हो तो उसका भी उपयोग कर लेना। उससे भयभीत मत होना, उसका भी उपयोग कर लेना। मेरे पास एक मित्र आए। वह कहने लगे कि मुझ से तो क्या होगा ध्यान! क्योंकि मैं तो हूं शराबी, और शराब की लत तो ऐसी पकड़ गई कि इस जन्म में छूटनी मुश्किल है। अब तो अगले जन्म तक राह देखनी पड़ेगी। छोड़ने के बहुत उपाय कर चुका, सब व्यर्थ जाते हैं। और अब तो उपाय भी छोड़ दिए, क्योंकि धीरे- धीरे संकल्प भी खो गया। और विफलता इतनी हाथ लगी कि अब तो भरोसा भी नहीं है कि कोई निर्णय लूं तो पूरा हो सकता है। इसलिए आप मुझसे यह मत कहना कि शराब छोड़ दो। अगर शराब पीते हुए ध्यान का कोई उपाय हो, तो आप मुझे कहें।
मैंने उन्हें कहा कि तुम शराब भी ध्यान के लिए ही पी रहे हो। वे सुन कर बहुत चौंके। उन्होंने कहा कि लोग ठीक ही कहते हैं कि आप खतरनाक आदमी हैं, आपके पास नहीं आना था! मैं तो सोच कर आया था कि आप कोई तरकीब बताएंगे जरूर, हिम्मत बढ़ाएंगे, और शराब छुड़वाएंगे। आप कहते हैं कि शराब भी ध्यान है! मैंने उनसे कहा, समझने की कोशिश करो। और अगर तुम्हें समझ में आ जाए कि शराब भी ध्यान है, तो शराब छूट भी सकती है! आखिर शराब तुम पीते किसलिए हो? शराब को भूलो, तुम पीते किसलिए हो?
कहा, कि अपने को भूलने को पीता हूं। मैंने कहा कि भूलने की आकांक्षा, ध्यान की आकांक्षा है। खोने की, डूबने की आकांक्षा, ध्यान की आकांक्षा है। तुम गलती से शराब पी रहे हो। तुम ध्यान पीना चाहते हो और शराब पी रहे हो! तो मैं तुमसे शराब छोड़ने को न कहूंगा। मैं तो तुमसे कहूंगा कि तुम शराब से सीखो, भूलने की कला, डूबने की कला। और अगर तुम्हें कला आ जाए डूबने की, भूलने की, तो तुम्हें शराब का सहारा छोड़ने में बहुत दिक्कत न रहेगी। अगर तुम बिना शराब के भी डूब सको और भूल सको, तो शराब छूट ही जाएगी। क्योंकि

मैं तुमसे कहता हूं कि तुम शराबी नहीं हो, तुम ध्यानी हो, लेकिन तुम गलत तरह का ध्यान कर रहे हो।
तो वे मुझसे कहने लगे कि फिर मैं ध्यान में आ जाऊं? लेकिन मैं वहां भी शराब पीता रहूंगा! मैंने कहा कि तुम शराब की बात ही मुझसे मत करो, तुम्हें मैं नई शराब देता हूं, तुम उसे पीयो। और अगर इसका स्वाद तुम्हें जम जाए तो पुराना बे-स्वाद हो जाएगा। और जब तक नए का स्वाद ही पसंद न आए, तो पुराने को छोड़ना समझदारी भी नहीं है, सार भी नहीं है। पहले ठीक से अनुभव तो ले लो नए का। अगर नए में कुछ बल होगा... । और अगर ध्यान में इतना भी बल नहीं है कि शराब को छुड़ा सके, तो ध्यान परमात्मा से मिला सकेगा इस वहम में मत पड़ना। आखिर इतनी छोटी चीज भी न छूटती हो, तो ध्यान ही निर्बल है, शराब सबल है। और हमेशा सबल मित्र चुनने चाहिए, निर्बल मित्र क्या चुनने?
वे आ गए। भरोसा उन्हें नहीं था, लेकिन ध्यान में वे इतने डूब सके, जितना डूबना उन लोगों के लिए मुश्किल है, जिन्होंने कभी शराब नहीं चखी। क्योंकि डूबना तो उन्हें आता ही था। जिन्होंने कभी शराब नहीं चखी, उन्हें डूबना आता ही नहीं।
यह नहीं कह रहा हूं कि आप शराब पीने लगें। जरूरी नहीं है, उसे बिना चखे
भी ध्यान में जाया जा सकता है। लेकिन अगर चखी हो, तो उसका उपयोग कर लेना उचित है।
जीवन में किसी भी अनुभव को व्यर्थ छोड़ना ठीक नहीं है, उससे सार निकाल लेना जरूरी है।
वे ध्यान में गहरे डूबे और शराब खो गई। अब वे मुझे आ कर कहते हैं कि आपने मुझे धोखा दिया। आप पहले ही कह देते ऐसा, तो मैं कभी आता ही नहीं। आपने शराब छोड़ने की बात ही नहीं की। इसी वहम में मैं आ गया कि यह आदमी ठीक है, शराब छुड़वाता नहीं, ध्यान करवाता है, अपना कुछ हर्ज भी नहीं है। लेकिन अब ध्यान में रस ऐसा लग गया है कि... ।
लेकिन आप चकित होंगे, उनकी पत्नी मुझे मिलने आई और उसने कहा कि यह आपने क्या कर दिया है! इससे तो वे शराबी ही ठीक थे। आप समझते हैं जिंदगी कैसी अजीब है! पत्नी कहती है, वे शराबी ही ठीक थे, क्योंकि कम से कम वे मुझसे डरते तो थे। अब वे ध्यानी हो गए, अब वे किसी से डरते भी नहीं हैं। और शराब पीते थे तो मेरा रौब भी था उन पर, वह घर में कंपते हुए घुसते थे और अपराधी भाव अनुभव करते थे और हमेशा क्षमा-याचना करते थे। अब हालत बिल्कुल उलटी हो गई। और चूंकि वे शराब पीते थे, इसलिए हजार बातों में मैं उन्हें झुका लेती थी और मेरा कहना उन्हें मानना पड़ता था। अब मुझे झुकना पड़ता है और उनका कहना मानना पड़ता है।
आप पक्का मत समझना कि पत्नी कहती है कि शराब छोड़ दो, तो सच में चाहती
हो कि छोड़ दो। या बाप बेटे से कहता है कि तू चोरी मत कर, तो सच में चाहता हो कि चोरी मत कर। जिंदगी जटिल है। यह तो आप छोड़ें, तब पता चले। तब आपके आस-पास की सारी व्यवस्था संकट में पड़ जाती है।
इस दुनिया में सारे लोग कहते हैं, अच्छे हो जाओ। लेकिन वह आपको कहते
ही इसलिए हैं कि आप अच्छे हो नहीं पाते। और अच्छे हो जाओ, यह कह कर वे आपकी निंदा कर देते हैं और आपको दबा देते हैं। एक-दूसरे को डामिनेट करने का यह उपाय है। अगर आप सच में अच्छे हो जाओ, तो जो-जो आपको अच्छा बनाना चाहते थे, वे-वे सबसे पहले आपके प्रति असंतुष्ट हो जाएंगे। क्योंकि उनकी मालकियत खो जाएगी और उनके हाथ के नीचे से दबा हुआ आदमी मुक्त हो जाएगा।
तो जितने लोग कहते हैं, अच्छे हो जाओ, यह पावर पालिटिक्स है, इसके भीतर राजनीति है। लेकिन कोई किसी को अच्छा देखना नहीं चाहता। क्योंकि अच्छा देखने से ही खुद नीचा हो जाता है, दूसरा ऊपर हो जाता है। जिंदगी का जाल है। लेकिन एक बात ख्याल रखनी जरूरी है--तुम जो भी हो, जहां भी हो, वहीं से रास्ता परमात्मा तक आता है। ऐसी कोई जगह नहीं है, जहां से उसका रास्ता न जाता हो। इसलिए हर जगह का उपयोग कर लेना और हर अनुभव को उसकी दिशा में मोड़ देना।
बुरे से बुरा अनुभव भी उसकी दिशा में मुड़ जाता है। और पाप से पाप भरा हुआ अनुभव भी, उसकी तरफ मुड़ते ही पुण्य हो जाता है। लेकिन यह सारा का सारा

आसान है करना, अगर एक बात ख्याल में रहे कि इस जगत में हम अलग नहीं हैं, एक ही चैतन्य के हिस्से हैं, एक ही बड़े सागर की लहरें हैं।

साधना-सूत्र
चौथा प्रवचन

उत्तेजना एवं आकांक्षा

5. उत्तेजना की इच्छा को दूर करो।

इंद्रियजन्य अनुभवों से शिक्षा लो और उसका निरीक्षण करो,
क्योंकि आत्म-विद्या का पाठ इसी प्रकार आरंभ किया जा सकता है
और इसी प्रकार तुम इस सीढ़ी की पहली पटिया पर अपना पैर जमा सकते हो।

6. उन्नति की आकांक्षा को दूर करो।

फूल के समान खिलो और विकसित होओ।
फूल को अपने खिलने का भान नहीं रहता,
किंतु वह अपनी आत्मा को वायु के समक्ष
उन्मुक्त करने को उत्सुक रहता है।
तुम भी उसी प्रकार अपनी आत्मा को
शाश्वत के प्रति खोल देने को उत्सुक रहो।
परंतु उन्नति की आकांक्षा नहीं,
शाश्वत ही तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे सौंदर्य को आकृष्ट करे।
क्योंकि शाश्वत के आकर्षण से तो तुम पवित्रता के साथ आगे बढ़ोगे, पनपोगे,
किंतु व्यक्तिगत उन्नति की बलवती कामना
तुमको केवल जड़ व कठोर बना देगी।

आनंद है अति सूक्ष्म। आवाज परमात्मा की बहुत धीमी है। केवल वे ही सुन सकते हैं उस आवाज को, जिन्होंने व्यर्थ की आवाजों और व्यर्थ की आवाजों के आकर्षण से अपने को मुक्त कर लिया हो। हम तो भीड़ में जीते हैं आवाजों की। परमात्मा का स्वाद बहुत सूक्ष्म है। और केवल वे ही उस स्वाद को ले सकेंगे, जिनकी स्वाद लेने की क्षमता उत्तेजना की दौड़ ने नष्ट नहीं कर दी है। लेकिन सारी इंद्रियां उत्तेजना के लिए आतुर हैं। और उत्तेजना का एक नियम है कि जितनी उत्तेजना दी जाए, उतनी ही ज्यादा उत्तेजना की जरूरत होती चली जाती है। जैसे कोई आदमी शराब की एक प्याली पीए, तो आज बेहोश होगा, लेकिन कल दो प्याली की जरूरत पड़ेगी--एक प्याली काफी न रह जाएगी। एक प्याली को पचा लेने की क्षमता पैदा हो जाएगी। एक प्याली से कोई उत्तेजना ही पैदा न होगी। कल दो प्याली की जरूरत पड़ेगी, लेकिन परसों तक दो प्याली भी व्यर्थ हो जाएंगी। उतनी उत्तेजना भी शरीर समा लेगा, तब तीन प्याली की जरूरत पड़ेगी।
और ऐसी घड़ी भी आ सकती है कि शराब पानी जैसी हो जाए, उसमें कोई उत्तेजना
न रह जाए। तब और मादक जहर काम में लाने पड़ेंगे।
आसाम में अब भी तांत्रिकों का एक छोटा समुदाय सांप को पाल कर रखता है। क्योंकि और सभी तरह के जहर नशा नहीं लाते, सिर्फ सांप से जीभ पर कटाएं, तो थोड़ा-बहुत नशा आता है।
उत्तेजना की दौड़ में हम धीरे-धीरे जड़ होते चले जाते हैं। जितनी तेज उत्तेजना हम लेंगे, उतनी ही हमारी इंद्रियों की क्षमता अनुभव करने की कम हो जाती है। फिर और ज्यादा चाहिए, फिर और ज्यादा चाहिए। और इस दौड़ का कोई अंत नहीं है। आखिर में यह दौड़ इंद्रियों को बिल्कुल पत्थर बना देती है। अगर आप भोजन में बहुत तेज उत्तेजनाएं पसंद करते हैं, तो बहुत शीघ्र ही आपके स्वाद की क्षमता मर जाएगी। कितनी ही मिर्च आप लें, बेस्वाद मालूम पड़ेगा। मिर्च का रस क्या है? तेज उत्तेजना है स्वाद को जगाने के लिए। लेकिन जिसे हम जगाने के लिए लेते हैं, वही मारने का कारण हो जाता है। अगर आप बिना मिर्च के भोजन लें, तो आपको लगेगा कि आप मिट्टी खा रहे हैं। भोजन का जो स्वाद है, वह आपको आता ही नहीं अब। आपकी स्वाद की क्षमता कम हो गई। यह

उलटा लगेगा। स्वाद की दौड़ में स्वाद की क्षमता कम हो जाती है। जो स्वाद बुद्ध और महावीर को भोजन से मिला होगा, वह आपको नहीं मिल सकता।
इसलिए मैं तो निरंतर कहता हूं कि जिनको हम आप त्यागी कहते हैं, उन जैसा परम-भोगी खोजना मुश्किल है। क्योंकि उनका जो भी अनुभव है, शुद्धतम है। अगर बुद्ध पानी भी पीएंगे, तो उसमें भी जो स्वाद ले पाएंगे, वह आप शराब में भी न ले पाएंगे। क्योंकि जितनी उत्तेजना कम दी गई है इंद्रियों को, उतनी ही इंद्रियां ज्यादा सक्षम रहती हैं और सूक्ष्म को पकड़ने में कुशल होती हैं।
अगर आप जोर से बैंड-बाजे के सुनने के आदी रहे हों, तो फिर पक्षियों की धीमी सी आवाज आपको सुनाई नहीं पड़ेगी। लेकिन उनका भी गीत है। फिर झींगुर की सन्नाटे में आने वाली आवाज का आपको पता भी नहीं चलेगा, उसका भी गीत है। फिर हवाएं जो वृक्षों से गुजरती हैं, उनकी जो सरसराहट है, उसका भी संगीत है, लेकिन वह आपको सुनाई नहीं पड़ेगा। लेकिन ये भी उत्तेजनाएं काफी हैं। हृदय के भीतर जो गीत की गूंज उठती है, वह तो आपको पता ही नहीं चलेगी। और आपके अंतस-आलोक में अंतस-आकाश में जो नाद प्रतिध्वनित होता है ओंकार का, वह तो आपको कभी पता न चलेगा। और जिसने अपने हृदय के नाद को नहीं सुना, उसने कुछ भी नहीं सुना। वह वंचित ही रह गया संगीत के परम माधुर्य से।
तो यह बात पहले ख्याल में ले लें, फिर हम सूत्र को समझने चलें, कि जितनी उत्तेजना की दौड़ होगी, उतनी ही ज्यादा आपके अनुभव की क्षमता कम हो जाएगी। इसलिए आज दुनिया में उत्तेजना बहुत है, और अनुभव बहुत कम है। इतने सुख के साधन जमीन पर कभी भी नहीं थे। पुराणों में स्वर्ग की जो चर्चा है, उसमें भी इतने साधनों का वर्णन नहीं है। कल्पना में थीं ये बातें, वे सब पूरी हो गईं। विज्ञान ने कल्पना को साकार कर दिया। आपके पास इतने साधन हैं अनुभव के, लेकिन आदमी जो अनुभव करने वाला है, वह बिल्कुल जड़ हो गया है। अमरीका से एक युवती अभी कुछ दिन पहले मेरे पास आई। उसने मुझे कहा कि आपकी पुस्तक पढ़ी, फ्राम सेक्स टु सुपर कांशसनेस, संभोग से समाधि की ओर। उसको पढ़ कर ही मैं आपके पास आई हूं। मुझे न ध्यान में कोई उत्सुकता है, न मुझे परमात्मा की कोई तलाश है, लेकिन मुझे सेक्स में, काम-संबंध में, किसी तरह का भी रस अनुभव नहीं होता, मैं उससे ही परेशान हूं। किसी तरह का रस मुझे अनुभव नहीं होता, मुझे कोई उत्तेजना ही प्रतीत नहीं होती। मैं चिकित्सा करा चुकी हूं डाक्टरों के पास, मनोविश्लेषकों के पास मानसिक विश्लेषण करा चुकी हूं, हजारों रुपए व्यर्थ खराब हो गए हैं, लेकिन मुझे सेक्स में किसी तरह का रस नहीं है। सोचा आपने यह किताब लिखी है, तो आपके पास आई। तो मैंने उससे पूछा कि सेक्स के संबंध में तूने प्रयोग क्या-क्या किए हैं?
तो आपने अभी सुना भी न होगा, लेकिन अमरीका में बहुत प्रचलित हो गया है। एक विद्युत जननेंद्रिय उन्होंने बना ली है, इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर। पुरुष की जननेंद्रिय जैसी विद्युत की जननेंद्रिय बना ली है, जो बैटरी से चलती है या बिजली से चलती है। तो वह लड़की इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर का प्रयोग कर रही थी। तो इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर का जब आप प्रयोग करेंगे, तो फिर आपकी काम-इंद्रिय बिल्कुल जड़ हो जाएगी। क्योंकि किसी पुरुष की जननेंद्रिय में विद्युत जैसी जननेंद्रिय की शक्ति नहीं है। तो मैं उसको कहा कि तुझे और कहीं कोई कठिनाई नहीं है, यह इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर ने तुझे नष्ट कर दिया है, तू इसे छोड़े दे। कोई भी इंद्रिय हो, अगर आप उसके साथ उत्तेजना की दौड़ में पड़ेंगे, तो निश्चित ही इलेक्ट्रिक वाइब्रेटर बहुत उत्तेजक है। लेकिन तब जो नैसर्गिक क्षमता है इंद्रिय की, वह खो जाएगी।
जान कर आप हैरान होंगे कि तंत्र ने तो जननेंद्रिय के साथ भी सूक्ष्म अनुभव के प्रयोग किए हैं। तो दूसरे के शरीर से भी जननेंद्रिय का जो घर्षण है, वह भी उत्तेजना है, उसकी भी जरूरत नहीं है। आपके काम-केंद्र पर जो कामवासना उठती है, उसका ही अनुभव, बिना दूसरे की मौजूदगी के, बिना दूसरे की सहायता के। वह और भी सूक्ष्म है, उसका रस और भी गहरा है। लेकिन उत्तेजना जब तक जननेंद्रिय के पास पहुंच जाती है, तब भी वह काफी उत्तेजना हो गई। वह भी आप अपने ही शरीर के भीतर घर्षण की स्थिति में पहुंच गए। दूसरा मौजूद नहीं

है, लेकिन आपके भीतर ही घर्षण शुरू हो गया। वह भी काफी स्थूल हो गई बात! तो तंत्र ने फिर यह भी प्रयोग किया है कि सिर्फ भाव में--शरीर में उसकी कोई भी प्रतिध्वनि न हो--सिर्फ भाव में काम का अनुभव हो। वह और भी सूक्ष्म है। लेकिन भाव का भी घर्षण है। तो भाव में भी नहीं! भाव के नीचे भी जो अचेतन का तल है, जहां हमें पता भी नहीं चलता कि क्या हो रहा है, वहां तंत्र उस अनुभव को ले गया है। और तब तंत्र ने जो काम के गहन अनुभव उपलब्ध किए हैं, वे पृथ्वी पर किसी ने भी उपलब्ध नहीं किए हैं। डुबाते जाना है।
अगर आप मंत्र-शास्त्र के संबंध में कुछ जानते हैं, तो आपको पता होगा
कि मंत्र शुरू किया जाता है उच्चार से--ओम्। तो उच्चार करते हैं, लेकिन उच्चारण काफी उत्तेजक हो गया, संघर्ष शुरू हो गया। आपकी वाणी जा कर वायुमंडल से टकरा गई, स्थूल हो गई बात। लेकिन शुरुआत करते हैं, और फिर ओंठ को बंद कर लेते हैं, फिर भीतर ही गुंजार करते हैं--ओम्। बाहर कहीं कोई ध्वनि पैदा नहीं होती, लेकिन भीतर उसका रस लेते हैं। लेकिन भीतर भी तो संघर्ष पैदा होता है। तो फिर धीरे-धीरे भीतर भी ओम के गुंजार को छोड़ देते हैं, अपनी तरफ से नहीं करते। फिर तो इस बात की फिक्र करते हैं कि ओम का गुंजार भीतर होता हो, तो उसको सुनें। हम न करें, क्योंकि हमारे करने से घर्षण हो जाएगा। और भीतर एक ओंकार का गुंजन है। जब हम नहीं करते, तब वह सुनाई पड़ता है। उसको अजपा जाप कहा है। हम जाप नहीं करते और जाप होता है। लेकिन जैसे-जैसे हम भीतर सूक्ष्मता में उतरते हैं, वैसे-वैसे हमें उत्तेजना का मोह छोड़ना पड़ता है। और एक ऐसा स्थल है भीतर, जो उत्तेजना शून्य है, जिसको बुद्ध ने शून्य कहा है। इसीलिए शून्य कहा है, कि वहां कोई उत्तेजना नहीं है। जब तक उसका अनुभव न हो जाए, तब तक आनंद का कोई अनुभव न होगा।
अब आप फर्क को समझ लें।
सुख पैदा होता है उत्तेजना से और आनंद पैदा होता है निरुत्तेजना से।
सुख में घर्षण है; आनंद में शून्यता है, शांति है।
इसलिए सुख की खोज में हर सुख दुख हो जाता है, क्योंकि और बड़ा सुख चाहिए तब। आज एक स्त्री सुंदर मालूम पड़ती है, लेकिन चार दिन साथ रह जाने के बाद सुंदर न रह जाएगी। चार दिन साथ रहने के बाद और सुंदर स्त्री की जरूरत है। क्योंकि आपकी इंद्रियां तब तक उस उत्तेजना के लिए राजी हो गईं, अब और बड़ी उत्तेजना चाहिए।
एक मित्र मेरे पास आए थे। पति और पत्नी में गहरा संघर्ष है। मैंने उन दोनों की बातें सुनीं तो फिर मुझे ऐसा लगा कि उन दोनों के बीच कहीं भी मिलन का कोई सेतु नहीं रहा है। मैंने उनसे पूछा कि तुम ईमानदारी से मुझे कहो कि तुम एक-दूसरे को देखते भी हो? तुम एक-दूसरे की तरफ आंख भी उठाते हो? पति ने मुझे कहा कि आप पूछते हैं तो मैं कहता हूं, कि मैं जब इस अपनी पत्नी को प्रेम भी कर रहा होता हूं, तब भी कल्पना में यह नहीं होती मेरे, कोई फिल्म अभिनेत्री होती है। और जब तक मैं किसी फिल्म अभिनेत्री को न सोच लूं, तब तक मैं इसको प्रेम ही नहीं कर पाता। पति ने सोचा था कि यह उसको ही घट रहा है। पत्नी ने कहा, जब आप बता ही रहे हैं तो मैं भी आपको बता दूं, मैं भी जब आपसे विवाहित न थी तो मेरे जो प्रेमी थे, जब तक मैं उनको न सोच लूं आप में, तब तक मैं आपको प्रेम नहीं कर पाती।
इसका अर्थ आप समझते हैं क्या हुआ?
दोनों में से कोई किसी को प्रेम नहीं कर रहा है। और दो नहीं हैं उस मकान में, चार आदमी हैं। वे दो बीच में खड़े हैं इन दोनों के। और उन दोनों के कारण इनमें कभी कोई मिलना नहीं हो पाएगा। लेकिन उनकी भी मजबूरी है, क्योंकि दोनों की उत्तेजना एक-दूसरे में समाप्त हो गई है।
अनुभव से उत्तेजना समाप्त हो जाती है, इसलिए अनुभव से सुख दुख बन जाते हैं। जो सुख आपको नहीं मिला है अभी तक, वही सुख मालूम पड़ता है। जब मिल जाएगा, वही दुख हो जाएगा। मिला कि दुख हुआ। मिलते ही सुख दुख हो जाते हैं, क्योंकि उत्तेजनाएं और बड़ी उत्तेजनाओं की मांग करती हैं। और आपके अनुभव की इंद्रियां शिथिल होती चली जाती हैं। एक घड़ी ऐसी आती है कि आप कुछ भी अनुभव नहीं कर पाते हैं। क्योंकि आपकी सब इंद्रियों के अनुभव की जो

संवेदनशीलताएं हैं, वे सब जड़ हो गई होती हैं। फिर आप परमात्मा की खोज में लगते हैं!
जब आदमी बूढ़ा हो जाता है... मैं बूढ़ा आदमी उसको कहता हूं--उम्र से नहीं--बूढ़ा आदमी उसको कहता हूं, जिसने उत्तेजनाओं की दौड़ में अपनी सारी इंद्रियों को जड़ कर लिया है। यह जवानी में भी हो सकता है, यह बचपन में भी हो सकता है। आज अमरीका में बचपन में हुआ जा रहा है। अब इतनी देर नहीं लगती, बुढ़ापे तक रुकने की जरूरत नहीं है। अगर आपको इतनी सुविधाएं मिलें उत्तेजना की, तो आप बचपन में ही जड़ हो जाएंगे। और जब सब तरफ से इंद्रियां जड़ हो जाती हैं, तब आदमी खोज करता है--आनंद कहां है? आत्मा कहां है? परमात्मा कहां है? बड़ी मुश्किल है, क्योंकि उनकी खोज के लिए तो इंद्रियों की संवेदना की क्षमता शुद्ध होनी चाहिए।
अगर महावीर और बुद्ध अपने राजमहलों को छोड़ कर भाग जाते हैं, यह घटना बहुत ऊपरी है। भीतरी घटना तो यह है कि वह उत्तेजना की जगह को छोड़ कर हट रहे हैं, ताकि इंद्रियों की शुद्धि और उनकी नैसर्गिकता को पुनः पाया जा सके। जंगल की तरफ भाग रहे हैं, उसका अर्थ है कि निसर्ग की तरफ भाग रहे हैं, प्रकृति की तरफ भाग रहे हैं। ताकि अनुभव करने के जो द्वार हैं हमारे भीतर, उन पर जितना कूड़ा-करकट और कचरा इकट्ठा हो गया है, वह हट जाए। वह जब हट जाएगा और हम सूक्ष्मतर होने लगेंगे, तभी हम उसको सुन पाएंगे, जो केवल सूक्ष्म इंद्रियों से ही सुना जा सकता है। और उसको देख पाएंगे, जो केवल सूक्ष्म आंखों से ही देखा जा सकता है। इसी संबंध में यह सूत्र है।
पहला सूत्र, "उत्तेजना की इच्छा को दूर करो।"
हटाओ उत्तेजना की इच्छा को। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह सूत्र इंद्रिय विरोधी है। सच तो यह है कि आपकी उत्तेजना की इच्छा ही इंद्रियों की हत्या है। यह सूत्र इंद्रियों की शुद्धिकरण का सूत्र है, उनका विरोधी नहीं है। अगर आप स्वाद से उत्तेजना को हटा दें, तो रूखी रोटी में भी वैसा स्वाद उपलब्ध हो सकेगा, जो राजमहलों के भोग में उपलब्ध नहीं हो सकता। क्योंकि स्वाद रोटी पर, भोजन पर निर्भर नहीं करता, स्वाद लेने वाले पर निर्भर करता है। आप पर निर्भर करता है कि आप कितना अनुभव कर सकते हैं, कितना गहरा उतर सकते हैं अनुभव में।
उत्तेजना की इच्छा को दूर किए बिना कोई भी व्यक्ति साधना के जगत में प्रवेश नहीं कर सकता। क्योंकि साधना का अर्थ ही है कि अब हम स्थूल को छोड़ते हैं और सूक्ष्म की तलाश पर निकलते हैं। लेकिन सूक्ष्म की तलाश करनी तो आपको होगी! आप सूक्ष्म को अनुभव भी कर सकते हैं या नहीं? आपके पास वह क्षमता भी है जिससे सूक्ष्म का मेल हो सके?
अगर वह क्षमता ही नहीं, आंखें अंधी हैं और देखा नहीं जा सकता, तो सूक्ष्म मौजूद भी हो जाए, तो भी आपको दिखाई नहीं पड़ेगा। आपको क्रमशः शुद्ध होते जाना है। आपको इतना शुद्ध हो जाना है कि कोई भी घटना घटती हो अंतरतम के केंद्र पर, तो भी आपको उसकी प्रतीति हो जाए, तो भी आपको अहसास हो जाए। आप समझें। जिस इंद्रिय को हम ज्यादा उत्तेजना देते हैं, वह मृत हो जाती है। और मृत हो जाने के कारण हमें और उत्तेजना देनी पड़ती है, तो हम उसे और मृत करते हैं। दुष्टचक्र पैदा हो जाता है। फिर रोज नया स्वाद चाहिए, रोज नई स्त्री चाहिए, रोज नया पुरुष चाहिए, रोज नया मकान चाहिए, रोज नई कार चाहिए, फिर रोज नया चाहिए। पर वह नया भी कितनी देर टिकता है? थोड़ी देर को पुलक आती है, क्योंकि उसकी उत्तेजना हमारे अनुभव में नहीं होती, तो थोड़ी देर जरा अच्छा लगता है। फिर थोड़ी देर में सब चीजें पुरानी हो जाती हैं। हर चीज पुरानी हो जाएगी, जो नई है। और जितनी जड़ होंगी इंद्रियां उतनी जल्दी पुरानी हो जाएगी। इसलिए कोई चीज तृप्ति नहीं देगी, बल्कि हर चीज अतृप्ति देगी। तो तृप्ति का रास्ता क्या होगा?
तृप्ति का रास्ता होगा--वस्तुओं पर ध्यान मत दें, स्वयं के अनुभव करने
की क्षमता पर ध्यान दें। तो बहुत थोड़ी वस्तुएं बहुत तृप्ति दे सकती हैं। न कुछ से भी आनंद मिल सकता है, क्योंकि आप देख ही रहे हैं, सब कुछ होने से भी आनंद मिलता नहीं है। न कुछ से भी आनंद मिल सकता है।

डायोजनीज हुआ यूनान में। उसने सब छोड़ दिया, बड़ा चिंतक था। महावीर की तरह यूनान में नग्न हो जाने वाला वह अकेला आदमी था। वह नग्न हो गया। सिर्फ उसने एक भिक्षापात्र रख लिया था, भिक्षा के लिए, पानी पीने के लिए। फिर एक दिन उसने देखा एक गांव से गुजरते हुए एक ग्रामीण को, कि वह अपनी अंजुलि में भर कर पानी पी रहा है, तो उसने तत्क्षण अपना भिक्षापात्र फेंक दिया। उस ग्रामीण ने पूछा, आपने यह क्या किया? उसने कहा कि मुझे यह ख्याल ही न था कि जब पानी हाथ से भी पीया जा सकता है, तो मैं इस आनंद से क्यों वंचित रहूं? भिक्षापात्र तो जड़ है, उस जड़ में पानी पड़ता है, मुझे कोई अनुभव नहीं होता उसका। तो मेरी अंजुलि में ही पानी को लूंगा, मेरे हाथ भी पानी के स्पर्श को अनुभव करेंगे, पानी की शीतलता को, पानी की जीवन-दायिनी शक्ति को, और मेरे हाथों का प्रेम भी पानी में प्रवेश करेगा, तो वह पानी जीवंत हो जाएगा, उसको भी मैं पीऊंगा। और जब डायोजनीज ने पहली दफा अंजुलि से पानी पीया, तो वह नाचने लगा और उसने कहा कि मैं भी कैसा पागल था कि एक जड़ वस्तु से पानी पी रहा था, उसमें से गुजर कर पानी भी जड़ हो जाता था। हाथ की उष्मा, हाथ की गर्मी पानी को न मिल पाती थी और वह पानी का अपमान भी था।
इसलिए डायोजनीज की यह बात कह रहा हूं कि हमारी सारी इंद्रियां जड़ भिक्षापात्र की तरह हो गई हैं। उनके द्वारा हम जो भी लेते हैं, वह मुर्दा हो जाता है। भोजन जब तक थाली में दिखाई पड़ता है, तब तक सुंदर मालूम पड़ता है, जैसे ही मुंह में जाता है, साधारण हो जाता है। हमारा मुंह उसे साधारण कर देता है। संगीत कान में पड़ता है, साधारण हो जाता है। फूल आंख में दिखाई पड़ते हैं, साधारण हो जाते हैं।
हम हर चीज को साधारण कर देते हैं, जब कि जगत बिल्कुल असाधारण है। जो फूल आपको वृक्ष पर दिखाई पड़ रहा है, वैसा फूल कभी नहीं खिला था। वह फूल बिल्कुल नया है। उस तरह का दूसरा फूल पूरी पृथ्वी पर खोजना असंभव है। उस तरह का फूल कभी इतिहास में न हुआ और न कभी आगे होगा। ऐसे अद्वितीय फूल के होने की घटना को भी हमारी आंखें साधारण कर देती हैं, कह देती हैं कि ठीक है, गुलाब का फूल है, हजारों देखे हैं।
वह जो हजारों देखे हैं, उनकी वजह से आंखें अंधी हो गई हैं, और यह जो सामने मौजूद है, यह दिखाई नहीं पड़ता। उन हजारों से इस फूल का क्या संबंध है?
इमर्सन ने लिखा है कि इस गुलाब के फूल को देख कर मुझे ख्याल आया कि इस गुलाब के फूल को तो कोई भी पता नहीं है हजारों फूलों का--न आने वाले फूलों का, न जा चुके फूलों का--यह गुलाब का फूल तो परमात्मा के लिए सीधा मौजूद है। और यह फूल इसीलिए आनंदित है, क्योंकि कोई तुलना नहीं है। लेकिन जब मैं इसे देखता हूं, तो हजारों फूल जो मैंने देखे हैं, बीच में आ जाते हैं। आंखें धुंधली हो जाती हैं, यह फूल की अनूठी घटना व्यर्थ हो जाती है। इससे न कोई सौंदर्य का अनुभव होता, और न हृदय के कोई तार हिलते, न कोई रोआं कंपता।
हम एक असाधारण जगत में जी रहे हैं। यहां चारों तरफ विराट मौजूद है न मालूम कितने रूपों में। यहां परम-सौंदर्य घटित हो रहा है, परम-संगीत बज रहा है, नाद का कोई अंत नहीं है। लेकिन हम बहरे-अंधे की तरह इस सबके बीच से गुजर जाते हैं। हमें कुछ भी छूता नहीं। हम मरी हुई लाशें हैं। हमने अपनी इंद्रियों को कब्रें बना लिया है। हम उनके भीतर घिरे हैं, ताबूत की तरह बंद हैं। हम गुजर रहे हैं--हमें कुछ छूता नहीं, कुछ अनुभव नहीं होता। और हम पूछते हैं, आनंद कहां है? और हम पूछते हैं, परमात्मा कहां है? और वह चारों तरफ मौजूद है। बाहर-भीतर उसके अतिरिक्त कोई भी नहीं है। और ऐसा कोई क्षण नहीं है, जो आनंद का क्षण न हो। लेकिन अनुभव करने वाला चाहिए। और अनुभव करने वाले को हम उत्तेजना में मार डालते हैं।
त्याग की मेरे लिए परिभाषा--त्याग परम-भोग का विज्ञान है। और जो जानता
है छोड़ना, वही अनुभव कर पाता है। व्यर्थ को छोड़ें, ताकि सार्थक का अनुभव हो सके। उत्तेजना को छोड़ें, ताकि सूक्ष्म की प्रतीति हो सके।
चीन में कहावत है कि जब कोई संगीतज्ञ परम-संगीत को उपलब्ध हो जाता है,
तो वह अपनी वीणा को तोड़ कर फेंक देता है। ठीक है। जिन्होंने कहा है ऐसा, खूब समझ कर कहा होगा। क्योंकि वीणा के तार भी तो उत्तेजना पैदा करते हैं।

और जब कोई परम-संगीत को उपलब्ध हो जाता है, तो उसे वीणा के तार भी संगीत में बाधा बन जाते हैं। तब वह उन्हें तोड़ कर फेंक देता है। तब तो वह उस संगीत को सुनने लगता है, जो मौजूद ही है, जिसको पैदा नहीं करना पड़ता, जो बज ही रहा है चारों तरफ। ऐसा कोई क्षण नहीं है, जब वह न बज रहा हो। हम उसे नहीं सुन पाते तो हमें वीणा के तार पर पैदा करना पड़ता है। यह हमारी इंद्रियों की कमजोरी के कारण वीणा के तारों की सहायता लेनी पड़ती है। वीणा के तार संगीत पैदा नहीं कर रहे हैं, केवल शोरगुल पैदा कर रहे हैं, व्यवस्थित शोरगुल पैदा कर रहे हैं। लेकिन हम चूंकि बहुत कमजोर हो गए हैं और हमें कुछ सुनाई नहीं पड़ता है, इसलिए हम तारों से, वाद्यों से पैदा किए हुए संगीत की फिक्र करते हैं।
जापान में झेन फकीर एक ध्यान को निरंतर अपने साधकों को देते हैं। वे कहते हैं, उस आवाज को सुनो, जो एक हाथ की ताली से पैदा हो सके। इस पर वर्षों ध्यान करवाते हैं। दो हाथ की ताली की आवाज तो सबने सुनी है, लेकिन झेन फकीर कहते हैं कि उस ताली की आवाज पर ध्यान करो, जो एक हाथ से ही पैदा होती है। दो तालियों की जिसमें जरूरत नहीं होती। बिल्कुल पागलपन की बात है। कहीं एक हाथ से कोई ध्वनि पैदा हुई है! मगर झेन फकीर कहता है कि सुनो, एक दिन सुनाई पड़ेगी, सुनते चले जाओ।
एक ऐसा नाद भी है जो बिना घर्षण के पैदा होता है। उसी नाद को हमने ओंकार कहा है। उसमें दो हाथ की ताली नहीं बजती, वह संघात से पैदा नहीं होता, आघात से पैदा नहीं होता। वह मौजूद ही है, वह जीवन का ढंग ही है, वह जीवन के साथ ही बज रहा है। मगर वह बहुत सूक्ष्म हो गया है। हमें तो जोर से कोई चीज टकराए तो ही पता चलता है। अगर कहीं कुछ भी न टकरा रहा हो, तो हमें लगेगा कि कुछ भी नहीं हो रहा है।
लेकिन बहुत कुछ हो रहा है, चुपचाप। जीवन का जो भी गहन है, वह बिल्कुल मौन में हो रहा है। बीज जमीन में टूट रहे हैं, कोई आवाज नहीं है। पौधे बड़े हो रहे हैं, कोई आवाज नहीं है। तारे चल रहे हैं, कोई आवाज नहीं है। सूरज निकल रहा है, कोई शोरगुल नहीं है। लेकिन एक सूक्ष्म अस्तित्व में, जो हमें सन्नाटा मालूम पड़ता है, वहां भी एक संगीत है सन्नाटे का, मौन का। पर उसके लिए हमारी इंद्रियां सक्षम होनी चाहिए।
"उत्तेजना की इच्छा को दूर करो। इंद्रियजन्य अनुभवों से शिक्षा लो।" क्या शिक्षा? इंद्रियों को मारो मत, इंद्रियों को जिलाओ, इंद्रियों
को ज्यादा संवेदनशील बनाओ। प्रत्येक इंद्रिय शुद्धतम अनुभव कर सके, तो प्रत्येक इंद्रिय से परमात्मा का अनुभव होगा। तब उसका स्वाद भी लिया जा सकता है।
यह बात बड़ी व्यर्थ मालूम पड़ेगी कि परमात्मा का स्वाद! और आप कहेंगे कि
आप क्या कह रहे हैं! हमने तो सदा यही कहा है कि परमात्मा का दर्शन होता है। उसका कारण यह नहीं है कि परमात्मा का स्वाद नहीं होता। उसका कारण यह है कि दुनिया के अधिकतम साधकों ने आंखों को शुद्ध करके ही उसकी खोज की है। और कोई कारण नहीं है। चूंकि आंखें शुद्ध करके खोज की है, इसलिए उन्होंने कहा साक्षात्कार, दर्शन। हमने तो अपनी पूरी खोज का नाम ही दर्शन रख दिया है। पर यह आंखों के कारण--आदमी आंख केंद्रित है।
और ऐसा इसी मुल्क में नहीं है, सारी दुनिया में है। पश्चिम में भी वे अनुभवी को सिअर कहते हैं, देखने वाला। लेकिन क्यों? कोई भी नहीं कहता स्वाद लेने वाला। कोई भी नहीं कहता श्रवण करने वाला! कोई भी नहीं कहता परमात्मा की गंध!
उलटा लगेगा। लेकिन अगर आंख देख सकती है तो नाक क्यों नहीं सूंघ सकती?
और आंख के देखने में हमें कोई अड़चन नहीं मालूम पड़ती। और अगर मैं कहूं परमात्मा का स्वाद, तो अड़चन मालूम पड़ेगी। उसका कारण सिर्फ इतना है कि आदमी की बाकी सब इंद्रियां, आंख की बजाय, ज्यादा जल्दी स्थूल हो जाती हैं।
आंख मनुष्य के शरीर में सबसे तरल इंद्रिय है। ऐसा समझें कि आंख मनुष्य के शरीर में सबसे कम शरीर का हिस्सा है, अशरीरी है। और इसलिए जब हम किसी की आंखों में झांकते हैं तो उसमें पूरी तरह झांक लेते हैं। इसलिए बहरा आदमी उतना नहीं खोता, अंधा आदमी बहुत खो देता है। आंख के बंद होते ही

अस्सी प्रतिशत अनुभव बंद हो जाते हैं। बाकी इंद्रियों से हम बीस प्रतिशत अनुभव लेते हैं, आंख से अस्सी प्रतिशत अनुभव लेते हैं। इसलिए बहरे आदमी पर आपको उतनी दया नहीं आती, जितनी अंधे आदमी पर दया आती है। उसका कारण है। क्योंकि वह कितना खो रहा है! आंख के खोते ही अस्सी प्रतिशत अनुभव खो जाते हैं। इसलिए आंख केंद्रित होने की वजह से हमने कहा, ईश्वर का दर्शन।
लेकिन यह जरूरी नहीं है। अगर आप अपनी स्वाद की इंद्रिय को शुद्ध कर लें, तो स्वाद से भी उसका स्वाद मिलेगा। अगर आप अपने हाथ के अनुभव को शुद्ध कर लें, तो उसका स्पर्श भी होगा। आप किसी भी इंद्रिय को शुद्ध कर लें, तो आपको उसकी प्रतीति उसी इंद्रिय से हो जाएगी। अगर आप अपनी सारी इंद्रियों को शुद्ध कर लें, तो परमात्मा आप पर सब तरफ से बरस पड़ेगा।
साधना इंद्रिय-शुद्धि है। और इंद्रिय-शुद्धि का सूत्र है--
"उत्तेजना की इच्छा को दूर करो, इंद्रियजन्य अनुभवों से शिक्षा लो और उसका निरीक्षण करो।"
क्या है निरीक्षण? कि जितनी उत्तेजना, उतनी इंद्रिय मरती है। जितनी
कम उत्तेजना, उतनी इंद्रिय जीतती है, जगती है, सजग होती है।
"आत्म-विद्या का पाठ इसी प्रकार प्रारंभ किया जा सकता है और इसी प्रकार तुम सीढ़ी की पहली पटिया पर अपना पैर जमा सकते हो।"
जिसका हमें अनुभव करना है, वह भीतर छिपा है। और उत्तेजना की खोज होती
है बाहर। तो जितनी उत्तेजना, उतने ही हम अपने से दूर निकल जाते हैं। इसलिए मजे की बात है कि आदमी चांद पर उतर जाता है और अपने भीतर उतरने की उसे कोई भी फिक्र नहीं है। वह भी उत्तेजना की तलाश है। लेकिन कैसी भी उत्तेजना हो... ।
चांद पर पहुंचने की आकांक्षा कितनी पुरानी है! जब से मनुष्य है, तब से चांद पर पहुंचने की आकांक्षा है। और बच्चे पैदा होते से ही चांद की तरफ हाथ बढ़ाने लगते हैं। आदमी अनंत काल से सोच रहा है चांद पर पहुंच जाए। लेकिन आपको पता है कि क्या हुआ? जब पहली दफा आदमी चांद पर उतरा, तो सारी दुनिया में भारी उत्तेजना थी; विशेष कर अमरीका में, क्योंकि उनका आदमी उतरा था, तो और भी ज्यादा उत्तेजना थी। सारे लोग अपने टेलीविजन लगाए बैठे हुए थे। लेकिन दो घंटे के बाद उत्तेजना खतम हो गई। आदमी उतर गया, लोगों ने टेलीविजन बंद कर दिए। फिर उनकी रूटीन, रोज की दुनिया शुरू हो गई। चौबीस घंटे चर्चा रही और बात समाप्त हो गई! हजारों वर्ष से जिस उत्तेजना के लिए आदमी आतुर था, वह दो घंटे में खतम हो गई! चांद पर पहुंच गया, अब क्या है? एक क्षण को लगा कि कोई बड़ी घटना घट रही है, फिर सब ठीक हो गया, फिर दुनिया अपने रास्ते पर चलने लगी। इतनी बड़ी विजय की यात्रा, इतने कल्पों तक जिसका स्वप्न देखा हो, वह भी दो घंटे में पुरानी पड़ जाती है!
आदमी का मन हर चीज को पुरानी कर देता है। और दूर हम कितने ही निकल जाएं, जितने दूर जाते हैं, उतना ही भीतर का अनुभव मुश्किल होता जाता है। आत्म-विद्या का पहला पाठ इंद्रियों के अनुभव से शुरू होता है, कि उत्तेजना में मत जाओ, तो तुम अपने पास आ सकोगे। दूर की खोज मत करो, तो तुम निकट को उघाड़ सकोगे।
"उन्नति की आकांक्षा को दूर करो।"
उन्नति की आकांक्षा भी वैसी ही घातक है, शायद उससे भी ज्यादा, जितनी उत्तेजना की आकांक्षा है। पर बड़ा अजीब लगेगा, क्योंकि हम तो सोचते हैं कि अध्यात्म भी तो आखिर उन्नति की आकांक्षा है! कि हम आनंद चाहते हैं, कि मुक्ति चाहते हैं, कि परमात्मा को चाहते हैं--यह भी तो उन्नति की आकांक्षा है।
लेकिन एक बुनियादी फर्क समझ लेना जरूरी है।
एक तो उन्नति है, जो आपकी चाह से आती है। और एक उन्नति है, जो आपकी चाह
से नहीं आती; जब आपमें चाह नहीं होती, तब आती है। एक तो उन्नति है, जो आपकी चेष्टा से आती है; और आपकी चेष्टा से आई हुई उन्नति आपसे बड़ी नहीं होगी। हो भी नहीं सकती। आपका ही कृत्य आपसे बड़ा नहीं हो सकता। कृत्य हमेशा कर्ता से छोटा होता है। आप जो भी करेंगे, वह आपसे छोटा काम होगा। होगा ही। आप अपने से बड़ा काम कर कैसे सकते हैं? और जब आप ही करने वाले हैं तो काम आपसे बड़ा

नहीं होगा। कितना ही बड़ा काम हो, आप उससे बड़े ही रहेंगे। कितना ही सुंदर कोई चित्र बनाए, चित्रकार चित्र से बड़ा रहेगा। और कितना ही कोई मधुर संगीत पैदा कर ले, संगीतज्ञ संगीत से बड़ा रहेगा। जो आप करते हैं, वह आपसे बड़ा नहीं हो सकता। कृत्य सदा कर्ता से छोटा होगा।
यह तो बड़ी कठिन बात हो गई। इसका तो मतलब हुआ कि अगर आप कोई आध्यात्मिक उन्नति भी कर लें, तो वह आपसे बड़ी नहीं हो सकती। जो आप हैं, आपसे छोटी होगी। तब तो आप एक बड़े चक्कर में हैं। आप अपने से छूट नहीं सकते, आप रहेंगे ही और सदा बड़े रहेंगे, जो भी आप पा लें। अगर आपको परमात्मा भी मिल जाए--ध्यान रखना, मैं कह रहा हूं कि अगर आपकी कोशिश से आपको परमात्मा मिल जाए--तो आपसे छोटा होगा। होगा ही, क्योंकि आपकी कोशिश से मिला है, आपसे बड़ा नहीं हो सकता।
इसलिए आप परमात्मा को कोशिश से नहीं पा सकते, क्योंकि वह आपसे बड़ा है।
तो उसको पाने का एक दूसरा उपाय है, कोशिश को छोड़ कर उसे पाया जा सकता है। यह सूत्र कहता है, "उन्नति की आकांक्षा को दूर करो। फूल के समान खिलो
और विकसित होओ। फूल को अपने खिलने का भान भी नहीं होता।"
कली कब फूल बन जाती है, पता भी नहीं चलता।
"किंतु वह अपनी आत्मा को वायु के समक्ष उन्मुक्त करने को उत्सुक रहता है।"
कली सिर्फ उत्सुक होती है खुलने को। खुलने की कोई चेष्टा नहीं करती। कोई व्यायाम, कोई प्राणायाम, कोई योगासन, कली कुछ भी नहीं करती। कली सिर्फ आतुर होती है, सिर्फ प्यासी होती है। उसके भीतर जो सुगंध है, वह हवाओं में लुट जाए। वह आतुरता भी चेष्टा नहीं बनती, प्रतीक्षा ही रहती है। कली सिर्फ प्रतीक्षा करती है, सुबह सूरज उगेगा, हवाएं आएंगी, और कली फूल बन जाएगी। लेकिन कोई चेष्टा नहीं होती कि वह फूल बन जाए, कि किसी स्कूल में भरती हो, कि किसी गुरु के पास जाए, कहीं सीखे, कोई उपाय सीखे, कोई विधि, कोई तंत्र-मंत्र, वह कुछ नहीं करती--वह सिर्फ प्रतीक्षा करती है।
"तुम भी उसी प्रकार अपनी आत्मा को शाश्वत के प्रति खोल देने को उत्सुक रहो। परंतु उन्नति की आकांक्षा नहीं, शाश्वत ही तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे सौंदर्य को आकृष्ट करे।"
इस फर्क को समझ लेना। तुम कोशिश मत करना अपनी तरफ से शाश्वत को पाने की, तुम तो सिर्फ तैयारी रखना कि अगर शाश्वत तुम्हारे में आना चाहे तो तुम बाधा न दो। तुम तो सिर्फ द्वार खुला रखना कि ऐसा न हो कि शाश्वत तुम्हारे द्वार पर दस्तक दे और पाए कि बंद है। कि परमात्मा तुम्हें खोजता हुआ आए और पाए कि तुम घर पर नहीं हो, तुम कहीं गए हो और तुम्हारा किसी को कोई पता नहीं है। कि परमात्मा तुम्हारे हृदय में आना चाहे और पाए कि वहां इतनी भीड़ है कि प्रवेश का कोई उपाय नहीं। कि वहां कोई जगह ही नहीं है कि मेहमान ठहर सके। वहां कोई रिक्तता नहीं है कि परमात्मा प्रवेश कर सके। तुम्हारे द्वार-दरवाजे बंद हैं--बस इतना भर न हो।
तुम कोशिश मत करना परमात्मा को खोजने की। खोजोगे भी कैसे? तुम्हें उसका कुछ पता भी तो नहीं है, तुम उसे खोजोगे कहां? तुम उसे वहीं खोजोगे, जो रास्ते तुम्हें पता हैं। और उन रास्तों पर तो तुमने उसे पा ही लिया होता, अगर वह होता। तुम अपने से अतिरिक्त करोगे भी क्या? और तुम जो भी करोगे, वह तुम्हारी ही सीमा में बंद होगा, वह असीम से संबंध स्थापित न करा पाएगा। "शाश्वत ही तुम्हारी शक्ति और तुम्हारे सौंदर्य को आकृष्ट करे। क्योंकि शाश्वत के आकर्षण से तो तुम पवित्रता के साथ आगे बढ़ोगे, पनपोगे, किंतु व्यक्तिगत उन्नति की बलवती कामना तुमको केवल जड़ और कठोर बना देगी।" तो तुम परमात्मा को मुट्ठी में लेने की कोशिश मत करना, तुम्हारी मुट्ठी बहुत छोटी है, तुम्हारी मुट्ठी में वह न समाएगा। तुम जितनी मुट्ठी बांधोगे, तुम पाओगे, वह उतना ही बाहर हो गया है। तुम्हारी मुट्ठी खाली ही रह जाएगी। तुम्हारी मुट्ठी में तुम पाओगे कि तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी नहीं समाता है।

तो दो उपाय हैं विकास के। एक उपाय है--चेष्टा, संकल्प, प्रयास, प्रयत्न, श्रम। तुम उसके मालिक होते हो। तुम जो भी करते हो, तुम ही उसकी योजना बनाते हो। तुम फिर जो भी पाते हो, वह तुम्हारा ही खेल होता है। निश्चित ही बहुत कुछ पाया जाता है प्रयास से, श्रम से, संकल्प से। लेकिन तुम जो भी पाते हो, वह तुमसे छोटा होता है। और वह जो तुम भी पा लेते हो, उसी का नाम संसार है। संकल्प से जो पाया जाता है, श्रम से जो पाया जाता है, वही संसार है। उसमें तुम्हारा अहंकार बलवती होता है, वह तुम्हारे अहंकार की खोज है।
एक और पाने का उपाय है। जो पाया जाता है समर्पण से, छोड़ने से, प्रतीक्षा से, प्रार्थना से। श्रम से नहीं, विश्राम से। तुम जब विश्राम में होते हो, तब वह घटित होता है। तुम जब प्रार्थना में होते हो, तब वह घटित होता है। तुम जब अपने को छोड़ देते हो चरणों में, समर्पित कर देते हो, तब घटित होता है। तुम जब तैरते नहीं, बहते हो नदी की धार में, तब घटित होता है। तुमसे घटित नहीं होता, तुम केवल अपने को खुला रखते हो, और उससे घटित होता है। तुमसे विराटतर उसे घटाता है, तुम केवल बाधा नहीं डालते हो।
अध्यात्म की खोज मौलिक रूप से प्रयत्न नहीं है, अप्रयत्न है।
झेन फकीरों ने कहा है, इफर्टलेस इफर्ट, प्रयास रहित प्रयास। ठीक कहा है। अभ्यास नहीं है वह, अपने को छोड़ना है उसके हाथों में। फिर वह जहां ले जाए, फिर वह जो करे, फिर वह चाहे मिटाए, चाहे बचाए, फिर हम राजी हैं उसके साथ। हम सिर्फ आतुर हैं कि वह मिले। आतुरता हमारी तैयारी है। हम रोकेंगे न, हम उसके प्रयास में बाधा न डालेंगे। हम एक लोहे के टुकड़े की तरह हो जाएंगे, ताकि उसका चुंबक खींच ले। लोहे का टुकड़ा चुंबक की तरफ जाता नहीं, जा नहीं सकता; चुंबक खींचता है। लोहे का टुकड़ा सिर्फ बाधा न डाले, बस इतना काफी है। खिंचने को राजी हो, बस इतना काफी है। बुलाया जाए तो दौड़ पड़े, इतना काफी है। अपनी तरफ से दौड़ने का कोई उपाय भी कहां है लोहे के टुकड़े के पास? परमात्मा है जागतिक चुंबक, कास्मिक मैग्नेट। तुम लोहे के टुकड़े की भांति हो जाओ।
यह सूत्र कह रहा है, तुम आकांक्षा मत करो उन्नति की, तुम सिर्फ अभीप्सा करो। तुम मांगो मत, चीखो-चिल्लाओ मत, योजना मत बनाओ, तुम अपनी वासना का फैलाव मत करो, तुम उसे मत बताओ कि वह क्या करे। तुम सिर्फ इतना करो कि उससे कह दो कि तू जो भी करे, कर। हम राजी हैं। तुम्हारा राजीपन ही तुम्हारी साधना है। और उन्नति घटित होगी। वस्तुतः तभी उन्नति घटित होगी, ऐसी उन्नति जो तुमसे ज्यादा होगी।
संसार में हम जो भी पा लें, वह हमसे छोटा होता है। अध्यात्म में जब भी कुछ पाया जाता है, वह हमसे बड़ा होता है। और इसीलिए भक्त कहते हैं कि उसके प्रसाद से मिला, हमारे प्रयास से नहीं। उसका कारण इतना ही है, क्योंकि हमारे प्रयास से तो कुछ बड़ा मिल नहीं सकता, क्षुद्र ही मिलेगा। हम क्षुद्र हैं। उसके प्रसाद से मिला, उसकी कृपा से मिला, उसकी अनुकंपा से मिला।
यह जो भक्त कहते हैं, इसमें सार है। वे असल में यह कह रहे हैं कि हमारे प्रयास से क्या होने वाला था! वह हमारे प्रयास से नहीं मिला। पर उन्होंने भी एक प्रयास किया है। आप यह मत सोचना कि फिर आपको भी जब मिलना है, मिल जाएगा। तो मिल गया होता। आप भी कोई प्रयास कहां किए हैं? इस बात से आप यह मत समझ लेना कि आपको कुछ भी नहीं करना है। क्योंकि वह अप्रयास भी एक तरह का करना है, वह अपने को छा.ेडना भी एक कृत्य है, वह समर्पित होना भी एक साधना है। आप यह मत सोचना कि फिर ठीक है। कई लोग हैं, जो ऐसा सोच लेते हैं। जो सोच लेते हैं कि जब हमारे प्रयास से मिलेगा ही नहीं, तो जब मिलना होगा, मिल जाएगा। तो फिर हम बैठे हुए हैं। इस सूत्र का यह मतलब नहीं है।
इस सूत्र का मतलब यह है कि तुम्हारे प्रयास से तो नहीं मिलेगा, लेकिन इतना प्रयास तुम्हें करना पड़ेगा, इतना प्रयास कि तुम कोई बाधा न डालो। नहीं तो तुम बाधा डाल रहे हो, अभी तुम पीठ किए खड़े हो। अभी हालत ऐसी है कि सूरज निकला हुआ है और तुम सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद करके कमरे के भीतर बैठे हुए हो। सूरज तुम्हारे प्रयास से नहीं निकलेगा और न तुम्हारे प्रयास से तुम सूरज को घर के भीतर ला सकते हो, लेकिन दरवाजा बंद कर सकते हो, घर के

बाहर रोक सकते हो। परमात्मा को भीतर लाने का तुम्हारे हाथ में कोई बल नहीं है, लेकिन उसे बाहर रोकने में तुम समर्थ हो, तुम दरवाजा बंद रख सकते हो।
और परमात्मा आक्रामक नहीं है कि तुम्हारे दरवाजे तोड़ कर भीतर आ जाए।
वह प्रतीक्षा करेगा, बाहर सीढ़ियों पर बैठा रहेगा कि जब तुम दरवाजा खोलोगे, तब ठीक है। और तुम जन्मों तक बैठे रह सकते हो भीतर। तो दरवाजा खुला रखना। तुम्हारे दरवाजा खोलने से ही वह भीतर आ जाएगा, ऐसा नहीं है। लेकिन तुम्हारा दरवाजा खुला हो तो उसके भीतर आने की संभावना है। इसलिए दरवाजा खोल कर एकदम मत कहना कि दरवाजा खोला है, अभी तक नहीं आया है। सिर्फ तुम्हारी संभावना है कि दरवाजा खुला हो तो वह वापस नहीं लौटेगा, जब घड़ी पक जाएगी।
और बिना पके कुछ भी नहीं होता। जब क्षण आ जाएगा, तुम्हारा दरवाजा खुला होगा और वह तुम्हारे दरवाजे पर होगा और तुम उन्मुख, उत्सुक, आतुर, प्रतीक्षा कर रहे होओगे; जब तुम्हारी प्रतीक्षा पूरी होगी, दरवाजा पूरा खुला होगा, घटना घट जाएगी। अगर तुम्हारा दरवाजा भी खुला हो और तुम सोचते हो कि दरवाजा खुला है और परमात्मा नहीं आ रहा है, तो समझना कि या तो दरवाजा खुला नहीं है, तुम सपना देख रहे हो कि दरवाजा खुला है। और या फिर दरवाजा भी था.ेडा-बहुत तुमने खोला है, तो भी तुम आतुर नहीं हो कि वह आ जाए। तुम शायद भीतर डरे हुए हो कि कहीं वह आ ही न जाए। हम डरते हैं, क्योंकि वह अगर आ जाए जीवन में, तो तुम्हारी जिंदगी फिर यही नहीं हो पाएगी, जो है। वह बिल्कुल बदल जाएगी।
लंका में ऐसा हुआ कि एक बौद्ध भिक्षु पचास वर्ष तक बोलता रहा लोगों से। वह ज्ञान को उपलब्ध था। उसकी मृत्यु का दिन करीब आ गया। तो उसने कहा कि मैं तुम्हें इतने दिनों से समझाता हूं, अब मेरी मृत्यु का दिन भी करीब आ गया और मैंने तुम्हें समझाया है कि क्या करो, क्या करो, क्या करो। लेकिन तुम कुछ करते नहीं हो। तो मरने के पहले मैं तुम्हें एक आखिरी मौका देता हूं। अब मैं तुमसे नहीं कहता कि तुम क्या करो जिससे निर्वाण उपलब्ध हो जाए, अब मैं तुमसे पूछता हूं कि तुममें से अगर कोई निर्वाण लेने को उत्सुक है तो मैं देता हूं, तो वह खड़ा हो जाए।
वहां हजारों लोग जो उसके शिष्य थे, इकट्ठे हुए थे, मरता था उनका गुरु,
सब एक-दूसरे की तरफ देखने लगे कि कौन खड़ा हो! उन्होंने कभी सोचा न था कि निर्वाण ऐसे बिना सोचे-समझे, अचानक, दुर्घटना की तरह दरवाजे पर खड़ा हो जाएगा। एक आदमी ने सिर्फ हाथ उठाया, उसने कहा कि लेकिन मैं पहले ही बता दूं कि अभी नहीं, आज नहीं, सिर्फ रास्ता बता दें, कभी जरूरत हो! चाहिए निर्वाण जरूर, एक दिन जरूर चाहिए, लेकिन अभी नहीं। अभी बहुत काम पड़े हैं, अधूरे हैं। और अभी बहुत काम निबटा लेने हैं। बहुत से आश्वासन हैं, वह पूरे करने हैं, बच्चे की शादी करनी है, पत्नी बीमार है--तो अभी नहीं, इतनी कृपा करना। मगर इतना मैं कहे देता हूं कि एक दिन चाहिए जरूर निर्वाण, तो रास्ता बता दें।
अगर आपको परमात्मा आज ही मिलता हो, अभी और यहीं, तो आप बड़ी चिंता में
पड़ जाएंगे। इसके क्षण भर पहले आप इस चिंता में थे कि परमात्मा कैसे मिले, क्योंकि वह इतनी आसानी से मिलता नहीं। आप मजे से चिंता करने का मजा ले सकते हैं। लेकिन अगर अभी-यहीं मिलता हो तो आप दूसरी चिंता में पड़ जाएंगे कि फंसे! कि अब घर कैसे वापस लौटें? अगर परमात्मा मिल गया तो वह जो सब पीछे छोड़ आए हैं जाल, उनको फिर कौन पूरा करेगा? और वह जाल आपको बड़ा मालूम पड़ता है परमात्मा से। आप उसको ही चुनेंगे। आप परमात्मा से कहेंगे कि तुम्हें पाने की जल्दी भी क्या है? यह तो शाश्वत का है मामला। और जन्म-जन्म पड़े हैं, कभी भी पा लेंगे, इतनी जल्दी भी क्या है? लेकिन वे सब काम तो शाश्वत के नहीं हैं। वक्त पर हो जाएं तो हो जाएं, नहीं तो चूक गए तो चूक गए। उनके लिए तो समय की दुनिया है और तुम तो सनातन हो, तुम्हें फिर भी मिल लेंगे।
तो तुम्हारे प्रयास की इतनी तो जरूरत है--एक निषेध की, एक निगेटिव, नकार की, कि तुम बाधा खड़ी मत करना।
ये हम जो यहां ध्यान के प्रयोग कर रहे हैं, ये सब बाधाएं तोड़ने के प्रयोग हैं। सारी विधियां बाधाएं तोड़ने की हैं, कोई विधि परमात्मा को

पाने की नहीं है। परमात्मा किसी भी विधि से पाया नहीं जा सकता। क्योंकि जो विधि से पा लिया जाए, वह क्या खाक परमात्मा होगा!
किसी विधि से परमात्मा नहीं पाया जा सकता। वह तो अविधि में है, अविधि में फलित होता है। लेकिन विधियों से तुम्हारी बाधाएं तोड़ी जा सकती हैं। द्वार-दरवाजे के ताले तोड़े जा सकते हैं। जंग खा गई चाबियां खो गई हैं, क्योंकि उन्हें बंद किए न मालूम कितने जन्म हो गए। अब तो वे दीवालों जैसे मालूम पड़ते हैं; दरवाजा है, उसका भी पता नहीं चलता। क्योंकि उनको कभी खोला नहीं है। उनकी चाबियां तुम फेंक आए हो ऐसी जगह कि तुम भी खोजो तो न मिलें, क्योंकि तुम्हें भी डर है कि कहीं चाबी मिल जाए और भूल-चूक से दरवाजा खोल लें!
सारी विधियां नकारात्मक हैं, वे तोड़ने की हैं।
लोग मुझसे पूछते हैं कि ऐसे क्या होगा? कि अगर कोई दस मिनट गहरी सांस
भी ले ले, नाच भी ले पागल की तरह, हू-हू भी चिल्ला ले, क्या इससे परमात्मा मिल जाएगा?
नहीं, इससे परमात्मा नहीं मिलेगा। लेकिन इससे तुम टूटोगे। और तुम टूटो, यह उसके घटने की पहली अनिवार्यता है। इससे तुम टूटोगे। यह तुम्हें मिटाने का उपाय है, उसे पाने का नहीं। हालांकि तुम मिटो तो ही वह पाया जा सकता है, तो यह अनिवार्य है।
तो तुम्हें पागल की तरह विधियां जो ये मैं करवा रहा हूं, ये तुम्हें मिटाने के लिए हैं--तुम्हारी बुद्धिमत्ता मिटे, तुम्हारी समझदारी मिटे, तुम्हारा अहंकार मिटे, तुम्हारी जड़ता मिटे। तुमने जो अपने को बना रखा है, वह टूटे, पिघल जाए, तुम खो जाओ, तुम सरल हो जाओ, तुम्हारे दरवाजे खुलें, तो किसी दिन, ठीक घड़ी में उसका आगमन हो जाता है।

साधना-सूत्र
पांचवां प्रवचन

अप्राप्य की इच्छा

7. जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।

क्योंकि तुम्हारे भीतर समस्त संसार का प्रकाश है, वही प्रकाश जो साधना-पथ को प्रकाशित कर सकता है।
यदि तुम उसे अपने भीतर नहीं देख सकते,
तो उसे कहीं और ढूंढ़ना व्यर्थ है।

8. जो तुमसे परे है, केवल उसी की इच्छा करो।

वह तुमसे परे है,
क्योंकि जब तुम उसे प्राप्त कर लेते हो,
तो तुम्हारा अहंकार नष्ट हो चुका होता है।

9. जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो।

वह अप्राप्य है, क्योंकि
पास पहुंचने पर वह बराबर दूर हटता जाता है।
तुम प्रकाश में प्रवेश करोगे,
किंतु तुम ज्योति को स्पर्श कदापि न कर सकोगे।

इन सूत्रों के साथ यात्रा गहरी होती है। धर्म की भाषा थोड़ी बेबूझ है। होना अनिवार्य है, क्योंकि धर्म का संबंध तथ्य से कम, रहस्य से ज्यादा है। तथ्य तो उसे कहते हैं जो समझ में आ जाता है। रहस्य उसे कहते हैं जो समझ में आता भी है और नहीं भी आता है। इतना ही समझ में आता है कि समझ में न आ सकेगा। तथ्य तो वह है, जो बुद्धि के नीचे है। रहस्य वह है, जिसके नीचे स्वयं बुद्धि है। तथ्य की गहराई को बुद्धि नाप पाती है, रहस्य की गहराई को खोजने जाती है तो खुद खो जाती है।
रामकृष्ण कहते थे, जैसे कोई नमक का पुतला सागर की गहराई खोजने जाए, तो खोज न पाएगा। शुरू तो करेगा, लेकिन मंजिल का अंत कभी न आएगा। क्योंकि नमक का पुतला ठहरा, जैसे-जैसे सागर में गहरे उतरेगा, वैसे-वैसे गलेगा भी, खोएगा भी। गहराई में पहुंचते-पहुंचते स्वयं मिट चुका होगा। खबर देने को भी नहीं बचेगा कि लौट कर कह सके कि सागर कितना गहरा है।
लेकिन नमक का पुतला ही सागर की गहराई को जान सकता है। पत्थर को डाल दें तो गहराई तक पहुंच जाएगा, लेकिन सागर के प्राणों से अस्पर्शित। जो गलेगा ही नहीं, वह सागर के प्राणों को छुएगा कैसे? जो मिटेगा ही नहीं, जो लीन ही नहीं होगा, वह सागर की वास्तविक गहराई को कैसे माप पाएगा?
सागर की एक गहराई तो वह है जो गजों से नापी जा सकती है। और एक सागर के अस्तित्व की गहराई है, जिसे गजों से नापने का कोई उपाय नहीं है। नमक का पुतला ही नाप पाएगा, क्योंकि वह मिटने को राजी है, डूबने को राजी है, खोने को राजी है। वह सागर के साथ एक हो जाएगा, सागर के साथ तल्लीन हो जाएगा। उस तल्लीनता में ही जान पाएगा। लेकिन तब लौट कर कहने का कोई भी उपाय नहीं। रहस्य का अर्थ है कि जिसे खोजने तो आप निकलेंगे, लेकिन जिस दिन आप उसे खोज लेंगे, उस दिन आपका कोई पता न होगा। तथ्यों को हम अपनी मुट्ठी में रख लेते हैं। रहस्य हमें अपनी मुट्ठी में रख लेगा।
ये सूत्र गहरे हैं अब, अब नदी थोड़ी गहरी होगी, थोड़ा ध्यान से समझेंगे
तो ही समझ में आ सकेगा।
सातवां सूत्र, "जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।"
बड़ा उलटा है। दो अर्थों में उलटा है। एक तो, हम सदा उसकी इच्छा करते हैं, इच्छा ही उसकी होती है, जो हमारे भीतर नहीं है। इच्छा का अर्थ ही यह

होता है कि जो हमारे पास नहीं है, जिसका अभाव है, उसकी ही इच्छा होती है। इच्छा का अर्थ ही यह हुआ कि अभी हमारे पास नहीं है, कल हो सके। कल हो सकेगा, इसकी वासना ही तो इच्छा है।
यह सूत्र कहता है, "जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।"
तो पहली तो बात कि जो तुम्हारे भीतर नहीं है, उसकी इच्छा मत करना। और हमारी सारी इच्छाएं तो उसी की हैं, जो हमारे भीतर नहीं है। हम तो उसी को मांग रहे हैं, जो हमारे पास नहीं है। और यह तर्कयुक्त भी है कि हम उसी को मांगें, जो पास नहीं है। जो पास है ही, उसे मांगने का क्या अर्थ? इसलिए पहली तो बात यह है कि इच्छा, जो भीतर है, उसकी होती ही नहीं। इसलिए सूत्र बड़ा उलटा है।
और दूसरे इसलिए भी यह सूत्र बड़ा गहरा और उलटा है कि जीवन में मिलता केवल वही है, जो हमारे पास था। वह तो कभी मिलता ही नहीं, जो हमारे भीतर था ही नहीं। कुछ भी हम पा लें, वह बाहर ही रह जाएगा। और जो बाहर ही रह जाएगा, वह हमें मिला कहां? वह हमसे छीना जा सकता है। कितना ही कोई धन इकट्ठा कर ले, उसकी चोरी हो सकती है, उस पर डाका पड़ सकता है। और न चोरी हो, न डाका पड़े, न राज्य समाजवादी हो, कुछ भी न हो, तो भी मौत छीन लेगी। मौत के क्षण में, जो भी आपने चाहा था, इकट्ठा किया था, वह आपके हाथ से गिर जाएगा। वह आपके पास था, लेकिन आपका नहीं हुआ था। आपका हो जाता, तो कोई भी उसे छीन न सकता था। इसलिए धर्म की दृष्टि में संपदा का अर्थ है, वह जो आपसे छीनी न जा सके।
जो आपसे छीनी जा सके, उसका नाम विपदा है। क्योंकि उसको बचाओ, उसका कष्ट भोगो बचाने का। उसे दूसरों से छीनो, झपटो, उसका कष्ट भोगो। और सारा कर लेने के बाद भी डरे रहो, चौबीस घंटे कंपते रहो कि वह छिन न जाए। और फिर आखिर में वह छिने भी। तो धर्म कहता है कि इसको संपत्ति नासमझ कहते होंगे, यह विपत्ति है।
संपत्ति तो वही है जो तुम्हारे पास से छीनी न जा सके। तो ही अपनी है,
तो ही अपनी कहने का कोई अर्थ है। लेकिन ऐसी क्या संपत्ति होगी जो आपसे न छीनी जा सके? अगर ऐसी कोई संपत्ति है, तो वह आपके भीतर मौजूद ही होगी, तो ही।
जो भी हम बाहर से डालेंगे, वह वापस लिया जा सकता है। जो हमारे स्वभाव
के साथ ही उपलब्ध हुआ है, वही हमसे नहीं छीना जा सकता। जो हमारी आत्मा में ही बसा है, वही हमसे नहीं छीना जा सकता। जो तुमसे छीनी न जा सके, उस सत्ता का नाम ही आत्मा है।
बहुत लोगों के पास आत्मा होती नहीं। जब मैं ऐसा कहता हूं तो आप बहुत चौकेंगे, क्योंकि हम तो मान कर चलते हैं कि सभी के पास आत्मा होती है। वह ठीक है, सभी के पास आत्मा हो सकती है, इस अर्थ में होती है। लेकिन सभी के पास होती नहीं। अगर आप हिसाब लगाएं कि आपके पास जो कुछ भी है, क्या उसमें कुछ भी ऐसा है, जो छीना न जा सके, तो आपको पता चल जाएगा कि आत्मा आपके पास है या नहीं।
आप जरा एक फेहरिश्त बनाएं अपनी संपत्ति की, जो भी आपके पास है। और एक लाल स्याही की कलम ले कर बैठ जाएं निशान लगाने को कि इसमें क्या-क्या है, जो छीना जा सकता है! तो आप पाएंगे कि पूरी फेहरिश्त लाल हो गई। उसमें एक भी चीज बचती नहीं, जो छीनी न जा सके। तो फिर आपके पास आत्मा नहीं है। अगर ऐसी कोई चीज आपके अनुभव में आए कि आपके पास है, जिसे कोई भी छीन न सकेगा, मृत्यु भी नहीं, तो ही समझना कि आपके पास आत्मा है।
शास्त्र में पढ़ लेने से सभी को यह भ्रम हो जाता है कि आत्मा तो है ही। निश्चित है! लेकिन जिसका आपको पता ही नहीं है, उसके होने न होने का क्या प्रयोजन? और जिसका आपको कोई अनुभव ही नहीं है, वह हो भी तो उसका करिएगा क्या? वह ऐसा हीरा है जो कहां आपके घर में गड़ा है, आपको पता नहीं। वह हो या न हो, उसकी बाजार में क्या कीमत है? और आप यह कहें कि मेरे घर में हीरा गड़ा है और मुझे पता नहीं, इसलिए मैं सम्राट हूं! लेकिन फिर भी आपको भीख तो मांगनी ही पड़ेगी। क्योंकि वह हीरा किसी भी काम का नहीं। और जब तक वह मिल न जाए, तब तक भरोसा क्या आपका कि सच में गड़ा है। जब तक उघाड़ न लिया जाए, तब तक यह भी कहना कि गड़ा है मेरे घर में, क्या अर्थ रखता है? क्या आप कहेंगे कि

शास्त्रों में लिखा है इसलिए! लेकिन शास्त्रों का क्या भरोसा? आपको कुछ भी तो पता नहीं, नक्शा आपके पास नहीं, शक्ल-सूरत उसकी कुछ पता नहीं, नाम-धाम कुछ पता नहीं, बस आप सुनते हैं कि आत्मा है। ऐसी आत्मा के होने न होने का कोई भी अर्थ नहीं है।
यह सूत्र कहता है, "जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।"
क्यों इधर-उधर की इच्छा में समय और जीवन-ऊर्जा को नष्ट किया जाए? क्योंकि पा भी लिया जाए, तब भी खो जाता है। तो सारा श्रम व्यर्थ हो जाता है पानी पर खींची गई लकीरों की तरह। हम खींच भी नहीं पाते और वे मिट जाती हैं। ठीक वैसी ही हमारी सारी संपदा है। हम उपलब्ध भी नहीं कर पाते कि सब खोना शुरू हो जाता है।
इच्छा ही करनी है तो उसकी इच्छा करो, जो पानी पर खींची लकीर सिद्ध न हो। और वह संपत्ति तुम्हारे भीतर है। उस संपत्ति को व्यक्ति पैदा ही होता है ले कर। इस अस्तित्व में कोई भी दरिद्र नहीं है। अस्तित्व सभी को सम्राट की तरह पैदा करता है। दरिद्र हम अपने हाथों से हो जाते हैं। दरिद्रता अर्जित है, बड़ी मेहनत से हम दरिद्रता को कमाते हैं। संपदा ले कर पैदा होते हैं। साम्राज्य हमारे भाग्य में ही लिखा होता है। वह हमारे भीतर ही छिपा होता है।
लेकिन जो हमारे भीतर छिपा है, उसे भी पाना पड़ता है। क्योंकि उसका विस्मरण है, क्योंकि उसकी हमें कोई याददाश्त नहीं है। जान कर हम अपने मन को ऐसे रास्तों पर ले गए हैं, जहां उसकी विस्मृति हो गई है। हमारा ध्यान बाहर चला गया है। और भीतर ध्यान को लाने का हम मार्ग भूल गए हैं।
और बाहर जाने का कारण है। किसी पाप के कारण ऐसा नहीं हो गया है कि ध्यान बाहर चला गया है। ध्यान बाहर जाने का प्राकृतिक कारण है। क्योंकि जीवन की सुरक्षा के लिए ध्यान का बाहर जाना जरूरी है। अगर बच्चा ध्यान भीतर लिए हुए पैदा हो, तो जिंदा न रह सकेगा। बच्चे का ध्यान बाहर जाना जरूरी है। क्योंकि शरीर के लिए, अस्तित्व के लिए, बचाव के लिए, सुरक्षा के लिए उसे चौकन्ना होना जरूरी है। भूख लगेगी तो भोजन भीतर नहीं मिलेगा, भोजन बाहर मिलेगा। तो भूख लगेगी तो बच्चे का ध्यान बाहर जाएगा, जहां से भोजन मिलेगा।
इसीलिए आपको ख्याल हो न हो, स्त्री जाति के स्तन पुरुषों को, बूढ़े भी
हो जाएं, तो भी आकर्षक मालूम होते हैं। वह बचपन की पहली अनुभूति है, जो छूटती नहीं। बच्चे ने पहला जो संबंध बनाया है जगत से, वह स्तन से बनाया है। जीवन की सुरक्षा का पहला आधार स्तन में मिला है। स्तन ही जगत था बच्चे के लिए पहला। और जो पहला संस्पर्श है बाहर की दुनिया से और प्रीतिकर संस्पर्श, जिससे जीवन बढ़ा, विकसित हुआ, बचा--वह स्तन है। इसलिए बूढ़ा भी हो जाए पुरुष तो भी स्त्री के स्तन से लगाव नहीं छूटता। फिल्में हों, चित्र हों, मूर्तियां हों, पुरुष स्त्री के स्तन को बड़े ध्यानपूर्वक निर्मित करता है। वह बचपन की याद है, जो छूटती नहीं है। और जिस दिन वह छूट जाए, समझ लेना, उस दिन ही आप संसार से मुक्त हुए। वह आपका पहला संसार है। वहां से संसार शुरू हुआ है। वह संसार का पहला आधार है।
तो बच्चे को भूख लगेगी तो ध्यान बाहर जाएगा। प्यास लगेगी तो ध्यान बाहर जाएगा। जरूरतें पूरी होंगी बाहर से। आत्मा कोई जरूरत नहीं है। और आत्मा को बाहर से मांगना भी नहीं है, वह भीतर है। चूंकि उसकी कोई जरूरत नहीं है, इसलिए उसका स्मरण खो जाता है। जिसकी जरूरत है, उसकी याद बनी रहती है।
आपको भी ख्याल होगा कि अगर पैर में कांटा गड़ जाए तो पता चलता है कि पैर है। सिर में दर्द हो तो सिर का पता चलता है। और जब आपके सिर में दर्द नहीं होता, तब आपको पता चलता है क्या कि सिर है? अगर पता चले तो आप समझना कि दर्द है। बिना दर्द के सिर का कोई पता नहीं चलता। शरीर का पता ही बीमार आदमी को चलता है, स्वस्थ आदमी को पता नहीं चलता।
स्वास्थ्य की परिभाषा ही यही है। विदेह स्वास्थ्य की परिभाषा है, जहां देह का पता न चलता हो। तो ही आप स्वस्थ हैं। अगर देह का पता चलता हो तो उसका मतलब है कि देह रुग्ण है। रोग में ही पता चलता है। क्योंकि रोग में

जरूरत पैदा हो जाती है और ध्यान का जाना जरूरी हो जाता है। जब पैर में कांटा गड़ा है, तो पूरे शरीर की जरूरत हट गई एक तरफ, कांटे को अलग करना पहली जरूरत हो गई। तो सारा ध्यान कांटे की तरफ जाएगा, तभी तो कांटा हटेगा। अगर ध्यान न जाए तो कांटा लगा ही रहेगा, जहर हो जाएगा। सिर में दर्द है तो सारा ध्यान सिर की तरफ जाएगा।
इसीलिए तो चिकित्सा-शास्त्र ने ऐसी तरकीबें निकाली हैं कि आपके सिर में दर्द भी हो, तो आपको एक गोली दे देने से दर्द नहीं मिटता, लेकिन दर्द तक ध्यान जाने की जो व्यवस्था थी, वह टूट जाती है। तो फिर आपको दर्द का पता नहीं चलता। दर्द गोली से नहीं मिटता, गोली तो सिर्फ भुलावा है। और आपके ध्यान जाने की जो प्रक्रिया है दर्द तक, उसको तोड़ देती है, बीच के स्नायुओं को शिथिल कर देती है, कि वहां से खबर नहीं आ सकती। तो फिर आपरेशन में आपका पैर भी काट डाला जाता है तो आपको पता नहीं चलता। एक इंजेक्शन दे दिया, तो इंजेक्शन आपके दर्द को नहीं रोकता, दर्द तो होगा ही, लेकिन दर्द तक ध्यान को नहीं जाने देता। इसलिए दर्द का कोई पता नहीं चलता। आपके पूरे शरीर को काटा जा सकता है और आपको पता भी न चले। बस पता चलने का एक ही उपाय है कि ध्यान जाना चाहिए। और ध्यान जाएगा। जहां भी पीड़ा होगी, वहां ध्यान जाएगा। आत्मा में कोई पीड़ा नहीं है, इसलिए ध्यान जाने का कोई उपाय नहीं है। आत्मा में सदा आनंद है, इसलिए ध्यान को बुलाने की कोई जरूरत नहीं है। शरीर में सदा उपद्रव है, कहीं न कहीं कोई मुसीबत है। शरीर बड़ा यंत्र है, जटिल है बहुत। पृथ्वी पर अब तक हम कोई ऐसा यंत्र नहीं बना पाए जो शरीर से ज्यादा जटिल हो। और वैज्ञानिक कहते हैं कि एक आदमी के साधारण शरीर में जो घटना घट रही है, अगर उतनी घटना हमें घटानी हो, तो कम से कम दस वर्गमील की फैक्टरी बनानी पड़े। और इतना उपद्रव और शोरगुल मचे उस फैक्टरी में और आदमी के भीतर सब चुपचाप हो रहा है!
आदमी एक बहुत बड़ी घटना है। उसके शरीर में, एक आदमी के शरीर में, कोई सात अरब जीवाणु हैं। उन सात अरब जीवाणुओं की भीड़ है आपका शरीर। उन सात अरब जीवाणुओं का समाज है, उनकी व्यवस्था है। और उनकी व्यवस्था बड़ी अनूठी है। अब तक आदमी ऐसी कोई व्यवस्था नहीं बना पाया। हमारे बड़े से बड़े राज्य भी उतने व्यवस्थित नहीं हैं, जितने व्यवस्थित भीतर के सात अरब जीवाणु हैं। आपको ख्याल नहीं है उनके काम का। अगर आप शरीर की पूरी काम-प्रक्रिया को समझें, तो चकित हो जाएंगे। जरा सी चोट लगती है तो काम शुरू हो जाता है। भोजन आप जरा सा पेट में डाल लेते हैं तो काम शुरू हो जाता है। आप कुछ भी नहीं करते, तो भी आपके भीतर का बड़ा यंत्र कार्य में लगा हुआ है। जरूरी है कि इस जटिल यंत्र की तरफ जहां भी जरा सी उलझन हो, फौरन ध्यान जाए। अगर ध्यान नहीं जाएगा तो आप मर जाएंगे।
तो बच्चा अगर भीतर का ध्यानी हो पैदा, तो बच नहीं सकता। इसलिए तो हम कहते हैं, जो परम-ध्यान को उपलब्ध हो जाते हैं, उनका फिर जन्म नहीं हो सकता। उसका कारण भी है। जन्म हो भी नहीं सकता, क्योंकि जो परम-ध्यान को उपलब्ध हो जाता है, उसकी लीनता भीतर हो जाती है। भीतर लीनता होने से नए शरीर से संबंध ही निर्मित नहीं होता। संबंध भी निर्मित हो जाए तो बच्चा जी नहीं सकता। क्योंकि बाहर की जरूरत, मांग वह पूरी न कर पाएगा। बाहर की चुनौती का वह मुकाबला नहीं कर पाएगा।
शरीर की जरूरत है, जीवन की जरूरत है कि ध्यान बाहर जाए। और शरीर में इतनी पीड़ाएं हैं, इतनी जटिलताएं हैं कि ध्यान की पुकार निरंतर वहां बनी रहती है। इसलिए हमें शरीर का तो पता चलता है, इंद्रियों का पता चलता है, संसार का पता चलता है, सिर्फ एक का पता नहीं चलता--वह जो हम हैं! क्योंकि एक तो वहां कोई पीड़ा नहीं है। वहां कभी कोई पीड़ा नहीं हुई। और कभी कोई पीड़ा वहां हो नहीं सकती।
इससे आप समझें कि आदमी को आत्म-विस्मरण क्यों है? आत्म-विस्मरण इसलिए
है कि आत्म-स्मरण की कोई जरूरत नहीं मालूम होती। जिनको जरूरत मालूम होती है आत्म-स्मरण की, वे तत्काल आत्म-स्मरण को उपलब्ध हो जाते हैं।
किनको जरूरत मालूम होती है? यह भी थोड़ा ख्याल में ले लें। किन व्यक्तियों के जीवन में जरूरत पैदा होती है आत्म-स्मरण की? शरीर के स्मरण

की जरूरत सबके जीवन में है। लेकिन वे थोड़े से ही लोग हैं, जिनके जीवन में आत्म-स्मरण की जरूरत पैदा होती है। वह कब पैदा होती है?
वह तब पैदा होती है, जब शरीर के सारे अनुभव से गुजरने के बाद यह ख्याल में आता है कि चाहे कैसी भी करो व्यवस्था, शरीर में दुख बना ही रहेगा। चाहे कुछ भी करो उपाय बाहर, सुख के पाने की सुविधा नहीं है। कितना ही आयोजन करो संसार में बहिर्दृष्टि हो कर, किसी तरह के आनंद की कोई किरण, कोई सुर सुनाई नहीं पड़ता। जब ऐसी प्रतीति किसी को होती है और बाहर का सारा का सारा जीवन दुख हो जाता है... ।
ध्यान रखना, एक दुख होगा तो फर्क नहीं पड़ेगा, क्योंकि दूसरे सुख की आशा बनी रहेगी। दस दुख हो जाएंगे, तो दस सुखों की आशा साथ खड़ी रहेगी। तो हम बाहर दा.ैडते रहेंगे। एक सुख को छोड़ देते हैं, क्योंकि दुख हो गया, दूसरे सुख की तलाश करने लगते हैं। लेकिन जब बाहर का पूरा जीवन ही दुख अनुभव हो जाएगा--इसीलिए बुद्ध ने कहा है कि जीवन दुख है--जब पूरा जीवन ही दुख मालूम होगा, तब अचानक ख्याल आएगा कि बाहर तो सब दुख है तो मैं भीतर भी खोज कर के देख लूं कि वहां क्या है। बाहर जब सब व्यर्थ हो जाता है, तो व्यक्ति भीतर की तरफ उन्मुख होता है। बच्चा तो पैदा होता है बाहर की तरफ उन्मुख। कभी- कभी कोई जीवन के गहन अनुभव से गुजर कर भीतर की तरफ उन्मुख होता है। भीतर की उन्मुखता के लिए ही यह सूत्र है।
"जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।"
तो ही परम आनंद की, तो ही परम मुक्ति की संभावना है। जो तुम्हारे भीतर है, उसकी इच्छा करो। लेकिन हम तो अगर भीतर की भी इच्छा करते हैं, तो वह भी नाममात्र को ही भीतर की होती है, वह भी बाहर की ही होती है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि अगर हम ध्यान करें, तो क्या सुख-संपदा बढ़ेगी? ध्यान में आकांक्षा है, संपदा बढ़े। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि अगर हम ध्यान करें, तो क्या सफलता संसार में मिलेगी? उन्हें पता ही नहीं कि वे क्या कह रहे हैं!
ध्यान का मतलब ही है कि संसार अब विफल हो गया। वहां कोई सफलता है ही नहीं, इस बात की प्रतीति तो ध्यान की शुरुआत है। ध्यान की शुरुआत तो होती ही तब है, जब पता चल जाता है कि बाहर संपदा है ही नहीं। मिलने का और न मिलने का कोई सवाल नहीं है, वहां संपदा है ही नहीं, वहां केवल संपदा का भ्रम है। जब किसी का भ्रम टूट जाता है, तो ध्यान का सवाल उठता है।
लेकिन भ्रम नहीं टूटा है। बाहर सब तरह की कोशिश कर ली है और संपदा नहीं मिली है। लेकिन बाहर संपदा है, यह पक्का है। अब सोचते हैं कि शायद ध्यान से बाहर संपदा मिल जाए! तो चलो ध्यान कर लें। लेकिन ध्यान से कोई प्रयोजन नहीं है, प्रयोजन संपदा से है।
जब तक प्रयोजन बाहर है, जब तक इच्छा बाहर है, तब तक कोई अध्यात्म की यात्रा में बढ़ नहीं सकता। इसलिए इस सूत्र को बहुत ख्याल में रख लेना।
"जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो। क्योंकि तुम्हारे भीतर समस्त संसार का प्रकाश है, वही प्रकाश जो साधना-पथ को प्रकाशित कर सकता है। यदि तुम उसे अपने भीतर नहीं देख सकते, तो उसे कहीं और ढूंढ़ना व्यर्थ है।"
जो भी पाने योग्य है, तुम्हारे भीतर है। चाहे उसे कहो प्रकाश, चाहे उसे कहो आनंद, चाहे उसे कहो परमात्मा, चाहे उसे कहो मुक्ति, चाहे कहो निर्वाण, वह जो भी पाने योग्य है, वह तुम्हारे भीतर है। बुद्धों ने, महावीरों ने, कृष्णों ने, क्राइस्टों ने जो पाया है, वह तुम्हारे भीतर है। लेकिन हम उसे भी बाहर ही खोजते हैं! जो हमारे भीतर है, उसे भी हम बाहर
ही खोजते हैं! हमारी खोज ही बाहर की तरफ दौड़ती है। हम जानते ही हैं एक ढंग खोजने का--बाहर। जीवन की जरूरत से यह ढंग पैदा हो गया। इस ढंग को तोड़ेंगे नहीं, तो आप बाहर ही दौड़ते रहेंगे।
और बाहर की दौड़ में आपको बहुत बार लगेगा कि सुख करीब है, करीब है--अब मिला, अब मिला। और हर बार जब पहुंचेंगे वहां, तो पाएंगे कि इंद्रधनुष की तरह खो गया। इंद्रधनुष दिखते बहुत प्यारे हैं, लेकिन दूर से ही उनमें रंग होते हैं। अगर आप पास पहुंच जाएं तो वे खो जाते हैं। उनको देखने के लिए

फासला चाहिए। वह फासले से पैदा हुआ भ्रम है। पास पहुंच गए, भ्रम टूट जाता है।
सब सुख इंद्रधनुष ही हैं--दूर हैं।
अगर आप सड़कों पर भीख मांग रहे हैं तो आपको लगता है, महलों में सुख है, क्योंकि महल बहुत दूर है। वह जो महल में बैठा है, उसे सुख का बिल्कुल पता नहीं चल रहा है। वह हो सकता है कि इस भिखमंगे से भी ज्यादा दुखी हो। क्योंकि भिखमंगे को कम से कम आशा तो है कि महल में सुख है। वह कभी न कभी महल में पहुंच ही जाएगा। इस आशा के भरोसे भी जी तो लेता है। लेकिन वह जो महल में पहुंच गया है, उसकी यह आशा भी तिरोहित हो गई है, महल में कोई सुख नहीं मालूम हुआ। लेकिन वह भी सोचता है कि किसी और बड़े महल में सुख जरूर है। जहां हम नहीं हैं, वहां सुख दिखाई पड़ता है।
और ऐसा नहीं है कि यह बात महलों के संबंध में ही सच हो। यह भी हो जाता
है कि महलों में रह कर ऊब गया आदमी कभी-कभी सोचने लगता है कि झोपड़ों में रहने वाले लोग बड़े सुखी हैं। शहरों में रहने वाले लोग सोचते हैं, गांवों में रहने वाले लोग बड़े सुखी हैं। गांवों में रहने वाले लोग शहर की तरफ दौड़ रहे हैं! गांव के किसी आदमी से कहो कि तुम परम-आनंद में हो, तो वह भरोसा नहीं करता आपका कि कहां का आनंद? मगर शहरों में लोग हैं कि वे सोचते हैं, गांवों में आनंद बरस रहा है! कविताएं लिखते हैं, किताबें लिखते हैं कि गांवों में बड़ा आनंद है! हालांकि गांवों में वे भी जाते नहीं। रहते वे भी शहर में हैं। जाएं तो उन्हें पता चलता है कि भारी दुख है। जो जाते हैं, वे फौरन वापस लौट आते हैं।
यह बड़े मजे का मामला है। जहां हम नहीं हैं, वहां सुख दिखाई पड़ता है। और जहां हम हैं, वहां दुख दिखाई पड़ता है। लेकिन जिन जगहों पर हम नहीं हैं, वहां भी कोई है। उससे हम पूछने का भी कष्ट नहीं उठाते, कि वहां तुझे क्या मिल रहा है! वह भी वहां तृप्त नहीं है।
खोजते हैं हम बाहर और बाहर वह कभी भी नहीं मिलेगा। क्योंकि बाहर वह है नहीं, मिलने का कोई कारण नहीं है। और जिसकी हम तलाश कर रहे हैं, वह हमने भीतर खो दिया है। और भीतर खो दिया है इस जीवन की जरूरत के कारण। ध्यान चला गया बाहर। और ध्यान चौबीस घंटे बाहर व्यस्त है। और भीतर हम बे-ध्यान हो गए हैं। भीतर बे-भान हो गए हैं और सारा भान बाहर चला गया है। अगर यह ख्याल में आ जाए, तो हम भान को भीतर ले जा सकते हैं।
इसलिए ध्यान के आखिरी चरण में मैं आपसे कहता हूं कि आप जैसे हैं, मुर्दे की भांति हो जाएं। कुछ भी हो रहा हो, मुर्दे की भांति हो जाएं। नहीं तो ध्यान की जो शक्ति जगती है, उसको भी आप बाहर ले जाएंगे, वह तत्क्षण बाहर चली जाएगी। अगर आपको आंखें खुली रखने का मौका दिया जाए तो वह ध्यान की जो शक्ति जगी है, आपकी आंखों से तत्क्षण बाहर घूमने लगेगी। आप किसी व्यर्थ चीज पर उसको नष्ट कर देंगे। पास में खड़ी कोई स्त्री दिखाई पड़ जाएगी, कोई आदमी नाचता हुआ दिखाई पड़ जाएगा, कोई व्यक्ति पागल सा मालूम पड़ेगा। आपको पता नहीं कि आप क्या कर रहे हैं! लेकिन आपकी आंखें अभी ताजी हैं, भीतर ध्यान पैदा हुआ है। आप उस ध्यान को नष्ट किए दे रहे हैं एक क्षण में। घंटों में जो पैदा होता है, वह एक क्षण में खोया जा सकता है।
इसलिए कहता हूं, आंखें बांध कर रखें। ताकि वह जो ध्यान पैदा हुआ है, आंख से बाहर न बहे। इसलिए कहता हूं, शरीर को मुर्दे की भांति छोड़ दें, जरा भी हिलाएं-डुलाएं न। क्योंकि आपको अपनी ही बेईमानियों का कोई पता नहीं है। कहीं लगेगा कि पैर में दर्द हो रहा है, कहीं लगेगा कि हाथ जरा ठीक कर लें, कहीं लगेगा सिर में खुजलाहट आ रही है। अगर आ भी रही है सिर में खुजलाहट, तो दस मिनट में क्या बिगड़ने वाला है? जिंदगी पड़ी है, खुजला लेना। और अगर दस मिनट पैर में थोड़ी तकलीफ भी हो रही है, तो क्या बिगड़ा जा रहा है? कोई मौत नहीं आ जाएगी। और अगर एक चींटी पैर पर चढ़नी शुरू हो गई, तो क्या बिगाड़ लेगी? काट ही सकती है। कोई सांप भी नहीं चढ़ गया है, चींटी ही चढ़ रही है! मगर एक चींटी आपको बेचैन कर देती है। चींटी बेचैन नहीं कर रही, चींटी बहाना है। आपके भीतर जो ध्यान की शक्ति पैदा हुई है, वह कोई भी बहाने बाहर

बहना चाहती है। आप हाथ से चींटी को हटा लेंगे--आपको पता नहीं कि उस हाथ की उस छोटी सी हरकत में आपने ध्यान बाहर भेज दिया।
इसलिए कहता हूं कि जब ध्यान की ऊर्जा जगती है, तो सब तरफ से रुक जाएं।
बस पत्थर की तरह हो जाएं। इस दस मिनट में बाहर की दुनिया रही ही नहीं। तो ही किसी दिन, किसी क्षण, मौका आएगा कि ध्यान धक्का मारेगा--बाहर जाने का उपाय नहीं होगा--तो धक्का मारेगा और भीतर की एक झलक मिल जाएगी। एक झलक मिल जाए तो फिर आपको रस और स्वाद आ गया। तो फिर आप भीतर की तरफ जा सकते हैं। लेकिन आप छोटी चीजों में खोने को तैयार हैं, बहुत क्षुद्र चीजों में। अगर सोचेंगे तो आपको भी लगेगा कि क्या क्षुद्र बात थी! इसमें खोने जैसा क्या था? खड़े थे, थक गए थे, तो इसमें क्या अड़चन आ रही थी? लेकिन मैं देखता हूं कि आप अपने को कैसा धोखा दे लेते हैं! जल्दी से बैठ जाते हैं। मैं कहता हूं, रुक जाएं। आप जल्दी से बैठ जाते हैं! मैं कह रहा हूं, रुक जाएं, जैसे हैं वैसे ही। आप जल्दी से बैठ कर ठीक आसन लगा लेते हैं! आपको पता नहीं कि आप कर क्या रहे हैं। किसको धोखा दे रहे हैं? कोई मुझे धोखा दे रहे हैं? मुझे धोखा देने का क्या सार है? आपने ही तीस मिनट इतना श्रम लिया और आप एक सेकेंड में उसको खो रहे हैं, क्योंकि आप ध्यान बाहर दे रहे हैं।
शक्तियां जरा से छिद्र से बह जाती हैं। और आप यह मत सोचना कि नाव में केवल एक छेद है, इसलिए क्या हर्ज है? पार हो जाएंगे। एक छेद का सवाल नहीं है। छेद है, इतना काफी है। एक छेद नाव को डुबा देगा। और ये बेईमानियां छेद बन जाती हैं।
"जो तुम्हारे भीतर है, केवल उसी की इच्छा करो।"
और अगर तुम उसे भीतर नहीं पा सकते हो, तो बाहर ढूंढ़ना व्यर्थ है, क्योंकि वह बाहर नहीं है।
आठवां सूत्र, "जो तुमसे परे है, केवल उसी की इच्छा करो।"
यह भी बहुत सोचने जैसा है, "जो तुमसे परे है, केवल उसी की इच्छा करो।"
हम हमेशा जो हमारे हाथ के भीतर है, उसी की इच्छा करते हैं। जिसमें हम पाते हैं कि सफल हो ही जाएंगे, उसकी ही इच्छा करते हैं। जिसमें हमें पक्का भरोसा है कि हम कुशल हैं, उसी की इच्छा करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आप अपने से बड़े कभी भी न हो पाएंगे। आप जैसे हैं, जो हैं, वहीं रुक जाएंगे। सदा अपने से पार की इच्छा करनी चाहिए--तो ही होती है गति, तो ही होता है विकास। क्योंकि वह जो पार है अपने से, उसको पाने में ही आप बड़े होते हैं।
लेकिन क्या है पार आपके? जगत में ऐसी कोई भी चीज नहीं, जो मनुष्य के पार हो। सभी कुछ मनुष्य पा लेता है, आप भी पा सकते हैं। माना कि सिकंदर बहुत पा लेता है। आप थोड़े छोटे सिकंदर हैं, उतना नहीं पा सकते। वह अगर बड़ा साम्राज्य बना लेता है, तो आप एक छोटा सा बनाते हैं, लेकिन असंभव कुछ भी नहीं है। अगर आप भी वैसे ही पागल और जिद्दी हों, जैसा सिकंदर है; अगर आपको भी मद का वैसा ही नशा चढ़ जाए, तो आप भी पा लेंगे। एक बात तय है कि सिकंदर जो पाता है, वह कोई भी आदमी पा सकता है। उसमें आदमी के पार कुछ भी नहीं है। हो सकता है कि कोई डिल्क, कोई एंडरू कार्नेगी, कोई रॉकफेलर अरबों रुपए कमा लेता है, तो आप भी कमा सकते हैं, पार कुछ भी नहीं है। अगर आप एक पैसा कमा सकते हैं तो अरब रुपए भी कमा सकते हैं। क्योंकि अरब रुपए और एक पैसे में अंतर परिमाण का है, गुण का नहीं।
जो एक पैसा कमा सकता है, वह दो क्यों नहीं कमा सकता है? और एक पैसा, और
एक पैसा, और एक पैसा, जुड़ते-जुड़ते अरब हो जाते हैं। तो जो फर्क है, वह कोई गुणात्मक नहीं है, क्वालिटेटिव नहीं है, क्वांटिटी का है। तो अगर मैंने एक पैसा कमा लिया, तो मैंने दुनिया की सब संपत्ति कमा ली। मैं कमा सकता हूं। क्योंकि एक पैसा, मौलिक सीढ़ी मेरे हाथ में आ गई। अब व्यर्थ है कि अरब कमाऊं, कि दो अरब कमाऊं। एक पैसा कमाने में रास्ता साफ हो गया। वह मैं कमा सकता हूं, वह परे नहीं है।
यह सूत्र कहता है, "जो तुमसे परे है, केवल उसी की इच्छा करो।"
क्या है तुमसे परे? तुम ही! वह तुम्हारे भीतर जो छिपा है, वही तुमसे परे है। बाकी सब तुम्हारे हाथ के भीतर है। बाकी सब आसान है। कितना ही कठिन मालूम पड़ता हो, आसान है। बाकी सब क्षुद्र है। एक तुम्हारे भीतर जो छिपी

संपदा है, वही एक तुमसे पार मालूम पड़ती है। उस तरफ जाने का न कोई उपाय सूझता है, न कोई मार्ग दिखाई पड़ता है। न उस तरफ हाथ फैला सकते हो, क्योंकि हाथ बाहर जाते हैं। न उस तरफ आंख खोल सकते हो, क्योंकि आंख बाहर खुलती है। न उस तरफ कान दे सकते हो, क्योंकि कान बाहर सुनते हैं। सारी इंद्रियां बाहर जाती हैं और उसकी तलाश भीतर करनी है। मन बाहर जाता है और उसकी तलाश भीतर करनी है। वह तुमसे परे है।
तुमसे परे है, तुम्हारा होना। इसका अर्थ हुआ कि तुम दो तरह के हो। एक
तो तुम्हारा बाहर जाने वाला रूप है--तुम्हारी इंद्रियां, तुम्हारा शरीर, तुम्हारा मन, तुम्हारा अहंकार। इन सबके जोड़ का नाम है अहंकार। यह बाहर जाने वाला है। इस अहंकार के परे है तुम्हारा वास्तविक स्वरूप, तुम्हारी आत्मा।
अगर इच्छा ही करनी है तो केवल उसकी इच्छा करो, जो तुमसे परे है।
"वह तुमसे परे है, क्योंकि जब तुम उसे प्राप्त कर लेते हो, तो तुम्हारा अहंकार नष्ट हो चुका होता है।"
वह तुमसे परे इसलिए है कि तुम उसे पाने में नष्ट हो जाओगे। इस सूत्र
को समझ लें।
जिसको पाने में तुम नष्ट नहीं होते, वह तुमसे परे नहीं है। जिसको पाने में तुम्हें अपना अहंकार नहीं चुकाना पड़ता, वह तुमसे परे नहीं है। जिसकी कीमत में तुम्हें खुद को देना पड़ता है, वही तुमसे परे है। और जिस दिन कोई व्यक्ति आत्मा को उपलब्ध होता है, उस दिन उसका वह पुराना रूप, जो यात्रा पर निकला था, वैसे ही छूट गया होता है, जैसे सांप की केंचुली छूट जाती है। जिस दिन कोई अपने को पाता है, उस दिन बड़ी हैरानी में पड़ता है कि यह मैं वह तो बचा ही नहीं, जो खोजने निकला था।
कबीर ने कहा है, "हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराय!" खोजते-खोजते कबीर खो गया, तब हुआ मिलन। तब हुआ मिलन! लेकिन जो खोजने निकला था, वह बचा नहीं--तब हुआ मिलन! कबीर ने बड़ी मीठी बात कही है। खोजने निकला था मैं, सोचता था पा लूंगा उसे। जब तक वह नहीं था, तब तक मैं था। और जब उसे पाया, तो देखा कि जो खोजने निकला था, वह तिरोहित हो गया। और मजे की बात कही है कि जब मैं खो गया, तब देखा कि "हरि लागे पाछे फिरे, कहत कबीर कबीर!" जब मैं बचा नहीं, तब खुद भगवान मेरे पीछे चिल्लाने लगे, ढूंढ़ने लगे मुझे और कहने लगे कबीर-कबीर! "हरि लागे पाछे फिरे, कहत कबीर कबीर।" जब तक मैं था और चिल्ला रहा था जोर से कि मैं हूं, तब तक उनकी कोई झलक न मिली! और अब जब मैं खो गया, तो वे मेरे पीछे लगे फिरते हैं, मुझे पूछते हैं कि कबीर-कबीर! वह जो मिट गया, उसकी इतनी पूछ हो रही है! और वह जब था, तो उसकी कोई भी पूछ न थी! तुम्हें तुम्हारा पूरा सम्मान उस दिन मिलेगा, जिस दिन तुम मिट जाओगे। तुम्हारा पूरा गौरव उस दिन खिलेगा, जिस दिन तुम नहीं होओगे। बीज जब टूट जाता है, तो जन्म होता है पौधे का। नदी जब खो जाती है, तो सागर बन जाती है। यह जो क्षुद्र है अहंकार, इसके परे है वह विराट, जो तुम्हारे भीतर ही छिपा है।
नौवां सूत्र, "जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो।"
जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो। जो मिल सकता है, उसकी भी क्या इच्छा करनी? उसे भी क्या मांगना जो मिल ही जाएगा? मांग ही करनी हो, इच्छा ही करनी हो तो उसकी करना, जो मिल नहीं सकता।
बड़ी अजीब बात है। क्योंकि अगर वह मिल ही नहीं सकता, तो मांग करने से भी क्या होगा? अगर निश्चित ही वह अप्राप्य है, मिल नहीं सकता, तो उसकी इच्छा करने से भी क्या होगा? और अगर इच्छा करने से वह मिल सकता है, तो फिर उसको अप्राप्य कहने का क्या प्रयोजन? वह प्राप्य ही था, इच्छा करने से मिल गया। तो इस सूत्र को समझना पड़ेगा। क्या है अप्राप्य? जो मिल सकता है, वह तो अप्राप्य नहीं है। फिर कौन सी चीज अप्राप्य है? एक ऐसी चीज भी है, जो अप्राप्य इसलिए है, कि वह तुम्हें मिली ही हुई है, उसे पाने का कोई सवाल नहीं है। उसे प्राप्त करने का कोई सवाल नहीं है। पाया तो उसे जाता है, जो मिला न हो। तुम्हारा आंतरिक अस्तित्व तो तुम्हें मिला ही हुआ है। वह अप्राप्य नहीं है, वह प्राप्य ही है। इसलिए उसे अप्राप्य कहा है। उसे पाने

का कोई उपाय नहीं है, उसे सिर्फ उघाड़ने का उपाय है। उसे पाने की कोई जरूरत नहीं है, उसे केवल पहचानने की जरूरत है। प्रतिभिज्ञा, पहचान, स्मृति--बस इतना काफी है। उसे पाने के लिए कुछ और करना नहीं है, सिर्फ एक पर्दा सरकाना है और वह मौजूद है। वह सदा से मौजूद है अपनी पूरी सत्ता में तुम्हारे भीतर।
बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तब किसी ने पूछा कि क्या मिला आपको? हमें भी बताएं! तो बुद्ध ने कहा है कि मिला कुछ भी नहीं, खोया जरूर बहुत। मिला कुछ भी नहीं! इसलिए कि जो मिला, वह पहले से ही मिला हुआ था। हम नासमझ थे कि हमें पता ही नहीं था। खोया बहुत, अपने को खोया, अज्ञान को खोया, सारे सपने, सारी वासनाएं, सारी इच्छाएं, वह खोईं। लेकिन जो पाया है, उसे कहा नहीं जा सकता कि पाया, क्योंकि वह तो था ही। जो प्राप्त ही था, उसी को पाया है।
इसलिए सूत्र कहता है, अप्राप्य!
"जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो। वह अप्राप्य है, क्योंकि पास पहुंचने पर वह बराबर दूर हटता जाता है।"
एक और अर्थ में भी वह अप्राप्य है, क्योंकि पास पहुंचने पर वह बराबर दूर हटता जाता है।
"तुम प्रकाश में प्रवेश करोगे, किंतु तुम ज्योति को स्पर्श कदापि न कर सकोगे।"
इस अर्थ में भी वह अप्राप्य है कि तुम कभी उस पर अपनी मुट्ठी न बांध सकोगे। क्योंकि जैसे-जैसे तुम भीतर जाओगे, तुम मिटने लगोगे। वह तुम्हें कभी नहीं मिलेगा। उसके मिलने के पहले तुम मिट चुके होओगे।
हेरत-हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराय--उसे पाने के पहले तुम मिट चुके होओगे। इसलिए तुम्हें वह कभी नहीं मिलेगा। तुम्हारे लिए वह अप्राप्य है। तुम उसके प्रकाश में तो प्रवेश करोगे, लेकिन उसकी ज्योति को कभी न पा सकोगे। जैसे पतंगा दौड़ता है दीए की तरफ। प्रकाश में तो प्रवेश करता है, दीए के प्रकाश में आ जाता है। और जैसे-जैसे करीब आने लगता है, वैसे-वैसे मिटने की घड़ी भी करीब आने लगती है। और जब ज्योति के बिल्कुल पास आ जाता है और ज्योति को छू लेता है, तो मर जाता है। ज्योति को कभी पा नहीं पाता। ज्योति को पाने के पहले ही मिट जाता है।
अगर हम इस प्रतीक को थोड़ा आगे खींच लें, तो पतंगे का शरीर तो गिर जाता
है, उसकी आत्मा ज्योति से मिल जाती होगी। हम जब भीतर जाते हैं तो हमारा अहंकार तो पतंगे की तरह गिर जाता है। फिर हमारी आत्मा... ।
लेकिन हम, जैसे हम जानते हैं अपने को अभी, अभी जो हमारा रूप है, अभी जो हमने समझा है कि मेरा यह नाम, ठिकाना, पता, यह जो मैं हूं, अभी हमारा जो तादात्म्य है, यह तादात्म्य कभी भी उसे उपलब्ध नहीं कर पाता। यह प्रकाश में प्रवेश जरूर करता है, यह मंदिर की सीढ़ियों पर जरूर चढ़ता है यह अहंकार, लेकिन मंदिर के द्वार के बाहर ही गिर जाता है। और भीतर जो प्रवेश करता है, वह अहंकार नहीं है। जैसे जूते तुम मंदिर के बाहर उतार देते हो, ऐसे ही तुम भी उतर जाओगे असली मंदिर के बाहर। वह भी खोल है--तुम्हारा होना, जो तुमने जाना है अभी कि मैं यह हूं, यह हूं, यह हूं--वह भी खोल है। वह भी मंदिर के बाहर ही गिर जाएगी। तुम जरूर मंदिर में प्रवेश करोगे, लेकिन उस "तुम" का तुम्हें कोई पता नहीं है। और तुम मंदिर में कभी प्रवेश नहीं करोगे, जिस "तुम" का तुम्हें पता है। तुम जो जानते हो अपने को, वह बाहर गिर जाएगा। और जिसे तुम जानते ही नहीं हो, वह भीतर प्रवेश करेगा। वह ज्योति के साथ एक हो जाएगा। इसलिए भी सूत्र कहता है, वह अप्राप्य है।
"जो अप्राप्य है, केवल उसी की इच्छा करो।"

साधना-सूत्र
छठवां प्रवचन

स्वामित्व की अभीप्सा

10. शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो।

और जिस शक्ति की कामना शिष्य करेगा,
वह शक्ति ऐसी होगी जो उसे लोगों की दृष्टि में ना-कुछ जैसा बना देगी।

11. शांति की अदम्य अभीप्सा करो।

जिस शांति की कामना तुमको होगी,
वह ऐसी पवित्र शांति है,
जिसमें कोई विघ्न न डाल सकेगा।
और जिस शांति के वातावरण में
आत्मा उसी प्रकार विकसित होगी, जैसे
शांत सरोवर में पवित्र कमल विकसित होता है।

12. स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो।

परंतु ये संपत्तियां केवल शुद्ध आत्मा की हों
और इसलिए सभी शुद्ध आत्मा इसके समानरूप से स्वामी हों
और इस प्रकार ये सभी की (जब वे संयुक्त हों) संपत्ति हों।

दसवां सूत्र, "शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो। और जिस शक्ति की कामना शिष्य करेगा, वह शक्ति ऐसी होगी जो उसे लोगों की दृष्टि में ना-कुछ जैसा बना देगी।"
सबसे पहले तो इच्छा और अभीप्सा के भेद को समझ लेना जरूरी है। भाषाकोश में एक ही अर्थ लिखा हुआ है। लेकिन जीवन के कोश में बड़ा भेद है। इच्छा और अभीप्सा, दोनों ही इच्छाएं मालूम होती हैं। दोनों में ही थोड़ी दूर तक समानता है। और फिर दोनों असमान हो जाती हैं। अंग्रेजी में तो अभीप्सा के लिए कोई शब्द ही नहीं है। इसलिए मैबल कॉलिन्स ने दोनों के लिए ही डिजायर का उपयोग किया है।
अभीप्सा जैसा शब्द खोजना किसी दूसरी भाषा में बहुत कठिन है। क्योंकि
इस तरह की इच्छा की घटना ही दूसरी भाषाओं में बहुत कम घटी है।
इच्छा का अर्थ है, हम कुछ चाहते हैं। अभीप्सा का भी अर्थ है, हम कुछ चाहते हैं। लेकिन इच्छा ऐसी वस्तु की चाह है जो हमारे पास नहीं है। और अभीप्सा ऐसी वस्तु की चाह है जो हमारे पास है ही। इच्छा में भी मांग है, लेकिन मांग के साथ अशांति है। जब तक न मिलेगी तब तक दुख है। अभीप्सा में भी मांग है, लेकिन मांग के साथ बड़ी तृप्ति है। न मिलेगी तो भी अशांति नहीं है। शांत इच्छा अगर हो सकती हो, तो उसका नाम अभीप्सा है। बड़ा उलटा लगता है। जैसे ठंडी अग्नि। क्योंकि इच्छा में तो अशांति होगी। उसका तो अर्थ ही है कि मैं असंतुष्ट हूं। जो भी है, उससे राजी नहीं हूं। कुछ और होना चाहिए तो मैं संतुष्ट होऊंगा।
अभीप्सा का अर्थ है, कुछ और होना चाहिए तो मैं और भी ज्यादा संतुष्ट होऊंगा, लेकिन जो है उससे मैं संतुष्ट हूं।
इस फर्क को समझना।
इच्छा में मैं असंतुष्ट हूं, जब तक मांग पूरी न हो, मैं असंतुष्ट रहूंगा। मांग पूरी होगी तो संतोष होगा। तो मेरा संतोष सशर्त है। एक शर्त पूरी हो जाए तो मैं संतुष्ट हो जाऊंगा। और इसलिए इच्छा से भरा हुआ आदमी कभी संतुष्ट नहीं होता। उसकी शर्त कभी पूरी नहीं होती। जब तक एक इच्छा पूरी होती है तब तक पच्चीस इच्छाएं पैदा हो गई होती हैं। हर इच्छा की पूर्ति नई इच्छाओं को जन्म दे जाती है।

अभीप्सावान व्यक्ति संतुष्ट हो जाता है, क्योंकि वह संतुष्ट तो है ही। उसको असंतुष्ट करने का उपाय नहीं। जो है, उससे वह संतुष्ट है। इस संतोष से एक मांग पैदा हो रही है--संतोष से, स्मरण रखना--और भी ज्यादा संतोष पाने की। जब यह मांग पूरी होगी तो वह और भी ज्यादा संतुष्ट हो जाएगा।
एक और फर्क ख्याल में ले लेना जरूरी है। कि इच्छा कभी पूरी नहीं होती, अभीप्सा पूरी हो जाती है। क्योंकि इच्छा के पूरे होते ही, इच्छा दस नए बच्चों को जन्म दे जाती है। इच्छा संततिवान है। अभीप्सा बांझ है, उसके बच्चे नहीं होते। जब अभीप्सा पूरी होती है तो उससे कोई संतति पैदा नहीं होती।
और भी एक फर्क समझ लेना। इच्छा सदा एक खिंचाव है--बाहर की तरफ, वस्तुओं
की तरफ, साधनों की तरफ, धन की तरफ, यश की तरफ, पद की तरफ। लेकिन मुझसे बाहर है कोई चीज जो खींच रही है। तो बाहर की दौड़ इच्छा से पैदा होती है। अभीप्सा भी एक खिंचाव है, लेकिन भीतर की तरफ। वह भी एक दौड़ है, लेकिन अपने से दूर ले जाने वाली नहीं, अपने से पास लाने वाली।
दोनों का शब्दकोश में एक ही अर्थ है। लेकिन जीवन के कोश में बड़े भिन्न अर्थ हैं। अभीप्सा जैसा शब्द भारत खोज पाया। क्योंकि हमने साधारण इच्छाएं ही नहीं कीं, हमने कुछ असाधारण इच्छाएं भी कीं, जो इच्छा के बिल्कुल विपरीत हैं। और इसलिए हमें एक नया शब्द बनाना पड़ा--अभीप्सा। सूत्र है, "शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो।"
शक्ति की उत्कट अभीप्सा... । तो दूसरी बात, शक्ति के संबंध में समझ लेनी आवश्यक है।
एक तो शक्ति है जो साधनों से उपलब्ध होती है। आपके पास धन है तो आप शक्तिवान हैं। आपके हाथ में तलवार है तो आप शक्तिशाली हैं। आपके शरीर में बल है तो आप शक्तिशाली हैं। धन है तो आप खरीद सकते हैं, तलवार है तो आप किसी को झुका सकते हैं। लेकिन आप स्वयं शक्तिशाली नहीं हैं। शक्ति तलवार में है, अगर तलवार टूट जाए तो आप नपुंसक हो जाएंगे। शक्ति धन में है, अगर धन खो जाए तो आप निर्बल हो जाएंगे। एक राजनेता है, उसकी शक्ति है कि लोग उसे मत दे रहे हैं। कल वे मत न दें, तो उसकी शक्ति तिरोहित हो जाएगी।
तो एक तो शक्ति है जो साधनों से मिलती है। लेकिन वह वास्तविक शक्ति नहीं है। क्योंकि आप तो कमजोर ही बने रहते हैं। आपके आसपास शक्ति होती है, आप कमजोर होते हैं। और यह शक्ति किसी भी दिन छीनी जा सकती है। राजसिंहासन पर बैठा हुआ आदमी किसी भी क्षण भिखारी हो सकता है। जिनके नामों की चर्चा दिन-रात अखबारों में होती है, जब वे पद पर नहीं रह जाते तो पता ही नहीं चलता कि वे जीवित भी हैं कि मर गए। उनकी कोई खबर ही नहीं रह जाती। कितने राजनेता चुपचाप खो जाते हैं। फिर एक दफे इनकी खबर छपेगी, छोटे में, जिस दिन वे मरेंगे। तभी आपको पता चलेगा कि अरे, अभी ये जिंदा थे! इस बीच सब खो जाएगा। और जब वे शक्ति पर होते हैं, सिंहासन पर होते हैं, तब जैसे इनके नाम के अतिरिक्त अखबार वालों के पास छापने को कुछ होता ही नहीं।
इसका यह अर्थ हुआ कि साधनों से मिलने वाली शक्ति आपकी निर्बलता को मिटाती नहीं, केवल छिपाती है। सिर्फ छिपाती है, चारों तरफ एक पर्दा बांध देती है। पर्दे पर रंग-रोगन होता है। आप! आप जैसे निर्बल थे वैसे ही होते हैं।
इसीलिए जो आदमी एक बार पद पर पहुंच जाता है, वह पद को छोड़ना नहीं चाहता। जी-जान से जकड़ लेता है। क्योंकि अब उसे पता है, उसने शक्ति का भी मजा ले लिया, निर्बल होते हुए। अब अगर यह कुर्सी छूट जाती है तो वह पुनः निर्बल हो जाएगा। और यह जो दूसरी निर्बलता है, यह पहले वाली निर्बलता से बहुत ज्यादा अखरेगी। क्योंकि पहले तो इसे शक्ति का कोई स्वाद नहीं था, अब शक्ति का स्वाद ले लिया। तो पहले तो उसे कभी पता भी नहीं चला था कि वह इतना निर्बल है। अब उसे पता चलेगा कि वह कितना निर्बल है।
ऐसे ही जैसे रास्ते से आप गुजरते हैं अंधेरी रात में। अंधेरा होता है, लेकिन थोड़ा-थोड़ा रास्ता खोजते... तभी पास से एक तेज प्रकाश वाली गाड़ी निकल जाती है। तेज प्रकाश आंखों में पड़ता है, एक क्षण को रोशनी हो जाती है। और

जब गाड़ी जा चुकी होती है, आप पाते हैं, रास्ता और भी अंधेरा हो गया। अब कुछ भी नहीं सूझता।
पद के ऊपर पहुंचा हुआ आदमी जब फिर से पदहीन होता है, तो ऐसे रास्ते पर खड़ा हो जाता है जहां और अंधेरा हो गया। वह जो क्षण भर की कौंध भी, उससे रोशनी नहीं मिली, उससे और अंधापन आ गया। इसलिए पद पर जो एक बार पहुंच जाता है, वह छोड़ना ही नहीं चाहता। हर कीमत पर वहां टिका रहना चाहता है। यह बड़े मजे की बात है। पहले लोग पद पर पहुंचने के लिए जीवन लगाते हैं, फिर पद को पकड़े रहने के लिए जीवन लगाते हैं। और अगर पद को पकड़े रहना है तो एक ही उपाय है कि आगे के पद की कोशिश जारी रखनी चाहिए। अपनी जगह रुके रहने का एक ही उपाय है कि आगे की दौड़ जारी रखनी चाहिए। क्योंकि नीचे से लोग खींच रहे हैं। सैकड़ों लोग उसी पद पर चढ़ने की कोशिश में लगे हैं।
राजनीति निर्बलों की खोज है, नपुंसकों की यात्रा है। तो जितनी नपुंसकता भीतर होती है, उतना ही बाहर से शक्ति को आयोजित करने का मन होता है। फिर, ध्यान रखें, मैं सारी बातों को राजनीति कहता हूं, जिनमें भी आप बाहर से शक्ति पाते हैं। वह चाहे धन हो, वह चाहे शास्त्र से लिया हुआ ज्ञान हो। आप तो कमजोर ही रहते हैं। गीता कंठस्थ हो जाती है, जब जरूरत पड़े गीता बोलने लगते हैं। लेकिन आप कृष्ण नहीं हैं। यह गीता आपका अंतर्भाव नहीं है। यह बाहर से भीतर डाला गया है, भीतर से बाहर नहीं आ रहा है। जो भीतर से बाहर आए, तब तो आप शक्तिशाली हो जाएंगे। और अगर बाहर से भीतर डाल कर आप शक्तिशाली समझ रहे हैं, तो शक्ति का भ्रम है।
यह सूत्र कहता है, "शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो।"
किस शक्ति की? निश्चित ही, इस शक्ति की नहीं, जो धन से, पद से, शास्त्र से, उधार ज्ञान से मिलती है। उस शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो, जो किसी से भी नहीं मिलती, जो तुमसे पैदा होती है। जो मिलती ही नहीं, जन्मती है। जिसको खरीद लाने का बाजार से कोई उपाय नहीं है, जो तुम्हारी आत्मा का स्फुरण है। जो तुम्हारे भीतर जन्मती है। और तुम्हारे भीतर से बाहर की तरफ जाती है। बाहर से भीतर की तरफ नहीं आती। तब आप समझ जाएंगे कि अभीप्सा और शक्ति को इसमें क्यों जोड़ा है।
अभीप्सा का अर्थ है, भीतर की आकांक्षा। और शक्ति भी भीतर ही छिपी है, वहीं से पैदा होती है। तब ही तुम वस्तुतः शक्तिशाली हो पाओगे। इसलिए हमने वर्धमान को महावीर कहा। कोई ऐसा नहीं कि कोई गामा से महावीर लड़ते तो जीत जाते। ऐसा कुछ नहीं है। लेकिन फिर भी हम गामा को महावीर नहीं कह सकते। क्योंकि शरीर तो शक्तिशाली है, लेकिन भीतर की आत्मा तो वैसी ही दुर्बल है। और शरीर कितनी देर चलेगा? गामा क्षय रोग से मरा। और आखिरी दिन बड़े कष्ट के रहे।
यह आप जान कर हैरान होंगे कि पहलवान सभी खतरनाक बीमारियों से मरते हैं। और आखिरी दिन पहलवानों के बहुत दुखद होते हैं। क्योंकि जो भी शक्ति थी वह शरीर की थी। और शरीर की शक्ति को ही उन्होंने समझा कि अपनी है। और जब शरीर क्षीण होने लगता है तब उनको लगता है कि यह तो धोखा था। और शरीर तो क्षीण होगा। और पहलवान का शरीर जल्दी क्षीण होता है, क्योंकि उसने शरीर के साथ जबर्दस्ती की। सब पहलवानी जबर्दस्ती है। जिसको हम कसरत कहते हैं, वह श्रम नहीं है, वह जबर्दस्ती है।
तो पहलवान जबर्दस्ती कर रहा है शरीर के साथ। तो उसकी मांस-पेशियां उभर आएंगी। क्योंकि वह इतना जोर डाल रहा है मांस-पेशियों पर, इतना खून जबर्दस्ती बहा रहा है उनमें से कि वे उभर आएंगी। इसलिए कोई पहलवान ज्यादा उम्र का नहीं होता, जल्दी मर जाता है। क्योंकि जो शरीर साठ साल काम दे सकता था, वह अब चालीस साल ही काम देगा। आपने बीस साल की शक्ति का हिंसात्मक रूप से उपयोग कर लिया।
पहलवान जल्दी मरते हैं। और पहलवानों के आखिरी दिन बड़े दीन और दुखी हो जाते हैं। क्योंकि जैसे ही वार्धक्य आना शुरू होता है वैसे ही उन्हें पता लगता है कि हम तो कमजोर ही थे। तो शक्ति का जो भ्रम पैदा हो रहा था, वह शरीर से हो रहा था।

हमने वर्धमान को महावीर कहा है। इसलिए कहा है कि एक ऐसी जगह से वीर्य
की ऊर्जा पैदा हो रही है, जो कभी भी छीनी न जा सकेगी। अंतर्भाव हुआ है, शक्ति जगी है। किसी भी साधन पर निर्भर नहीं है। न धन पर, न पद पर, न शरीर पर। निर्भर ही नहीं है। स्वतंत्र है, अपनी है, तो इसको हमने आत्म-शक्ति कहा है। जो अपनी है, वह आत्म-शक्ति है। जो किसी भी ढंग से पराए से मिलती है, जिसके होने में पराए के सहारे की जरूरत पड़ती है, वह शक्ति का धोखा है।
"शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो।"
इस शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो, बाकी शेष शक्तियों पर से ध्यान हटा लो। क्योंकि उन पर ध्यान देने का अर्थ है कि इस शक्ति का विकास न हो सकेगा। और जब तक तुम निर्भर रहोगे दूसरों पर, तब तक तुम पाओगे कि तुम रोज-रोज कमजोर होते गए हो। सभी निर्भर लोग कमजोर हो जाते हैं। निर्भरता कैसी भी हो, कमजोरी लाती है।
और हम सब निर्भर हैं। और हमने अनेक तरह के उपाय कर रखे हैं, जिनमें निर्भरता से हम शक्तिशाली होने के भ्रम में होते हैं। निर्भरता धोखा है। उससे शक्ति का आभास होता है, लेकिन शक्ति कभी उपलब्ध नहीं होती।
शक्ति तो एक ही है, जिसके तुम ही मालिक हो। और जिसे कोई भी बाहरी साधन
न तो घटा सकता है और न बढ़ा सकता है। जिसे न तो तुमसे कोई छीन सकता है, न मिटा सकता है। शरीर भी समाप्त हो जाए, तो भी तुम्हारी शक्ति में रंचमात्र भेद नहीं पड़ेगा। तुम्हारी अंतर्ज्योति वैसी ही जलती रहेगी। तुम्हारे भीतर का प्रकाश वैसा ही प्रज्वलित रहेगा। तुम्हारे भीतर की जीवन-धारा में जरा सी भी क्षीणता न आएगी, उस जीवन-धारा को कोई सुखा न सकेगा। वह जीवन-धारा अनादि और अनंत है। उस सनातन स्रोत की खोज का अर्थ है, शक्ति की उत्कट अभीप्सा। और एक बहुत मजे की बात है। बाहर से जो शक्ति मिलती है, स्वभावतः उसका दिखावा बाहर होता है। तुम भीतर कमजोर होते हो, लेकिन बाहर लोगों की आंखें चौंधिया जाती हैं। जब तुम राष्ट्रपति हो जाते हो, तो सारे लोग तुम्हारे चरणों में झुकने लगते हैं। सारे लोग तुम्हारा जय-जयकार करने लगते हैं। सारे लोग मान लेते हैं कि हां, तुम्हारे पास शक्ति है। तुम भीतर बिल्कुल निर्बल और कमजोर होते हो। तुम भीतर जानते हो कि कोई शक्ति नहीं है, लेकिन सारा जगत देखता है कि शक्ति घटित हो रही है। जो शक्ति बाहर से मिलती है, बाहर के लोग उस शक्ति का अनुभव भी कर पाते हैं, क्योंकि वह उन्हीं की दी गई है। तुम सिर्फ दर्पण हो, जिसमें उन्हीं की शक्ति प्रतिबिंबित हो रही है और उन्हीं पर वापस लौट रही है। जो उन्होंने दिया है, वह उन्हें दिखाई भी पड़ता है।
लेकिन जो शक्ति भीतर से पैदा होती है, साधारणतः बाहर के लोगों को वह दिखाई नहीं पड़ती। वह केवल उनको ही दिखाई पड़ सकती है, जिनको भीतर का कोई अनुभव है। अन्यथा बाकी लोगों को दिखाई नहीं पड़ती।
महावीर तुम्हारे पास से निकल जाएं, तो तुम यह मत सोचना कि तुम पहचान लोगे। गामा निकलेगा, तुम बिल्कुल पहचान लोगे। एक सम्राट निकलेगा, तुम बिल्कुल पहचान लोगे। एक बुद्ध निकलेगा, तुम नहीं पहचान पाओगे। क्योंकि बुद्ध की शक्ति किसी ऐसे स्रोत से आ रही है, जिसको देखने की तुम्हारे पास आंख भी नहीं है। उलटा होगा, जब बुद्ध तुम्हारे पास से निकलेंगे, तुमको लगेगा कि यह कुछ भी नहीं हैं, ना-कुछ हैं। बड़ी कठिनाई होगी तुम्हें पहचानने में। और पहचानने का अर्थ होगा कि तुम्हारा जीवन रूपांतरित होगा, तो ही तुम पहचान पाओगे।
इसलिए बुद्ध को पहचानना सस्ता नहीं है। बुद्ध को पहचानने में तुम्हें बदलना पड़ेगा। इसके पहले कि तुम पहचान सको, तुम्हें नया होना पड़ेगा, तब तुम पहचान पाओगे। लेकिन कौन इतनी झंझट करता है! कि बुद्ध को पहचानने की जरूरत भी क्या है जिसमें हमको बदलना पड़े? हम जैसे हैं, वैसे ही बुद्ध हमारी पहचान में नहीं आएंगे। हम चूक जाएंगे।
हां, लेकिन राजनेताओं को, धनपतियों को, सेनापतियों को हम पहचान लेंगे। हम जैसे हैं, वैसे में ही वे पहचान में आ जाएंगे। क्योंकि हमारे और उनके बीच कोई भी फर्क नहीं है। हम एक ही जगत के अंग हैं। हमारी उनकी भाषा

एक है, हमारा उनका अस्तित्व एक है। और जो भी उनके पास है, वह हमारा दिया हुआ है। इसलिए हम उसे भलीभांति पहचानते हैं, वह हमारी ही संपदा है।
तो यह सूत्र कहता है, "शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो। और जिस शक्ति की कामना शिष्य करेगा, वह शक्ति ऐसी होगी, जो उसे लोगों की दृष्टि में ना-कुछ जैसा बना देगी।"
यह बहुत ठीक से समझ लेने की जरूरत है।
अगर आपको ऐसा लगता हो कि आप अध्यात्म की आकांक्षा कर रहे हैं, लेकिन
उस आकांक्षा के भीतर यह रस है कि जब लोग आपको पहचानेंगे तो चरणों में झुक जाएंगे, तो आप गलती में हैं। अगर यह रस है भीतर, तो आप साधु के भेष में राजनेता हैं। आपकी वृत्ति राजनीति की ही है। अगर आप यह भी सोचते हैं कि जिस दिन मैं आत्मवान बन जाऊंगा, ज्ञानी बन जाऊंगा, उस दिन लोग देखेंगे मेरा चमत्कार, अगर लोगों को चमत्कार दिखाने का ख्याल कहीं भी छिपा है, तो आप गलती से धर्म पर चल रहे हैं, उचित हो कि आप राजनीति में चलें। तब चीजें साफ और ईमानदार होंगी।
इधर मैं देखता हूं, साधुओं को देखता हूं, संन्यासियों को देखता हूं, उनकी खोज भी मौलिक रूप से राजनैतिक है। रस उनका भी यही है कि लोगों को शक्ति का पता चले। रस उनका यह नहीं है कि शक्ति उपलब्ध हो, रस यह है कि लोगों को पता चले! न भी हो शक्ति तो भी पता चल जाए, तो भी तृप्ति हो जाएगी। वास्तविक शक्ति का जब जन्म होता है, तो बहुत थोड़े लोग ही उसे पहचान पाएंगे। वे पहचानें या न पहचानें, यह आत्म-खोजी की आकांक्षा का हिस्सा नहीं है। वे पहचान लें उनका हित, वे न पहचान लें उनका अहित, लेकिन आत्म-खोजी के लिए इससे कोई संबंध ही नहीं है। उसकी खोज तो इस बात की है कि मैं शक्तिशाली हो जाऊं। दूसरे की आंख में मेरा क्या प्रतिबिंब बनता है, यह दूसरे की आंख समझे। यह उसकी समस्या है, यह मेरी समस्या नहीं है। और अगर यह ख्याल रहे तो आत्म-खोजी शून्यवत हो जाएगा। बाहर से लोग उसे पहचान ही न सकेंगे। क्योंकि बाहर के लोग जिन बातों को पहचान सकते हैं, वे उसके भीतर नहीं होंगी।
बाहर के लोग क्या पहचान सकते हैं? बाहर के लोग या तो आपके हाथ से धन चलता हो, तो पहचान सकते हैं। मेरे पास लोग आते हैं और वे कहते हैं कि फलां साधु के यहां धन की कभी भी कमी नहीं होती; हजारों लोग भी आ जाएं, तो भी भोजन चलता है; लाखों लोग भी आ जाएं, तो भी भोजन चलता है। यह व्यक्ति साधु से प्रभावित हो कर नहीं लौटा है, धन की महिमा से प्रभावित हो कर लौटा है। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि फलां साधु के पास जाते हैं, तो हाथ में ताबीज प्रकट हो जाता है, भस्म प्रकट हो जाती है। ये मदारी से प्रभावित हो कर लौटे हैं, अध्यात्म से प्रभावित हो कर नहीं लौटे हैं। यह जो शक्ति है, यह जो ताबीज या भस्में प्रकट कर रहा है, उसकी भी जो गहरे में आकांक्षा है, वह अध्यात्म नहीं है। जो प्रभावित हो रहा है, उसका भी जो प्रभावित होने में जो कारण है, वह अध्यात्म नहीं है। वे सब शक्ति के प्रदर्शन से प्रभावित हो रहे हैं। कि किसी साधु के छूने से कोई बीमार ठीक हो जाता है, तो भी हम जो प्रभावित हो रहे हैं, वह अध्यात्म नहीं है। वह कुछ और है। बाहर की भाषा हमारी समझ में आती है।
लेकिन हम बुद्ध जैसे व्यक्ति को न पहचान पाएंगे। न तो उनके छूने से कोई बीमार ठीक हो रहा है, न वह किसी बीमार को ठीक कर रहे हैं छू कर। और कभी अगर ऐसा हो भी जाता है, तो भी बुद्ध यह नहीं कहते कि ऐसा मैंने किया है। वे यही कहते हैं कि संयोग की होगी बात, तुम्हारे कर्मफल ऐसे होंगे कि यह बात होने के करीब होगी। वे यह नहीं कहते, मैंने किया है। वे यही कहते हैं, ऐसा हो गया है, इस पर ज्यादा ध्यान मत दो। न धन है, न पद है, न चमत्कार है, तो बुद्ध को आप पहचानेंगे कैसे? आपके पहचानने के सारे रास्ते ही समाप्त हो गए।
मैं एक यात्रा में था। मेरे कंपार्टमेंट में एक सज्जन और थे। हम दोनों ही थे। स्वभावतः उन्हें चुप रहना मुश्किल हो गया, कुछ बात चलानी चाही। लेकिन मैंने हां-ना में उत्तर दिए, तो बात ज्यादा चली नहीं। तो फिर उन्होंने पान निकाला कि आप पान लें, मैंने कहा कि पान मैं खाता नहीं। तो

फिर उन्होंने सिगरेट निकाली कि आप सिगरेट लें, मैंने कहा कि सिगरेट मैं पीता नहीं। तो उन्होंने कहा, यह बताइए कि आपसे मैत्री बनाने का कोई उपाय है या नहीं। क्योंकि अगर मैं पान लेता तो मैत्री बनती, सिगरेट लेता तो मैत्री बनती। मैंने उनसे पूछा कि पान और सिगरेट के अतिरिक्त आपको मैत्री बनाने का कोई और उपाय पता है या नहीं? उनकी भाषा खतम हो गई थी। वे जो उपाय कर सकते थे, वह समाप्त हो गया, तो लगा कि अब कोई संबंध निर्मित नहीं हो सकता।
बुद्ध से आप कैसे संबंध निर्मित करेंगे? क्योंकि शक्ति की सारी भाषा व्यर्थ है। अगर आप शून्य को भी शक्ति मानते हों! जानते हों कि किसी का शून्यवत हो जाना इस जगत में सबसे बड़ा चमत्कार है। ना-कुछ हो जाना इस जगत में सबसे बड़ी घटना है। क्योंकि क्षुद्रतम आदमी भी मानता है कि मैं कुछ हूं। क्षुद्रतम आदमी भी मानता है कि मैं कुछ हूं, तो इस जगत में मैं कुछ हूं, यह मानना तो सामान्य बात है। लेकिन यह अनुभव कर लेना कि मैं ना-कुछ हूं, शून्यवत हूं, बड़े से बड़ा चमत्कार है।
यहूदी फकीर, हसीद-रहस्य का जन्मदाता था बालसेम। तो बालसेम के संबंध में किसी ने आ कर उसके गांव में पूछा कि हमारे गांव में भी एक रबी है, वह बड़ा चमत्कारी है; और तुम बालसेम को इतना पूजते हो, बालसेम का चमत्कार क्या है? उस गांव के लोगों ने कहा कि पहले तो हम व्याख्या कर लें चमत्कार की। क्या तुम इस बात को चमत्कार कहोगे कि अगर हमारा बालसेम, हमारा फकीर परमात्मा से जो कुछ कहे और परमात्मा को उसी वक्त करना पड़े, और परमात्मा उसी वक्त करे, तो तुम उसको चमत्कार मानोगे? उन्होंने कहा कि निश्चित ही, यही तो चमत्कार है। यही तो हमारा फकीर, जो भी कहता है, कहे भर कि परमात्मा पूरा करता है। तो उस गांव के लोगों ने कहा कि हमारा बालसेम भी चमत्कारी है, लेकिन चमत्कार जरा उलटा है--परमात्मा जो भी कहे, बालसेम करता है। बालसेम कहता ही नहीं। अगर तुम इसको भी चमत्कार समझ सकते हो, तो हमारा बालसेम चमत्कारी है। परमात्मा जो भी कहे, जिस क्षण भी कहे, वह करता है। और उसने अब तक परमात्मा से कुछ भी नहीं कहा है, इसलिए दूसरी बात का हमें कुछ पता नहीं है। और हम उससे कहते भी हैं, तो वह कहता है, मैं परमात्मा को आज्ञा देने वाला कौन? मैं ना-कुछ हूं। बस उसकी आज्ञा पूरी हो जाए तो पर्याप्त है। अध्यात्म का खोजी जिस शक्ति को खोज रहा है, वह शून्यता की शक्ति है।
आप जिस शक्ति को खोज रहे हैं बाहर के जगत में, वह शून्यता की शक्ति नहीं है। वह पदार्थ की, वस्तु की, धन की, पद की, किसी साधन के ऊपर निर्भर शक्ति की खोज है। और जब कोई व्यक्ति ना-कुछ होने को तैयार हो जाता है, तो उसके भीतर इस ना-कुछ की भाव-दशा में जो बीज टूटता है खुद की आत्मा का, और जो अंकुरण होता है--उस शक्ति की उत्कट अभीप्सा करो।
ग्यारहवां सूत्र है, "शांति की अदम्य अभीप्सा करो।"
ठीक शक्ति के बाद शांति की अभीप्सा को जोड़ा है। क्योंकि बाहर से जो भी शक्ति मिलती है, वह अशांति लाती है। धन से शक्ति मिलती है, लेकिन साथ में अशांति मिलती है। धनी आदमी और शांत पाना बड़ा मुश्किल है। गरीब आदमी कभी- कभी शांत मिल सकता है, लेकिन धनी आदमी कभी शांत नहीं मिलता। और जिनको शांत होना पड़ा है, वे धन छोड़ कर गरीब हो गए हैं। राजनैतिक पद पर जो आदमी है, वह कभी शांत नहीं होता। हो नहीं सकता। शक्ति बाहर से जब भी आती है, तो साथ में अशांति की छाया लाती है। और अगर आप शांत रहना चाहते हैं, तो बाहर की शक्ति से आपका संबंध नहीं जुड़ पाएगा।
एक मेरे मित्र हैं। एक राज्य के मिनिस्टर हैं, अब चीफ मिनिस्टर होना चाहते हैं! तो वे मुझसे हमेशा आ कर कहते हैं कि शांति का कोई उपाय बताइए। तो मैं उनको कहता हूं कि तुम पहले चीफ मिनिस्टर हो लो। अभी तो तुम अशांति का उपाय पूछो। अभी तुम शांति का उपाय ही मत पूछो। नहीं तो शांति का तुमने उपाय किया तो एक बात पक्की है कि चीफ मिनिस्टर तुम न हो पाओगे। यह तुम पहले पक्का कर लो कि चीफ मिनिस्टर नहीं होना, तो मैं तुम्हें शांति का उपाय बता दूं। अन्यथा तुम पीछे मुझसे मत कहना कि चुका दिया, कि खराब कर दी जिंदगी... तुम पहले चीफ मिनिस्टर हो ही लो। और तुम जब अच्छी तरह अशांत हो जाओगे, तो शांति की प्यास भी पैदा होगी। जब कोई आदमी ठीक से मेहनत करता है तो भूख

लगती है। ऐसे ही जब कोई ठीक से अशांत होता है तो शांति की भूख लगती है। अभी, मैंने कहा, तुम्हारी भूख भी असली नहीं है। अभी भूख भी तुमने किताबों से पढ़ ली है, अभी तुम शांति के भी लोलुप हो, अभी शांति भी तुम्हारा लोभ है। अभी तुम चाहते हो कि चीफ मिनिस्टर भी हो जाओ और शांत भी हो जाओ।
और मैंने पूछा कि तुम अगर ठीक से गहरे में खोज करोगे, तो तुम्हें लगेगा कि तुम अभी शांति भी इसलिए चाहते हो, ताकि सुविधा से चीफ मिनिस्टर हो जाओ। उन्होंने मुझसे कहा कि आपने कैसे पहचाना! यही है बात। क्योंकि इतनी दौड़-भाग करनी पड़ रही है कि अगर चित्त थोड़ा शांत रहे तो मैं सफल हो सकता हूं। और चित्त इतना अशांत हो जाता है कि रात मुझे नींद भी नहीं आती, परेशान हो जाता हूं, बीमार भी पड़ जाता हूं। तो दूसरे मुझसे आगे निकले जा रहे हैं। न उनको नींद की तकलीफ है, न वे बीमार होते हैं, सुबह से फिर ताजे हैं, फिर दौड़-धूप में लगे हैं, और मैं थक मरता हूं! इसीलिए तो आपके पास आया हूं कि कोई ऐसी विधि बताएं कि मैं भी शांत हो सकूं, तो टक्कर ठीक से ले पाऊं।
अब शांति को भी हम अशांति की सेवा में नियोजित करना चाहते हैं! हम शांति भी इसलिए चाहते हैं ताकि ठीक से अशांत हो सकें, ताकि हमारी अशांति ज्यादा कुशल हो जाए। हम शांति भी इसलिए चाहते हैं ताकि उससे शक्ति मिल सके। लेकिन शक्ति से मिलती है अशांति।
तो इसको लक्षण समझना। जिस शक्ति से अशांति मिले, समझ लेना कि वह बाहर
की है और अभीप्सा के योग्य नहीं है। जिस शक्ति से शांति जन्मती हो, वही भीतर की है और वही अभीप्सा के योग्य है। बाहर की शक्ति अर्थात अशांति, भीतर की शक्ति अर्थात शांति।
इसीलिए सूत्र ठीक शक्ति के बाद है, "शांति की अदम्य अभीप्सा करो।"
सिर्फ शक्ति की अभीप्सा करोगे तो खतरा है। अपने को धोखा दे सकते हो, सोच सकते हो कि यह मैं भीतर की शक्ति की अभीप्सा कर रहा हूं। लेकिन वह भीतर की शक्ति की अभीप्सा भी, हो सकता है, बाहर की शक्ति की ही अभीप्सा हो। वह भी दौड़ हो, वह भी शायद प्रतियोगिता हो। वह भी शायद किसी दूसरे ने आत्म-ज्ञान पा लिया है, तो उसको नीचे दिखाना हो। कि ऐसा कैसे हो सकता है कि मेरे रहते और कोई दूसरा आत्मज्ञानी हो गया! तो मैं भी आत्मज्ञानी हो कर बता दूंगा। महावीर के पास एक बहुत बड़ा धनिक आया, एक नगर सेठ। और उसने आ कर महावीर
को कहा कि मुझे सामयिक खरीदनी है, मुझे ध्यान खरीदना है। और जो भी आप मूल्य कहें, मैं चुकाने को तैयार हूं। महावीर ने कहा, यह असंभव है, ध्यान खरीदा नहीं जा सकता। खरीदने वाली वृत्ति वाला व्यक्ति ध्यान को समझ भी नहीं सकता, पाना तो बहुत दूर है। तुम्हारा सब धन भी नहीं खरीद सकेगा। उस धनी ने कहा कि शायद तुम्हें पता नहीं कि कितना धन मेरे पास है! तुम बोलो, उससे दुगुना भी दूंगा। तुम सिर्फ बोलो भर कि इतना लगेगा।
वह आदमी एक ही भाषा जानता होगा--धन की। और उसने जीवन में सब धन से खरीदा था, तो उसकी कुछ गलती नहीं है, क्षमा योग्य है। उसने सब खरीद लिया था। सुंदर स्त्री चाहिए तो धन से मिल गई थी। बड़ा महल चाहिए तो धन से मिल गया था। बड़ा चिकित्सक चाहिए तो धन से मिल गया था। धन से क्या नहीं खरीदा जा सकता? उसने सब खरीद लिया था। तो उसने सोचा होगा कि ध्यान भी ऐसी क्या बला है जो धन से न मिल जाए! जब सब धन से मिलता है, तो यह भी मिल जाएगा।
लेकिन तकलीफ असल में ध्यान पाने की थी ही नहीं। गांव का एक गरीब आदमी ध्यानी हो गया था, उसी के गांव का! और महावीर ने कहा था कि यह उपलब्ध हो गया ध्यान को। इससे अड़चन थी। महावीर को पता चल गया था कि धनी को अड़चन क्या हो रही है।
तो महावीर ने कहा कि तू ऐसा कर, कि तेरे गांव में ही एक गरीब आदमी है, उसको ध्यान उपलब्ध हो गया है, तू उसी से खरीद ले, तू उसी के पास चला जा। और वह गरीब आदमी है, शायद पैसे के लोभ में आ जाए। तू उससे खरीद ले, शायद बेच दे। तो उसने कहा कि इसमें क्या दिक्कत है, यह तो बिल्कुल आसान है। अगर वह ध्यान न बेचे, तो मैं उस गरीब आदमी को पूरा का पूरा ही खरीद सकता हूं। इसमें कोई अड़चन ही नहीं।

अब उसकी भाषा बिल्कुल ठीक है, क्योंकि जब हम पूरे गरीब आदमी को ही खरीद सकते हैं, तो ध्यान में क्या रखा है। मगर गरीब आदमी खरीद लिया जाए तो भी ध्यान नहीं खरीदा जा सकता। वह गरीब आदमी उठा कर, जंजीरों में डाल कर, घर में भी पटक दिया जाए, तो भी ध्यान जंजीरों में नहीं पड़ जाएगा। भाषा की मुश्किल है। वह धन की भाषा ही समझता है।
वह गया उस गरीब आदमी के पास। और उसने कहा, जो तुझे चाहिए तू बोल, मैं सब देने को तैयार हूं, लेकिन ध्यान मुझे दे दे। और अगर तूने ध्यान न दिया, तो मैं सैनिक ले कर आया हूं, तुझे उठा लेंगे। उस गरीब आदमी ने कहा कि तुम मुझे उठा लो, वही आसान है। ध्यान मैं तुम्हें कैसे दूं? ध्यान कोई वस्तु है, जो मैं तुम्हें दे दूं! ध्यान तो अनुभव है। तुम मुझे ले चलो, लेकिन मेरे अनुभव को कैसे मैं तुम्हें दे दूं? अनुभव तो तुम्हें तुम्हारा ही करना पड़ेगा। एक शक्ति है, जो दूसरे से मिल सकती है। और एक शक्ति है, जो स्वयं के अनुभव से ही मिल सकती है। जो दूसरे से मिलती है, उसके साथ अशांति रहेगी, क्योंकि उसके साथ भय रहेगा। जो दूसरे ने दी है, वह दूसरा छीन सकता है। और जो दूसरे ने दी है, वह मेरी है नहीं--चाहे मैंने चुराई हो, चाहे मैंने फुसला कर मांगी हो, चाहे दान में प्राप्त की हो, चाहे शक्ति के दवाब से ली हो-- किंतु वह मेरी नहीं है, वह किसी दूसरे की है। और जो दूसरे की है, वह दूसरे की ही रहती है, इसलिए भय लगा रहता है। भय पीछे-पीछे सरकता रहता है।
भय से अशांति पैदा होती है। जो छिन सकता है, उससे चिंता पैदा होती है।
और फिर जितनी बाहर की शक्ति इकट्ठी होती जाती है, उतना ही उसके अनुपात में भीतर की निर्बलता दिखाई पड़ती है। इससे अशांति पैदा होती है।
इसलिए कोई गरीब आदमी इतनी गरीबी का अनुभव नहीं करता, जितना अमीर आदमी
कर सकता है, अगर उसमें अक्ल हो। नालायक हो, बे-अक्ल हो तो उसे पता ही नहीं चलता। थोड़ी सी भी बुद्धि हो तो अमीर आदमी को जिस तरह की गरीबी का पता चलता है, उस तरह की गरीबी का पता गरीब आदमी को कभी नहीं चल सकता। क्योंकि कंट्रास्ट नहीं है, तुलना नहीं है। अमीर आदमी के पास धन का ढेर लग जाता है और भीतर वह देखता है, हृदय भिखारी का पात्र है, वहां कुछ भी नहीं है। गरीब आदमी के हाथ में भी भिक्षा का पात्र है, भीतर भी भिक्षा का पात्र है। तुलना में विरोध नहीं है। उसे पता नहीं चलता कि वह कितना गरीब है। कितना गरीब है आदमी, यह अमीर हो कर ही पता चलता है।
इसलिए मैं निरंतर कहता हूं कि महावीर जब साम्राज्य को छोड़ कर गरीब होते हैं, बुद्ध जब सम्राट के सिंहासन से उतर कर रास्ते के भिखारी बनते हैं, तो उन्हें जिस गरीबी का अनुभव हुआ है, वह किसी दूसरे भिखारी को नहीं हो सकता है। उनकी गरीबी में अमीरी का बड़ा हाथ है, उनकी गरीबी शाही है, उसमें सम्राट होने का अनुभव छिपा है। और उन्होंने सम्राट हो कर जान लिया कि इससे भी भीतर की गरीबी नहीं मिटती, बल्कि प्रकट हो कर दिखाई पड़ती है। तो जितनी बाहर की शक्ति इकट्ठी होगी, उतनी भीतर की निर्बलता प्रकट हो
कर दिखाई पड़ेगी। उससे चिंता पैदा होगी। इसलिए ध्यान रहे, गरीब आदमी उतना चिंतित नहीं होता, जितना अमीर आदमी चिंतित होता है।
और अगर आज अमरीका में सबसे ज्यादा चिंता है, तो उसका कारण यह नहीं है
कि अमरीका का कोई नैतिक पतन हो गया है। उसका कुल कारण यह है कि अमरीका आज सबसे ज्यादा धनी है। अमरीका में चिंता स्वाभाविक है। और आप सब भी कोशिश में लगे हैं कि मुल्क हमारा धनी हो, होना ही चाहिए, तो आप ध्यान रखना कि वह सारी चिंता आपकी भी हो जाएगी। धन के साथ चिंता आएगी ही। गरीबी में एक निश्चिंतता है, क्योंकि गरीबी का कोई पता नहीं है।
मैं कोई यह नहीं कह रहा हूं कि आप गरीब बने रहें। मैं तो कह रहा हूं कि अच्छा है, आपको गरीबी का पता चले, तो अध्यात्म का जन्म हो। तो मैं तो कहता हूं कि अमीर होना धर्म के लिए अनिवार्य है। जितना समाज समृद्ध होगा, उतने ही विराट धर्म के जन्म की संभावना है।
गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता। कोई उपाय नहीं है। गरीब आदमी के धर्म में भी जो वासना होती है, वह बाहर की शक्ति की ही होती है। वह प्रार्थना भी करता है तो धन के लिए, वह पूजा भी करता है तो धन के लिए। गरीब की पूजा और प्रार्थना में मांग पदार्थ की ही बनी रहती है। अमीर को पदार्थ

तो उपलब्ध होता है, उसकी मांग का कोई सवाल नहीं है, वह उसके पास है। अब उसमें और जोड़ने का कोई प्रयोजन नहीं है। और उससे एक महत चिंता पैदा होती है, एक गहन चिंता पैदा होती है, कि अब क्या? इसलिए आज अमरीका जितना विक्षिप्त है, जमीन पर कोई राष्ट्र नहीं है। मगर यह सौभाग्य है। क्योंकि इस विक्षिप्तता का अर्थ ही यह हुआ कि धन गरीबी को प्रकट करता है, शक्ति निर्बलता को प्रकट करती है, शिक्षा भीतर के अज्ञान को उघाड़ती है।
बाहर हम जो पाते हैं, उससे विपरीत भीतर अनुभव में आता है, तो तनाव पैदा होता है, संताप पैदा होता है। बाहर जो भी हम उपलब्ध कर लेंगे, वह अशांति को जन्म देगा। इसलिए शक्ति की अभीप्सा के साथ-साथ शांति की अदम्य अभीप्सा जारी रहनी चाहिए। तो ही तुम्हारी शक्ति भीतर की शक्ति बन पाएगी।
शक्ति धन शांति यह तुम्हारी खोज रहे। और जहां भी तुम पाओ कि तुम्हारी शक्ति शांति के विपरीत जाती है, समझना कि वह गलत शक्ति है। उसे तुम छोड़ देना। शांति को आधार रखना। जहां भी तुम्हारी शक्ति शांति को खंडित करने लगे, शक्ति को छोड़ देना और शांति को पकड़ना। शांति को सूत्र बना लेना, कसौटी बना लेना--निकष, उस पर तौल लेना! जो शक्ति शांति की कसौटी पर सही उतरे, समझना, वही सोना है। और जो शक्ति शांति की कसौटी पर खरी न उतरे, मिट्टी समझ कर छोड़ देना। उसे क्षण भर भी पास मत रखना।
अगर यह शांति का बोध बना रहे, तो हम कभी भी न भटकेंगे। शांति दिशा-सूचक यंत्र का काम करती है। जिस तरफ शांति बताए, समझना कि वहीं दिशा है। और जिस तरफ शांति की सुई इशारा न करती हो, वह गंतव्य नहीं है, वहां से अपने को हटा लेना। शक्ति धोखे में न डाल दे, इसलिए शांति को स्मरण रखना जरूरी है।
"जिस शांति की कामना तुमको होगी, वह ऐसी पवित्र शांति है, जिसमें कोई विघ्न न डाल सकेगा। और जिस शांति के वातावरण में आत्मा उसी प्रकार विकसित होगी, जैसे शांत सरोवर में पवित्र कमल विकसित होता है।"
जिस शांति की कामना तुमको होगी, वह ऐसी पवित्र शांति होगी, जिसमें कोई विघ्न न डाल सकेगा। ध्यान रहे, जिसमें कोई विघ्न डाल सके, वह शांति नहीं है। इसे समझ लेना जरूरी है।
अक्सर लोग कहते हैं कि हमारी शांति में विघ्न डाल दिया। लेकिन अगर दूसरा आपकी शांति में विघ्न डाल सकता है, तो वह शांति दूसरे की दी हुई है। क्योंकि हम उसी में विघ्न डाल सकते हैं, जो दी हुई है, अन्यथा विघ्न नहीं डाल सकते। अगर आप शांत बैठे हैं, और एक बच्चा वहां शोरगुल कर रहा है, और आप कहते हैं कि वह विघ्न डाल रहा है, तो इसका अर्थ हुआ यह कि बच्चा अगर चुप बैठे तो वह आपको शांति देता है, ऊधम करे तो शांति छीन लेता है। वह शांति आपकी नहीं है, बच्चे की है। आप कहते हैं, बाजार में शोरगुल होता है तो मेरा ध्यान भ्रष्ट हो जाता है। तो ध्यान है ही नहीं। क्योंकि जिस ध्यान को बाजार भ्रष्ट कर देता है, उस ध्यान की क्या कीमत है! दो कौड़ी का भी नहीं है। वह बाजार का ही दिया हुआ है। आप कहते हैं, जंगल में जा कर बड़ा ध्यान लगता है। वह ध्यान वगैरह नहीं है, जंगल का दान है, जंगल की देन है। जंगल ने जो दिया है, वह आपका नहीं है। बाजार जो छीन लेता है, वह आपका नहीं है।
तो आप वर्षों बैठे रहे जंगल में, पहाड़ पर, आप भ्रम में हैं, जैसे ही उतरेंगे बाहर, पाएंगे फिर अशांत हो गए। और ज्यादा अशांत हो जाएंगे, जितने पहले कभी भी नहीं हुए थे। विघ्न जिसमें कोई डाल सके, उसका अर्थ ही हुआ कि वह आपका नहीं है।
उस शांति को खोजना, जिसमें कोई विघ्न न डाल सके। इसका यह अर्थ हुआ कि विघ्न से बच कर मत खोजना, विघ्न के बीच ही खोजना। बच्चा शोर न भी मचा रहा हो, तो और मोहल्ले के बच्चों को इकट्ठा कर लेना और कहना कि तुम सब शोर मचाओ, मैं ध्यान करता हूं। और जिस दिन तुम पाओ कि बच्चे शोर कर रहे हैं और तुम्हारा ध्यान चल रहा है, उस दिन तुम समझना कि यह तुम्हारा है। पहाड़, हिमालय मत खोजना, ठीक बीच बाजार में बैठ कर ध्यान करना। क्योंकि पहाड़ धोखा दे सकता है। पहाड़ शांति देता है, इसलिए धोखा दे सकता है। पहाड़ से बचना, बाजार में ही शांति खोजना। जिस दिन बाजार में ही तुम शांति को पा लोगे, उस दिन अब तुमसे कोई भी छीन न सकेगा। क्योंकि जो छीन सकता था, उसी के बीच तुमने पा लिया है।

इसलिए घर छोड़ कर मत भागना। गृहस्थ होते हुए संन्यासी हो गए अगर तुम,
तो ही संन्यास सच्चा है। अगर घर छोड़ा, पत्नी छोड़ी, बच्चे छोड़े, धन छोड़ा, और फिर तुम संन्यासी हुए, तो संन्यास जो है, आरोपित है, झूठा है, कंडीशनल है। अगर पत्नी फिर वापस दे दी जाए, तो वह एक रात में तुम से तुम्हारे संन्यास को छीन लेगी। और जल्दी छीन लेगी। देर न लगेगी।
इसीलिए तथाकथित संन्यासी बड़ा डरा रहता है। कहीं स्त्री न छू जाए, डरा हुआ है। क्यों डरा हुआ है इतना? इतना भयभीत संन्यास कहां ले जाएगा? इतना निर्बल संन्यास क्या परिणाम लाएगा? इससे आत्मा सबल हुई कि निर्बल हो गई? यह हम कभी सोचते ही नहीं!
एक आदमी स्त्री को छूने से डरता है। हम सोचते हैं, बड़ा आत्मवान है। और स्त्री को छूने से डर रहा है! स्त्री छू जाए तो उनका ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है! यह तो हद की निर्बल आत्मा हो गई। इस निर्बल आत्मा की क्या उपलब्धि है? ऐसे कहता रहता है कि स्त्री तो हड्डी-मांस का ढेर है। और छूने से डरता भी है! तो यह जो ऊपर-ऊपर कह रहा है, यह केवल आयोजन है अपने को समझाने का, भीतर रस मौजूद है। छू ले तो रस का जन्म हो जाए। रस का जन्म हो जाए तो उसे लगेगा कि भीतर पतन हो गया है।
लेकिन कोई स्त्री किसी पुरुष में रस पैदा नहीं करती और न कोई पुरुष किसी स्त्री में रस पैदा करता है। रस होता है, तो उसे बाहर खींच लेती है। यह सहारा है आत्मदर्शन का। अगर आपके भीतर वासना है, तो स्त्री की मौजूदगी उस वासना को बाहर ले आती है। तो स्त्री सिर्फ दर्पण का काम कर रही है, स्त्री सिर्फ निदान कर रही है, वह एक डायग्नोसिस कर रही है कि आपके भीतर क्या छिपा है। उससे भागना क्या! उसे सदा पास रखना अच्छा है, क्योंकि पता चलता रहे कि भीतर क्या है। और उसके पास रहते अगर वासना खो जाए, तो ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ, तो शक्ति उपलब्ध हुई, जो आंतरिक है।
जीवन को विपरीत से भाग कर अगर आप सम्हालते हैं, तो वह सम्हाला हुआ होगा, वह हाट-हाउस प्लांट होगा। तो आप एक कांच का घर बना सकते हैं, उसमें वातानुकूलित व्यवस्था कर सकते हैं, कोई भी पौधा उसमें सम्हाला रह सकता है। लेकिन भूल कर भी इस पौधे को धूप में, रोशनी में, हवा में मत निकालना। यह मर जाएगा। तो आपके संन्यासी हाट-हाउस प्लांट हैं। उनकी व्यवस्था है। उस व्यवस्था के भीतर वे संन्यासी हैं। उनकी व्यवस्था से जरा ही उनको बाहर लाओ प्रकृति की दुनिया में, वे मिट्टी साबित होंगे। मिट्टी के शेर हैं, जरा सा पानी पड़ा कि बह जाएंगे। पानी से इतने डरे हुए हैं, असली शेर हो नहीं सकते। असली शेर तो पानी का आनंद ले लेगा और प्रफुल्लित हो जाएगा और शक्तिशाली हो जाएगा।
विपरीत से समृद्ध होने की कला आनी चाहिए, विपरीत से बचना कमजोरी है।
तो जिस शांति में कोई विघ्न डाल सके, उस शांति की कामना ही मत करना। वह काम की भी नहीं है, वह तो और मुसीबत है। सच तो यह है कि वह और भी अशांति का कारण है।
इसलिए किसी-किसी घर में अगर कोई आदमी दुर्भाग्य से धार्मिक हो जाए, तो
वह पूरे घर की भी अशांति का कारण हो जाता है और खुद भी बहुत अशांति, उपद्रव करवाता है। अगर आप ध्यान करने लगें--एक मुसीबत पूरे परिवार की हो गई। क्योंकि आप अपने ध्यान का उपयोग अब पूरे परिवार की निंदा के लिए करेंगे। अब जरा सी बात आपको अशांत करेगी। और अशांति का जुम्मा आप दूसरे पर डालेंगे कि बर्तन क्यों इतनी जोर से गिरा, कि बच्चे ने आवाज क्यों लगाई, कि कोई रोया क्यों, कि किसी ने रेडियो क्यों खोल दिया? आप शांत होने चले थे कि दुनिया भर की अशांत होने की व्यवस्था आपने ही इकट्ठी कर ली!
रेडियो चलते रहेंगे, बच्चे रोएंगे भी, हंसेंगे भी, बर्तन छूट कर गिरेगा भी--इस सबकी गहन स्वीकृति होनी चाहिए। और इसकी मौजूदगी में आपको शांत होना चाहिए। विघ्न से घबड़ाएं न, विघ्न को साधना का क्षेत्र समझें। तो जो शांति उपलब्ध होगी, वह आपकी है। उस पर भरोसा किया जा सकता है। अगर आप सच में ही धार्मिक आदमी बनेंगे तो घर में आपके कारण शांति बढ़ेगी। अगर आप झूठे धार्मिक आदमी बन गए--जैसे कि मुल्क भर में हैं--तो घर-घर अशांत हो जाएगा। एक आदमी घर में धार्मिक हो जाए तो घर भर को पागल कर सकता है।

एक महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि कोई भी तरह बचाओ, मेरे पति धार्मिक हो गए हैं। हम घर भर मुसीबत में पड़ गए हैं। फिर वे साधारण पति भी न थे, सरदार थे। मैंने कहा कि क्या कर रहे हैं वे? ऐसी क्या तकलीफ आ गई? तो वह कहने लगी कि दो बजे रात से उठ कर कीर्तन करते हैं, तो कोई सो ही नहीं पा रहा है। बच्चों की परीक्षा करीब आ रही है, बच्चे सिर पीट रहे हैं। मगर वे हैं धार्मिक और वे दो बजे रात से कीर्तन करते हैं।
तो मैंने उनके पति को बुलाया। मैंने कहा कि यह क्या कर रहे हैं? वे कहने लगे कि ब्रह्म-मुहूर्त में कीर्तन करता हूं। दो बजे रात ब्रह्म-मुहूर्त! वे कहने लगे कि ब्रह्म-मुहूर्त में सबको उठना ही चाहिए, इसमें बाधा का क्या सवाल है? मुझसे बोले कि आप उन लोगों की बातों में मत पड़ना, सब अधार्मिक हैं, दुष्ट हैं--कीर्तन में बाधा डालते हैं, धार्मिक कार्य में अड़चन खड़ी करते हैं।
अब वे सारे घर की निंदा में हैं। और जिससे भी कहेंगे कि ब्रह्म-मुहूर्त में कीर्तन करो, तो किसी की हिम्मत नहीं है उनसे कहने की कि आप बंद करो। क्योंकि कौन अधार्मिक बनेगा! तो मैंने उनसे कहा कि ऐसा करो, बंद न करो, ब्रह्म-मुहूर्त को थोड़ा नीचे सरकाओ। दो बजे जरा ज्यादा ब्रह्म-मुहूर्त है, थोड़ा तीन बजे करो। फिर और सरका कर चार बजे करना, फिर पांच बजे करना। कहने लगे कि आप क्या कहते हैं? कहां तक इसको सरकाना है?
मैंने कहा कि मैं ब्रह्म-मुहूर्त उसको कहता हूं, जब तुम्हारे भीतर छिपे हुए ब्रह्म की आंख खुले। और किसी उपाय को मैं ब्रह्म-मुहूर्त नहीं कहता। तुम सोए रहना, जब नींद अपने आप खुले। अभी तुम अलार्म भर कर उठते हो, यह ब्रह्म-मुहूर्त नहीं है, अलार्म-मुहूर्त है। तुम इसको बंद करो। जब तुम्हारे भीतर जो ब्रह्म छिपा है, उसकी जब नींद खुले, तब तुम ब्रह्म-मुहूर्त समझना। वे कहने लगे, आप मुझे भ्रष्ट कर देंगे! मैं तो फिर नौ बजे के पहले उठ ही नहीं सकता। तो मैंने कहा, जब तुम नहीं उठ सकते, तो बच्चों का भी थोड़ा ध्यान करो। और तुम्हें अध्यात्म की खोज पैदा हो गई, उनको अभी पैदा नहीं हुई, उनको क्यों परेशान कर रहे हो? और तुम्हारी वजह से ये बच्चे अध्यात्म से सदा के लिए सचेत हो जाएंगे। ये बच्चे कभी भूल कर धर्म की तरफ न जाएंगे। तुम इसके जिम्मेवार रहोगे। क्योंकि तुम उनकी जिंदगी खराब किए दे रहे हो। जब भी कोई धर्म की बात करेगा, ये समझेंगे कि दो बजे रात का ब्रह्म-मुहूर्त है। इस बात में पड़ना ही नहीं। और तुम इनको निंदित कर रहे हो और पागल तुम हो। और तुम कह रहे हो कि ये तुम्हें अशांत करते हैं, बाधा डालते हैं; अशांत तुम इन्हें कर रहे हो।
यह जो धर्म है, यह करीब-करीब विक्षिप्त लोग इसमें बड़े आकर्षित होते हैं। क्योंकि धार्मिकता की आड़ में विक्षिप्तता को छिपाना इतना आसान है कि जिसका हिसाब नहीं। और हजार तरह के रोग लोग धर्म की आड़ में छिपा लेते हैं। अगर आपको गंदा रहने में रस है--और मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि ऐसे कुछ लोग हैं, जिनको शरीर की गंदगी में वासना है--तो फिर आप कोई ऐसा मार्ग चुन लें। कोई जैनों के साधु हो जाएं, जिसमें नहाने वगैरह की मनाही है। तो फिर आप गंदगी में जो मजा लेंगे! और आपके पास अगर कोई भी थोड़ा स्वच्छ आदमी आ गया, तो आप उसको निंदा से देख सकते हैं। नहाया-धोया तो वासनातुर है, क्योंकि शरीर की इतनी सजावट कर रहा है। नहाना-धोना शरीर की सजावट है। गंदे होना, दातुन न करना, मुंह से बास निकल रही हो, ये पुण्य-कर्म हैं!
पागल इस तरह के लोग हैं। पश्चिम में इनका इलाज होता है। यहां वे कोई तरकीब खोज कर धार्मिक हो जाते हैं। पश्चिम में कोई आदमी अगर ऐसी हरकत करे, तो उसका इलाज होने के लिए फौरन वे चिकित्सक के पास ले जाएंगे, मनोवैज्ञानिक के पास ले जाएंगे, कि इसमें कुछ गड़बड़ हो गई। लेकिन यहां कोई गड़बड़ नहीं हुई। यहां उसको हम स्वीकार कर लेंगे।
जुंग ने कहा है कि हिंदुस्तान में पागल आदमी कम हैं, उसका कारण यह है
कि हिंदुस्तान में पागलों को और ढंग के उपाय भी हैं। वे पागल भी रह सकते हैं और बिना जाहिर हुए!
अब अगर कोई आदमी खाना खा रहा है और साथ में पाखाना भी कर रहा है तो हम उसे परमहंस कहते हैं। दुनिया में कहीं भी उसको फौरन जेलखाने में डालेंगे।

हम कहते हैं, इसको तो अभेद उपलब्ध हो गया, अद्वैत, यह परमहंस है, इसको कोई भेद ही नहीं है। यह आदमी विक्षिप्त है, यह आदमी पागल है, इसकी चिकित्सा की जरूरत है। इसने बुद्धि खो दी है। यह बुद्धि के पार नहीं गया, बुद्धि से नीचे गिर गया। लेकिन हम इसको... हम इसका सम्मान करेंगे!
ध्यान रहे, झूठा धर्म आपके भीतर की अशांति को बढ़ावा देगा, विक्षिप्तता को बढ़ावा देगा। और झूठा धर्म सदा ही दूसरों को दोषी ठहराएगा। आप सदा ठीक हैं, दूसरे सदा दोषी हैं। लेकिन सच्चा धर्म किसी को दोषी नहीं ठहराता। दूसरे जैसे हैं, वैसे हैं। उनको वैसा होने का हक है, वैसे होने की स्वतंत्रता है।
एक बच्चे को हक है कि वह गीत गाए, नाचे। यह बच्चा होने का अधिकार है। आपकी जरूरत है कि आप ध्यान कर रहे हैं, लेकिन बच्चे की जरूरत है कि नाचे- कूदे, चिल्लाए। आप मजे से ध्यान करिए। बच्चा तो आपसे नहीं कहता कि आप ध्यान करके मुझे बाधा दे रहे हैं और आपके ध्यान में बैठने से मेरे खेलने में बाधा पड़ती है। तो आप क्यों कह रहे हैं कि तेरे खेलने से हमारे ध्यान में बाधा पड़ती है? बच्चे को खेलने दें, आप ध्यान करें। आप यह ख्याल ही छोड़ दें कि कोई आपके ध्यान में बाधा डाल सकता है। यह ख्याल के छूटते ही आप ध्यान की ठीक दिशा में गति करने लगेंगे। और जब भी कोई आपको लगे कि विघ्न डाल रहा है, तब तत्क्षण आप समझना कि आप ही कोई भूल कर रहे हैं, नहीं तो विघ्न नहीं पड़ सकता।
इसलिए यह सूत्र कहता है, "जिस शांति की कामना तुमको होगी, वह ऐसी पवित्र शांति है, जिसमें कोई विघ्न न डाल सकेगा। और उस शांति के वातावरण में आत्मा उसी प्रकार विकसित होगी, जैसे शांत सरोवर में पवित्र कमल विकसित होता है।"
और उस शांत ध्यान की अवस्था में ही तुम्हारी आत्मा का कमल खिलेगा, जैसे शांत झील में कमल खिलता है। फिर तुम्हें उसे खिलाने की कोशिश न करनी पड़ेगी, वह खिलना शुरू हो जाएगा। बाहर से मुक्त शांति, बाहर से मुक्त शक्ति, बस दो अनिवार्यताएं हैं। और तुम्हारे जीवन का कमल खिलना शुरू हो जाएगा। बारहवां सूत्र, "स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो। परंतु ये संपत्तियां केवल शुद्ध आत्मा की हों और इसलिए सभी शुद्ध आत्माएं इसके समान रूप से स्वामी हों और इस प्रकार ये सभी की (जब वे सब संयुक्त हो) संपत्ति हों।"
"स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो।"
मालकियत! इसलिए हिंदू संन्यासियों ने संन्यासी का नाम स्वामी चुना है। लेकिन कैसा स्वामित्व? मकान का, धन का, दुकान का स्वामित्व? नहीं, क्योंकि वह तो सिर्फ धोखा है। तुम बनते हो गुलाम और स्वामी होने का ख्याल रखते हो! तुम बनते हो दास और सोचते हो कि सम्राट हो गए!
सुना है मैंने, मुसलमान फकीर फरीद एक गांव से गुजरता था। और एक आदमी
एक गाय को रस्सी से बांध कर घर की तरफ ले जाता था। तो फरीद रुक गया--उसकी ऐसी आदत थी--उसने अपने शिष्यों से कहा, घेर लो इस आदमी को और इस गाय को, और तुम्हें मुझे कुछ शिक्षा देनी है। तो वह आदमी थोड़ा चौंका। उसने कहा कि मुझे घेरने की क्या जरूरत है? उसने कहा कि तुम चुप रहो, तुमसे हमें कुछ करना नहीं, सिर्फ मेरे शिष्यों को शिक्षा देनी है। और फरीद ने कहा कि शिष्यो, मैं पूछता हूं, इन दोनों में मालिक कौन है? गाय या यह आदमी? शिष्यों ने कहा कि आप भी क्या पूछते हैं? जाहिर है कि आदमी मालिक है। क्योंकि गाय उसकी संपत्ति है और गले में उसने उसके फंदा डाला है। तो फरीद ने कहा कि मैं तुमसे दूसरा सवाल पूछता हूं, अगर हम बीच की रस्सी काट दें और गाय भाग खड़ी हो, तो गाय के पीछे यह आदमी दौड़ेगा कि गाय आदमी के पीछे दौड़ेगी? उन्होंने कहा कि निश्चित ही यह आदमी गाय के पीछे दौड़ेगा। तो गाय इस आदमी को नहीं खोजेगी? यह आदमी गाय को खोजेगा? तो फिर मालिक कौन है? तो फरीद ने कहा कि यह रस्सी तुम्हें दिखाई पड़ती है गाय के गले में, यह इस आदमी के गले में है।

वस्तुएं हमारे गले में फंदा कस लेती हैं। जिनके हम मालिक होते हैं, उनके हम गुलाम हो जाते हैं। जिसके भी आप मालिक होंगे, उसके गुलाम हो जाएंगे।
जरा ख्याल करें! हमारे मुल्क में पति अपने को स्वामी कहते हैं। उनसे बड़ा गुलाम खोज सकते हैं आप? स्वामी हैं वे। पत्नी जब उनको पत्र लिखती है तो उसमें स्वामी लिखती है और नीचे दस्तखत करती है, आपकी दासी। और सब भलीभांति जानते हैं कि कौन दास है और कौन मालिक है। किसी को जरा भी संदेह नहीं है उस मामले में। स्त्रियां होशियार हैं, वे राजी हैं, कि ठीक, दस्तखत ही करने हैं दासी के--चलेगा। लेकिन असलियत में कौन मालिक है? पति तब तक गुलाम रहेंगे, जब तक वे मालिक होने का ख्याल रखते हैं। जब तक उनको ख्याल है कि पत्नी के स्वामी होना है, तब तक वे शब्दों में स्वामी बने रहें, वे गुलाम रहेंगे।
जो भी मालिक बनने की दूसरे के ऊपर कोशिश करेगा, वह गुलाम हो जाएगा। सब तरह की मालकियत बाहर की दुनिया में गुलामी लाती है।
तो यह किस स्वामित्व की तरफ इशारा है?
यह भीतर की मालकियत की तरफ इशारा है। तुम सिर्फ केवल अपने ही मालिक हो सकते हो। किसी दूसरे के तुम मालिक हो नहीं सकते हो। उस भूल में पड़ना भी मत। बाहर की मालकियत असंभव है, वहां सिर्फ प्रवंचना है। तुम जब भी उस प्रवंचना में पड़ोगे, आखिर में पाओगे कि गुलाम हो गए। मालिक नहीं हुए। आखिर में पाओगे कि तुमने जो बनाया था मालकियत का मकान, वह कारागृह हो गया गुलामी का और तुम उसके भीतर घिर गए और फंस गए।
सिर्फ एक ही मालकियत हो सकती है--वह है अपनी। और ध्यान रहे, जो अपना ही मालिक नहीं है, वह किसका मालिक हो सकता है? कैसे हो सकता है? जो खुद का ही मालिक नहीं है, वह कैसे किसी और का मालिक हो सकता है? सिर्फ अपने ही मालिक होने का उपाय है। और जो अपना मालिक होना चाहता है, वह दूसरे की मालकियत छोड़ देता है।
यह जो सूत्र है, स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो, यह सूत्र इसीलिए है
कि तुम धोखे से राजी मत होना। अपूर्व अभीप्सा करो स्वामित्व की, असली स्वामित्व की अभीप्सा करो। धोखे से राजी मत होना, नकली चीजों से मत सोच लेना कि मैं मालिक हो गया। जब तक कि तुम अपने ही मालिक न हो जाओ, तब तक तुम अभीप्सा जारी रखना।
उलटा लगता है। जिन्होंने सब छोड़ कर सड़क पर भिक्षुक का वेष बना लिया है, उनको हमने स्वामी कहा है। सिर्फ बुद्ध ने अपने भिक्षुओं को स्वामी नहीं कहा, भिक्षु कहा। सोच कर कहा। वे दोनों बातें बड़ी मजेदार हैं। हिंदुओं ने संन्यासियों को स्वामी कहा--इस कारण कि उसने सारा स्वामित्व छोड़ दिया और अब एक ही जगह उसने अपने स्वामित्व को बनाने की चेष्टा की है, वह उसकी स्वयं की आत्मा है। वह अपना मालिक है। इसलिए हिंदुओं ने अपने संन्यासियों को स्वामी कहा है।
बुद्ध ने अपने संन्यासियों को भिक्षु कहा है। उलटा लगता है। लेकिन बुद्ध ने इसलिए अपने संन्यासियों को भिक्षु कहा, कि इस दुनिया में सभी को स्वामी होने का ख्याल है। यहां सभी स्वामी हैं, कोई इसका, कोई उसका। यह शब्द गंदा हो गया। तो मैं तुम्हें भिक्षु कहूंगा। भिक्षु तो मैं इसलिए कहूंगा कि इस दुनिया में हालत उलटी है, यहां सब भिखारी अपने को स्वामी कह रहे हैं, इसलिए मैं स्वामी को भिखारी कहूंगा।
बुद्ध ने कहा कि इस दुनिया में जब सब मामला ही उलटा है और लोग शीर्षासन कर रहे हैं, तो तुम्हें मुझे पैर के बल खड़ा करना पड़ेगा। यहां सब भिखारी अपने को स्वामी मान रहे हैं, तब तुमको स्वामी कहने से बड़ी भ्रांति पैदा होगी, इसलिए मैं तुमको भिक्षु कहूंगा। क्योंकि तुम अपने स्वामी हो। और भिक्षु अपने को स्वामी कह रहे हैं, इसलिए उचित है कि स्वामी अपने को भिक्षु कहें।
पर बात एक ही है, इरादा एक ही है, कि आंतरिक मालकियत उपलब्ध हो।
"स्वामित्व की अपूर्व अभीप्सा करो।"

साधना-सूत्र
सातवां प्रवचन

मार्ग की शोध

13. मार्ग की शोध करो।

थोड़ा रुको और विचार करो।
तुम मार्ग पाना चाहते हो, या तुम्हारे मन में ऊंची स्थिति प्राप्त करने,
ऊंचे चढ़ने और एक विशाल भविष्य निर्माण करने के स्वप्न हैं, सावधान!
मार्ग के लिए ही मार्ग को प्राप्त करना है--तुम्हारे ही चरण उस पर चलेंगे, इसलिए नहीं।

14. अपने भीतर लौटकर मार्ग की शोध करो।

15. बाह्य जीवन में हिम्मत से आगे बढ़कर मार्ग की शोध करो।

जो मनुष्य साधना-पथ में प्रविष्ट होना चाहता है,
उसको अपने समस्त स्वभाव को बुद्धिमत्ता के साथ उपयोग में लाना चाहिए।
प्रत्येक मनुष्य पूर्णरूपेण स्वयं अपना मार्ग, अपना सत्य, और अपना जीवन है।
और इस प्रकार उस मार्ग को ढूंढ़ो। उस मार्ग को जीवन और अस्तित्व के नियमों,
प्रकृति के नियमों एवं पराप्राकृतिक नियमों के अध्ययन के द्वारा ढूंढ़ो।
ज्यों-ज्यों तुम उसकी उपासना और उसका निरीक्षण करते जाओगे,
उसका प्रकाश स्थिर गति से बढ़ता जाएगा।
तब तुम्हें पता चलेगा कि तुमने मार्ग का प्रारंभिक छोर पा लिया है।
और जब तुम मार्ग का अंतिम छोर पा लोगे,
तो उसका प्रकाश एकाएक अनंत प्रकाश का रूप धारण कर लेगा।
उस भीतर के दृश्य से न भयभीत होओ और न आश्चर्य करो।
उस धीमे प्रकाश पर अपनी दृष्टि रखो। तब वह प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ेगा। लेकिन अपने भीतर के अंधकार से सहायता लो और समझो कि जिन्होंने प्रकाश देखा ही नहीं है,
वे कितने असहाय हैं और उनकी आत्मा कितने गहन अंधकार में है!

तेरहवां सूत्र, "मार्ग की शोध करो। थोड़ा रुको और विचार करो। तुम मार्ग पाना चाहते हो, या तुम्हारे मन में ऊंची स्थिति प्राप्त करने, ऊंचे चढ़ने और एक विशाल भविष्य निर्माण करने के स्वप्न हैं, सावधान! मार्ग के लिए ही मार्ग को प्राप्त करना है--तुम्हारे ही चरण उस पर चलेंगे, इसलिए नहीं।" इस सूत्र में बहुत सी बातें समझने जैसी हैं।
पहली बात, मार्ग मिला हुआ नहीं है। उसकी खोज करनी है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति इस भ्रांति में है कि मार्ग मिला हुआ है। और सारी दुनिया में धर्म को नष्ट करने में अगर किसी बात ने सबसे ज्यादा सहायता पहुंचाई है, तो वह इस भ्रांति में है कि मार्ग मिला हुआ है।
जन्म के साथ मार्ग नहीं मिलता, लेकिन सभी धर्मों ने ऐसी व्यवस्था कर रखी है कि जन्म के साथ वे धर्म भी आपको दे देते हैं! मां के दूध के साथ धर्म भी दे दिया जाता है! बच्चा जब होता है अबोध, और उसे कुछ न चिंतना होती है, न कोई मनन होता है, न कोई समझ होती है, तभी गहरे अचेतन में हम मार्ग को डाल देते हैं! मां-बाप अपने मार्ग को डाल देते हैं! उनका भी वह मार्ग नहीं है! वह भी उनके मां-बाप ने उनमें डाल दिया है। तो आप हिंदू की तरह पैदा होते हैं, मुसलमान की तरह, जैन की तरह, ईसाई की तरह। आप जन्म के साथ किसी मार्ग से जुड़ जाते हैं, जोड़ दिए जाते हैं।

कोई व्यक्ति न हिंदू पैदा होता है, न मुसलमान। न हो सकता है। हिंदू घर में पैदा हो सकता है, लेकिन हिंदू कोई भी पैदा नहीं हो सकता। मुसलमान घर में पैदा हो सकता है, लेकिन मुसलमान पैदा नहीं हो सकता। आदमी पैदा होता है, तब उसके पास कोई धर्म, कोई मार्ग नहीं होता है। मार्ग मां-बाप, परिवार, समाज, जाति, बच्चे के ऊपर थोप देते हैं। और वे थोपने में जल्दी करते हैं, क्योंकि अगर बच्चे को होश आ जाए, तो वह थोपने में बाधा डालेगा। इसलिए बेहोशी में थोपा जाता है।
सभी धर्म बच्चों की गर्दन पकड़ने में बड़ी जल्दी करते हैं। जरा सी देर--
और भूल हो जाएगी। और एक बार बच्चा अगर अचेतन की अवस्था से चेतन में आ गया, होश सम्हाल लिया, तो फिर आप धर्म को थोप ही न पाएंगे। फिर तो बच्चा अपनी ही खोज करेगा। और हो सकता है कि हिंदू घर के बच्चे को लगे कि ईसाई मार्ग उसके लिए है। और ईसाई घर के बच्चे को लगे कि हिंदू मार्ग उसके लिए है। बड़ी अस्तव्यस्तता हो जाएगी। वैसी अस्तव्यस्तता न हो जाए, मेरा बेटा मेरे धर्म को छोड़ कर न चला जाए, तो अचेतन में हम अपराध करते हैं, हम बच्चे की गर्दन को जकड़ देते हैं संस्कारों से। मनुष्य ने अब तक जो बड़े से बड़े पाप किए हैं, उनमें यह सबसे बड़ा पाप है।
इसे मैं क्यों सबसे बड़ा पाप कहता हूं? क्योंकि इसका यह अर्थ हुआ कि हमने बच्चे को एक झूठा धर्म दे दिया है, जो उसका चुनाव नहीं है। और धर्म कुछ ऐसी बात है कि जब तक आप न चुनें, तब तक सार्थक नहीं होगा। जब आप ही चुनते हैं, अपने प्राणों की खोज से, पीड़ा से, प्यास से, तो ही आप धार्मिक होते हैं। यह दूसरों का दिया हुआ धर्म ऊपर-ऊपर रह जाता है। और इसके कारण आपकी अपनी खोज में बाधा पड़ती है।
इसलिए देखें, जब बुद्ध जीवित होते हैं, या महावीर जीवित होते हैं, या मोहम्मद जीवित होते हैं, या ईसा--तो उस समय जो धर्म का प्रकाश होता है और जो लोग उनके पास आते हैं, उनके जीवन में जैसी क्रांति घटित होती है, फिर बाद में वह ज्योति मद्धिम होती चली जाती है। क्योंकि बुद्ध के पास जो लोग आ कर दीक्षित होते हैं, वह उनका खुद का चुनाव है कि वे बौद्ध हो रहे हैं। सोच-विचार से, अनुभव से, चिंतन से, साधना से, उन्हें लगा है कि बुद्ध का मार्ग ठीक है, तो वे बुद्ध के पीछे आ रहे हैं। यह उनका निजी चुनाव है, यह उनका अपना समर्पण है। यह प्रतिबद्धता किसी और ने नहीं दी है, उन्होंने खुद ली है। तब मजा ही और है। तब वे अपने पूरे जीवन को दांव पर लगा देते हैं। क्योंकि जो उन्हें ठीक लगता है, उस पर जीवन दांव पर लगाया जा सकता है। लेकिन उनके बच्चे पैदायशी बौद्ध होंगे। उनका चुनाव नहीं होगा। उन्होंने खुद निर्णय न लिया होगा। उन्होंने सोचा भी न होगा। बौद्ध धर्म उनकी छाती पर बिठा दिया जाएगा।
ध्यान रहे, जो आप अपनी मर्जी से चुनते हैं, अगर नर्क भी चुनें अपनी मर्जी से तो वह स्वर्ग होगा। और अगर स्वर्ग भी जबर्दस्ती आपके ऊपर रख दिया जाए तो वह नर्क हो जाएगा। जबर्दस्ती में नर्क है। अगर ऊपर से कोई चीज थोप दी जाए, तो वह आनंद भी अगर हो, तो भी दुख हो जाएगा। थोपने में दुख हो जाता है। और जो भी चीज थोपी जाती है, वह कारागृह बन जाती है।
तो न तो आज जमीन पर हिंदू हैं, न मुसलमान, न बौद्ध। आज कैदी हैं। कोई हिंदू कैदखाने में है, कोई मुसलमान कैदखाने में है, कोई जैन कैदखाने में है।
कैदखाना इसलिए कहता हूं कि आपने कभी सोचा ही नहीं कि आपको जैन होना है, कि हिंदू होना है, कि मुसलमान होना है। आपने चुना नहीं है। यह आपकी गुलामी है। लेकिन गुलामी इतनी सूक्ष्म है कि आपको पता नहीं चलता, क्योंकि आपके होश में नहीं डाली गई है। जब आप बेहोश थे, तब यह गुलामी, यह जंजीर आपके हाथ में पहना दी गई। जब आपको होश आया तो आपने जंजीर अपने हाथ में ही पाई। और इसे जंजीर भी नहीं कहा जाता है। इसे आपके मां-बाप ने, परिवार ने, समाज ने समझाया है कि यह आभूषण है! आप इसको सम्हालते हैं, कोई तोड़ न दे। यह आभूषण है और बड़ा कीमती है, आप इसके लिए जान लगा देंगे।
एक बड़े मजे की घटना घटती है। अगर हिंदू धर्म पर खतरा हो तो आप अपनी जान लगा सकते हैं। आप हिंदू धर्म, मुसलमान या ईसाई, किसी भी धर्म के लिए मर

सकते हैं, लेकिन जी नहीं सकते। अगर आपसे कहा जाए कि जीवन हिंदू की तरह जीयो, तो आप जीने को राजी नहीं हैं। मुसलमान की तरह जीयो, जीने को राजी नहीं हैं। लेकिन अगर झगड़ा-फसाद हो तो आप मरने के लिए राजी हैं! वह आदमी हिंदू धर्म के लिए मरने के लिए राजी है, जो हिंदू धर्म के लिए जीने के लिए कभी राजी नहीं था! क्या मामला है?
कहीं कोई रोग है, कहीं कोई बीमारी है। जीने के लिए हमारी कोई उत्सुकता नहीं है। मार-काट के लिए हम उत्सुक हो जाते हैं। क्योंकि जैसे ही कोई हमारे धर्म पर हमला करता है, हमें होश ही नहीं रह जाता। वह हमारा बेहोश हिस्सा है, जिस पर हमला किया जा रहा है।
इसलिए जब भी हिंदू-मुसलमान लड़ते हैं, तो आप यह मत समझना कि वे होश में
लड़ रहे हैं। वे बेहोशी में लड़ रहे हैं। बेहोशी में वे हिंदू-मुसलमान हैं, होश में नहीं हैं। इसलिए कोई भी उनके अचेतन मन को चोट कर दे, तो बस वे पागल हो जाएंगे। न तो हिंदू लड़ते हैं, न मुसलमान लड़ते हैं--पागल लड़ते हैं। कोई हिंदू मार्का पागल है। कोई मुसलमान मार्का पागल है। यह मार्कों का फर्क है, लेकिन पागल है।
और आपके भीतर धर्म उस समय डाला जाता है, जब तर्क की कोई क्षमता नहीं होती।
इसलिए मैं कहता हूं कि यह सबसे बड़ा पाप है। और जब तक यह पाप बंद नहीं होता, जब तक हम प्रत्येक व्यक्ति को अपने मार्ग की खोज की स्वतंत्रता नहीं देते, तब तक दुनिया धार्मिक नहीं हो सकेगी। क्योंकि धार्मिक होने के लिए स्वयं का निर्णय चाहिए।
इसे हम ऐसा समझें तो आसान हो जाएगा।
पुराने दिनों में, हमारे मुल्क में तो अभी भी, अभी थोड़े दिन पहले तक हम बाल-विवाह कर देते थे। न तो पति को कोई प्रयोजन था कि किससे हो रहा है विवाह, न पत्नी को कोई प्रयोजन था कि किससे हो रहा है विवाह। बच्चे इतने छोटे थे कि उन्हें अभी पता भी नहीं था कि क्या हो रहा है! पति-पत्नी हम उन्हें बना देते थे उनकी अचेतना में, उनको होश नहीं होता था, बेहोशी में। जैसे जन्म के साथ बहन, मां-बाप मिलते हैं, ऐसे ही बेहोशी में पत्नी और पति भी मिल जाते थे।
एक सुविधा थी बाल-विवाह में कि उसको तोड़ना बहुत मुश्किल था। क्योंकि अचेतन जुड़ जाता था, होश की बात ही नहीं थी, चुनाव का कोई सवाल ही नहीं था, तो तोड़ने का सवाल कहां था? बाल-विवाह जिन्होंने खोजा होगा, वे बहुत कुशल लोग थे। उसका मतलब यह था कि विवाह अब टूटेगा नहीं। क्योंकि जो कभी सचेतन रूप से जोड़ा ही नहीं गया, वह सचेतन रूप से तोड़ा भी नहीं जा सकता। तो विवाह चलेगा, स्थाई होगा, लेकिन उस विवाह में प्रेम की घटना कभी नहीं घटेगी। ध्यान रहे, पास रह कर, समीप रह कर, साथ रह कर, एक तरह का मैत्रीभाव बन जाता है, लेकिन वह प्रेम नहीं है। प्रेम तो एक पागलपन है, प्रेम तो एक उन्माद है।
बाल-विवाह में प्रेम घटता ही नहीं। असल में बाल-विवाह की तरकीब ही इसीलिए है कि प्रेम घटे न, क्योंकि प्रेम खतरनाक है, वह घटे ही न। विवाह सुरक्षित है, प्रेम खतरनाक है। प्रेम इतनी ऊंचाइयां लेता है कि खतरा है, अगर वहां से गिरे तो उतनी ही गहराइयों में गिर जाएंगे। विवाह में कभी गिर नहीं सकते आप, क्योंकि उसकी कोई ऊंचाई नहीं होती, समतल जमीन पर यात्रा है। न कोई शिखर होता है, न कोई खाई होती है--सुरक्षित है, स्थाई है।
तो विवाह एक संस्था है, प्रेम एक घटना है। घटना अनजान होती है, संस्था
को आयोजित किया जा सकता है। तो कुशल लोग थे। प्रेम खतरनाक हो सकता है। होगा ही। क्योंकि इतनी ऊंचाई पर सदा जीना बहुत मुश्किल है, नीचे उतरना पड़ेगा। प्रेम इतनी ऊंचाई पर ले जाता है कल्पना की, ऐसे स्वप्न निर्मित कर देता है कि उन स्वप्नों के साथ जीना थो.ेडे से स्वप्नदर्शियों के लिए संभव है। बाकी लोग तो जमीन पर गिर जाएंगे, उस शिखर पर जीना मुश्किल है। और जब गिरेंगे तो बड़ी पीड़ा होगी। ध्यान रहे, जितना बड़ा सुख चाहिए हो, उतने बड़े दुख की खाई सदा पास में होती है।

तो बाल-विवाह करने वाले लोगों ने बड़ी कुशल व्यवस्था की थी। प्रेम का खतरा अलग कर दिया था, गिरने का भय नहीं रहा था। और जब आपने विवाह किया ही नहीं था, तो तलाक करने का कोई सवाल नहीं था। जो आपने किया ही नहीं है, उसको आप तोड़ भी नहीं सकते। आप अपनी बहन से कहीं तलाक ले सकते हैं? कि अपनी मां से तलाक ले सकते हैं? यह तो प्राकृतिक घटना है, इसमें आप छोड़ कर जाइएगा कहां? क्या उपाय है कि आप कह दें कि अब मेरा बहन से तलाक हो गया है! यह मेरी बहन न रही। इसका कोई उपाय नहीं है। चाहे दुश्मन हो जाएं, चाहे कुछ भी करें, बहन बहन रहेगी, बाप बाप रहेगा, मां मां रहेगी। हमने पत्नी को भी ठीक इसी ढांचे में डाल दिया था।
चुनाव का एक ही मौका है जीवन में--संबंध में। बाप तो जन्म से मिलता है, मां जन्म से मिलती है, बहन-भाई जन्म से मिलते हैं। सिर्फ एक पति और पत्नी का संबंध है, जिसमें स्वतंत्रता है। बाकी तो सब परतंत्रता है। तो वह एक स्वतंत्रता की घटना खतरनाक हो सकती है, क्योंकि स्वतंत्रता खतरनाक है। हमने उसे भी काट दिया था। हमने विवाह को भी एक संस्था बना कर अचेतन के साथ जोड़ दिया था। खतरा तो मिट गया था, लेकिन प्रेम की वह जो रोमानी उड़ान थी, वह भी मिट गई थी। खतरे के साथ उसका जो रस था, वह भी मिट गया था।
जैसा हमने बाल-विवाह के साथ किया था, वैसा ही हमने धर्म के साथ किया है। हम उसे भी जोड़ देते हैं। बच्चा जब बड़ा होता है, तो वह पाता है कि वह हिंदू है। उसे होश ही नहीं है कि जब वह पैदा हुआ था तो हिंदू नहीं था। जब उसे होश आता है, तो वह पाता है कि वह हिंदू है, मुसलमान है। उसे यह भी ख्याल नहीं आता है कि यह संस्कार उधार है, यह किसी ने डाल दिया है उसके चेतन में, इंजेक्ट किया गया है, इसे ले कर वह पैदा नहीं हुआ था। अब जीवन भर वह यही मान कर चलेगा कि मैं हिंदू हूं। और जो उसने नहीं चुना है, उसमें उसे कोई ज्यादा रस नहीं हो सकता है। क्योंकि उससे उसका कोई संबंध ही नहीं है, अगर ठीक से हम सोचें तो। आरोपण है, उसे ढो लेगा एक औपचारिकता की तरह। कभी मंदिर जरूरी होगा, तो हो आएगा। चर्च रविवार को पहुंच जाएगा। कभी कोई उत्सव हो तो एक औपचारिकता है, निभा लेगा। धर्म तब एक सामाजिक व्यवस्था का अंग हो जाता है। और धर्म सामाजिक व्यवस्था का अंग नहीं है। जैसे प्रेम खतरनाक है, धर्म उससे भी ज्यादा खतरनाक है। जैसे प्रेम खतरनाक है, क्योंकि उसके रास्ते का कुछ भी पता नहीं है, कोई पूर्व घोषणा नहीं हो सकती कि क्या होगा! धर्म उससे भी ज्यादा खतरनाक है। प्रेम भी अनजान मार्गों पर ले जाता है, धर्म तो और भी अनजान मार्गों पर ले जाता है। धर्म तो आत्म-क्रांति है। हमने धर्म को बना दिया है सामाजिक संस्था, तो आत्म-क्रांति का कोई उपाय न रहा। फिर जो चीज हम पर थोप दी गई है, उसके प्रति मन में एक विरोध होता है। होगा ही। और जो चीज हम पर थोप दी गई है, उसको तोड़ने में रस आता है। क्यों? क्योंकि जब हम उसे तोड़ते हैं तो हमें लगता है कि हम मुक्त हो रहे हैं।
फ्रायड ने लिखा है कि मैं अपनी पत्नी और बच्चे के साथ एक बगीचे में घूमने गया था। जब हम लौटने लगे और दरवाजा बंद होने लगा, तो बच्चा नदारत था। तो मैंने पत्नी को पूछा कि कहां है बच्चा? पत्नी घबड़ा गई, दरवाजा बंद हो रहा है, बड़ा बगीचा है मीलों लंबा, कहां होगा बच्चा? तो फ्रायड ने कहा कि तू घबड़ा मत, तूने उसे कहीं जाने को मना तो नहीं किया था? अगर मना किया हो, तो पहले हम वहीं खोज लें। अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि है, तो वहीं होना चाहिए। पत्नी ने कहा, मैंने कहा था कि फव्वारे पर मत जाना। फ्रायड ने कहा, भाग, फव्वारे की तरफ चलें। फव्वारे पर बेटा पैर लटकाए पानी में बैठा था। फ्रायड की पत्नी कहने लगी, तुमने कैसे अंदाज लगाया कि लड़का वहां होगा? फ्रायड ने कहा कि इसमें भी अंदाज लगाने की क्या बात है! अगर लड़का बिल्कुल बुद्धू हो तो भूल हो सकती थी। अगर लड़के में थोड़ी भी बुद्धि है, तो जहां इनकार है, वहां रस है; जहां निषेध है, वहां निमंत्रण है।
कह दो किसी से, ऐसा मत करना--तुमने रस पैदा कर दिया करने का।
आज जो समाज में इतनी अनीति दिखाई पड़ती है, यह नैतिक उपदेष्टाओं का परिणाम है, जो आपके गुरु बन कर बैठे हैं। साधु हैं, संन्यासी हैं, महात्मा हैं, नब्बे प्रतिशत अनीति के लिए ये जिम्मेवार हैं। क्योंकि ये रस पैदा

करवाते हैं। ये कहते हैं, यह मत करो, यह मत करो, यह मत करो। और जहां-जहां ये कहते हैं, यह मत करो, वहां लगता है कि जरूर कोई रहस्य का खजाना छिपा है। जब इतने महात्मा लगे हैं समझाने में, तो जरूर कुछ बात होगी। कुछ न कुछ होगा! नहीं तो क्यों इतने महात्मा समय नष्ट करेंगे अपना! कि यह मत करो... । मन होता है कि खोजो, पता लगाओ। और एक रुग्ण रस पैदा हो जाता है।
देखिए, किसी फिल्म पर लगा दिया जाए, ओनली फार एडल्ट्स, सिर्फ वयस्कों
के लिए! फिर देखिए छोटे बच्चे भी दो आने की मूंछ खरीद कर और लगा कर खड़े हो जाते हैं कतार में कि जरूर कोई मामला है, कुछ न कुछ रसपूर्ण वहां हो रहा है। बहुत मुश्किल है निषेध से बचना।
तो जो-जो चीजें थोपी जाती हैं जबर्दस्ती, उनको तोड़ने में रस आने लगता है। इतनी अधार्मिकता का कारण यह है कि धर्म आरोपण है, वह आपका चुनाव नहीं है, वह आपका निजी संकल्प नहीं है।
अच्छा है अधार्मिक होना, लेकिन दूसरे का धर्म सिर पर ढोना अच्छा नहीं है। क्योंकि तब आप कभी भी धार्मिक न हो पाएंगे, तब आप झूठे ही रहेंगे। अच्छा है फेंक दें उधार को। कुछ दिन बिना धर्म के जी लिए तो हर्जा नहीं है। लेकिन बिना धर्म के कोई भी आदमी ज्यादा दिन जी नहीं सकता। क्योंकि बिना धर्म के आनंद को पाने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए मैं भयभीत नहीं हूं, मैं कहता हूं, बेहतर है कि बिना धर्म के हों, लेकिन थोपा हुआ धर्म खतरनाक है। क्योंकि उस थोपे हुए धर्म के कारण आपके मन में धर्म के प्रति ही विरोध पैदा हो जाता है। गहरे में विरोध रहता है, ऊपर-ऊपर धर्म रहता है। और आप दो हिस्सों में बंट जाते हैं। तो फिर आप खोज के लिए भी नहीं जाते। फिर जब भी कहीं धर्म की बात उठती है तो आपको लगता है कि ठीक है, धर्म तो हमें पता ही है, धर्म तो हमें मालूम ही है। यह जो उधार, आरोपित, संस्कारित धर्म है, यह आपका मार्ग नहीं है। इसमें और भी खतरे हैं।
एक तो धर्म संस्था नहीं बनना चाहिए; धर्म क्रांति है। और प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म चुनना चाहिए, अपना मार्ग चुनना चाहिए। क्योंकि जिससे मोक्ष मिलने वाला है, वह दूसरे का दिया हुआ कैसे मोक्ष तक ले जाएगा? थोड़ा सोचें, जिससे परम-मुक्ति मिलने वाली है, उसका प्रारंभिक चरण ही गुलामी है, तो उससे परम-मुक्ति कैसे मिलेगी? कोई आपसे कह रहा हो कि परम-मुक्ति मिलेगी, पहले आपके हाथ में हथकड़ी डालने दो; परम-मुक्ति मिलेगी, पहले कारागृह में आपको कैद करने दो; परम-मुक्ति मिलेगी, छाती से पत्थर लटका देने दो; तो आप राजी होंगे कि यह परम-मुक्ति की तरफ ले जा रहे हैं आप मुझे? तो अभी ही मैं काफी मुक्त हूं! आप जो बता रहे हैं, वह और भी गुलामी हो जाएगी।
मुक्ति तो मुक्त होने से ही मिलेगी। मुक्ति का पहला चरण भी मुक्ति ही होगा। और पहली मुक्ति जरूरी है कि दूसरों के द्वारा दिए गए धर्म से मुक्ति।
अपने मार्ग की शोध करो--यह सूत्र का अर्थ है।
डरो मत, भयभीत मत होओ। और जरूरी नहीं है कि जिस धर्म में आप संयोग से पैदा हुए हैं और जो संस्कार आप पर डाल दिए गए हैं, वे आपके काम के हों। यह भी जरूरी नहीं है। काम के भी न हों, खतरनाक भी हों, बाधा भी हों, क्योंकि... इसे थोड़ा सोचें।
मीरा है; नाचती है, गाती है। उसकी समाधि नृत्य बन गई है। आप महावीर को नाचता हुआ सोच सकते हैं कि नाच रहे हैं महावीर? तो बहुत बेतुका लगेगा। सोचने में ही बेतुका लगेगा कि महावीर और नाच रहे हैं। जंचेगी नहीं बात, कल्पना भी करनी मुश्किल है। अभी तक किसी ने सपना भी नहीं देखा कि महावीर नाच रहे हैं, मोर-मुकुट बांधे हुए हैं। वे बड़े बेतुके लगेंगे, बड़े हास्यास्पद मालूम होंगे। लेकिन मीरा अगर न नाचे, और बैठ जाए महावीर की तरह, पत्थर की मूर्ति बन कर वृक्ष के नीचे, तो भी न जंचेगी। मीरा का व्यक्तित्व, महावीर के व्यक्तित्व से अलग है। उसका मोक्ष नृत्य के मार्ग से ही आएगा। महावीर का मोक्ष मौन, शांत, स्थिर हो कर ही आएगा। और दोनों मोक्ष की तरफ जाएंगे, लेकिन अपने-अपने ढंग से जाएंगे।

कृष्ण और क्राइस्ट को साथ-साथ खड़ा करके सोचो तो बड़ी मुश्किल होती है। जीसस को मानने वाले कहते हैं कि क्राइस्ट कभी हंसे नहीं। क्योंकि जगत में इतनी पीड़ा है, इतना दुख है--कैसे हंसें? परम-ज्ञानी कैसे हंसेगा? और इधर कृष्ण हैं कि नाच रहे हैं, बांसुरी बजा रहे हैं, गोपियों के साथ रास चल रहा है। तो जीसस का मानने वाला सोच ही नहीं सकता कि कृष्ण कोई परम-ज्ञानी हो सकते हैं। क्योंकि यह इतनी प्रसन्नता परम-ज्ञानी को शोभा नहीं देती। और कृष्ण का मानने वाला यह नहीं सोच सकता कि यह उदास, लंबे चेहरे वाला आदमी जीसस, यह परम-ज्ञानी हो सकता है। ऐसी उदासी, मुर्दगी, यह परम-ज्ञानी को शोभा नहीं देती। परम-ज्ञानी तो आनंद से भरपूर हो जाना चाहिए।
लेकिन क्राइस्ट भी पहुंचते हैं अपने रास्ते से। जगत की पीड़ा के साथ
जो अपने को तादात्म्य कर लेता है, सारे जगत की पीड़ा जो अपने ऊपर ले लेता है, जो अपने को भूल ही जाता है और सारे जगत की पीड़ा से एक हो जाता है, वह भी पहुंचता है। वह भी एक मार्ग है।
और जो सारी पीड़ा को भूल ही जाता है, आनंद में इतना लीन हो जाता है कि इस जगत में पीड़ा है, इसका जिसे पता भी नहीं चलता है, जो इस अस्तित्व के उत्सव के साथ एक रस हो जाता है, जो रास में डूब जाता है, वह भी पहुंच जाता है। लेकिन पहुंचने के रास्ते अलग-अलग हैं।
अब मैं यह इसलिए कह रहा हूं कि अगर आपका रास्ता नृत्य का हो और आप महावीर के मानने वालों के घर में पैदा हो गए, तो आप मुश्किल में पड़ेंगे। क्योंकि आपका कहीं तालमेल नहीं बैठेगा। मीरा के घर में पैदा हो गए, तब तो ठीक, नहीं तो आपका कोई तालमेल नहीं बैठेगा। आप हमेशा पाएंगे कि आप कहीं न कहीं, कोई मेल ही नहीं बैठ रहा है। और चेतन मन में आप समझेंगे कि आप जैन हैं, और आपके पूरे व्यक्तित्व का ढांचा जो है, वह किसी भक्त का है, तो आप अड़चन में पड़ेंगे। अगर आप महावीर जैसे व्यक्तित्व के आदमी हैं और कहीं कृष्ण को मानने वालों के घर में पैदा हो गए, तो ऊपर से आपको लगेगा कि ठीक है और भीतर से लगेगा सब गलत है। तो आप पाखंडी हो जाएंगे। जो आप करेंगे, वह आपके व्यक्तित्व से मेल नहीं खाएगा, इसलिए वास्तविक, प्रामाणिक नहीं होगा। और जो आप करना चाहेंगे, वह आप कर न सकेंगे, क्योंकि वह आपके संस्कार से विपरीत पड़ जाएगा।
अगर हमने सारी मनुष्यता को आज इतनी उलझन में डाल दिया है, तो उसका कारण यह है। सभी धर्मों का अध्ययन करना जरूरी है, लेकिन चुनाव स्वयं का होना चाहिए, कोई दूसरा चुनाव न करे। अच्छी दुनिया पैदा हो सकती है। सब धर्म वैसे ही पढ़ाए जाएं और खुला छोड़ दिया जाए व्यक्ति को कि वह अपनी खोज कर ले। और वह जो भी खोज ले, उसका स्वागत हो।
इसके गहरे परिणाम होंगे। इससे एक तो धर्म के प्रति जो बगावत पैदा हो जाती है, वह पैदा नहीं होगी। दुनिया से नास्तिक कम हो जाएंगे। नास्तिकता पैदा होती है जबर्दस्ती थोपी गई आस्तिकता की प्रतिक्रिया में। दुनिया से नास्तिकता कम हो जाएगी। दुनिया से तालमेल न बैठने वाली व्यवस्था क्षीण हो जाएगी। जिससे तालमेल बैठेगा, वही हम चुनेंगे। एक रस पैदा होगा, एक प्रेम पैदा होगा। जो हमने चुना है, वह हमारी निजी खोज होगी। जो मेरी खोज है, उसमें मुझे रस होता है। जो मेरा आविष्कार है, उसमें मुझे आनंद होता है। उसके लिए मैं सब कुछ दांव पर लगा सकता हूं। और जब तक हम सब दांव पर लगा न सकें अपने धर्म के लिए, तब तक हमारे जीवन में कोई क्रांति घटित नहीं होती। तीसरा, एक-एक घर में अनेक धर्मों के लोग हो जाएंगे। दुनिया से दंगे- फसाद समाप्त हो सकते हैं। एक ही उपाय है कि एक घर में कई धर्मों के लोग हों, बस। और कोई उपाय नहीं है। कि बाप ईसाई हो, कि बेटा जैन हो, कि पत्नी मुसलमान हो, कि एक बहू बौद्ध हो, कि एक बहू कन्फ्यूशियन हो--एक घर में अनेक धर्मों के लोग हों, तो दंगा नहीं हो सकता। किससे लड़ने जाइएगा? अगर हिंदू-मुस्लिम दंगा हो जाए तो क्या करिएगा फिर? आपकी पत्नी मुसलमान है, वह मुसलमान के साथ खड़ी होगी; आपका बेटा बौद्ध है, वह बौद्ध के साथ खड़ा होगा; आपका भाई जैन है, वह जैन के साथ खड़ा होगा--घर में कैसे पाकिस्तान काटिएगा? बहुत मुश्किल हो जाएगा।

जब तक पूरा का पूरा घर एक धर्म में है, तब तक दुनिया से दंगे-फसाद बंद नहीं हो सकते। क्योंकि आप बच सकते हैं आसानी से। जिनसे आपका लगाव है, वे सब आपके धर्म के हैं। जिनसे आपका संबंध है, प्रेम है, वे सब आपके धर्म के हैं। लेकिन अगर एक घर में दस धर्मों के लोग हैं, तो आपका अपनी पत्नी से प्रेम है और वह मुसलमान है, तो आप मुसलमान से लड़ नहीं सकते।
चाहे कोई कितना ही चिल्लाए हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई, और कोई कितना ही कहे अल्लाह-ईश्वर तेरे नाम--सब व्यर्थ है, इन बातों से कुछ होने वाला नहीं है। जब तक कि एक-एक घर की प्रेम की व्यवस्था में अनेक धर्म प्रविष्ट न हो जाएं, तब कहने की जरूरत न होगी कि हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई, वे होंगे। यह तो कहना पड़ता है इसलिए कि वे नहीं हैं। यह झूठ है, यह सरासर व्यर्थ है, यह ऊपर से थोपा हुआ है। और चालबाजी है। और राजनीति के सिवाय कुछ भी नहीं है।
यह जो सूत्र है, बहुत क्रांतिकारी है, "मार्ग की शोध करो।"
मार्ग तुम्हारे पास है नहीं। जन्म से मिलता नहीं, संस्कार से उपलब्ध नहीं होता। तुम्हें अपना मार्ग खोजना ही पड़ेगा। भूल होगी, चूक होगी--होने दो, भटकोगे--भटको। मुर्दा सुरक्षा से जीवित असुरक्षा बेहतर है। भटकना अच्छा है, क्योंकि भटक कर ही खोजा जा सकता है। बिना भटके, मुफ्त, किसी और से जो मिल जाता है, वह कहीं भी नहीं ले जाता है। अपने मार्ग की शोध में कई बाधाएं खड़ी होंगी।
आप यहां बैठे हैं, जब भी मैं कुछ बोलता हूं, तो आप भीतर पूरे वक्त तौलते रहते हैं कि अपने धर्म से मेल खाता है कि नहीं--शोध नहीं हो सकती। आपकी खोपड़ी में चलता ही रहता है कि गीता में भी ऐसा लिखा है कि नहीं? कि कुरान में ऐसा आता है कि नहीं? कि महावीर स्वामी ने ऐसा कहा है कि नहीं? अगर कहा, तो ठीक। अगर नहीं कहा, तो गलत। तो आप क्या खाक शोध करिएगा! आप पहले से ही मान कर बैठे हैं कि क्या ठीक है, क्या गलत है! यह आप तय ही किए हुए हैं। जब तय ही किए हुए हैं, तो खोज क्या होगी?
खोज तो वही कर सकता है, जिसने तय नहीं किया है। अगर मैं कुछ कह रहा हूं,
या कोई भी कुछ कह रहा है, तो उसके प्रति बड़ा निष्पक्ष भाव होना चाहिए। पहले उसे समझने की चेष्टा करनी चाहिए और अपनी पूर्व धारणाएं एक तरफ रख देनीं चाहिए, कि तुम बीच में मत आना। क्योंकि उनके आने पर तो समझना असंभव है। उनको एक तरफ रख देने का मतलब यह नहीं है कि जो कहा जाए, वह मान लेना। मानने की कोई जरूरत नहीं है, समझना। और जब पूरी तरह से समझ लो, तब दोनों को तौलना। और दोनों को जब तौलो, तो दोनों से दूर खड़े हो कर तौलना। यह मत कहना कि एक मेरी मान्यता है और एक आपकी। तो फिर आप तौल नहीं पाओगे। क्योंकि जो आपकी मान्यता है, उसको आप जिता लोगे। फिर तो आप बेईमानी करोगे। फिर आप जज नहीं हो, फिर तो एक पक्ष से आपका संबंध है। आप संबंधी हो, तो आप न्याययुक्त न हो पाओगे।
जिस व्यक्ति को मार्ग की शोध करनी है, उसको सभी मार्गों से निष्पक्ष अपने को रखना जरूरी है। अगर जैन हो, तो जैन होने को एक तरफ रख देना है। मुसलमान हो, तो एक तरफ रख देना है। तब जो भी खोज रहे हो, उसको पूरा समझना, अनुभव में देखना और फिर दोनों को तौलना। और दोनों को तौलते वक्त किसी पक्ष में खुद खड़े मत होना, दोनों से दूर खड़े हो कर तौलना। तब अगर ठीक लगे कि मुसलमान जो कहता है, वही ठीक है, तो फिर उसका अनुगमन करना।
और ध्यान रहे, तब वह भी आपकी शोध हो गई। जरूरी नहीं है कि मुसलमान घर में जो पैदा हुआ है, उसको अनिवार्य रूप से यह पता चले कि मुसलमान होना ठीक नहीं है। पता चल सकता है कि मुसलमान होना ठीक है। हिंदू घर में पैदा हुए आदमी को जरूरी नहीं है कि हिंदू धर्म छोड़ना ही पड़े। हो सकता है कि हिंदू धर्म ही उसका मार्ग हो। लेकिन जब इतनी निष्पक्षता से खोजेगा, तो वह जो दिया हुआ है, वह भी अपना हो गया। फिर वह दिया हुआ नहीं रहा, हमने पुनः खोज कर ली, और पाया कि नहीं, हिंदू धर्म ही मेरे लिए मार्ग है। यह जो पुनः आविष्कार है, इससे सारा गुण बदल जाता है। तब यह मां-बाप का दिया हुआ धर्म नहीं है, मैंने खुद भी खोज लिया।
पर इसमें बड़ा ईमानदार होने की जरूरत है। जल्दी की जरूरत नहीं है कि मन में तो पता ही है कि हिंदू धर्म ठीक है। ऐसे तो हम मानते ही हैं। थोड़ा-बहुत,

जरा कुरान वगैरह देख कर कहा कि नहीं, धर्म तो हिंदू ही ठीक है। इतनी जल्दबाजी से नहीं होगा। अपने को बेईमानी से बचाना, शोध का अनिवार्य हिस्सा है।
लेकिन हम कुशल हैं। और जिनको हम बहुत अच्छे लोग कहते हैं, वे भी हद के कुशल हैं। जैसे कि बहुत सी किताबें लिखी गई हैं। डा. भगवानदास ने एक किताब लिखी है सब धर्मों के समन्वय पर, सब धर्मों की बुनियादी एकता, एसेन्शियल युनिटी आफ आल रिलीजन्स। भगवानदास बड़े पंडित थे और बहुत खोज कर लिखी है। और हिंदुस्तान में सर्व धर्मों के समन्वय की जो धारा चली, उसमें बड़ी कीमती किताब है। सभी उस किताब से प्रभावित हुए, ऐनी बीसेंट से ले कर महात्मा गांधी तक।
मगर किताब बेईमान है। बेईमान इसलिए है कि डा. भगवानदास कुरान में से कुछ खोजते हैं; लेकिन वे खोजते वही हैं, जो गीता में भी है। गीता ठीक है, यह तो भीतर गहरा भाव है। फिर कुरान में भी अगर वही बात कही है, जो गीता में कही है, तो कुरान भी ठीक है। बाइबिल में भी अगर वही बात कही है, जो गीता में कही है, तो बाइबिल भी ठीक है। लेकिन खोजते वही हैं, जो गीता की ही झलक है। गीता ही ठीक है। कुरान भी ठीक हो सकता है, अगर उसने वही कहा हो, जो गीता में कहा है। इसका कोई अर्थ न रहा। यह बुनियादी एकता नहीं खोजी जा रही है। क्योंकि कुरान में बहुत कुछ ऐसा भी कहा है, जो गीता में नहीं है। उसको वह बिल्कुल छोड़ जाते हैं! और कुरान में ऐसा भी बहुत कुछ कहा है, जो गीता के विपरीत है; उसको तो बिल्कुल ही छोड़ जाते हैं!
अगर एक मुसलमान इसी किताब को लिखे, तो वह किताब बिल्कुल दूसरी होगी। क्योंकि वह आधार में कुरान को रखेगा। और जो कुरान में है, वह अगर गीता में है, तो गीता ठीक होगी। उसका चुनाव बिल्कुल अलग होगा। कुरान और गीता में तो बड़ा फासला है। यहां जैनों और गीता में चुनाव करवा कर देखें, तो ख्याल में आ जाएगा।
जैन गीता में से वे सब हिस्से निकाल देंगे, जो मूल्यवान हैं, क्योंकि
वे सभी हिस्से अहिंसा पर चोट करते हैं। क्योंकि गीता का मौलिक संदेश यह है कि तू लड़ और डर मत, क्योंकि मृत्यु तो होती ही नहीं, इसलिए हिंसा का भय क्या है? न हन्यते हन्यमाने शरीरे, कुछ मरता नहीं, कुछ कटता नहीं। शरीर भी काटा नहीं जा सकता। कट भी जाए, तो वह जो भीतर है, वह अ-कटा रह जाता है--तो तू डर मत। तो जैन की बड़ी कठिनाई हो जाएगी। जैन गीता में से वे हिस्से चुनेगा, जिनका महावीर की वाणी से मेल खाता हो। लेकिन बुनियादी गीता छूट जाएगी। क्योंकि यह सब तो उपद्रव है, यह महावीर के साथ मेल नहीं खा सकता।
ये जो चुनाव हैं, इनको मैं कहता हूं बेईमान, क्योंकि भीतर आप अपने धर्म को तो ठीक मान कर चलते ही हैं, दूसरे पर थोड़ी दया करते हैं। आप सहिष्णु हैं, तो दूसरे पर थोड़ी दया दिखाते हैं। और उसमें भी कुछ थोड़ा ठीक होगा, इसलिए इसको निकाल कर बता देते हैं कि इसमें भी ठीक है। ऐसे तो ठीक हम ही हैं आखिर में, लेकिन दूसरा भी बिल्कुल गलत नहीं है। इसकी बात में भी थोड़ा-थोड़ा सार है, वह सार हम बता देते हैं। लेकिन वह सार वही है, जो हमारी बात में है। तो फिर आप मार्ग की शोध नहीं कर सकते।
मार्ग की शोध तो तभी हो सकती है, जब आप अपने भीतर एक तटस्थता पैदा करें, एक साक्षीभाव पैदा करें, और सभी चीजों को दूर खड़े हो कर देख सकें। और अंतिम निर्णय यही हो कि जो सत्य हो, उसको मैं चुनूंगा। जो मेरा है, उसको नहीं; जो सत्य है, उसको मैं चुनूंगा। हम, जो मेरा है, उसको सत्य मानते हैं। वास्तविक खोजी, जो सत्य है, उसको अपना मानता है। इस भेद को ध्यान में रखें तो यह सूत्र साधक के लिए बहुत गहरे काम का है।
"मार्ग की शोध करो।"
चौदहवां सूत्र, "अपने भीतर लौट कर मार्ग की शोध करो।"
पहला सूत्र, मार्ग की शोध करो। दूसरा, अपने भीतर लौट कर मार्ग की शोध करो।
बाहर भी तुमने शोध लिया कि यह मार्ग ठीक है, अभी भी पक्का मत कर लेना। अभी भीतर इस पर प्रयोग भी करना। भीतर लौटना और इस मार्ग पर प्रयोग करना और जब तक तुम्हारे जीवन में फल न आ जाए, जब तक तुम्हारी अनुभूति गवाही न बन

जाए, और जब तक तुम्हारा हृदय न कह दे कि ठीक, मेरे अनुभव से सिद्ध हुआ, तब तक अभी मार्ग की शोध पूरी नहीं हुई।
इधर मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि यह ध्यान तो देख कर हमें डर लगता है। कोई आता है, वह कहता है, यह ध्यान तो बिल्कुल पागलपन है, यह ठीक नहीं हो सकता। मैं उनको कहता हूं कि तुम करके देखो। और उसके पहले कोई निर्णय मत लो। हो सकता है पागलपन ही हो, लेकिन तुम करके देख लो। अगर तुम्हारा पागलपन बढ़ने लगे भीतर, तभी कहना। अगर घटने लगे तो फिर मत कहना। क्योंकि मेरे अनुभव में तो यह आया है कि अगर पागल भी इस प्रयोग को करे, तो उसका पागलपन घटने लगता है।
अभी पश्चिम में तो बहुत इस तरह के प्रयोगों पर काम चल रहा है। और वे कहते हैं कि अगर पागल को उसके पागलपन को निकालने का मौका दिया जा सके, तो वह घट जाएगा। समाज उसको निकालने नहीं देता, सब तरह से रुकावट डाल देता है, वह उसके भीतर इकट्ठा होता चला जाता है। फिर वह इतना इकट्ठा हो जाता है कि वह एक्सप्लोड होता है, विस्फोट हो जाता है। फिर हम उसको पागलखाने में रख देते हैं। अभी पश्चिम के बहुत से मनस्विद कहते हैं कि पागलों के साथ हम दुर्व्यवहार कर रहे हैं। हम ही उनको पागल करते हैं और फिर उनको पागलखाने में बंद करते हैं। और हम ही उनके पागलपन को निकालने नहीं देते। और वे निकालें तो मुश्किल और न निकालें तो आखिर में वे पागल हो जाते हैं, तब हम उनको दंड देना शुरू कर देते हैं! हजार तरह की तरकीबों से सताने लगते हैं। यह सारा जाल अदभुत है।
और लोग हैं, दूर से खड़े हो कर कह देंगे कि यह ठीक नहीं है। चुप रहना--न कहना कि ठीक, न कहना कि गैर ठीक--जब तक कि भीतर प्रयोग न कर लो। क्योंकि जीवन इतना आसान नहीं है कि दूर से खड़े हो कर परखा जा सके। इसमें डुबकी ही लगानी पड़े तो ही परखा जा सकता है।
जिसको प्रेम का कोई अनुभव नहीं है, वह अगर प्रेम के संबंध में कुछ कहे, उसका मूल्य क्या? और अक्सर ऐसा होता है कि जिनके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव नहीं है, वे प्रेम के संबंध में काफी चर्चा करते हैं। कारण है उसका, क्योंकि चर्चा से ही वे मन को भरते हैं। प्रेम तो है नहीं जीवन में, प्रेम की चर्चा करके ही थोड़ा-बहुत रस ले लेते हैं।
अक्सर प्रेम की कविताएं लिखने वाले वे ही लोग होते हैं, जिनके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव नहीं होता। सब्स्टीट्यूट है, वह कविता जो है। वह जो प्रेम में उन्होंने किया होता, वह नहीं कर पाए हैं, वह शब्दों में कर रहे हैं। इसलिए आप प्रेम की कविता पढ़ कर उस कविता के लिखने वाले कवि से मिलने मत चले जाना, नहीं तो बड़ी निराशा होगी। वहां बिल्कुल दूसरा ही आदमी आप पाएंगे।
जीवन सिर्फ बुद्धि से समझ में आने वाला होता, दूर खड़े हो कर, तो फिर दर्शक भी जीवन को जान लेते, फिर भोक्ता होने की कोई जरूरत न थी। फिर तो राहगीर भी किनारे से गुजर कर जिंदगी को पहचान लेते, फिर तो जिंदगी में डुबकी लगाने की और एकरस होने की कोई जरूरत न होती। लेकिन राहगीर कुछ भी नहीं जान पाते। वे जो किनारे खड़े हुए लोग हैं, उनको ऊपर-ऊपर की चीजें दिखाई पड़ती हैं, भीतर जो घट रहा है, वह आंखों से चूक जाता है।
तो एक बार ख्याल में आ जाए, बुद्धि समझ ले कि यह मार्ग ठीक है, तटस्थ बुद्धि समझ ले कि यह मार्ग ठीक है, तब भी अभी पर्याप्त नहीं है--अपने भीतर लौट कर मार्ग की शोध करना। तत्क्षण जो तुमने ठीक पाया है, उसे अपने भीतर लौटाना, उसे जीवन बनाना, उसे अंतस-यात्रा में परिवर्तित करना। और जब तक वहां तुम्हें अनुभव न मिलना शुरू हो जाएं, तब तक चुप रहना, कोई निर्णय मत लेना।
दुनिया में बहुत नासमझी कम हो सकती है, अगर लोग बिना जाने निर्णय देना बंद कर दें। बिना जाने लोग इतना निर्णय देते हैं, लेकिन उनको ख्याल ही नहीं कि वे कुछ कसूर कर रहे हैं, कि वे कोई अपराध कर रहे हैं। बिना जाने लोग निर्णय देते रहते हैं। बिना जाने जो निर्णय देता है, वह आदमी नितांत मूढ़ है। और न खुद मूढ़ है, बल्कि और लोगों को भी मूढ़ता में डालने का उपाय कर रहा है।

अनुभव के सिवाय कोई कसौटी नहीं है। आखिरी कसौटी आपका अपना अनुभव है।
और जब तक उस कसौटी पर न कस लें, तब तक चुप रहना और मत कहना कि यह मार्ग सत्य है।
और पंद्रहवां सूत्र है, "बाह्य जीवन में हिम्मत से आगे बढ़ कर मार्ग की शोध करो।"
और भीतर अनुभव में जिसको लिया है, अब उसे आचरण में भी जाने दो। अब बाह्य जीवन में भी उसकी शोध करो। क्योंकि जो भीतर ही सच है, हो सकता है सपना हो। क्योंकि भीतर के सच काल्पनिक हो सकते हैं। भीतर जो सच मालूम पड़ा है, वह हो सकता है, व्यक्तिगत भ्रांति हो। क्योंकि वहां कोई दूसरा तो है नहीं, जिससे पूछ लो; तीसरा तो नहीं है, जिससे सहारा ले लो। वहां कोई और तो कसौटी नहीं है, आप अकेले हो।
समझो कि आपको भीतर प्रकाश दिखाई पड़ता है। ध्यान का आप प्रयोग करते हैं, आपको भीतर प्रकाश दिखाई पड़ता है, कि बड़ा आनंद अनुभव आता है। लेकिन यह भी हो सकता है कि यह प्रकाश सिर्फ कल्पना हो, प्रोजेक्शन हो, मन का ही प्रक्षेपण हो, कि आप अपने मन में खुद ही भ्रांति पैदा कर रहे हों। क्योंकि आपने शास्त्रों में पढ़ा है कि प्रकाश अनुभव होता है, वह भाव बीज रूप में पड़ा है, कहीं वही प्रकट न हो रहा हो!
क्योंकि मजे की बात है, कृष्ण का भक्त अगर ध्यान करे तो उसको कृष्ण के दर्शन होते हैं, क्राइस्ट के कभी नहीं होते। जीसस का भक्त ध्यान करे तो उसको तत्काल क्राइस्ट के दर्शन होते हैं, कृष्ण के कभी नहीं होते।
तो वह जो दर्शन हो रहा है, वह कहीं उसके ही अचेतन में पड़े हुए किसी भाव
की पुनरावृत्ति तो नहीं है? भीतर कैसे जांच करिएगा? भीतर जो हो रहा है, वह कोई आत्म-विमूढ़ता, कोई आत्मसम्मोहन, कोई सेल्फ-हिप्नोसिस तो नहीं है? खुद को ही कहीं हमने अपने आप में धोखा देने का उपाय तो नहीं कर लिया है? तो फिर अभी भी मार्ग की शोध पूरी नहीं हुई। अभी जो भीतर जाना है, जो भीतर ठीक पाया है, वह सब्जेक्टिव है, निजी है।
निजी में एक खतरा है। सभी सपने निजी होते हैं। सपने की खूबी उसका निजी होना है। आप अपने निकटतम मित्र के सपने में भी प्रवेश नहीं कर सकते। किसी के सपने में आप साझीदार नहीं हो सकते। ऐसा नहीं हो सकता कि मैं एक सपना देखूं और आप भी वही सपना देखें। और हम दोनों एक साथ वह सपना देखें, इसका कोई उपाय नहीं है। सपने निजी हैं, प्राइवेट हैं। उनको बाहर लाने का भी कोई उपाय नहीं है। दूसरे के साथ साझेदारी करवाने का भी कोई उपाय नहीं है। तो आप जो भी अनुभव कर रहे हैं, कहीं वह सपना तो नहीं है?
तो उसकी आखिरी कसौटी यही है कि आपके भीतर जो घट रहा है, अगर शांति आपके भीतर घट रही है, तो वह शांति आपके आचरण में बाहर की यात्रा पर जानी शुरू होनी चाहिए। कि आप कहें कि भीतर तो मुझे बड़ी शांति आती है, और बाहर आप क्रोधी हैं, तो फिर आपकी शांति कल्पना होगी। कि आप कहें कि भीतर तो मेरे जीवन में बड़ा आनंद आ रहा है, और बाहर के जीवन में वासना भरी हो, तो वह खबर नहीं दे रही। क्योंकि आनंद से भरे हुए आदमी की वासना नहीं हो सकती। वासना तो दुख भरे आदमी की ही होती है। वासना का तो मतलब है, मैं दुखी हूं, मुझे सुख चाहिए। मैं आनंदित हूं तो मुझे सुख का कोई सवाल नहीं। वह तो ऐसा ही हुआ कि जिसके पास कोहिनूर है, वह कंकड़-पत्थर मांग रहा है। वह मांगेगा क्यों? तो आपके भीतर जो घटित हुआ है, सूत्र कहता है, "बाह्य जीवन में हिम्मत
से आगे बढ़ कर मार्ग की शोध करो।"
जो भीतर जान लिया है, अब बाहर हिम्मत से आगे बढ़ो। बहुत हिम्मत की जरूरत पड़ेगी। क्योंकि जो भीतर जाना है, अगर उसको आप बाहर लाएंगे, तो बाहर का सारा संबंध-जाल बदलेगा।
एक महिला मेरे पास आई। और उसने मुझे कहा कि मैं पढ़ती हूं, सुनती हूं आपको। और अब ऐसी मेरे भीतर प्रेरणा घनीभूत होने लगी, कि आप जो कहते हैं, वह मैं प्रयोग भी करूं--बहुत बड़े परिवार की महिला है--वह मैं प्रयोग भी करूं। लेकिन एक ही डर है कि इस प्रयोग से कोई ऐसी बुराई और हानि तो नहीं होगी कि मेरे घर, परिवार और दांपत्य के जीवन में कोई बाधा पड़ जाए? तो मैंने उससे कहा कि बुराई तो इससे कुछ भी न होगी, लेकिन अनेक भलाइयां होंगी, और उनसे भी

बाधा पड़ेगी। यह ख्याल छोड़ देना कि बुराई से बाधा पड़ती है, भलाई से भी बाधा पड़ती है। उसने कहा कि मैं समझी नहीं, भलाई से क्यों बाधा पड़ेगी? तो मैंने कहा कि तू प्रयोग करके देख, तब तुझे पता चलेगा कि भलाई से किस तरह बाधा पड़ती है।
अगर आपकी पत्नी दुष्ट प्रकृति की है, लड़ैल-झगड़ैल है, तो आप उससे धीरे- धीरे राजी हो गए हैं, एडजस्टमेंट हो गया है। अगर वह कल ध्यान करने लगे और उसका झगड़ैलपन चला जाए, तो आपका समझिए दूसरा विवाह हुआ, पुनर्विवाह, अब आपको फिर एडजस्ट करना पड़ेगा। फिर से शुरू हुई बात। और आपको फिर बेचैनी होगी। जैसे कि नए मकान में जाने से होती है, नया फर्नीचर घर में लगाने से होती है, नई कार खरीद लें तो ड्राइवर को तकलीफ होती है--नए एडजस्टमेंट फिर करने पड़ेंगे। और नई ही पत्नी होती तो इतनी दिक्कत नहीं होती। क्योंकि आप मानते कि ठीक है, नई पत्नी है, थोड़ी फिर देर लगेगी, थोड़ी फिर खट-पट होगी, फिर अंग जरा घिसेंगे-पिटेंगे, तो मशीनरी फिर ठीक होगी--नई ही होती। लेकिन पुरानी है और नए की तरह व्यवहार करने लगे, तो ज्यादा बेचैनी होगी।
फिर हम सबके भीतर व्यवस्था की भी सीढ़ियां हैं। अगर पत्नी दुष्ट है और पति शांत है या पति दुष्ट है और पत्नी शांत है, तो पत्नी अपने को श्रेष्ठ मानती है अगर वह शांत है, और पति को मानती है वह निकृष्ट है। अगर पति शांत हो जाए, तो यह हायररकी बदलती है। अब पति श्रेष्ठ हो जाएगा। और दुष्ट पति को सहना आसान है, श्रेष्ठ पति को सहना और भी कठिन है। क्योंकि अहंकार को चोट दुष्ट पति से नहीं लगती, श्रेष्ठ पति से लगती है। अगर पति शराब पीता है तो उतनी अड़चन नहीं होती। क्यों? क्योंकि शराबी पति डरता है, भयभीत होता है। और पत्नी को मानता है कि देवी है। सब शराबी पति पत्नी को देवी मानते हैं, ध्यान रखना। नहीं तो कोई मानने का कारण नहीं है। वह डरा हुआ पति है--कि तू देवी है, तेरी पवित्रता का क्या कहना, हम पापी हैं। लेकिन यह पति शराब छोड़ दे और यह पति ध्यान करने लगे और यह प्रार्थना में लीन होने लगे, तो फिर यह पत्नी और इसके बीच जो नाता था सदा का, वह सब अस्तव्यस्त हो गया। अब पत्नी को इसे देवता मानना पड़ेगा, जो कि बहुत कठिन होगा, बड़ी अड़चन होगी। अचेतन मन पत्नी का कहेगा कि इससे तो तुम पहले ही बेहतर थे--अचेतन। ऊपर से वह कहेगी, बड़ी खुशी जाहिर करेगी कि बिल्कुल ठीक है, बिल्कुल उचित है, कितना अच्छा हो गया है! लेकिन भीतर कष्ट और दंश होगा।
तो मैंने उस महिला को कहा कि तू फिर से सोच कर आ, भलाई से भी बाधा पड़ती है। और कभी-कभी तो बुराई से भी ज्यादा बाधा पड़ती है।
इसलिए यह सूत्र कहता है, साहसपूर्वक बाहर के जीवन में प्रयोग करो। वह
जो भीतर अनुभव में आना शुरू हुआ है, उसे बाहर प्रयोग करो। तो सारी व्यवस्था बदलेगी। बाहर का सारा ढांचा जो तुमने गैर-ध्यान की अवस्था में बनाया था, वह काम में नहीं आएगा। अब तुम्हें सब बदलना पड़ेगा।
मैं एक मकान में रहता था, एक मित्र के परिवार में। मैं थोड़ा हैरान हुआ,
वे मित्र न तो कभी अपने बच्चों से बात करते, न कभी अपने नौकर से, न कभी अपनी पत्नी से। वे घर भी आते, तो तेजी से आते। अगर बच्चे सामने खड़े हों तो वे बिल्कुल बिना देखे, सीधी नजर किए मकान में प्रवेश कर जाते। मैं थोड़ा हैरान हुआ। और मुझसे जब मिलते थे तो बड़े प्रेम से मिलते थे। मैं उनका मेहमान ही था। मैंने उनसे कहा कि मैं जरा हैरान हूं कि आप ऐसा कैसे चलते हैं? बच्चे खड़े हैं तो आप उनकी तरफ देखते नहीं, नौकर खड़े हैं तो देखते नहीं! तो वह बोले कि बड़ा खतरनाक है। अगर जरा बच्चों की तरफ प्रेम से देखो, वे फौरन पैसा मांगते हैं। अगर नौकर की तरफ प्रेम से देखो, तो वह कहता है तनख्वाह बढ़ाओ। पत्नी की तरफ जरा ही प्रेम से देखो कि वह कहती है, नई साड़ी बाजार में आ गई है। तो आखिर में मैंने यही तय किया है कि किसी की तरफ प्रेम से देखो ही मत, अकड़े ही रहो। चाहे अकड़ का कोई कारण भी न हो, लेकिन अकड़े रहो। तो न बच्चे अपनी तरफ आते, न नौकर आते, न पत्नी आती। सब शांति से चलते हैं।
अब यह आदमी अगर ध्यान करे तो बड़ी मुश्किल खड़ी हो जाएगी। यह प्रेमपूर्ण हो जाए। यह अकड़ गिर जाए। अकड़ गिर जाए तो यह सारा का सारा जाल जो उसने बना कर रखा है, यह सब उलटा हो जाए। इसको बड़ी मुश्किल होगी।

जिंदगी एक व्यवस्था है रोज। और जो आदमी जितना भीतर जाता है, उतनी उसकी व्यवस्था रोज बदलती है। जो जितना मुर्दा होता है, उसकी व्यवस्था थिर होती है। जो जितना जीवित होता है, नदी की धार की तरह होता है, उसकी व्यवस्था रोज बदलती है। इसलिए सब अस्तव्यस्त हो जाएगा।
इसलिए सूत्र कहता है, साहसपूर्वक हिम्मत से आगे बढ़ कर बाह्य जीवन में
भी मार्ग की शोध करो।
"जो मनुष्य साधना-पथ में प्रविष्ट होना चाहता है, उसको अपने समस्त स्वभाव को बुद्धिमत्ता के साथ उपयोग में लाना चाहिए।"
समझना, बहुत गहरा है।
"जो मनुष्य साधना-पथ में प्रविष्ट होना चाहता है, उसको अपने समस्त स्वभाव को बुद्धिमत्ता के साथ उपयोग में लाना चाहिए।"
समस्त स्वभाव को! जो भी तुम्हारा स्वभाव है, उसमें से कुछ भी काटने का अर्थ है कि तुम बुद्धिमान नहीं हो। जो भी तुम्हें मिला है निसर्ग से, उसमें से कुछ भी छोड़ने का अर्थ है कि तुम अधूरे रहोगे, पूरे कभी न हो पाओगे। अगर तुम्हारे भीतर क्रोध है, अगर तुम्हारे भीतर कामवासना है, तुम्हारे भीतर लोभ है... है, वह प्रकृति ने दिया है। उसमें कुछ शर्म की बात नहीं है। उसमें कुछ चिंतित होने की बात नहीं है। वह है, वह प्रकृति ने दिया है।
बुद्धिमान वह आदमी है, जो अपने क्रोध को भी संलग्न कर लेता है साधना में। वह काटता नहीं। जो अपनी कामवासना को भी साधना में संलग्न कर लेता है, जो उसका भी उपयोग कर लेता है, जो उस विष को भी मोड़ लेता है अमृत में--वही आदमी बुद्धिमान है। जो कुछ भी काट कर नहीं फेंकता। जो अपने समस्त निसर्ग स्वभाव को पूरा का पूरा नियोजित कर लेता है साधना-पथ में, वही आदमी पूर्णता को उपलब्ध होगा।
अगर तुमने कुछ भी काटा, तो उतना हिस्सा तुम्हारा सदा के लिए कटा रह जाएगा। इसलिए काटना मत। क्रोध ही तो करुणा बनती है। क्रोध ही... अगर तुमने क्रोध काट दिया तो तुम करुणा से सदा के लिए वंचित रह जाओगे। काम ही तो ब्रह्मचर्य बनता है। अगर तुमने काम को बिल्कुल दरवाजे बंद करके रोक दिया, तो तुम कभी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न हो पाओगे।
ये बड़ी जटिल बातें हैं और बड़ी मुश्किल में डालती हैं। क्योंकि हम सोचते हैं, ब्रह्मचर्य का अर्थ है, काम को काट डालो, जला डालो, भस्म कर दो, तब ब्रह्मचर्य उपलब्ध होगा। कभी ऐसा ब्रह्मचर्य न उपलब्ध हुआ है, न हो सकता है। क्योंकि काम की ऊर्जा ही तो ब्रह्मचर्य बनेगी।
नपुंसकता का नाम अगर ब्रह्मचर्य होता, तो काम को बिल्कुल काट देने से ब्रह्मचर्य उपलब्ध हो जाता। तब तो साधना की जरूरत ही नहीं है। फिर तो छोटे-मोटे आपरेशन ही इस काम को कर देंगे। तब तो डाक्टर को जा कर कहना चाहिए कि मेरे काम-संस्थान को काट डालो बिल्कुल! लेकिन तब जो आदमी आप होंगे--वह ब्रह्मचर्य नहीं होगा।
वह फर्क देख लें एक बैल में और सांड में। वही हालत हो जाएगी। बैल को जोता जा सकता है इसीलिए, क्योंकि अब वह नपुंसक है। सांड को जोता नहीं जा सकता, क्योंकि काम-ऊर्जा बलवती है। लेकिन सांड में जीवन है, सौंदर्य है। और बैल निस्तेज है, न कोई सौंदर्य है, न कोई जीवन है।
तो तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी बैलों की हालत में हैं। काट कर तो यही होगा, नष्ट करके तो यही होगा।
रूपांतरण चाहिए। ऊर्जा नष्ट नहीं करनी है, ऊर्ध्वगामी बनानी है, ऊपर
की ओर ले जानी है। वह जो नीचे की तरफ प्रवाह है वासना का, वह ऊपर की तरफ हो जाए। लेकिन शक्ति तो वही होगी। तो जो कामवासना से लड़ेगा, वह कभी भी ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न होगा। वह सदा ही कामवासना से ग्रस्त रहेगा और उसका एक अंग सदा ही बोझ की तरह अटका रह जाएगा। उसके जीवन में प्रफुल्लता नहीं होगी, भय होगा। और जहां भय है, वहां फूल कभी खिलता नहीं।
फूल तो प्रफुल्लता चाहता है। सब कुछ स्वीकार हो, तभी फूल खिलता है। और
जब पूरे जीवन का फूल खिलता है, तो उसमें तुम्हारी काम-ऊर्जा ब्रह्मचर्य बन गई होती है, तुम्हारा क्रोध करुणा बन गया होता है, तुम्हारी कठोरता दया बन

गई होती है, तुम्हारी घृणा ही प्रेम बन गई होती है। घृणा और प्रेम में जो फर्क है, वह दिशा का फर्क है। शक्ति एक है।
यह सूत्र कहता है, बुद्धिमत्ता इस बात में है कि तुम अपने स्वभाव की समस्त शक्तियों का उपयोग कर लेना।
"प्रत्येक मनुष्य पूर्णरूपेण स्वयं अपना मार्ग है, अपना सत्य और अपना जीवन है।"
तुम्हारे भीतर ही छिपा है मार्ग, सत्य, जीवन। तुम पूरे हो। लेकिन तुम्हारे जीवन में स्वर तो सब मौजूद हैं, संगीत नहीं है। स्वरों को बिठाना है, बस उतनी ही साधना है। जैसे कि वीणा पड़ी हो, सब तार पड़े हों, लेकिन तारों को बांधना है, कसना है। फिर तारों को तौलना है एक संतुलन में, वीणा तैयार हो जाएगी।
प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा है--अव्यवस्थित।
जैसे छोटे बच्चों की पहेलियां होती हैं। लकड़ी के टुकड़े, उनको जमाओ तो
एक सुंदर मूर्ति बन जाए, कि एक महल बन जाए, कि एक नाव बन जाए। लेकिन सब टुकड़े अस्तव्यस्त कर देते हैं, तो बच्चे उनको जमाते रहते हैं। सब मौजूद है, नाव पूरी मौजूद है, मूर्ति पूरी मौजूद है--लेकिन टुकड़े हैं अलग-अलग। और टुकड़ों को जमाना है। और टुकड़ों को ऐसी व्यवस्था में लाना है कि वह जो अराजकता थी, वह विलीन हो जाए और आकार निर्मित हो जाए।
हर आदमी एक पहेली है, जब तक जमा नहीं है। जिस दिन जम गया, पहेली विसर्जित हो जाती है और परमात्मा प्रकट हो जाता है।
"और इस प्रकार उस मार्ग को ढूंढ़ो। उस मार्ग को जीवन और अस्तित्व के नियमों, प्रकृति के नियमों एवं पराप्राकृतिक नियमों के अध्ययन के द्वारा ढूंढ़ो। ज्यों-ज्यों तुम उसकी उपासना और उसका निरीक्षण करते जाओगे, उसका प्रकाश स्थिर गति से बढ़ता जाएगा। तब तुम्हें पता चलेगा कि तुमने मार्ग का प्रारंभिक छोर पा लिया। और जब तुम मार्ग का अंतिम छोर पा लोगे, तो उसका प्रकाश एकाएक अनंत प्रकाश का रूप धारण कर लेगा। उस भीतर के दृश्य से न तो भयभीत होना, न आश्चर्य करना। उस धीमे प्रकाश पर अपनी दृष्टि रखो, तब वह प्रकाश धीरे-धीरे बढ़ेगा। लेकिन अपने भीतर के अंधकार से सहायता लो। अंधकार से भी सहायता लो और समझो कि जिन्होंने प्रकाश देखा ही नहीं है, वे कितने असहाय हैं और उनकी आत्मा कितने गहन अंधकार में है।"
अगर अपना पथ खोजा जाए, अपने पथ को अनुभव में उतारा जाए, अपने अनुभव को आचरण में लाया जाए, तो तुम्हारे भीतर वह प्रकाश की किरण पैदा हो जाएगी। वह दीया जल जाएगा, जो फिर और आगे महा-प्रकाश बन जाता है।
लेकिन बैठे-बैठे यह न होगा। बिना कुछ किए यह न होगा। और यात्रा की शुरुआत से ही शुरुआत करनी उचित है। उधार मार्ग से मत चलना। क्योंकि पहला कदम गलत पड़ जाए, तो अंतिम कदम सही नहीं पड़ सकता। और जो पहले कदम पर ही भूल जाए, उसके पहुंचने का कोई उपाय नहीं है। इसलिए पहले कदम को बहुत ध्यान से रखना। क्योंकि पहला कदम आधी मंजिल है। अगर पहला कदम बिल्कुल ठीक पड़ा, तो मंजिल बहुत दूर नहीं है। क्योंकि पहला कदम ही मंजिल की शुरुआत है। उसी में मंजिल से तुम जुड़ गए। थोड़ी देर लगेगी, लेकिन यात्रा शुरू हो गई।
लेकिन हम पहले कदम के संबंध में बहुत गाफिल हैं, और अंतिम मंजिल के संबंध में बहुत उत्सुक हैं। आनंद मिले, परमात्मा मिले, मोक्ष मिले--बड़ी उत्सुकता है। लेकिन वह पहला कदम हम गलत न रख लें, वहां हमारी उत्सुकता बिल्कुल नहीं है। वहां हम बिल्कुल जड़ता से मजबूत हैं कि पहला कदम तो हमारे पास है ही, रास्ता हमारे पास है, सब मार्ग साफ है, सिर्फ अंतिम मंजिल की बात है।
शोध मार्ग की करो। अनुभव से परीक्षण करो। आचरण में जांचो कि जो जाना है, वह स्वप्न तो नहीं है। फिर मंजिल बहुत दूर नहीं है।
मंजिल सदा पास है--ठीक पहले कदम की जरूरत है।

साधना-सूत्र
आठवां प्रवचन

मार्ग की प्राप्ति

भयंकर आंधी के पश्चात जो निस्तब्धता छा जाती है,
उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो, उससे पहले नहीं।
जब तक आंधी चलती रहेगी, जब तक युद्ध जारी रहेगा,
तब तक वह उगेगा, बढ़ेगा, उसमें शाखाएं और कलियां फूटेंगी!
परंतु जब तक मनुष्य का संपूर्ण देहभाव विघटित होकर घुल न जाएगा,
जब तक समस्त आंतरिक प्रकृति
अपने उच्चात्मा से पूर्ण हार मानकर उसके अधिकार में न आ जाएगी, तब तक फूल नहीं खिल सकता।
तब एक ऐसी शांति का उदय होगा,
जैसी गर्म प्रदेश में भारी वर्षा के पश्चात छा जाती है।
और उस गहन और नीरव शांति में वह रहस्यपूर्ण घटना घटित होगी,
जो सिद्ध कर देगी कि मार्ग की प्राप्ति हो गई है।
फूल खिलने का क्षण बड़े महत्व का है,
यह वह क्षण है जब ग्रहण-शक्ति जाग्रत होती है।
इस जागृति के साथ-साथ विश्वास, बोध और निश्चय भी प्राप्त होते हैं।
जब शिष्य सीखने के योग्य हो जाता है,
तो वह स्वीकृत हो जाता है,
शिष्य मान लिया जाता है और गुरुदेव उसे ग्रहण कर लेते हैं।
ऐसा होना अवश्यंभावी है,
क्योंकि उसने अपना दीप जला लिया है और दीपक की यह ज्योति छिपी नहीं रह सकती।
ऊपर लिखे गए नियम उन नियमों में से आरंभ के हैं,
जो नियम परम-प्रज्ञा के मंदिर की दीवारों पर लिखे हैं।
जो मांगेंगे, उन्हें मिलेगा; जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे; जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे।
तुम्हें शांति प्राप्त हो।

पूछते हैं लोग कि यदि परमात्मा सभी का स्वभाव है तो संसार की जरूरत क्या है? और अगर आत्मा सभी को मिली ही हुई है तो इस अज्ञान में पड़ जाने का कारण क्या है? क्या है प्रयोजन इतने उलझाव का? अगर भीतर सब सहज और सत्य ही है, तो बाहर इतना उपद्रव क्यों है? और अगर हम उसे पा ही लेंगे, जो हमें मिला ही हुआ है, तो यह बीच का इतना भटकाव, यह बीच की इतनी यात्रा सार्थक नहीं मालूम होती! अगर ब्रह्म ही सबका स्वाभाव है, स्वरूप है, तो संसार क्यों है? और इस प्रश्न का उत्तर देने के बहुत प्रयास किए गए हैं। लेकिन सभी प्रयास करीब-करीब असफल हैं। क्योंकि किसी भी भांति समझाने की कोशिश की जाए, मूल प्रश्न अछूता रह जाता है। कोई कहता है कि तुम्हारे पिछले जन्मों के कारण तुम भटक रहे हो। लेकिन यह उत्तर बहुत बचकाना है। क्योंकि पिछले जन्मों के कारण यह जीवन भटकाव हो सकता है, लेकिन पहला जीवन किस कारण भटका होगा? तो कुछ हैं, जो इस उत्तर में जो भूल है, उससे बचने के लिए कहते हैं कि पहला कोई जन्म ही नहीं है, तुम अनंत से भटक रहे हो।
जैनों की दृष्टि यही है कि तुम अनंत से भटक रहे हो, अनादि से! लेकिन तब
भी बात वहीं की वहीं खड़ी रह जाती है--आत्मा क्यों अनादि से भटक रही है? आत्मा क्यों निगोद में पड़ती है? कारण क्या है अनादि से भटकने का? अगर कहो कि अकारण भटक रही है, तो फिर मोक्ष का कोई उपाय नहीं है। अगर अकारण भटक रही है, तो किस कारण को काट कर आप मुक्ति पाएंगे? अगर कोई कारण ही नहीं है भटकाव का, तो छुटकारे का कोई उपाय ही नहीं है। अगर कोई कारण है भटकाव का, तो कारण को तोड़ा जा सकता है, तो छुट्टी है, स्वतंत्रता है, मुक्ति हो सकती है। कुछ हैं, जो कहते हैं, परमात्मा की लीला है। लेकिन लीला बड़ी कठोर मालूम पड़ती है। और लीला बहुत बेहूदा मजाक मालूम पड़ती है। ऐसी कैसी लीला है

कि आदमी व्यर्थ, अकारण जन्मों- जन्मों तक कष्ट पाए? ऐसा परमात्मा सैडिस्ट मालूम पड़ता है, दुष्ट, सताने में कुछ रस होगा। अन्यथा इतने-इतने जीवन को, इतनी-इतनी आत्माओं को इतने लंबे भटकाव और सताने की यात्रा पर फिर भेजने का प्रयोजन क्या है? और फिर अगर वह सर्व-शक्तिशाली है तो ऐसे ही मुक्ति दे सकता है। इतना लंबा और इतने दुख का मार्ग! जरूर उसे कुछ रस आता होगा कि लोग पीड़ित और परेशान हों। यह लीला तो ऐसी ही हुई जैसे कि छोटे बच्चे मेंढ़क को पकड़ कर सता रहे हों। तो आदमी की गर्दन को ऐसा पकड़ कर सताने का क्या प्रयोजन है?
कुछ हैं, जो कहते हैं कि यह सब जो दिखाई पड़ रहा है, स्वप्नवत है, माया है। लेकिन वे जो कहते हैं कि माया है, वे भी इससे छूटने का बड़ा उपाय करते हैं! अगर यह सच में ही स्वप्नवत है, तो छूटने की जरूरत क्या है? जो स्वप्नवत ही है, उससे छूटने का प्रयोजन क्या है? उससे डर क्या है? लेकिन वे जो माया कहते हैं, वे संसार से भागते हैं! जरूर उनको भी यह यथार्थ मालूम होता है, नहीं तो भागेंगे नहीं। जो है ही नहीं, उससे भाग कर जाइएगा कहां? उससे भागने का अर्थ क्या है? और अगर संसार माया है, तो त्याग व्यर्थ है। क्योंकि त्याग करिएगा क्या? झूठ का भी कोई त्याग हो सकता है? स्वप्न का भी कोई त्याग हो सकता है? जो है ही नहीं, उसका त्याग क्या करिएगा?
अगर संसार माया है तो संन्यास व्यर्थ है। क्योंकि फिर क्या अर्थ रहा! संसार वास्तविक हो, तो ही संन्यास का कोई मूल्य है। और अगर संसार माया है, तो मोक्ष भी माया हो गया। क्योंकि जब बंधन ही माया है, तो मुक्ति कैसे सार्थक और सच्ची होगी। अगर मेरा जेलखाना ही झूठ है, तो मेरा छुटकारा कैसे सच होगा। क्योंकि छुटकारा तो जेलखाने के सच होने पर ही निर्भर है। अगर जेलखाना झूठ है, तो मेरी मुक्ति भी झूठ होगी।
ऐसे बहुत-बहुत उत्तर दिए गए हैं, लेकिन कोई उत्तर छूता नहीं है। और हर उत्तर के साथ अड़चन हो जाती है। और हर उत्तर कहीं बुनियाद में लगता है कि समझाने का उपाय है, सत्य नहीं है। और यही बात है। यह सूत्र एक उत्तर देता है, जो मेरी दृष्टि से सर्वाधिक सत्य के करीब पहुंचता है। यह सूत्र एक वैज्ञानिक उत्तर देता है, दार्शनिक नहीं।
यह सूत्र यह कहता है कि जीवन की सारी अनुभूतियां विपरीत पर निर्भर हैं। यह सूत्र किसी ईश्वर को बीच में नहीं लाता, किसी माया को बीच में नहीं लाता, किसी दार्शनिक सिद्धांत की आड़ नहीं लेता। यह सूत्र कहता है कि जीवन के सभी अनुभव विपरीत पर निर्भर हैं।
अगर शांति का अनुभव चाहिए तो अशांति से गुजरना वैज्ञानिक रूप से जरूरी है, नहीं तो शांति की कोई प्रतीति न होगी। आप शांत भी हो सकते हैं, तो भी आपको शांति की प्रतीति तभी होगी, जब आप अशांति से गुजर जाएं। अगर आपने जीवन में अशांति नहीं जानी, तो आप शांति को कैसे जानिएगा! कोई उपाय जानने का नहीं है। अशांति की पृष्ठभूमि चाहिए, तो शांति उभरती है।
अगर जीवन का अनुभव लेना है तो मृत्यु अनिवार्य है। किसी परमात्मा की लीला के कारण नहीं। मृत्यु इसलिए अनिवार्य है कि जीवन उभर ही नहीं सकता, मृत्यु की भूमि के बिना। वह मृत्यु जो है, भूमि है। और जीवन अंकुरित होता है, मृत्यु की भूमि में। मृत्यु जीवन को नष्ट करने वाली नहीं है, जीवन को जन्म देने वाली है। वह जो विपरीत है, उसके बिना कोई भी अनुभव नहीं हो सकता। अगर शब्द न हो, तो मौन का कैसे अनुभव करिएगा!
यह सूत्र कहता है कि अगर संसार न हो, तो परमात्मा का कोई अनुभव नहीं हो सकता। तो संसार कोई लीला नहीं है, परमात्मा के अनुभव की प्रक्रिया है। और अनिवार्य प्रक्रिया है। आप परमात्मा में भी हो सकते हैं। आप थे, अभी भी हैं; आप कभी परमात्मा के बाहर नहीं हो सकते। लेकिन संसार में फिंकना जरूरी है, ताकि आपको यह पता चल सके कि आप परमात्मा में हैं।
इसे ऐसा समझिए कि आप एक मछली हैं सागर की। एक बार आपको सागर से निकाल
कर तट पर फेंका जाना जरूरी है, तभी आपको सागर का पता चलेगा। आप सागर में ही हैं, सागर में ही पैदा हुए हैं--मछली हैं। सागर के बाहर कभी झांका नहीं, बाहर कभी गए नहीं--आपको सागर का कोई पता नहीं चलेगा। सागर इतना निकट होगा, इतना जुड़ा होगा आपसे कि एक श्वास भी उसके बिना नहीं ली है, तो उसका पता

नहीं चलेगा। सागर का पता--उलटा सुनाई पड़ता है, समझ में नहीं आता है--लेकिन जब मछली पहली दफा रेत के किनारे पर पड़ती है, तभी पता चलता है कि सागर है। वह जो तड़पन मालूम होती है रेत के किनारे पर, वह सागर से छूटने की जो पीड़ा है, वही फिर सागर से मिलने का रस बनती है। और जो मछली एक बार मछुए के जाल में फंस कर बाहर आ गई, दुबारा सागर में आती है--वह वही मछली नहीं है, जो सागर में पहले थी। अब यह सागर एक आनंद है। अब उसे पता है कि यह सागर उसका जीवन है। अब उसे पता है कि यह सागर कैसा रहस्य है। अब उसे पता है कि यह सागर क्या है! इसकी अर्थवत्ता अब उसके अनुभव में है।
तो परमात्मा कोई दुखवादी नहीं है कि आपको सता रहा है। परमात्मा कुछ
कर ही नहीं रहा है।
लेकिन जीवन की अनिवार्यता यह है, जीवन का नियम यह है, कि विपरीत से गुजरे बिना कोई अनुभव नहीं होता।
मोक्ष और संसार एक दूसरे के विपरीत हैं। मोक्ष की अनुभूति संसार से गुजर कर होती है। आप वहीं पहुंचते हैं, जहां आप थे, लेकिन आप भिन्न हो कर पहुंचते हैं। आप वही पाते हैं, जो मिला ही हुआ था, लेकिन खो कर पाते हैं। और वह जो खोना है बीच में, वह बहुत महत्वपूर्ण है। उसके बिना कोई अनुभूति नहीं हो सकती। इसलिए संसार प्रशिक्षण है और अनिवार्य प्रशिक्षण है।
और यह वैसा ही नियम है, जैसे कि वैज्ञानिक नियम होते हैं। वैज्ञानिक कहता है कि हाइड्रोजन और आक्सीजन के मिलने से पानी बनता है। और हाइड्रोजन के दो अणु और आक्सीजन का एक अणु मिल जाएं, तो पानी निर्मित हो जाता है। आप उससे पूछें, लेकिन ऐसा क्यों? तीन हाइड्रोजन के अणु हों और एक आक्सीजन का हो तो पानी क्यों नहीं बनता? तो वैज्ञानिक कहेगा, क्यों का कोई सवाल नहीं, हम उतना ही कहते हैं, जो होता है। बस ऐसा होता है कि दो हाइड्रोजन और एक आक्सीजन का अणु मिल कर पानी बनाते हैं। क्यों का कोई सवाल नहीं है, ऐसा है। विज्ञान "क्यों" का उत्तर नहीं देता, "क्या" का उत्तर देता है। वह यह नहीं कहता कि ऐसा क्यों है, इतना ही कहता है कि ऐसा है। इसलिए विज्ञान तथ्य से कभी नहीं हटता। और दर्शन अक्सर क्यों के उत्तर में विलीन हो जाता है। क्यों!
ये सूत्र बड़े वैज्ञानिक हैं और इन सूत्रों की पकड़ क्या पर है, क्यों
पर नहीं है। यह सूत्र यह नहीं कहता कि ऐसा क्यों है। यह सूत्र यह कहता है कि ऐसा है।
विपरीत के अनुभव के बिना कोई अनुभव नहीं होता।
इसको ख्याल में ले लें और विपरीत के इस महान नियम को ठीक से समझ लें,
तो आपके जीवन की पूरी दृष्टि बदल जाएगी। और तब आप दुख में भी सुखी हो सकेंगे, क्योंकि आप जानते हैं, दुख के बिना कोई सुख की प्रतीति नहीं हो सकती। और आप अशांति में भी शांत हो सकेंगे, क्योंकि तब आप जानते हैं कि अशांति, शांति का प्रशिक्षण है। और तब आप मृत्यु को भी आनंद से स्वीकार कर सकेंगे, क्योंकि तब आप जानते हैं कि जीवन का फूल मृत्यु की भूमि में ही खिलता है। तब आप अवसाद को भी झेल लेंगे धन्यभाग से, क्योंकि उसके बिना कोई अहोभाग्य नहीं है। तब आप अपमान को भी स्वीकार कर लेंगे हंसते हुए, क्योंकि आप जानते हैं कि सम्मान का भी वही द्वार है। तब आप अज्ञान से भागेंगे नहीं, घबड़ाएंगे नहीं, बल्कि अज्ञान में पूरी आंख खोल कर खड़े हो जाएंगे, क्योंकि अज्ञान में आंख खोल कर खड़े हो जाना ही ज्ञान के मंदिर में प्रवेश की कुंजी है। तब जीवन की विपरीतता से आप विक्षुब्ध न होंगे। तब जीवन की सारी विपरीतता भी आपको किसी सार्थक अंत की ओर ले जाती हुई मालूम पड़ेगी।
कुछ भी व्यर्थ नहीं है। कुछ भी व्यर्थ नहीं हो सकता है। आपको भले ही सार्थकता का पता न हो, यह बात दूसरी है। लेकिन जो भी है, उसकी सार्थकता है। और उसकी सार्थकता यही है कि वह अपने से विपरीत की तरफ ले जा रहा है। अब हम इस सूत्र को समझें।
"भयंकर आंधी के पश्चात जो निस्तब्धता छा जाती है, उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो, उससे पहले नहीं।"
आंधी जरूरी है निस्तब्धता के लिए। और जो चाहता है कि आंधी न हो, सिर्फ निस्तब्धता हो, उसकी निस्तब्धता मृत होगी, उसमें कोई जीवन न होगा। यह बड़े

मजे की बात है कि निस्तब्धता का जीवन भी आंधी में है। निस्तब्धता अपने आप में व्यर्थ है, जब तक उसके चारों ओर आंधी न हो। आंधी ही प्राण डालती है, आंधी ही निस्तब्धता को सजीव करती है, आंधी ही निस्तब्धता में आनंद उपस्थित करती है। आंधी, जो विपरीत मालूम पड़ती है, अगर आपने बोध-पूर्वक आंधी को अनुभव किया है, तो आंधी के बाद जो निस्तब्धता आती है, उसकी कोई तुलना नहीं है।
लेकिन यह भी हो सकता है कि आप आंधी से इतने परेशान हो जाएं कि वह जो निस्तब्धता आती है, चूक ही जाए। आपको पता ही न चले। आप आंधी से इतने परेशान हो सकते हैं कि जब निस्तब्धता आए, तब भी आप परेशान बने रहें। वह आंधी का सिलसिला जारी रहे और आप चूक ही जाएं।
दुख के बाद जो सुख की ताजी अनुभूति होती है, वह आप चूक जाते हैं। बीमारी के बाद जो स्वास्थ्य की हवा बहती है, वह आपके ख्याल में नहीं आ पाती। आप पुरानी बीमारी से ही, जो जा चुकी है, उससे इतने आच्छन्न होते हैं, कि वह जो अब घट रहा है, वह चूक जाता है। दुख के बाद सुख का जो स्वाद है, वह किसी और तरह नहीं मिलता।
लेकिन हम दुख से ऐसे भर जाते हैं, और दुख से इतने परेशान हो जाते हैं,
कि दुख जब जा चुका होता है, तब भी हम उसी की चिंता में लीन होते हैं। और वह जो बारीक क्षण है दुख के बाद का, जब कि सुख का स्वाद मिल सकता था, जब कि सुख के स्वर्ग का द्वार क्षण भर को खुलता है, वह हम चूक ही जाते हैं। हमारी आंखें पुराने दुख में ही उलझी रहती हैं।
हर घटना के पीछे उससे विपरीत क्षण आता है। हर घटना के पीछे उससे विपरीत मौजूद रहता है। क्योंकि इस जगत में बिना विपरीत के कुछ भी नहीं है। इसकी प्रतीक्षा करना। जब दुख तुम्हें घेर ले, तो तुम दुख से बहुत उद्विग्न मत हो जाना। दुखी होना, लेकिन उद्विग्न मत होना। उद्विग्नता का अर्थ समझ लेना।
दुख काफी दुख है, हम दुख से तो दुखी होते ही हैं, फिर दुख के कारण दुखी होते हैं। ये दोनों भिन्न बातें हैं। दुख से दुखी होना शुद्ध है। फिर हम इसलिए दुखी होते हैं कि हम क्यों दुखी हुए! कि जगत में दुख क्यों है, हम इससे दुखी होते हैं! कि दुख नहीं होना चाहिए, इससे दुखी होते हैं! यह दूसरा दुख दार्शनिक है और खतरनाक है। इस दूसरे दुख से बचना, यह सत्य नहीं है। क्योंकि यह दूसरा दुख पहले वाले दुख के पीछे जो सुख की किरण आती है, उसको डुबा लेगा।
अब यह बड़े मजे का मामला है कि आदमी कैसे उलझता है! आप परेशान हैं, कुछ बुरा नहीं है। लेकिन फिर परेशानी से परेशान हैं, वह बहुत बुरा है। आप अशांत हैं, कुछ बुरा नहीं है, शिक्षण का हिस्सा है। फिर आप अशांति से अशांत हैं, तब आप खतरे में पड़ गए, तब आप एक ऐसे चक्कर में पड़ रहे हैं, जिसका कोई अंत नहीं है। वह अंतहीन है। इसलिए कहता हूं कि अंतहीन है, कि अब आप कितने भी अशांत हो सकते हैं, और इस अशांति से शांति का कभी भी कोई अनुभव नहीं होगा।
समझिए ऐसा, कि मैं अशांत हूं, फिर इसलिए अशांत हूं कि क्यों अशांत हूं। मैं और भी अशांत हो सकता हूं कि अब मैं क्यों अशांत हूं। जैसा मैंने आपसे कहा कि अशांति से अशांत मत होइए। आप पुराना तो जारी रख सकते हैं, मेरी शिक्षा और जोड़ ले सकते हैं। तब आप अशांत हो रहे हैं; फिर उससे अशांत हो रहे हैं अपनी आदत की वजह से; फिर मुझे सुन लिया, अब आप तीसरी अशांति पैदा कर रहे हैं कि अशांति से अशांत नहीं होना चाहिए। अब यह तीसरी अशांति है। यह इनफिनिट है। अब आप इसमें जा सकते हैं अंतहीन और कोई सुख का, शांति का क्षण इसमें से न आएगा।
वास्तविक अशांति के पीछे शांति का क्षण है। काल्पनिक अशांति के पीछे कोई शांति का क्षण नहीं है। क्योंकि कल्पना तथ्य नहीं है, उस पर जगत के नियम लागू नहीं होते। वह आपके मन का ही खेल है। इसलिए ध्यान रखना, वास्तविक दुख बुरा नहीं है, काल्पनिक सुख भी बुरा है, क्योंकि आप सपने में घूम रहे हैं। वास्तविक दुख की एक मौज है, क्योंकि उसके पीछे वास्तविक सुख का क्षण आएगा ही; अनिवार्य है, इससे अन्यथा नहीं हो सकता।

मगर आप अगर दूसरे-तीसरे दुख में पड़ गए, झूठे दुख में पड़ गए, दुख के कारण आपने और नए मानसिक दुख खड़े कर लिए, तो उनमें आप इतने ज्यादा डूब जाएंगे, इतने बादलों से घिर जाएंगे, कि वह जो किरण सुख की पैदा होती है, जो होती ही है, उससे आप चूक जाएंगे। अंधेरी रात के बाद सुबह है। लेकिन रात से अगर आप इतने भयभीत, और अंधेरे से इतने पीड़ित हो गए हों, कि आंख ही बंद करके बैठे रहें, कि अंधेरा इतना ज्यादा है कि क्या फायदा आंख खोलने से, तो आप सुबह को चूक जाएंगे, जो कि रात के बाद है।
निस्तब्धता के अनुभव में आंधी की पृष्ठभूमि है।
"भयंकर आंधी के पश्चात जो निस्तब्धता छा जाती है, उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो, उससे पहले नहीं।"
हम दो तरह की शांति उपलब्ध कर सकते हैं। एक, जो आंधी के बाद सहज फलित होती है। दूसरी, जो चेष्टा से आंधी के बिना आरोपित होती है।
मुझसे लोग निरंतर पूछते हैं कि आप जैसा ध्यान हमने कभी नहीं देखा! लोग ध्यान करते हैं, तो आंखें बंद करके, पद्मासन में शांत हो कर बैठते हैं। यह कैसा ध्यान है कि लोग नाचते हैं, कूदते हैं, पागल हो जाते हैं? मैं उनको कहता हूं कि यह निस्तब्धता आंधी के बाद की है। और वे जो पालथी मार कर, आंख बंद करके बैठ गए हैं, वे आंधी से बच रहे हैं। और आंधी के बिना कोई निस्तब्धता का अनुभव नहीं है। और वे जो आंधी से बच रहे हैं, वे अगर निस्तब्धता का अनुभव भी कर लेंगे, तो वह निस्तब्धता थोथी है, कोरी है, निर्जीव है, ऊपर-ऊपर होगी। उनके भीतर तो आंधी उबलती ही रहेगी। आंधी को निकाल डालो, आंधी में कूद पड़ो, आंधी बन जाओ; घबराहट क्या है? आंधी को जी लो, आंधी चली जाएगी, उसके पीछे एक क्षण होगा। उस क्षण में अगर हम जाग जाएं, तो वह द्वार खुल जाएगा, जो शाश्वत का है।
तो शांति दो तरह की हो सकती है। कल्टीवेटेड, आरोपित--आप बैठ सकते हैं पत्थर की मूर्ति की तरह, अभ्यास कर सकते हैं।
ध्यान रहे, आप बुद्ध को बैठे देखते हैं बोधि वृक्ष के नीचे। लेकिन आपको पता नहीं कि इसके पहले छह साल की भयंकर आंधी है। उसका कोई चित्र हमारे पास नहीं है, क्योंकि नासमझों ने मूर्तियां बनाई हैं। नहीं तो पहली मूर्ति वह होनी चाहिए, जो बुद्ध की आंधी का क्षण है। छह साल तक भयंकर आंधी में बुद्ध जीए हैं। वह हम बात ही छोड़ दिए हैं! बस हमने पकड़ ली है मूर्ति आखिरी क्षण में, जब बुद्ध शांत हो गए हैं।
हम क्या करेंगे? हम शुरू से ही बुद्ध की तरह एक वृक्ष के नीचे बैठे जाएंगे!
हमारा बुद्धत्व बिल्कुल झूठा और नकली है, सर्कस वाला है। वह असली नहीं हो सकता। क्योंकि उसका असली क्षण, कीमती क्षण, उसका प्रारंभिक हिस्सा मौजूद ही नहीं है। जिसके पीछे यह बुद्ध का जन्म हुआ है, इस बोधि वृक्ष के नीचे यह जो शांत चेतना जन्मी है, यह जो निष्कंप दीए की लौ है, यह जो मौन है, महा-मौन है, यह जो प्रकाश का महा-अवतरण है--इसके पहले की आंधी कहां है? वह छह साल जो विक्षिप्त की तरह बुद्ध का भटकना है, एक-एक द्वार-दरवाजे को ठोंकना है, एक-एक गुरु के चरण में सिर रखना है, अनेक-अनेक मार्गों का उपाय करना है, सब तरह का विषाद, सब तरह का संताप झेलना है--वह कहां है? आप बैठ गए सीधे ही बोधि वृक्ष के नीचे, कुछ भी नहीं होगा। आप थोथे बुद्ध हैं। आप बैठ भी सकते हैं। अभ्यास से क्या नहीं हो सकता? आप अभ्यास कर सकते हैं बैठने का और बिल्कुल शांत बैठ सकते हैं, लेकिन भीतर! भीतर कोई शांति न होगी।
यह भी हो सकता है कि भीतर भी आप इतना अभ्यास करें, तो एक तरह की निद्रा घटित हो जाएगी, जो शांति नहीं है। एक तरह का आत्म-सम्मोहन हो जाएगा, आटो- हिप्नोटाइज्ड हो जाएंगे; लेकिन नींद में खो जाएंगे। वह नींद सुखद भी हो सकती है, क्योंकि विश्राम तो मिलेगा ही, लेकिन वह आध्यात्मिक शांति नहीं है। उस निद्रा में कोई जीवन नहीं है। वह केवल विश्राम है, और वह भी आरोपित है, अभ्यास-जन्य है। वह स्फुरणा नहीं है, भीतर से आई हुई शांति नहीं है, बाहर से थोपी हुई शांति है। ऐसी झूठी शांति हम पैदा कर ले सकते हैं।

लेकिन तब हमारे जीवन में कोई आनंद न होगा, तब हमारे जीवन में कोई नृत्य न होगा, कोई सौंदर्य न होगा। तब हमारे जीवन में वह ताजगी न होगी, जो सुबह की ओस में होती है। और हमारे जीवन में वह मौन न होगा, जो रात के तारों में होता है। और हमारी आंखों में वैसे फूल न खिलेंगे, जैसे वृक्ष में तत्पर खिल जाते हैं। वह नहीं होगा। हम एक जड़वत हो जाएंगे। पत्थर की मूर्ति जैसे हो जाएंगे। हिलेंगे-डुलेंगे नहीं, अशांत भी नहीं होंगे, लेकिन शांत भी नहीं होंगे।
ध्यान रहे, जीवन की अनिवार्य प्रक्रिया में से कुछ भी छोड़ा नहीं जा सकता। जीवन के अनुभव में आप कुछ भी छोड़ कर नहीं निकल सकते। और जो अनुभव आप छोड़ देंगे, वह अनुभव आपको लौट कर करना ही पड़ेगा। यहां कोई शार्ट-कट, कोई छोटे रास्ते नहीं हैं, जिनसे आप कुछ चीजें छोड़ कर और आगे निकल जाएं। आंधी को छोड़ेंगे, तो वह जो निस्तब्धता आंधी के बाद आती है, वह आपको कभी भी उपलब्ध न होगी।
यह सूत्र कहता है, "उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो, उससे पहले नहीं।"
क्योंकि उससे पहले अगर कोई फूल तुमने खिला भी लिया, तो वह कागज का होगा, वह आत्मा का नहीं होगा, यथार्थ नहीं होगा। तुम खिला भी सकते हो कोई फूल, कागज का मिल सकता है, बाजार में उपलब्ध है। अब तो प्लास्टिक के उपलब्ध हैं, वे तो और भी ज्यादा टिकेंगे। एक दफा खरीद लिया तो सदा के लिए हो गया। शास्त्रों से जो फूल मिल जाते हैं, वे कागजी हैं। उनको तुम चिपका ले सकते हो अपनी छाती से और किसी वृक्ष के नीचे बुद्ध बन कर बैठ भी सकते हो। लेकिन तुम्हारे भीतर कोई फूल नहीं खिला है। वह फूल खिलता ही नहीं आंधी के बिना। आंधी ही, अंधड़ ही उस फूल को जन्माता है। अंधड़ की शक्ति में ही उस फूल की ऊर्जा आती है। और जब अंधड़ चला जाता है, आंधी चली जाती है, तो आंधी से पैदा हुई ऊर्जा शेष रह जाती है--वही ऊर्जा असली फूल बनती है।
तो जल्दी मत करना। और तूफान से बचना मत, संसार से भागना मत, तो ही मोक्ष का वास्तविक फूल खिल सकेगा। यह उलटा मालूम पड़ता है। इसलिए मेरी शिक्षा को गलत ढंग से समझना बहुत ही आसान है। पर मैं कहता हूं कि यह उलटा नहीं है। यही है जीवन का सार-नियम।
संसार से भागना मत। अगर तुम्हें वास्तविक मोक्ष की तलाश हो, तो कारागृह से भागना मत, कारागृह के अनुभव से गुजरना। क्योंकि कारागृह में जो बंधन तुम्हें पीड़ा देंगे, जितनी गहरी वह पीड़ा होगी, उतना ही उन बंधनों के गिरने पर तुम्हें आनंद का अनुभव होगा। कारागृह का पूरा दुख भोग लेना। वह दुख निखारता है, वह दुख मांजता है, वह दुख स्नान करा देगा। उस दुख से गुजर कर तुम कुंदन बन जाओगे, कचरा जल जाएगा और खालिस सोना रह जाएगा। कारागृह के बाहर जब तुम आओगे तो मुक्ति का तुम्हें जो संस्पर्श होगा, वह कारागृह से भागे हुए व्यक्ति को नहीं हो सकता, क्योंकि वह कारागृह से बच गया। बाहर आ सकता है, निर्बंध हो सकता है, लेकिन मुक्ति का अनुभव नहीं कर सकता। उसे कारागृह में वापस जाना ही पड़ेगा।
जो लोग संसार से भाग-भाग कर मोक्ष पाने की कोशिश करते हैं, उन्हें बार-बार संसार में आना पड़ता है। तुम्हारे संसार में बार-बार आने के बुनियादी कारणों में यही कारण है कि तुम बार-बार बचने की कोशिश किए हो अनुभव से। तुम उन बच्चों की भांति हो, जो गणित की प्रक्रिया से बचने की कोशिश करते हैं और पुस्तक के पीछे जो उत्तर लिखा है, उसे याद कर लेते हैं। वह उत्तर बिल्कुल सही है, लेकिन तुम्हारे लिए बिल्कुल गलत है। उत्तर में कोई गलती नहीं है, वह जानकारों ने ही लिखा है, गणित का सवाल हल करके ही लिखा है। लेकिन जिस गणित की प्रक्रिया से तुम नहीं गुजरे, तुम्हारा सच्चा उत्तर भी झूठा ही है, कागजी है। प्रक्रिया से गुजर कर ही जो उत्तर आता है, आंधी से गुजर कर जो शांति आती है, संसार से गुजर कर जो मुक्ति आती है, जो संन्यास आता है, वही वास्तविक है। लेकिन चोर बच्चों की तरह हम भी यही कर रहे हैं--शास्त्रों से उत्तर चुरा लेते हैं, सोच लेते हैं हमारे उत्तर हैं! और यह सच है कि वे उत्तर सही हैं, लेकिन फिर भी तुम्हारे लिए सही नहीं हैं। तुम्हारा उत्तर तो तुम्हारे ही अनुभव से आएगा, तभी सही होगा।

यह मैं नहीं कह रहा हूं कि शास्त्र गलत हैं। वे जो गणित की किताब के पीछे उत्तर लिखे हैं, वे बिल्कुल सही हैं। बस, शास्त्र भी उतने ही सही हैं। लेकिन वे सही उसके लिए हैं, जो उत्तर से सीधा संबंध नहीं जोड़ता; सीधा संबंध प्रक्रिया से जोड़ता है, विधि से जोड़ता है, गणित की प्रक्रिया से गुजरता है और फिर उत्तर को लाता है। जिस दिन तुम्हें अपना उत्तर मिल जाता है, उस दिन किताब उलट कर देखना बड़ा महत्वपूर्ण है। क्योंकि किताब उलट कर देखने में तुम्हें आश्वासन मिलता है कि तुमने जो खोजा है, वही सत्य है--शास्त्र साक्षी है। जब तुम अपना अनुभव कर लोगे, तब शास्त्र को पढ़ोगे, तो तुम्हें लगेगा कि ठीक है। जहां मैं चल रहा हूं, ठीक है। औरों ने भी ऐसा ही पाया है, शास्त्र गवाही हैं। लेकिन तुम चोरी मत करना शास्त्रों की, उनको कंठस्थ मत करना, अन्यथा सारी बात ही व्यर्थ हो जाती है।
विपरीत से मत बचना। इसका यह मतलब नहीं है कि तुम विपरीत में सदा ही पड़े रहना। यह कहा ही इसलिए जा रहा है, ताकि तुम विपरीत के पार जा सको। "भयंकर आंधी के पश्चात जो निस्तब्धता छा जाती है, उसी में फूल के खिलने की प्रतीक्षा करो।"
प्रतीक्षा! तुम्हें कुछ करना नहीं है, तुम्हें आंधी से गुजरना है ठीक
से और फिर जब आंधी जा चुकी हो, तब आंधी की चिंता छोड़ देनी है। वह जो अतीत हो गया, जा चुका; और फिर तुम्हें कुछ करना नहीं है। आंधी के बाद जो सन्नाटा छा जाता है, उस सन्नाटे में सिर्फ प्रतीक्षा काफी है, और फूल खिल जाएगा। इसलिए यहां मैं जो ध्यान की प्रक्रिया दे रहा हूं, वह इस सूत्र में है। तीस मिनिट भयंकर आंधी से गुजरना है। जितना भी तुम पागल हो सको, हो जाना है। और तीस मिनिट के बाद तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, तुम्हें बिल्कुल मौन प्रतीक्षा करनी है। अगर तीस मिनिट तुमने सच में ही तूफान पैदा कर लिया, तो तीस मिनिट के बाद जो शांति आएगी, वह अपूर्व होगी। अगर तुम्हारा तूफान ही नपुंसक और कमजोर रहा, तो जो शांति आएगी, वह भी उसी कोटि की होगी। अगर तुम्हारा तूफान झूठा रहा, बे-मन से रहा, तो जो शांति आएगी, वह भी झूठी और बे-मन से आएगी। तुम्हारे तीस मिनिट के तूफान पर ही निर्भर करेगा कि तीस मिनिट के बाद जो निस्तब्धता आती है, वह कैसी है!
एक मित्र ने मुझे खबर दी है किसी के संबंध में। कि कोई दर्शक की तरह आया होगा, तो उसने बाकी तीस मिनिट का हिस्सा तो छोड़ दिया, चुपचाप खड़ा रहा, देखता रहा--लोग तूफान में थे। फिर जब सबने आंखें बंद कीं, तो उसने भी आंखें बंद कर लीं। फिर खबर भेजी मुझे कि दस मिनिट आंखें बंद किए रहा, लेकिन कुछ हुआ नहीं। यह कहा किसने है कि दस मिनिट आंख बंद करने से कुछ होगा? वह जो तूफान था, वह छोड़ दिया, दस मिनिट आंख बंद कर ली। सोचा कि सबको ऐसा कुछ हो रहा है, अपने को भी हो जाएगा!
आंख बंद करने से कुछ नहीं होता। जो हो रहा है, वह उस तीस मिनिट के तूफान में है। कितनी आथेंटिक, कितनी प्रामाणिक आंधी है भीतर, उतनी ही गहन शांति हो जाएगी। कितने शिखर पर उठते हैं आप तूफान के, उतनी ही गहन निस्तब्धता की खाई में प्रवेश कर जाएंगे। वह अनुपात सदा बराबर रहेगा। इसलिए आप पर निर्भर है। वह तीस मिनिट में जरा सी भी कंजूसी सब खराब कर देगी। इसलिए मैं देखता हूं कि आप हिल-डुल भी रहे हैं तो ऐसा जैसे कि अगर न हिले-डुले होते तो अच्छा था। अगर मैं आज्ञा दे देता कि बिल्कुल हिलो-डुलो मत, तो अच्छा। लेकिन वह भी नहीं मान सकते हैं आप। जब मैं कहता हूं कि बिल्कुल हिलें-डुलें मत, तब कहीं खांसने का मन, कहीं हिलने का मन, कहीं कुछ करने का मन होता है। वह भी इसलिए होता है कि तीस मिनिट में आंधी नहीं निकल पाई पूरी, अभी बाकी है। उसको जब निकालने का वक्त है, तब रोकते हैं। जब नहीं निकालना है, तब फिर वह निकलना शुरू हो जाती है।
कैसी दुविधा आप अपने लिए खुद ही पैदा करते हैं! जब मैं कह रहा हूं कि तीस मिनिट कूद लें, उछल लें, जो भी करना है, कर लें--तो कर ही डालें, फिर रोकें मत। एक-एक रोआं नाच ले आपके शरीर का, और एक-एक कण विक्षिप्त हो जाने दें। इसके बाद जो निस्तब्धता आएगी, वह आपको लानी नहीं है; वह तो तूफान का अनिवार्य परिणाम है, वह उसकी छाया है। और उस निस्तब्धता में सिर्फ

प्रतीक्षा करनी है, जस्ट अवेटिंग। उस प्रतीक्षा में वह फूल खिलता है, उससे पहले नहीं।
"जब तक आंधी चलती रहेगी, जब तक युद्ध जारी रहेगा, तब तक वह उगेगा, बढ़ेगा, उसमें शाखाएं और कलियां फूटेंगी।"
जब आप आंधी में से गुजर रहे हैं, तब आप ऐसा मत समझना कि यह आंधी दुश्मन
है उस फूल की।
"जब तक आंधी चलती रहेगी, जब तक युद्ध जारी रहेगा, तब तक वह उगेगा।"
तब बीज अंकुरित हो रहा है शांति का। क्योंकि वह भी कोई आकस्मिक थोड़े
ही हो जाएगी। इस तूफान के क्षण में भी वह बीज बढ़ रहा है।
"तब तक वह उगेगा, बढ़ेगा, उसमें शाखाएं और कलियां फूटेंगी। परंतु जब तक मनुष्य का संपूर्ण देहभाव विघटित हो कर घुल न जाएगा, जब तक समस्त आंतरिक प्रकृति अपने उच्चात्मा से पूर्ण हार मान कर उसके अधिकार में न आ जाएगी, तब तक वह फूल नहीं खिल सकता।"
आंधी में भी उसका बीज सरक रहा है। अंधेरे में दबा है, जमीन के गर्भ में है, फूट रहा है, अंकुरित हो रहा है, आकाश की तरफ उठ रहा है, पत्ते निकल रहे हैं, शाखाएं बढ़ रही हैं। लेकिन फूल तो तभी खिलेगा, जब आंधी ने संपूर्ण रूप से आपको मथ डाला है। आंधी ने आपको संपूर्ण रूप से हिला डाला है। आंधी ने-- आपके भीतर जो भी रोग था, जो भी विषाद था, जो भी क्रोध था, हिंसा थी, सब आंधी ले गई अपने साथ--आपकी सारी धूल को झाड़-पोंछ डाला। आपके भीतर जो भी रुग्ण था, वह आंधी में गल गया और नष्ट हो गया। तब अंतिम क्षण में वह फूल खिलेगा। इस आंधी में आप नष्ट नहीं होते, सिर्फ आपका जो निम्न अस्तित्व है, वही झड़ जाता है और नष्ट हो जाता है। इस आंधी में आपकी आत्मा नहीं नष्ट होती, आपका अहंकार नष्ट हो जाता है। और अहंकार ही बाधा डालता है आंधी में।
ख्याल करें, जब आप सोचते हैं कि मैं विश्वविद्यालय का अध्यापक, या मैं किसी राज्य का मंत्री, या मैं एक बड़ा डाक्टर, या मैं एक बड़ा उद्योगपति, कैसे नाच सकता हूं? मेरी प्रतिष्ठा है, मैं कैसे चीख-पुकार मचा कर रो सकता हूं? यह बच्चों जैसा काम, मेरा जैसा बुद्धिमान आदमी कैसे कर सकता है? यह पागलों जैसी हरकत, मेरे जैसा सम्मानित व्यक्ति नहीं कर सकता है। कौन बाधा डाल रहा है इस सब में?
अहंकार बाधा डालता है आंधी के आने में। क्यों? क्योंकि अहंकार भयभीत है, आंधी उसे ही जला जाएगी। आप तो नहीं मिटेंगे, अहंकार मिट जाएगा। प्रतिष्ठा, सम्मान, पद; आपके पद्मभूषण, आपकी उपाधियां; वह सब आंधी में झड़ जाएंगी।
वह भयभीत है। वह जो आपका निम्न अस्तित्व है, वह डरा हुआ है आंधी से। वह निम्न अस्तित्व कहता है, ऐसे ही बैठ जाओ शांत और फूल को खिला लो। वह निम्न अस्तित्व जानता है कि फूल ऐसे कभी खिलता नहीं, कितने ही बैठे रहो। कितने ही बैठे रहो, ऐसे वह फूल कभी खिलता नहीं। उस फूल के लिए निम्न अस्तित्व को दांव पर लगाना जरूरी है, क्योंकि वही बाधा है।
आंधी, आपमें जो-जो गलत है, उसे अपने साथ ले जाएगी। और आंधी के बाद आपमें जो-जो श्रेष्ठ है, जो-जो शाश्वत है, वही बच रहेगा। उसका बचना ही फूल का खिलना है।
"तब एक ऐसी शांति का उदय होगा, जैसी गर्म प्रदेश में भारी वर्षा के पश्चात छा जाती है। और उस गहन और नीरव शांति में वह रहस्यपूर्ण घटना घटित होगी, जो सिद्ध कर देगी कि मार्ग की प्राप्ति हो गई है।"
जैसी गर्म प्रदेश में भारी वर्षा के पश्चात छा जाती है, ऐसी शांति का
तब उदय होगा। और उस गहन और नीरव शांति में वह रहस्यपूर्ण घटना घटित होगी, जो सिद्ध कर देगी कि मार्ग की प्राप्ति हो गई है। उस घटना को सिद्ध करने का और कोई उपाय नहीं है, जब तक कि वह घट ही न जाए।
मुझसे लोग आ कर पूछते हैं कि हमें यदि अनुभव हो जाएगा, तो कैसे पता चलेगा कि अनुभव हो गया है? अगर सिद्धि हो जाएगी, साधना फलित हो जाएगी, पूर्ण हो जाएगी, आत्म-ज्ञान भी हो जाएगा, हमें कैसे पता चलेगा कि हो गया है?

तो मैं उनसे कहता हूं कि जब आपके पैर में कांटा गड़ता है, तो आपको कैसे पता चलता है कि कांटा गड़ गया? वे कहते हैं, पीड़ा होती है। फिर आप किसी से पूछने जाते हैं कि मेरे पैर में कांटा गड़ा या नहीं? आपकी पीड़ा ही गवाही होती है।
जैसे पैर में कांटा गड़ने से पीड़ा होती है और पैर में से कांटा खींच लेने से पीड़ा से मुक्ति होती है। लेकिन दोनों अनुभव आपके निजी हैं, आपको होते हैं। ठीक ऐसे ही जब भीतर वह घटना घटती है, तो जीवन की सारी पीड़ा तिरोहित हो जाती है, सारा बोझ विनष्ट हो जाता है; पंख लग जाते हैं, निर्भार हो जाते हैं; न कोई अतीत रह जाता है, न कोई भविष्य; न कोई चिंता, न कोई पीड़ा-- शुद्ध अस्तित्व। उसकी प्रतीति आपको किसी से पूछने न जाना पड़ेगी कि मुझे हुई या नहीं। वह जब होगी, तब आपको फौरन प्रतीति हो जाएगी कि हो गई। फिर सारी दुनिया भी आपसे कहे कि नहीं हुई, तो भी आप सारी दुनिया पर हंस सकते हैं।
रामकृष्ण के पास केशवचंद्र मिलने आए थे। तो केशवचंद्र ईश्वर के खिलाफ बहुत से तर्क देने लगे। बुद्धिमान थे, तर्कनिष्ठ थे। रामकृष्ण हंसते रहे। और रामकृष्ण ने कहा कि तुम जो कहते हो, ठीक तर्कपूर्ण है, लेकिन मैं क्या करूं? मुझे उसका अनुभव हो गया है। तुम जो कहते हो, अगर मुझे अनुभव न हुआ होता, तो मैं भी कहता कि ठीक है। और अब भी कहता हूं कि जहां तक तर्क है, वहां तक बिल्कुल ठीक है। लेकिन मेरी बड़ी मुसीबत है, कि मुझे उसका अनुभव हो गया है। और मैं गैर पढ़ा-लिखा आदमी, मैं तुम्हारे तर्क का खंडन भी नहीं कर सकता। तुम जहां खड़े हो, वहां एक दिन मैं भी खड़ा था। एक दिन मुझे भी शक था कि वह है या नहीं। और उस दिन तुम्हारे सभी तर्क मुझे ठीक मालूम पड़े होते। लेकिन मेरी बड़ी मुसीबत है केशवचंद्र, रामकृष्ण ने कहा था, मेरी बड़ी मुसीबत है, क्योंकि मुझे उसका अनुभव हो गया है, अब मैं क्या करूं? अब तुम कितना ही कहो, सारी दुनिया कहे, तो भी मैं अपने अनुभव को नहीं झुठला सकता, वह मुझे हो गया है--वह है। अब तो एक ही उपाय है कि तुम भी उसके अनुभव में लगो। तो चलते वक्त जब केशव विदा होने लगे, तो रामकृष्ण ने कहा था, एक बात पक्की है कि आज नहीं कल, तुम उसके अनुभव में जरूर लगोगे। क्योंकि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी कब तक शब्दों और तर्कों में उलझा रहेगा?
केशवचंद्र ने लिखा है अपने संस्मरणों में, कि फिर इस शब्द को मैं कभी भूल न पाया--रामकृष्ण का यह कहना कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी कब तक तर्कों में उलझा रहेगा! तुम जरूर उसका अनुभव करोगे। उनका यह कहना, केशव ने लिखा है कि मेरे सब तर्कों को खराब कर गया। उन्होंने न मेरा खंडन किया, न मुझे इंकार किया; मुझे पूरे हृदय से स्वीकार किया। और साथ में यह भी कहा कि तुम जैसा बुद्धिमान आदमी... । और यह भी कहा कि तुम्हें देख कर मुझे ईश्वर पर और भरोसा आ गया, क्योंकि उसके बिना ऐसी बुद्धि कैसे पैदा हो सकती है--यह जो आदमी ईश्वर के खिलाफ बोल रहा है--तुम्हें देख कर मुझे उस पर और भरोसा आ गया, क्योंकि उसके बिना ऐसी बुद्धि का फूल कैसे खिल सकता है?
जिसको अनुभव है, उसे पूछने नहीं जाना पड़ता है। अनुभव स्वयं-सिद्ध है,
वह स्वतः ही प्रकट कर जाता है। जिस दिन इस तरह की नीरव शांति की घटना घटती है, उसी दिन वह परम रहस्य का द्वार खुल जाता है। और सिद्ध हो जाता है कि मार्ग की प्राप्ति हो गई।
"फूल खिलने का क्षण बड़े महत्व का है। यह वह क्षण है, जब ग्रहण-शक्ति जाग्रत होती है। इस जागृति के साथ-साथ विश्वास, बोध और निश्चय भी प्राप्त होते हैं।"
फूल खिलने का अर्थ है, एक ट्रस्ट। फूल को देखें। सुबह सूरज निकला और फूल खिला। किसलिए खिलता है फूल सुबह? ताकि सूरज को पी सके पूरा--कली बंद है, न पी सकेगी--ताकि सूरज को आत्मसात कर सके पूरा, ताकि अपने हृदय का द्वार सूरज के लिए खुला कर सके। फूल खिलता है सूरज को अपने भीतर लेने के लिए। कली तो है बंद, फूल है खुला। वह जो कली के भीतर हृदय है, मर्मस्थल है, उसे वह उघाड़ देता है सूरज के लिए। उसका खुलना एक गहरी आस्था है, एक भरोसा, एक विश्वास, कि तुम जीवन हो, कि तुम मेरे भीतर आए तो परम-जीवन आया, कि तुम्हारे बिना मेरा हृदय अंधेरा है, कि तुम्हारे बिना मैं बंद हूं, मृत

हूं, तुम्हीं बनोगे नृत्य, तुम्हीं बनोगे मेरी सुगंध, तुम्हीं मुझे मुझसे दूर और पार ले जाओगे। तुम्हीं में मैं लीन हो जाऊंगा। मेरी जो पार्थिव देह है, वह खो जाएगी, लेकिन अपार्थिव सुगंध जो है, वह हवाओं में विस्तीर्ण हो जाएगी, वह अनंत को छू लेगी।
ठीक भीतर भी--इसीलिए फूल की उपमा को चुना है बार-बार हमने--भीतर भी जब शांति की अपूर्व घटना घटती है, तूफान के बाद आने वाली शांति प्रकट होती है, तो हृदय का फूल खिलता है। उस परमात्मा के प्रति, उस महासूर्य के प्रति एक भरोसे के साथ कि अब तुम मेरे भीतर आ जाओ। एक भरोसे के साथ कि अब मुझे बंद होने की कोई जरूरत नहीं। अब मैं तुम्हें ग्रहण करूंगा, अब मैं तुम्हारे लिए गर्भ बन जाऊंगा। अब तुम मुझमें आ जाओ। अब मैं हृदय के किसी भी कोने को तुमसे खाली न रखूंगा।
बहुत रह लिया अंधेरे में, बहुत रह लिया बंद। और बंद इसी डर से था कि कहीं कोई दुर्घटना न हो जाए। भीतर का वह मर्मस्थल खुला छोड़ दिया जाए, तो कोई नुकसान न पहुंचा दे, कोई नष्ट न कर दे, कुछ गलत भीतर प्रवेश न कर जाए। तो सब तरफ से द्वार-दरवाजे बंद रखे थे, दीवालें खड़ी की थीं और अपने को भीतर रख छोड़ा था।
लेकिन अब वह क्षण आ गया है, जब मैं अपने को पूरा खोल सकता हूं। ग्रहण, ग्राहकता, रिसेप्टीविटी--अर्थ है उस खुलने का। कि अब मैं अपने को जरा भी बचाऊंगा नहीं, अब मैं पूरा तुम्हारे सामने नग्न हूं। मेरे हृदय की इस नग्नता में तुम प्रवेश कर जाओ। अब मेरे अंतर्गृह में आ जाओ, अब मैं तुम्हारे लिए मंदिर बनने को उत्सुक हूं।
"जब शिष्य सीखने के योग्य हो जाता है, तो वह स्वीकृत हो जाता है, शिष्य मान लिया जाता है और गुरुदेव उसे ग्रहण कर लेते हैं। ऐसा होना अवश्यंभावी है, क्योंकि उसने अपना दीप जला लिया है और दीपक की यह ज्योति छिपी नहीं रह सकती।"
"जब शिष्य सीखने के योग्य हो जाता है... ।"
और यही है सीखने की क्षमता आत्यंतिक अर्थों में। खुलना ही सीखने की क्षमता है। संपूर्ण रूप से ग्रहणशील हो जाना ही सीखने की क्षमता है। संपूर्ण रूप से अपने हृदय के सब द्वार-दरवाजे तोड़ कर खुलापन स्वीकार कर लेने का यह राजी भाव शिष्यत्व है। और जिस दिन ऐसा होता है, जिस दिन आप एक फूल की तरह खिलते हैं, उस दिन वह परम-गुरु आपको स्वीकार कर लेता है। परमात्मा ही परम-गुरु है।
इसलिए जिन्होंने गुरु में परमात्मा को देखा है, उनके देखने में सार्थकता है। गुरु में परमात्मा को देखने की सार्थकता है, क्योंकि अंततः परमात्मा ही गुरु है। शुरुआत तो करनी पड़ती है गुरु में परमात्मा देखने से, और एक दिन अंत होता है परमात्मा में गुरु को खोज लेने से। उसी क्षण वह परम-गुरु स्वीकार कर लेता है।
"ऐसा होना अवश्यंभावी है... ।"
इससे अन्यथा नहीं होता। क्योंकि जिस दिन आप खुले हैं और राजी हैं, उस दिन परमात्मा देने को तैयार है। जब तक आप बंद हैं, तभी तक उसके हाथ भी देने में असमर्थ हैं। उसके हाथ सदा देना चाहते हैं, लेकिन आपके बंद होने के कारण देने का कोई उपाय नहीं है। जिस दिन आप खुले हैं, उसी दिन उसका दान शुरू हो जाता है।
गुरु स्वीकार कर लेता है, क्योंकि शिष्य ने अपना दीप जला लिया, और दीपक की यह ज्योति छिपी नहीं रह सकती।
आप चकित होंगे जानकर, अध्यात्म के गुह्य शास्त्र में, एसोटेरिक विद्या में, इसके बहुत अर्थ हैं। अगर सच में ही आप गुरु के प्रति समर्पित हैं, ग्रहणशील हैं, तो आपका पूरा आभामंडल बदल जाता है। उसी क्षण बदल जाता है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, दीक्षा दे दें, संन्यास में प्रवेश करा दें। पर उन लोगों में बहुत थोड़े से ही लोग होते हैं, जो सच में ग्रहणशील होते हैं। तब उनके चेहरे के आसपास की आभा अलग होती है। तब उनकी आंखों की ज्योति अलग होती है, जैसे भीतर कोई दीया जल रहा है।

कुछ लोग हैं, जो आ जाते हैं किन्हीं और कारणों से दीक्षा लेने। उनके भीतर कोई रोशनी नहीं होती, कोई उजाला नहीं होता। उनके आसपास कोई आभामंडल नहीं होता। तब उन्हें दीक्षा भी दे दी जाए, तो व्यर्थ है। क्योंकि उनके हाथ खुले ही नहीं होते लेने को। उन्हें भी मैं दीक्षा दे देता हूं कि चलो कोई हर्ज नहीं। दीक्षा लेने का मन उठा है, कारण अभी गलत है, पर निराश करना उचित नहीं। शायद समझ आ जाए कल, गलत कारण छूट जाए और दीक्षा वास्तविक हो जाए। और हर्ज तो वैसे भी कुछ नहीं है। क्योंकि अगर आदमी गलत है, तो दीक्षा के बाद भी गलत ही रहेगा। ज्यादा गलत नहीं हो जाएगा, जितना गलत था, उतना ही गलत रहेगा। हर्ज कुछ भी नहीं है। लेकिन संभावना खुलती है कि शायद ठीक हो जाए, शायद रूपांतरित हो जाए।
पर जो व्यक्ति सच में ही ग्रहण करने के भाव से भरा हुआ आता है--वह दीक्षित हो ही चुका। उसे दीक्षा देना अब सिर्फ एक औपचारिक बात है, सिर्फ एक स्वीकृति है, जो उसे आह्लादित करेगी; एक स्वीकृति है, जो उसे दृढ़ करेगी; एक स्वीकृति है, जो उसकी आस्था को प्रगाढ़ करेगी, उसका आत्मविश्वास बढ़ाएगी। लेकिन दीक्षित वह हो ही चुका। ग्रहणशीलता ही दीक्षा है।
और जैसे ही कोई ग्रहणशील होता है, वैसे ही उसके आसपास प्रकाश फैलाना शुरू हो जाता है। वह प्रकाश वस्तुतः देखा जा सकता है। अगर आप भी ग्रहणशील व्यक्ति के पास शांत हो कर बैठें, तो आपको उसके प्रकाश की प्रतीति हो सकती है। गुरु को तो सहज ही हो जाती है। वह दिखाई ही पड़ जाता है। आता हुआ आदमी ही अपने साथ अपनी ज्योति या अपना अंधेरा ले कर आता है।
बंद आदमी है, जिसकी कली बिल्कुल बंद है, झुकने को जो बिल्कुल राजी नहीं--उसके आसपास अंधेरे का एक वर्तुल चलता है। खुला आदमी है, जिसकी ज्योति प्रकट हुई है--उसके आसपास एक प्रकाश का, आह्लाद का वातावरण चलता है। और जब आपके आसपास अंधेरा होता है, तो आपके सिर पर बोझ होगा। जब आपके आसपास प्रकाश होता है, तो आपका सिर निर्भार होता है।
"ऊपर लिखे गए नियम उन नियमों में से आरंभ के हैं, जो नियम परम-प्रज्ञा
के मंदिर की दीवारों पर लिखे हैं। जो मांगेंगे, उन्हें मिलेगा। जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे। जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे। तुम्हें शांति प्राप्त हो।"
जो मांगेंगे, उन्हें मिलेगा--इस सूत्र को हृदय में गहरे से खोद लेना।
"जो मांगेंगे, उन्हें मिलेगा। जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे। जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे।"
जीसस ने कहा है, नॉक, एंड दि डोर्स शैल बि थ्रोन ओपन अनटु यू। खटखटाओ,
और द्वार तुम्हारे लिए खोल दिए जाएंगे। आस्क एंड इट शैल बि गिवेन टु यू। मांगो और मिलेगा।
पर हम इतने दीन हैं कि द्वार भी नहीं खटखटाते! हम इतने दीन हैं कि हम मांगते भी हैं, तो क्षुद्र ही मांगते हैं, विराट का संस्पर्श नहीं! हम परमात्मा के द्वार पर भी जाते हैं, तो न मालूम क्या क्षुद्र मांगें ले कर जाते हैं! कुछ ऐसा मांगने जाते हैं, जो संसार में ही मिल सकता था, उसके लिए परमात्मा के द्वार तक जाने की कोई जरूरत न थी। और जो संसार की ही चीजें मांगता हुआ परमात्मा के द्वार पर जाता है, वह परमात्मा के द्वार पर पहुंचता ही नहीं। उसके लिए मंदिर भी बाजार है, मंदिर भी दुकान है, मंदिर भी संसार है। नाममात्र को ही वह मंदिर में जाता है, वह रहता अपने संसार में ही है।
लेकिन अगर कोई परमात्मा को ही मांगे, तो तत्क्षण मिल जाता है। पर मांगने के लिए तैयारी चाहिए। और मांगने के लिए हृदय में स्थान चाहिए कि हम जिसे मांग रहे हैं, वह अगर आ ही जाए, तो जगह है भीतर? ग्रहणशीलता चाहिए। इसलिए इन सूत्रों के बाद ही यह सूत्र है, कि जो फूल की तरह खिल रहा है
उस निस्तब्धता में, जो आंधी के बाद आती है, वह मांग सकता है। वह जो भी मांगेगा, वह मिल जाएगा। और जो का मतलब एक ही है अब उसके लिए मांग, वह मांगेगा परम-प्रज्ञा, वह मांगेगा परम-मुक्ति, वह मांगेगा परम-प्रभु को। वह जो जीवन का आत्यंतिक है, अंतिम है, आखिरी है, जिसके पार कुछ मांगने को नहीं बचता, वही मांग लेगा।

उस मांग को शब्द में बनाने की जरूरत भी नहीं है। उसका हृदय ही खुलते क्षण में वह मांग होगा। उसका फूल खिलते हुए ही वही मांग रहा है, कि आ जाओ तुम मेरे भीतर। इसके लिए शब्द देने की कोई जरूरत नहीं है। शब्द तो गिर गए आंधी के साथ, यह तो मौन प्यास होगी। यह तो पूरे प्राणों की अभीप्सा होगी। वह तो पढ़ना चाहेगा जो जीवन के परम मंदिर पर, वह जो जीवन का आत्यंतिक शिखर है जहां जीवन के सारे रहस्य-सूत्र लिखे हैं। यह तो सिर्फ एक उपमा है। अगर वह पढ़ना चाहेगा तो पढ़ लेगा। अगर वह सीखना चाहेगा जीवन के अंतिम रहस्यों को, तो सीख लेगा।
इस क्षण, फूल के खिलते हुए क्षण में जो भी हृदय की प्यास होगी, वह पूरी
हो जाएगी। इस फूल के खिलने के क्षण में आप कल्पवृक्ष के नीचे हैं, और जो भी भाव होगा, वह तत्क्षण यथार्थ हो जाएगा, साकार हो जाएगा।
मगर तूफान निकल जाने के बाद। अगर तूफान का थोड़ा सा भी हिस्सा भीतर रह गया, तो आपकी मांगें क्षुद्र की होंगी, वे पूरी हो जाएंगी। आपकी मांगें व्यर्थ की होंगी, वे पूरी हो जाएंगी।
टालस्टाय ने एक छोटी सी कहानी लिखी है। टालस्टाय ने लिखा है कि एक आदमी ने एक प्रेत को प्रसन्न कर लिया। तो बड़े सालों तो लगे प्रसन्न करने में, जब वह प्रसन्न हो गया प्रेत, तो उसने कहा, तू तीन वरदान मांग ले। तो उस आदमी ने कहा कि अभी एकदम तो मेरी समझ में नहीं आता, लेकिन आप तीन वरदान मेरे पूरे करेंगे, तो मैं पीछे जैसा समय जरूरी होगा, उस वक्त मांग लूंगा। तो प्रेत ने कहा कि ठीक, लेकिन ध्यान रखना, चौथा नहीं, बस तीन! पर उस आदमी ने सोचा कि तीन भी पर्याप्त हैं। तीन में तो सारा संसार पाया जा सकता है, तीनों लोक पाए जा सकते हैं।
वह घर आया सोचता हुआ कि क्या मांग लूं तीन में कि कुछ चूक न जाए! घर आते
से ही पत्नी से झगड़ा हुआ तो उसने पहला वरदान मांग लिया कि खतम करो इसको। वह पत्नी खतम हो गई। खतम होते से ही वह घबड़ाया कि बच्चों का क्या होगा? पास-पड़ोस में खबर लग जाएगी। और यह पत्नी मर गई। फिर उसे याद आया कि वह प्रेम भी करती थी, झगड़ती तो थी ही। फिर उसे याद आया कि अब दूसरी शादी करनी इस उम्र में; झंझट-बखेड़ा होगा। उम्र भी ज्यादा हो गई, साठ के पार हो गई, अब कोई लड़की भी कहां मिलेगी? तो उसने सोचा कि यह गलती हो गई। उसने कहा कि हे प्रेत! मेरी पत्नी को जिंदा कर दे। तो वह पत्नी जिंदा हो गई। दो वरदान खतम हो गए। अब उसकी बड़ी मुश्किल हो गई, एक ही बचा। तो वह इतना चिंतातुर हो गया कि क्या मांगूं, कि रात नींद न आए, उसका दिमाग पागल होने लगा--यह मांगू कि यह मांगू! और एक ही बचा है। और अब यह डर भी पैदा हो गया कि किसी उपद्रव के क्षण में कहीं ऐसा फिर कुछ न कर बैठूं कि पत्नी मर जाए, या यह हो जाए, तो अब दुबारा जिंदा करने का भी उपाय नहीं है। तीन दिन के भीतर वह इतना व्यथित हो गया, इतना मुश्किल में पड़ गया, कि उसने प्रेत से कहा कि हे प्रेत! वह तीसरा वरदान वापस ले ले; कि वह मैं न मांगूं, ऐसा कर दे। क्योंकि मैं मर जाऊंगा, मुझे कुछ सूझता नहीं है। वह तीसरा वापस हो गया।
क्षुद्र शेष हो भीतर, तो आपको वरदान भी मिल जाएं, तो आप करिएगा क्या?
वह जो क्षुद्रता है, वही बाहर आ जाएगी।
तूफान निकल ही जाना चाहिए। अभागे हैं वे लोग, जो थोड़ा-बहुत तूफान ले
कर उस क्षण में पहुंच जाएं--जब जो मांगो, वह पूरा हो जाए। खतरा है। इसलिए मेरा बहुत जोर है कि तूफान को सब भांति निकाल डालना। तब एक ही मांग रह जाएगी।
वह मांग कहना ठीक नहीं है, प्यास है। प्यास भी कहना ठीक नहीं है, क्योंकि उसका कोई बोध भी नहीं होगा। ऐसा नहीं होगा कि आप प्यासे हैं, और आपको प्यास का पता चला रहा है। कुछ ऐसा होगा कि आप प्यास हो गए हैं। अलग नहीं हैं, आप अभीप्सा बन गए हैं। तब जो मांगेंगे, उन्हें मिलेगा। जो पढ़ना चाहेंगे, वे पढ़ेंगे। जो सीखना चाहेंगे, वे सीखेंगे।
"तुम्हें शांति प्राप्त हो।"
लेकिन इन सबका आधार है, तुम्हें शांति प्राप्त हो। उसके पहले यह सब किसी अर्थ का नहीं है। सब कल्पना-जाल है फिर। और तुम्हें शांति प्राप्त न हो, तो उस दिशा में कोई भी यात्रा असंभव है।

साधना-सूत्र
नौवां प्रवचन

एकमात्र पथ-निर्देश

नीरवता (साइलेंस) में से, जो स्वयं शांति है,
एक गूंजती हुई वाणी प्रकट होगी।
और वह वाणी कहेगीः
"यह अच्छा नहीं है, काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिए।"
यह वाणी स्वयं नीरवता ही है,
यह जानकर तुम उसके आदेश का पालन करोगे।
तुम जो अब शिष्य हो,
अपने पैरों पर खड़े रह सकते हो,
सुन सकते हो, देख सकते हो, बोल सकते हो।
तुम जिसने वासनाओं को जीत लिया है और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जिसने अपनी आत्मा को विकसित अवस्था में देख लिया है और पहचान लिया है,
और नीरवता के नाद को सुन लिया है,
तुम अब उस ज्ञान-मंदिर में जाओ,
जो परम-प्रज्ञा का मंदिर है और जो कुछ तुम्हारे लिए वहां लिखा है, उसे पढ़ो।
नीरवता की वाणी सुनने का अर्थ है,
यह समझ जाना कि एकमात्र पथ-निर्देश अपने भीतर से ही प्राप्त होता है। प्रज्ञा के मंदिर में जाने का अर्थ है,
उस अवस्था में प्रविष्ट होना,
जहां ज्ञान प्राप्ति संभव होती है।
तब तुम्हारे लिए वहां बहुत से शब्द लिखे होंगे और वे ज्वलंत अक्षरों में लिखे होंगे,
जिससे तुम उन्हें सरलता से पढ़ सको,
क्योंकि जब शिष्य तैयार हो जाता है,
तो श्री गुरुदेव भी तैयार ही हैं।

सत्य की खोज के लिए दो अध्याय हैं।
एक--जब साधक खोजता है।
और दूसरा--जब साधक बांटता है।
आनंद तब तक पूरा न समझना, जब तक तुम उसे बांटने में भी सफल न हो जाओ।
आनंद की खोज तो लोभ का ही हिस्सा है। आनंद की चाह तो अस्मिता केंद्रित ही है मेरे लिए। मेरे लिए ही वह खोज है। और जब तक मेरा इतना भी बाकी है कि मैं आनंद अपने लिए ही चाहूं, तब तक आनंद मेरा अधूरा ही रहेगा। और उस आनंद के साथ-साथ अंधेरे की एक रेखा भी चलेगी। और उस आनंद के साथ-साथ दुख की एक छाया भी मौजूद रहेगी। क्योंकि जब तक मैं मौजूद हूं, तब तक दुख से पूर्ण छुटकारा असंभव है। मुझे आनंद की झलक भी मिल सकती है, लेकिन वह झलक ही होगी। और पीड़ा किसी न किसी रूप में सदा मेरे साथ संबद्ध रहेगी, क्योंकि मैं ही पीड़ा हूं। जिस दिन दूसरी घटना भी घटती है--आनंद को बांटने की--उस दिन मैं महत्वपूर्ण नहीं रह जाता, दूसरा महत्वपूर्ण हो जाता है, तुम महत्वपूर्ण हो जाते हो। उस दिन आनंद मांगता नहीं है साधक, उस दिन आनंद देता है, उस दिन आनंद बांटता है। और जब तक आनंद बंटने न लगे, तब तक पूरा नहीं होता। आनंद मिलता है जब, तब अधूरा होता है। और आनंद जब बंटता है, तब पूरा होता है।
ऐसा समझें, कि एक भीतर आती हुई श्वास है, और एक बाहर जाती हुई श्वास है। भीतर आती हुई श्वास आधी है और तुम अकेली भीतर आती श्वास से जी न सकोगे। और अगर तुमने चाहा कि भीतर जो श्वास आती है, उसे मैं भीतर ही रोक लूं, तो श्वास जो कि जीवन का आधार है, वही श्वास मृत्यु का कारण बन जाएगी। श्वास भीतर आती है, तो उसे बाहर छोड़ना भी होगा। और जब श्वास बाहर भी छूटती है, तब ही वर्तुल पूरा होता है। भीतर आती श्वास आधी है, बाहर जाती श्वास आधी है।
दोनों मिल कर पूरी होती हैं। और वे दो कदम हैं, जिनसे जीवन चलता है।

आनंद जब तुम्हारे भीतर आता है, तो आधी श्वास है। और जब आनंद तुमसे बाहर जाता है और बंटता है, बिखरता है, फैलता है, विस्तीर्ण होता है लोक-लोकांतर में--तब आधी श्वास और भी पूरी हो गई।
ध्यान रहे, तुम जितने जोर से श्वास को बाहर फेंकने में समर्थ हो जाते हो, उतनी ही गहरी श्वास भीतर लेने में भी समर्थ हो जाते हो। अगर कोई ठीक से श्वास को बाहर फेंके, तो जितनी श्वास बाहर फेंकेगा, उतनी ही गहरी सामर्थ्य भीतर श्वास लेने की हो जाती है। जो लुटाएगा, वह और भी ज्यादा पा लेता है! फिर और ज्यादा पा कर और ज्यादा लुटाता है तो और ज्यादा पा लेता है। फिर यहशृंखला अनंत हो जाती है।
इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जो तुम्हारे पास है, वह तब ही तुम्हारे पास है, जब तुम उसे देने में समर्थ हो। और जब तक तुम देने में असमर्थ हो, तब तक समझना कि वह तुम्हें मिला ही नहीं है। मिलते ही बंटना शुरू हो जाता है।
एक बात समझ लेने जैसी है कि अगर जीवन में दुख हो तो आदमी सिकुड़ता है, बंद होता है; चाहता है कोई मिले ना, कोई संगी-साथी पास न आए; कहीं एकांत, दूर किसी गुफा में बैठ जाऊं, अपने द्वार-दरवाजे बंद कर लूं। दुखी आदमी अपने को सब तरफ से घेर कर बंद कर लेना चाहता है। दुख संकोच है, सिकुड़ाव है। दुख में तुम नहीं चाहते कि कोई बोले भी, कोई कुछ कहे भी। कोई सहानुभूति भी प्रकट करता है, तो अड़चन मालूम होती है। जब तुम सच में दुख में हो, तो सहानुभूति प्रकट करने वाला भी खटकता है। तुम्हारा कोई प्रियजन चल बसा है, गहन दुख की बदलियों ने तुम्हें घेर लिया है, तो कोई समझाने आता है, सांत्वना देता है। उसकी सांत्वना, उसका समझाना, सब थोथा मालूम पड़ता है। उसकी ज्ञान की बातें भी कि आत्मा अमर है, घबड़ाओ मत, कोई मरता नहीं--दुश्मन की बातें मालूम पड़ती हैं। दुख सब तरफ से अपने को बंद कर लेना चाहता है बीज की तरह, और सिकुड़ जाना चाहता है।
ठीक इसके विपरीत घटना आनंद की है। जब आनंद फलित होता है, जैसे दुख में सिकुड़ता है आदमी, वैसा आनंद में फैलता है। तब वह चाहता है कि जाए और दूर-दिगंत में, हवाएं जहां तक जाती हों, आकाश जहां तक फैलता हो, वहां तक जो उसने पाया है, उसे फैला दे। जैसे फूल जब खिलता है तो सुगंध दूर-दूर तक फैल जाती है। और दीया जब जलता है तो प्रकाश की किरणें दूर-दूर तक फैल जाती हैं। ऐसे ही जब आनंद की घटना घटती है, तब बंटना शुरू हो जाता है। अगर तुम्हारा आनंद तुम्हारे भीतर ही सिकुड़ कर रह जाता हो, तो समझना कि वह आनंद नहीं है। क्योंकि आनंद का स्वभाव ही बंटना है, विस्तीर्ण होना है।
इसलिए हमने परमात्मा के परम-रूप को ब्रह्म कहा है। ब्रह्म का अर्थ है,
जो विस्तीर्ण होता चला जाता है। ब्रह्म शब्द में वही आधार है, जो विस्तार में है, विस्तीर्ण में है। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता ही चला जाता है, जिसके फैलाव का कहीं कोई अंत नहीं है। ऐसी कोई जगह नहीं आती, जहां उसकी सीमा आती हो, वह फैलता ही चला जाता है।
अभी फिजिक्स ने और ज्योतिष-शास्त्र ने, अंतरिक्ष के खोजियों ने तो अभी ही यह बात आ कर इस सदी में कही है, कि जो विश्व है वह एक्सपेंडिंग है, विस्तीर्ण होता हुआ है। पश्चिम में तो यह ख्याल नहीं था। पश्चिम में तो यह ख्याल था कि विश्व जो है वह चाहे कितना ही बड़ा हो, उसकी सीमा है, वह फैल नहीं रहा है। लेकिन आइंस्टीन के बाद एक नई धारणा का जन्म हुआ है। और वह धारणा बड़ी महत्वपूर्ण है, क्योंकि वह धारणा ब्रह्म के बहुत करीब पहुंच जाती है।
आइंस्टीन ने कहा कि यह जगत सीमित नहीं है, यह फैल रहा है। जैसे जब आप श्वास भीतर लेते हैं, तो आपकी छाती फैलती है, ऐसा यह जगत फैलता ही चला जा रहा है। इसके फैलाव का कोई अंत नहीं मालूम होता। बड़ी तीव्र गति से जगत बड़ा होता चला जा रहा है।
मगर भारत में यह धारणा बड़ी प्राचीन है। हमने तो परम-सत्य के लिए ब्रह्म नाम ही दिया है। ब्रह्म का अर्थ है, जो फैलता ही चला जाता है, इनफिनिटली एक्सपेंडिंग। जिसका कहीं अंत नहीं आता, जहां वह रुक जाए, जहां

उसका विकास ठहर जाए। और ब्रह्म के स्वभाव को हमने आनंद कहा है। आनंद विस्तीर्ण होती हुई घटना है। आनंद ही ब्रह्म है।
तो जिस दिन तुम्हारे जीवन में आनंद की घटना घटेगी, उस दिन तुम कृपण न
रह जाओगे। कृपण तो सिर्फ दुखी लोग होते हैं। इसे थोड़ा समझ लेना, यह सभी अर्थों में सही है।
दुखी आदमी कृपण होता है, वह दे नहीं सकता। वह सभी चीजों को पकड़ लेता है, जकड़ लेता है। सभी चीजों को रोक लेता है छाती के भीतर। वह कुछ भी नहीं छोड़ सकता। जान कर आप चकित होंगे, मनस्विद कहते हैं कि कृपण आदमी गहरी श्वास भी नहीं लेता। क्योंकि गहरी श्वास लेने के लिए गहरी श्वास छोड़नी पड़ती है। छोड़ वह सकता ही नहीं। मनस्विद कहते हैं कि कृपण आदमी अनिवार्य रूप से कब्जियत का शिकार हो जाता है--मल भी नहीं त्याग कर सकता, उसे भी रोक लेता है। मनस्विद तो कहते हैं कि कब्जियत हो ही नहीं सकती, अगर किसी न किसी गहरे अर्थों में मन के अचेतन में कृपणता न हो। क्योंकि मल को रोकने का कोई कारण नहीं है। शरीर तो उसे छोड़ता ही है, शरीर का छोड़ना तो स्वाभाविक है, नैसर्गिक है। लेकिन मन उसे रोकता है।
ध्यान रहे, बहुत से लोग ब्रह्मचर्य में इसीलिए उत्सुक हो जाते हैं कि
वे कृपण हैं। उनकी ब्रह्मचर्य की उत्सुकता वास्तविक रूप में कोई परम-सत्य की खोज नहीं है। उनकी ब्रह्मचर्य की उत्सुकता वीर्य की शक्ति बाहर न चली जाए, उस कृपणता का हिस्सा है। बहुत थोड़े से लोग ही ब्रह्मचर्य में समझ-बूझ कर उत्सुक होते हैं। अधिक लोग तो कृपणता के कारण ही! जो भी है, वह भीतर ही रुका रहे, बाहर कुछ चला न जाए। इसलिए कृपण व्यक्ति प्रेम नहीं कर पाता। आप कंजूस आदमी को प्रेम करते नहीं पा सकते। क्योंकि प्रेम में दान समाविष्ट है। प्रेम स्वयं दान है, वह देना है। और जो दे नहीं सकता, वह प्रेम कैसे करेगा? इसलिए जो भी आदमी कंजूस है, प्रेमी नहीं हो सकता। इससे उलटा भी सही है। जो आदमी प्रेमी है, वह कृपण नहीं हो सकता। क्योंकि प्रेम में अपना हृदय जो दे रहा है, वह अब सब कुछ दे सकेगा। आनंद के साथ कृपणता का कोई भी संबंध नहीं है, दुख के साथ है।
तो जिस दिन तुम्हें सच में ही आनंद की घटना घटेगी, उस दिन तुम दाता हो जाओगे। उस दिन तुम्हारा भिखारीपन गया। उस दिन तुम पहली दफा बांटने में समर्थ हुए। और तुम्हें एक ऐसा स्रोत मिल गया है, जो बांटने से बढ़ता है, घटता नहीं।
धन बांटो, तो घट जाता है। घटेगा ही, क्योंकि धन का आधार दुख है, आनंद नहीं है। धन किसी न किसी रूप में, किसी न किसी के दुख पर ही खड़ा है। धन में कहीं न कहीं मनुष्य की पीड़ा समाविष्ट है। तो धन को तो इकट्ठा करो, तो भी दुख ही इकट्ठा किया जा रहा है। धन को अगर बांटने जाओ तो बांटने से घटेगा। क्योंकि धन कोई अंतर-अवस्था नहीं है, वस्तुओं का संग्रह है। वस्तुएं बांटी जाएंगी, तो घट जाएंगी।
सुना है मैंने, एक फकीर एक गृहणी से भिक्षा मांग रहा था। उस गृहणी ने उसे भरपूर दिया, उसका भिक्षापात्र भर दिया। ऊपर से कुछ कपड़े और कुछ रुपए भी दिए। वह फकीर, वह भिखमंगा बड़ा सुंदर था। और ऐसा लगता था, किसी अच्छे खानदान का होगा। कपड़े तो उसके पास फटे-पुराने थे, लेकिन आंखों में जो चमक थी, चेहरे पर जो रौनक थी, चेहरे का जो ढंग था, जो आकृति थी, शरीर में जो लावण्य था--तो गृहणी पूछने से न रुक सकी, उसने पूछा, तुम्हें देख कर लगता है कि तुम किसी बड़े परिवार के हो, तुम्हारी यह दशा कैसे हुई? तो उस फकीर ने कहा, जो तुम कर रही हो, यही मैं करता रहा--देता रहा। जो हालत मेरी है, थोड़े दिन में तुम्हारी भी हो जाएगी।
धन की सीमा है--बंटेगा, तो कम होगा। आनंद की कोई सीमा नहीं है--बंटेगा,
तो बढ़ेगा। और आनंद का स्रोत भीतर है। तो जितना तुम उलीचते हो, उतने नए झरने आ जाते हैं।
इसे ऐसा भी समझ लें। हम एक कुआं खोदते हैं। तो पानी को उलीचते हैं, तो झरने पानी को भरते जाते हैं। कभी आपने सोचा कि ये झरने कहां से आते हैं? ये दूर सागर से जुड़े हैं, ये कभी रिक्त होने वाले नहीं हैं। कुआं सड़ सकता है,

अगर उलीचा न जाए। लेकिन अगर उलीचा जाए, तो रोज ताजा और नया होगा। और सागर अनंत है, जिससे झरने जुड़े हैं।
ध्यान रहे, हमारे भीतर जब आनंद की घटना घटती है, हम उसे उलीचना शुरू करते हैं, तभी हमें पता चलता है कि आनंद के झरने ब्रह्म से जुड़े हैं। हम कितना ही उलीचें, वे समाप्त नहीं होते। हम सिर्फ एक कुआं हैं और उसके झरने दूर सागर से जुड़े हैं। वह सागर ही ब्रह्म है। आनंद बंटने से इसीलिए बढ़ता है। और आनंद बंटने से ही पूर्ण होता है।
अब हम इस सूत्र को समझें।
"नीरवता में, जो स्वयं शांति है, एक गूंजती हुई वाणी प्रकट होगी। और वह वाणी कहेगी, यह अच्छा नहीं है, काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिए।" बड़ा उलटा है। लोग पहले बोते हैं, फिर काटते हैं।
यह सूत्र कहता है, "काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिए।"
संसार में हम बोते हैं पहले, काटते हैं बाद में। अध्यात्म में हम काटते हैं पहले, बोते हैं बाद में। संसार और अध्यात्म का संबंध बिल्कुल उलटा है। जो यहां नियम है, ठीक उससे विपरीत वहां नियम है। संसार के सारे नियम अगर हम विपरीत कर लें, तो वे अध्यात्म के नियम हो जाते हैं।
ऐसा समझें, कि कोई एक आदमी झील के किनारे खड़ा है। झील में मछलियां हैं। वे मछलियां झील में बनते हुए प्रतिबिंब को देखती हैं उस आदमी के, तो उनको उस आदमी के पैर ऊपर और सिर नीचे दिखाई पड़ेगा। क्योंकि झील में जो प्रतिबिंब बनता है, वह उलटा बनेगा। लेकिन मछली अगर छलांग लगा कर देखे, पानी के ऊपर आ कर आदमी को, तो बहुत चकित हो जाएगी। वह सोचेगी कि यह आदमी शायद उलटा खड़ा है, चूंकि नीचे तो जल में, सिर नीचे दिखाई पड़ता है, पैर ऊपर दिखाई पड़ते हैं। छलांग लगा कर देखे पानी के ऊपर, तो यह आदमी के पैर नीचे दिखाई पड़ते हैं और सिर ऊपर दिखाई पड़ता है! मछलियां लौट कर अपने साथी- संगियों को कहेंगी कि जमीन पर आदमी उलटा खड़ा है।
संसार प्रतिबिंब है अध्यात्म का। सत्य का प्रतिबिंब है यहां। यहां जो
भी हमें सीधा मालूम पड़ता है, वह सीधा है नहीं। मगर हमारे जगत में सीधा है। जिस दिन हम उठते हैं विचारों के सरोवर से ऊपर, उस दिन हमें लगता है कि सब चीजें उलटी हैं। वे ही ठीक हैं, वे ही सीधी हैं--हमारे विचारों की छाया में जो प्रतिफलित होता था, विचारों के दर्पण में जो दिखाई पड़ता था, वही उलटा था, वही प्रतिबिंब था।
वहां तो हमें पहले काट लेना पड़ता है, फिर बोना पड़ता है। क्यों? आनंद तो पहले उपलब्ध हो जाता है, इसका अर्थ हुआ कि आपने फसल काट ली। श्वास तो आप पहले भीतर ले लेते हैं, फिर श्वास छोड़नी पड़ती है। आपने फसल काट ली आनंद की! दूसरा हिस्सा है कि अब आनंद के बीज आप बो दें दूर-दिगंत तक, ताकि और लोग उसकी फसल काट सकें। किसी और ने बोया था, उसकी फसल आपने काट ली है।
बुद्ध बोते हैं, महावीर बोते हैं, कृष्ण बोते हैं, क्राइस्ट बोते हैं, मोहम्मद बोते हैं--वह जो भी आनंद को पा लेता है, वह बोता ही है। काट पहले लेता है, बोता बाद में है। क्योंकि बोएंगे तो आप तब ही, जब आप काट चुके होंगे। आपके पास होना भी चाहिए न बोने को! जो है ही नहीं, उसे आप बोएंगे कैसे? जो है, वही बोया जा सकता है। तो आनंद ही जब पास न हो तो आप बोएंगे क्या?
हम सब इस तरह की भूल कर रहे हैं और जगत बड़ी दुविधा में पड़ा है। हम सब एक-दूसरे को आनंद देने की कोशिश करते हैं, बिना इसकी फिक्र किए कि आनंद हमारे पास है? इसका परिणाम यह होता है कि हम सब आनंद देना चाहते हैं और सब दुख देने में सफल हो पाते हैं। कोई किसी को आनंद दे नहीं पाता।
पति बड़ी कोशिश कर रहा है कि पत्नी को आनंद दे और पत्नी दुखी हो रही है! पत्नी बड़ी कोशिश कर रही है कि पति को आनंद दे और पति सोच रहा है, कहां की झंझट में पड़ गया, कैसे छुटकारा हो! बाप बेटे को आनंद देने की कोशिश कर रहा है और बेटा सोच रहा है कि कब मौका आएगा कि मैं निकल भागूं इस बाप के जाल से! बेटे बाप को आनंद दे रहे हैं और बाप सिर पीट रहे हैं कि कहां के कुपुत्र घर में पैदा हो गए हैं!

हम सब एक-दूसरे को आनंद देने की कोशिश कर रहे हैं! और ऐसा नहीं है कि हम
सच में कोशिश नहीं करते हैं, हम कोशिश करते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है, इसमें कोई शक-शुबहा नहीं है कि हम कोशिश नहीं करते। लेकिन हम यह बिना समझे कोशिश करते हैं कि जो हमारे पास नहीं है, उसे हम दूसरे को कैसे दे सकते हैं? पत्नी खुद दुखी है और पति को आनंद देने की कोशिश कर रही है! पति खुद दुखी है और पत्नी को आनंद देने की कोशिश कर रहा है! बाप खुद दुखी है और बेटे को आनंदित करने की कोशिश कर रहा है! यह निहायत पागलपन है। यह कौन सा गणित है? जो नहीं है मेरे पास, वह मैं आपको नहीं दे सकता हूं।
और यह भी इसके साथ जुड़ा हुआ हिस्सा है कि मेरे पास आनंद नहीं है, तो मैं दूसरों से लेने की भी कोशिश कर रहा हूं। लेकिन जिनसे मैं लेने की कोशिश कर रहा हूं, कभी नहीं देखता कि वे भी मुझ से आनंद ही लेने की कोशिश कर रहे हैं। जब आप किसी से आनंद लेने की कोशिश कर रहे हैं और वह भी आपसे आनंद लेने की कोशिश कर रहा है, तो आपकी हालत ऐसी है कि दो भिखारी एक-दूसरे के सामने भिक्षापात्र रखे खड़े हैं कि कुछ दान में मिल जाए। यह दान कैसे घटित होगा? दोनों दुखी होने वाले हैं। क्योंकि दोनों ही असफल होंगे और दोनों समझेंगे कि दूसरे ने धोखा दिया--दे सकता था और नहीं दिया। जो दे सकता होता, तो दे ही देता।
आनंद कुछ बात ऐसी है कि देने से बढ़ता है। इसलिए जो दे सकता है, वह देगा ही। वह रोक नहीं सकता। क्योंकि रोकने से सड़ता है, रोकने से कम होता है, रोकने से खो जाता है। तो जब देने से कोई चीज बढ़ती है, तो कौन नहीं देगा? देना सभी चाहते हैं, लेकिन है नहीं। लेना सभी चाहते हैं, लेकिन जिनसे लेने गए हैं, वे खुद ही उनसे लेने आए थे!
तो भिखारियों का एक संसार एक-दूसरे को खूब दुखी कर देता है। भारी दुख है। सब जगह शुरू-शुरू में सुख मालूम पड़ता है, फिर धीरे-धीरे दुख मालूम पड़ने लगता है। सुख तभी तक मालूम पड़ता है, जब तक आशा रहती है कि मिलेगा। जब आशा टूटने लगती है, और एक-एक आशा का कदम क्षीण होने लगता है, एक-एक जड़ कटने लगती है, तो दुख व्याप्त हो जाता है।
आनंद पहले काटना होगा, फिर उसके बीज बोने होंगे। फिर उसकी फसल कोई और काटेगा। हम भी जो फसल काटते हैं, वह किसी की बोई हुई है, इस अर्थ में। तो बुद्ध आज न हों, लेकिन वह जो बोते हैं, वह हम काटते हैं। जीसस आज न हों, लेकिन वह जो बोते हैं, वह हम काटते हैं। यह विस्तार अनंत है, अनादि है। यहां सारी मनुष्यता एक ही प्रवाह है।
यह सूत्र कह रहा है कि जब तुम शांत हो चुके होगे तूफान के बाद, जब तूफान जा चुका होगा, आंधी जा चुकी होगी और नीरवता, परम-शांति तुम्हारे भीतर प्रकट होगी, और फूल खिलेगा जीवन का, तब उस शांति में से ही तुम्हें एक गूंजती हुई वाणी सुनाई पड़ेगी।
जैसे ही कोई व्यक्ति शांत होता है, तत्क्षण यह प्रतीति उसे होने लगती है।
"वह वाणी कहेगी, यह अच्छा नहीं है, काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिए।"
ले तो तुम चुके, अब बांटो। मिल तो तुम्हें गया, अब लुटाओ। मालिक तो तुम
बन गए, लेकिन अभी मालकियत अधूरी है। अब इसे तुम दो और पूरे मालिक बन जाओ। क्या कभी आपने यह सोचा कि जिस चीज को हम दे सकते हैं, उसके ही हम मालिक होते हैं। यह उलटा लगता है। जिस चीज को हम दे सकते हैं, उसके ही हम मालिक होते हैं। देने में ही पता चलता है कि हम मालिक थे। अगर आप नहीं दे पाते और चीज को पकड़ते हैं, सोचते हैं देना बहुत मुश्किल है--आप मालिक नहीं हैं, चीज मालिक है। आप जब दे पाते हैं, तो आप मालिक हैं। मालिक दे सकता है, गुलाम क्या देगा?
और जिस दिन हम आनंद को दे पाते हैं, उस दिन हमारी आनंद पर मालकियत हो जाती है।
दुख तो हम देते हैं--बहुत देते हैं--बिना जाने। पता ही नहीं कि हम किस-किस तरह का दुख किस-किस को देते हैं। किस शब्द से, किस इशारे से, किस आंख के ढंग से, किसको हम दुख पहुंचा देते हैं, इसका हमें पता ही नहीं। हम तो दुख

देते ही रहते हैं चारों तरफ। हमारे उठने में, बैठने में, दुख का जहर फैलता रहता है। वह हमारे भीतर भरा है, हम कुछ कर भी नहीं सकते। हम उसे रोकें भी तो वह मिथ्या है। हम चाह कर दीवालें भी बना लें तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता। वह दूसरा रास्ता खोज कर बहेगा और कहीं न कहीं से निकलेगा। झरने रोके नहीं जा सकते।
तो दुख तो हम देते हैं। हमारा जीवन ही दुख का बांटना है। लेकिन यह अगर हमें ख्याल आ जाए कि हम दुख बांट रहे हैं... । कोई मानता नहीं है यह। आप कितना ही किसी को दुख दें, कोई आप से कहे तो आप कभी मानने को राजी नहीं होते कि आप दुख देते हैं। आप तो कहेंगे कि यह गलत बात है, समझ की भूल है। मैं तो सुख ही दे रहा हूं। हालांकि आप भी दूसरों से दुख पाते हैं, वे भी यही कहते हैं कि हम तो सुख ही दे रहे हैं। आप दुख पा रहे हैं, तो आपकी गलती है। सब सुख दे रहे हैं और किसी को सुख नहीं मिल रहा है, फिर भी यह बोध नहीं आता है कि यहां कहीं जरूर कोई बुनियादी भूल हो रही है।
एक सूत्र स्मरण रख लें--कि जो आपके पास है, वही आप दे सकते हैं, अन्यथा कोई उपाय नहीं है। यह स्वाभाविक है कि हम दुख दें और दुख पाएं। और इस तरह दुख को घना करें। यह तब तक जारी रहेगा, जब तक तूफान आपके दुख को न छीन ले। क्यों दे रहे हैं लोगों को? तूफान उठाएं और दुख की सारी धाराओं को तूफान को ले जाने दें। यह तब तक जारी रहेगा, जब तक आप दुख को आकाश में विसर्जित करने की कला न सीख जाएं। तब तक आप किसी न किसी पर दुख को विसर्जित करेंगे।
एक युवक मेरे पास आया। वह अमरीका से भाग कर आया था और भागने का कारण था। मनस-विश्लेषण में पाया गया कि वह अपने बाप की हत्या करने को आतुर है। और उसने भी समझ लिया यह कि यह बात सच है। उसके मन में एक ही कल्पना बार-बार पकड़ती है कि बाप को मार डालें! बाप ने उसको सताया है। फिर मां उसकी छोड़ कर चली गई। फिर बाप ने दूसरी शादी कर ली। फिर सब तरह की पीड़ाएं उसने झेली हैं। और बाप के प्रति गहन घृणा उसके मन में है। जब मनस्विदों ने उसे कहा कि यह विचार तेरे मन को घेरे हुए है और यह कभी प्रकट न हो जाए, तो वह खुद भी भयभीत हो गया। वह इसलिए हिंदुस्तान चला आया है कि न रहेगा बाप के पास और न यह उपद्रव की संभावना होगी।
वह मेरे पास आया। मैंने उसको कहा कि तू कहीं भी भाग, जिस दिन तुझे बाप
की हत्या करनी है, उस दिन तू बाप के पास पहुंच जाएगा। भाग तू सकता नहीं ऐसे, क्योंकि अपने से कैसे भागेगा? बाप से भाग सकता है। लेकिन तेरा वह जो हत्या करने वाला मन है, वह तेरे भीतर है, वह तेरे साथ है, वह और सघन हो जाएगा। उसने कहा, मैं क्या करूं? मैंने उससे कहा, तू बाप की हत्या कर ही दे। उसने कहा कि आप क्या कहते हैं! आप होश में हैं? आप जैसा आदमी मैंने नहीं देखा! मैं आपके पास शांत होने आया हूं, आप कहते हैं, बाप की हत्या ही कर दे!
तो मैंने उससे कहा कि जा कर सचमुच के बाप की हत्या करने की जरूरत नहीं है। मेरे कमरे में एक तकिया पड़ा था। मैंने उसको कहा कि यह तकिया तू ले जा, इसको तू अपना बाप समझ, इस पर बाप का नाम भी लिख दे, इस पर बाप की तस्वीर भी लगा दे, और बाजार से एक छुरा खरीद ला। उसने कहा कि आप भी क्या मजाक कर रहे हैं! पर देखा मैंने कि उसकी आंखों में चमक आ गई और प्रसन्नता आ गई। उसका उदास चेहरा प्रफुल्लित दिखाई पड़ा। मैंने कहा, तू बेफिक्री से रोज हत्या कर। एक दिन से भी क्या होगा? तू आधे घंटे का उपक्रम ही बना ले--कि सुबह पहला कार्य बाप की हत्या करने का है। उसने कहा, लेकिन इसमें क्या रस आएगा! मैंने कहा, तू इसे शुरू कर। सात दिन बाद मुझे तू आ कर बताना।
सात दिन बाद वह आया, वह कहने लगा कि आपने क्या किया मुझे? आधा घंटे में दिल नहीं मानता है। कभी-कभी तो घंटे, डेढ़ घंटे ऐसी पिटाई करता हूं, फिर छुरा भी मारता हूं; और चित्त ऐसी शांति अनुभव करता है उसके बाद... और उसने कहा कि इधर दो दिन से एक नई घटना घट रही है कि मुझे अपने बाप पर दया आने लगी है। घृणा विसर्जित हो गई है और मुझे दया का भाव आता है।
मैंने कहा कि तू जारी रख तीन सप्ताह। और तीसरे सप्ताह उसने आ कर मुझे कहा कि मुझे क्षमा कर दें, और मुझे आज्ञा दें कि मैं जाऊं और अपने बाप के चरणों में सिर रख कर क्षमा मांग लूं। मेरे मन से सारी घृणा निकल गई है। और

अब मुझे लगता है कि बाप का कोई कसूर नहीं था, परिस्थितियां ऐसी थीं। और अब मुझे सिर्फ दया का भाव है। और अब मुझे ऐसा भी पश्चात्ताप लगता है कि मैंने तीन सप्ताह अपने पिता के साथ कैसा व्यवहार किया! उससे मैं पूछता था, तो उसने कहा कि तीन दिन के बाद तकिया खो गया और मेरा पिता मौजूद हो गया-- प्रोजेक्शन पूरा हो गया।
जो वह साल भर मनस-चिकित्सा से संभव न हो पाया, वह तीन सप्ताह तूफान पैदा करने से संभव हो गया।
वह युवक वापस लौट गया। और उसके पिता का पत्र मेरे पास आया कि आपने मेरा बेटा मुझे वापस लौटा दिया, इसलिए जितना अनुग्रह मानूं थोड़ा है। और मैंने तो कभी सोचा ही नहीं था कि इस बेटे में और ऐसा सरल भाव आ जाएगा, कि यह कभी मेरे चरणों पर सिर रख देगा। यह तो कल्पना के बाहर था। मैं तो सोच ही चुका था कि बात समाप्त हो गई, अब इस बेटे का आमना-सामना करना भी ठीक नहीं है।
जो भी आपके भीतर है--दुख है, पीड़ा है, संताप है--उसे खुले आकाश में छोड़ने की सामर्थ्य चाहिए, तो आप दुख से मुक्त होंगे।
व्यक्तियों पर निकालने की कोई जरूरत नहीं है। व्यक्तियों पर भी निकाल
कर आप करते क्या हैं? व्यक्ति भी खूटियां हैं। जब आकाश जैसी बड़ी खूंटी उपलब्ध हो, तो क्या छोटे-छोटे व्यक्तियों को खोजना? और सब व्यक्ति वैसे ही दुख से बहुत भरे हैं, उन पर और दुख क्या लादना? पत्नी आपकी वैसे ही दबी और मरी जा रही है। पति आपका वैसे ही टूटा जा रहा है। अब उस पर और क्या दुख फेंकना? और क्या क्रोध करना? यह खुला आकाश काफी बड़ा है। और यह छाती इतनी बड़ी है कि आपके बोझ से थकेगी नहीं। इस खुले आकाश में अपने दुख को उड़ जाने दें। इस दुख का कहीं कोई पता भी नहीं चलेगा, यह लीन हो जाएगा।
आकाश में सभी कुछ लीन हो जाता है। आप तक लीन हो जाएंगे, तो आपके दुख की क्या बिसात है? कल आप नहीं थे, इसी आकाश से आपका आगमन हुआ; कल आप फिर नहीं हो जाएंगे, इसी आकाश में फिर खो जाएंगे। पृथ्वियां बनती हैं और खो जाती हैं, सूरज जलते हैं और चुक जाते हैं, तारे बनते हैं और बिखर जाते हैं, सृष्टियां आती हैं और लीन हो जाती हैं--यह आकाश सबको पी लेता है। यह आपका दुख ना-कुछ है, इसे आकाश को दे दें, यह उसे पी लेगा।
तूफान उठाएं और दुख को बह जाने दें। और उसके बाद आपको आनंद की झलक शुरू होगी। इस शून्यता में, इस नीरवता में जो तूफान के बाद आएगी, आपको निरंतर, सतत अनुभव होने लगेगा।
"यह अच्छा नहीं है, काट तो तुम चुके, अब तुम्हें बोना चाहिए। यह वाणी स्वयं नीरवता ही है, यह जान कर तुम उसके आदेश का पालन करोगे।"
इस आदेश से बचा नहीं जा सकता, क्योंकि यह आदेश कहीं बाहर से नहीं आ रहा है। यह तुम्हारी अपनी अंतर-आत्मा की आवाज है। यह तुम्हारा ही आदेश है। यह तुमने अपने लिए ही दिया है। इसलिए इससे तुम बच न सकोगे।
ध्यान रहे, दूसरे का आदेश बोझ हो जाता है। उससे हम बचना चाहते हैं। अगर हम उसे करते भी हैं तो कर्तव्य मान कर। कर्तव्य गंदा शब्द है। इसका मतलब है, करना पड़ रहा है, वह आनंद नहीं है। कोई मुझे आ कर कहता है कि मां की सेवा कर रहा हूं, क्योंकि यह कर्तव्य है। तो मैं उससे कहता हूं कि तू सेवा मत कर। क्योंकि जब तू कह रहा है कि कर्तव्य है, तो उसका अर्थ है, मां के लिए तेरे मन में कोई प्रेम नहीं है। जो भी कर्तव्य शब्द का उपयोग करता है, वह कह रहा है कि प्रेम मेरा नहीं है।
जहां प्रेम होता है, वहां कर्तव्य नहीं होता है, वहां आनंद होता है।
यह कहना कि मेरी मां है, इसलिए सेवा कर रहा हूं, क्योंकि मेरा प्रेम है। यह कोई कर्तव्य का सवाल नहीं है। करना चाहिए, इसलिए कर रहा हूं, तब तो बात ही व्यर्थ हो गई।
लेकिन फर्क है। कर्तव्य का आदेश मिलता है बाहर से। और प्रेम का आदेश मिलता है भीतर से। प्रेम का आदेश तुम्हारा ही आदेश होता है, इसलिए पूरा करने में प्रसन्नता होती है। कर्तव्य का आदेश किसी और का होता है--शास्त्र का, समाज का, गुरु का, किसी और का, परंपरा का, व्यवस्था का--कहीं और से आदेश

आता है। और तुम्हें उसको पूरा करना पड़ता है। तुम पूरा करते हो, लेकिन मन-हृदय वहां होता नहीं है। तुम निपटाते हो, तुम किसी तरह बोझ को ढोते हो।
और तब तुम्हारे कर्तव्य से आई हुई सेवा में जहर हो जाता है। तब तुम समझते हो बड़ी सेवा कर रहे हो। और जिसकी तुम कर रहो हो, उसको लगता है कि तुम कुछ भी नहीं कर रहे हो। क्योंकि तुम्हारा हृदय, तुम जो करते हो उसमें मौजूद न हो, तो दूसरे को समझ में आ जाता है। छोटे-छोटे बच्चे तक समझ लेते हैं, बाप कर्तव्यवश उनकी पीठ सहला रहा है, मुस्कुरा रहा है। छोटे बच्चे भी समझ जाते हैं कि मुस्कुराहट झूठी है और यह जो पीठ ठोंकी; ठोंकी जरूर, लेकिन सिर्फ हाथ था वहां, हृदय नहीं था। छोटे बच्चे भी जान जाते हैं कि नहीं, यहां हृदय नहीं है। पहचान जाते हैं।
हम सब यहां एक-दूसरे को पहचान जाते हैं। धोखा देना संभव नहीं है। क्योंकि हृदय जहां मौजूद होता है, उसका रस अनुभव में आ ही जाता है। जहां मौजूद नहीं होता, वहां सूखापन अनुभव में आ ही जाता है।
लेकिन तुम इस आदेश का पालन करोगे, क्योंकि यह तुम्हारी ही अंतर-आत्मा
का आदेश है।
"तुम जो अब शिष्य हो... ।"
तुम जो अब सीखने में समर्थ हो गए हो, तुम जिसने अपने हृदय को शून्य कर लिया है, पूरी तरह झुका दिया है।
"अपने पैरों पर खड़े रह सकते हो।"
यह बड़े मजे की बात है। जो झुकने को राजी है, वह अपने पैरों पर खड़े होने में समर्थ हो जाता है। और जो झुकने को राजी नहीं है, वह सदा दूसरों पर निर्भर होता है। यह बड़ी उलटी बात है। लेकिन ऐसा ही है। क्योंकि जो झुकने में समर्थ है, इस जगत की सारी शक्ति उसकी तरफ बहनी शुरू हो जाती है। जो अकड़ कर खड़ा रहता है, वह अपनी ही शक्ति को गंवाता है, इस जगत की शक्ति उसे उपलब्ध नहीं होती।
लाओत्से कहता था कि तूफान आता है तो बड़े वृक्ष अकड़ कर खड़े रहते हैं और गिर जाते हैं। छोटे पौधे तूफान के साथ ही झुक जाते हैं; तूफान निकल जाता है। बड़े वृक्षों की जड़ें उखड़ जाती हैं, वे नीचे पड़े होते हैं; छोटे पौधे वापस खड़े हो जाते हैं। तूफान छोटे पौधों को जीवन दे जाता है। अकड़े हुए, अहंकारी वृक्षों को नष्ट कर जाता है। एक ही तूफान है! और कमजोर बच जाता है, और ताकतवर टूट जाता है!
बड़ी अजीब बात है। वृक्ष बड़ा ताकतवर था, उसी अकड़ में तो वह खड़ा रहा था।
और उसने कहा था, आने दो तूफान को, हम झुकने वाले नहीं हैं। टूट जाएंगे, पर झुकेंगे नहीं। छोटे-छोटे पौधे थे, उन्होंने न तो कोई अकड़ दिखाई, न उन्होंने तूफान से कोई संघर्ष लिया, बल्कि तूफान के साथ खेले। और तूफान ने जब उन्हें झुकाया, तो वे झुक गए, जैसे कोई प्रेमी अपनी प्रेयसी को झुकाए। कहीं कोई दुश्मनी न थी, यह प्रेम का ही एक अनुभव था। तूफान उन्हें नहला गया, उनकी धूल-धवांस झाड़ गया, तूफान उन्हें ताजा कर गया, उनके पुराने सूखे पत्ते गिरा गया। और तूफान जा चुका और वे पौधे फिर खड़े हैं। पहले से भी ज्यादा हंसते, पहले से भी ज्यादा जीवंत और प्रफुल्लित--आकाश में उनका सिर उठा है।
कमजोर थे वे, लेकिन किसी और भाषा में--जो मैं कह रहा हूं, उस जगत की उलटी भाषा में--वे ताकतवर सिद्ध हुए। और जो ताकतवर थे इस जगत की भाषा में, वे कमजोर सिद्ध हुए और जमीन पर पड़े हैं। अब उठ नहीं सकते, उनकी जड़ें उखड़ गई हैं। अपने ही अहंकार ने उन्हें मिटा दिया है। तूफान ने नहीं मिटाया। क्योंकि तूफान मिटाता, तो इन छोटे पौधों को भी मिटा देता। तूफान ने कुछ भी न किया; तूफान तो गुजरा था। उन्होंने कुछ किया, जिससे वे मिटे। और इन छोटे पौधों ने कुछ किया, जिनसे वे बचे।
जिसको हम ताकत कहते हैं संसार की भाषा में, वह अध्यात्म की भाषा में कमजोरी है। और जिसको हम कमजोरी कहते हैं संसार की भाषा में, वह अध्यात्म की भाषा में ताकत है। झुकना कमजोरी है संसार में। मत झुको, चाहे कुछ भी हो; कहीं झुकना मत।

अध्यात्म की भाषा में झुकना, शक्ति को आमंत्रण है। और जो झुक जाता है,
वह सब तरफ से भर जाता है। सारे जगत की शक्ति उसकी तरफ दौड़ने लगती है। वह गड्ढे की तरह हो जाता है। उसका निमंत्रण चारों तरफ सुना जाता है। अकड़ा हुआ आदमी पहाड़ के शिखर की तरह हो जाता है। वर्षा होती है, शिखर पर भी होती है, लेकिन शिखर पर टिक नहीं सकती। शिखर बहुत अकड़ा हुआ है। वर्षा जा कर झीलों में समा जाती है। झीलें खाली हैं, झुकी हुई हैं। होती है वर्षा शिखर पर, लेकिन झील पानी को पी लेती है। क्योंकि झील खाली है, इसलिए भर जाती है। और शिखर पहले से ही भरा है, इसलिए खाली रह जाता है।
यह सूत्र कहता है कि तुम जो अब शिष्य हो--झुकने में समर्थ, विनम्र हो गए, समर्पित हो गए--अपने पैरों पर खड़े रह सकते हो।
अब तुम्हारे पैरों में बल आ गया है। क्योंकि यह बल अब अहंकार का नहीं
है, यह बल विनम्रता का है। यह बल अब तुम्हारा नहीं है, यह बल अब समस्त शक्ति का है। यह समस्त अस्तित्व तुम्हें बल दे रहा है।
"तुम सुन सकते हो... ।"
वह अहंकार गया, जो सुनने न देता था। वह अकड़ गई, जो सुनने में बाधा बनती थी।
अब मैं देखता हूं, मेरे पास अक्सर पंडित आ जाते हैं, वे सुन नहीं सकते। मैं बिल्कुल प्रत्यक्ष देखता हूं कि मैं बोल रहा हूं, लेकिन वे सुन नहीं रहे। जब मैं बोल रहा हूं, तब भी वे सोच रहे हैं कि उन्हें मेरे बोलने के बाद क्या कहना है! जब मैं बोल रहा हूं, तब भी वे भीतर अपना गणित बिठा रहे हैं कि क्या सही कह रहा हूं, क्या गलत कह रहा हूं! शास्त्र के अनुकूल है कि प्रतिकूल है? अपना मंतव्य बैठेगा कि नहीं? वे बिठा रहे हैं! मैं उनके चेहरे को देख कर साफ समझता हूं कि वे सुन नहीं रहे हैं, वे तैयारी कर रहे हैं, वे बोलने के लिए तैयार हो रहे हैं। और जब मैं चुप होता हूं, तो जहां से वे बोलना शुरू करते हैं, वह स्थान वह नहीं है, जहां मैंने बोलना समाप्त किया। वह मैंने जो बोला है, जैसे उन्होंने सुना ही नहीं है। वह जो मैंने बोला है, जैसे उनके कान पर पड़ा ही नहीं है। वे किसी और ही लोक से बोलना शुरू करते हैं।
इस पर आप खुद भी ख्याल करना। जब आप किसी को सुनते हैं, तो सच में आप सुनते हैं? या आप भीतर बोले चले जाते हैं? अगर आप भीतर बोल रहे हैं, तो आप सुन नहीं रहे हैं, क्योंकि बोलना और सुनना साथ-साथ नहीं हो सकता। अगर भीतर बोल रहे हैं, तो आप सुन नहीं रहे हैं। हां, कुछ-कुछ भनक पड़ जाएगी। कुछ-कुछ भनक पड़ जाएगी। उसी भनक के सहारे पर आप बोलना शुरू करेंगे, जब एक चुप हो जाएगा। लेकिन जो दूसरे ने कहा है, वह बड़ा चकित होगा, क्योंकि यह तो उसने कहा नहीं, जो आपने समझा है। और अगर वह भी, जब आप बोल रहे हैं, अपने भीतर बोल रहा हो, तो यह बातचीत दो पागलों के बीच हो रही है। इसमें से कुछ अर्थ नहीं निकल सकता। यह व्यर्थ का विवाद हो रहा है। यह व्यर्थ की आवाज एक-दूसरे की तरफ फेंकी जा रही है। यह संवाद नहीं है।
यह सूत्र कहता है कि तुम अब सुन सकते हो। क्योंकि अब भीतर, वह जो अहंकार की गूंज चलती रहती थी, बंद हो गई है।
"देख सकते हो, बोल सकते हो।"
और जो सुन सकता है, वही बोल सकता है। और जो देख सकता है, वही बोल सकता है। बोलने के पहले सुनने की कला आ जानी चाहिए। क्योंकि तुम्हारे बोलने में तब ही अर्थ होगा, जब तुम शून्य हो कर सुनने के योग्य हो गए होओ। क्योंकि बोलने योग्य बात शून्य में ही सुनी जाती है। तो जिन्होंने मौन को नहीं साधा, उनकी वाणी का कोई भी मूल्य नहीं है। जिन्होंने चुप्पी की कला नहीं सीखी, उनके शब्द व्यर्थ हैं।
तो दो तरह से बोलना हो सकता है। कोई आदमी शास्त्र को पढ़ ले और बोले। वह
भी बोलना है। और कोई आदमी गहरे ध्यान में उतरे, मौन हो जाए, शून्य हो जाए और बोले। वह भी बोलना है। लेकिन दोनों के बोलने में जमीन-आसमान का फर्क है। एक वाणी पंडित की है और एक वाणी ज्ञानी की है। पंडित की वाणी कुशल हो सकती है, टेक्निकली सुंदर हो सकती है, स्पष्ट हो सकती है, तर्कयुक्त हो सकती है, लेकिन सत्य नहीं हो सकती। क्योंकि सत्य उसका अनुभव नहीं है।

अनुभव से जो वाणी आएगी--और अनुभव आता है शून्य में, मौन में, नीरवता में। तूफान के बाद जो नीरवता आती है, उसमें अनुभव आता है। उस अनुभव की वाणी में... तब ही बोलने में कोई समर्थ है।
महावीर बारह वर्ष चुप रहे, मौन रहे। बहुतों ने कहा कि बोलें। पर नहीं बोले। बारह वर्ष के बाद बोलना शुरू किया। यह बारह वर्ष जब तक उनको स्पष्ट न हो गया कि पूर्ण शून्यता, पूर्ण नीरवता आ गई है, तब तक बोलने का कोई अर्थ नहीं है। क्या बोलना है? किससे बोलना है? जब हम सुन भी नहीं सके हैं उस अंतरिक्ष की वाणी को, तो बोलेंगे क्या?
"अब तुम बोल सकते हो। तुम जिसने वासनाओं को जीत लिया, और आत्म-ज्ञान प्राप्त कर लिया। जिसने अपनी आत्मा को विकसित अवस्था में देख लिया और पहचान लिया। और नीरवता के नाद को सुन लिया। तुम अब उस ज्ञान-मंदिर में जाओ, जो परम-प्रज्ञा का मंदिर है, और जो कुछ तुम्हारे लिए वहां लिखा है, उसे पढ़ो।"
यह तो प्रतीक है। लेकिन जो परिपूर्ण नीरव हो गया, शून्य हो गया, शांत
हो गया, उसके सामने जगत का रहस्य खुल जाता है। इस जगत का जो रहस्य-शास्त्र है, इस अस्तित्व के भीतर ही छिपी हुई जो ज्ञान की कुंजियां हैं, अगर इस अस्तित्व की हम कल्पना करें, एक प्रतीति की कि इसके गहन अंतस्तल में कहीं छिपा हुआ एक प्रज्ञा का मंदिर है, तो उसके द्वार में प्रवेश मिल जाता है। यह सूत्र कहता है, यह भीतर की अंतर-वाणी ही तुमसे कहेगी, नीरवता तुमसे कहेगी कि अब तुम तैयार हो गए हो, और जाओ उस परम-प्रज्ञा के मंदिर में। जो कुछ तुम्हारे लिए वहां लिखा है, उसे पढ़ो।
"नीरवता की वाणी सुनने का अर्थ है, यह समझ जाना कि एकमात्र पथ-निर्देश अपने ही भीतर से प्राप्त होता है।"
जब तक तुम मौन नहीं हो, तब तक तुम्हारी आत्मा तुम्हें पथ-निर्देश न दे सकेगी। तब तक तुम्हें किसी गुरु की शरण लेनी पड़ेगी। वह शरण इसीलिए लेनी पड़ रही है कि तुम अपने ही भीतर छिपी हुई गुरु-वाणी को सुनने में असमर्थ हो। तुम इतने शोरगुल से भरे हो कि वह भीतर की जो बहुत धीमी, बहुत बारीक, सूक्ष्म आवाज है, वह खो जाती है तुम्हारे नाद में, तुम्हारे उपद्रव में, तुम्हारे शोरगुल में, तुम्हारे भीतर के मन की भीड़ में। वह कहीं सुनाई नहीं पड़ती। इसलिए जरूरत है कि बाहर से कोई गुरु तुम्हें आदेश दे, निर्देश दे, मार्ग बताए। अन्यथा कोई जरूरत नहीं है। तुम्हारे भीतर तुम्हारा गुरु छिपा है। लेकिन भीतर की आवाज तुम नहीं समझ सकते हो, इसलिए बाहर किसी गुरु की तलाश करनी पड़ती है। उपयोगी है वह तलाश। और तब तक जरूरी है, जब तक कि तुम भीतर के गुरु की आवाज सुनने में समर्थ न हो जाओ। और जिस दिन भीतर के गुरु की आवाज तुम सुन लेते हो, बाहर के गुरु का कोई अर्थ नहीं रह जाता है।
इसका यह अर्थ नहीं है कि तुम बाहर के गुरु के प्रति उस दिन अवज्ञा से
भर जाते हो, बल्कि उस दिन ही तुम पूरा अनुग्रह अनुभव करते हो। क्योंकि उसने ही तुम्हें तुम्हारे भीतर के गुरु से मिला दिया है।
कबीर ने कहा हैः गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव।
वह गुरु खड़ा है बाहर वाला और अब गोविंद भी प्रकट हो गए हैं, भीतर का गुरु भी प्रकट हो गया है। और कबीर पूछते हैं कि अब मैं बड़ी दुविधा में पड़ा हूं, दोनों मेरे सामने खड़े हैंः गुरु गोविंद दोऊ खड़े, काके लागूं पांव। और तब कबीर कहते हैं कि मैंने गुरु के ही पैर छुए, क्योंकि बलिहारी गुरु आपकी, गोविंद दियो बताये। तुम्हारे बिना ये गोविंद का मुझे पता न चलता, इसलिए पैर मैं पहले तुम्हारे ही छूता हूं। बाहर का गुरु विदा हो जाता है भीतर के गुरु को बता कर। फिर यात्रा नितांत अंतस की है। फिर स्वयं के अतिरिक्त वहां कोई भी नहीं है।
"नीरवता की वाणी सुनने का अर्थ है, यह समझ जाना कि एकमात्र पथ-निर्देश अपने ही भीतर से प्राप्त होता है। प्रज्ञा के मंदिर में जाने का अर्थ है, उस अवस्था में प्रविष्ट होना, जहां ज्ञान-प्राप्ति संभव होती है। तब तुम्हारे लिए वहां बहुत से शब्द लिखे होंगे और वे ज्वलंत अक्षरों में लिखे होंगे, जिससे तुम उन्हें सरलता से पढ़ सको। क्योंकि जब शिष्य तैयार हो जाता है, तो श्री गुरुदेव भी तैयार ही हैं।"

वह जो भीतर का परम-गुरु है, तुम जिस दिन शिष्य बनने को पूरी तरह तैयार
हो जाते हो, वह तुम्हें उपलब्ध हो जाता है। लेकिन यह शिष्यत्व की प्रक्रिया पहले तुम्हें किसी बाहर के गुरु के साथ सीखनी पड़ती है। एक बार तुम शिष्यत्व में पूरी तरह निष्णात हो जाते हो, बाहर का गुरु विदा हो जाता है, भीतर का गुरु प्रकट हो जाता है। वह भीतर का गुरु सदा तैयार है, सिर्फ तुम्हारी तैयारी की प्रतीक्षा है। जिस दिन तुम तैयार हो, वह तैयार था ही। इस अंतर-वाणी को सुन लेने के बाद फिर जीवन में कोई भटकाव नहीं है। फिर जीवन में कोई भूल-चूक नहीं होती। फिर होने का कोई उपाय न रहा, क्योंकि अब चलने वाला और चलाने वाला दोनों एक हैं।
इसे थोड़ा ठीक से समझ लें।
अब शिष्य और गुरु दोनों एक हैं। जब तक बाहर का गुरु था और आप शिष्य थे,
तब तक फासला तो रहेगा ही। कितनी ही आत्मीयता हो, और कितनी ही गहरी श्रद्धा हो, और कितनी ही निकटता हो, और कितनी ही आस्था हो--फासला तो रहेगा ही। क्योंकि बाहर फासले के ही संबंध होते हैं। निकटता भी फासला ही है। लेकिन इस फासले को तुम कम करते जाना। एक सीमा आएगी कि उसके बाद और कुछ कम करने को नहीं बचेगा। जिस दिन ऐसा लगे कि बाहर के गुरु और मेरे भीतर अब कम करने को कुछ भी नहीं बचा, उसी दिन तुम पाओगे कि बाहर का गुरु विलीन हो गया, भीतर का गुरु प्रकट हो गया।
जैसे सौ डिग्री पर अचानक पानी भाप बन जाता है, ऐसे ही गुरु के पास आने
की एक डिग्री है। बाहर के गुरु के निकट आने की एक सीमा है। एक ऐसा क्षण कि जहां बाहर का गुरु तुमसे कहे कि कूद पड़ो और मर जाओ, तो भी तुम्हारे भीतर से हां ही निकले। तो उसी क्षण बाहर का गुरु विलीन हो जाएगा, भीतर का गुरु प्रकट हो जाएगा। जब तक तुम बाहर के गुरु को किसी भी अर्थ में "नहीं" कह सकते हो, तब तक फासला कायम है। और तब तक भीतर के गुरु की आवाज सुनाई नहीं पड़ सकती।
श्रद्धा का यही अर्थ है, संपूर्ण रूप से हां का भाव।
जिस दिन यह हो जाएगा, उसी दिन बाहर के सहारे की जरूरत समाप्त हो गई। अब तुम उस आस्था को उपलब्ध हो गए, जिस आस्था में भीतर का गुरु प्रकट हो सकता है।

साधना-सूत्र
दसवां प्रवचन

जीवन-संग्राम में साक्षीभाव

1. भावी जीवन-संग्राम में साक्षीभाव रखो।
और यद्यपि तुम युद्ध करोगे, पर तुम योद्धा मत बनना।

वह तुम्हीं हो, फिर भी तुम सीमित हो और भूल कर सकते हो।
वह शाश्वत और निःसंशय है।
वह शाश्वत सत्य है।
जब वह एक बार तुममें प्रविष्ट हो चुका और तुम्हारा योद्धा बन गया, तो फिर वह तुम्हें कभी सर्वथा न त्याग देगा
और महाशांति के दिन वह तुमसे एकात्म हो जाएगा।

2. सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो।

उसे खोजने में सतर्क रहो,
नहीं तो लड़ाई के आवेश और उतावलेपन में तुम उसके पास से निकल जाओगे।
और वह तुमको तब तक न पहचानेगा,
जब तक तुम स्वयं उसे न जान लो।
यदि उसके ध्यान से सुनने वाले कानों तक तुम्हारी पुकार पहुंचेगी,
तो वह तुम्हारे भीतर से लड़ेगा और तुम्हारे भीतर के नीरस शून्य को भर देगा।

3. युद्ध के लिए उसका आदेश प्राप्त करो और उसका पालन करो।

सेनापति मानकर उसकी आज्ञाओं का पालन न करो,
वरन इस प्रकार करो मानो कि वह तुम्हारा ही स्वरूप है
और उसके शब्दों में मानो तुम्हारी ही गुप्त इच्छाएं मुखरित हो रही हैं।
क्योंकि वह स्वयं तुम्हीं हो,
परंतु वह तुमसे असीम रूप से अधिक ज्ञानी और शक्तिशाली है।

जीवन में विजय के दो मार्ग हैं।
एकः कि तुम लड़ो और जीतने की कोशिश करो। लेकिन वह मार्ग सिर्फ आभास-मार्ग है। लड़ाई तो बहुत होगी, लेकिन विजय हाथ न लगेगी। लड़ोगे तुम जरूर--और बहुत बार ऐसा लगेगा कि जीत बिल्कुल करीब है--फिर भी तुम पाओगे कि जीत कभी हाथ में नहीं आती। जीत चूकती ही चली जाएगी। सदा लगेगा कि भविष्य में विजय हो सकेगी। तुम्हारा तर्क, तुम्हारी बुद्धि सब कहेंगे कि विजय संभव है, लेकिन विजय संभव नहीं होगी।
उसके कारण हैं, क्योंकि जिससे तुम लड़ रहे हो, वह तुम्हारा ही हिस्सा है। जैसे कोई अपने ही दोनों हाथों को लड़ाए--तो जीत क्या होगी? किसकी होगी? कैसे होगी? दोनों हाथों के भीतर मैं ही हूं। यदि मैं चाहूं तो बाएं हाथ को दाएं हाथ से लड़ा सकता हूं। लेकिन इससे इस भ्रांति में मत पड़ना कि दायां हाथ मैं हूं, या बायां हाथ मैं हूं, और दूसरा हाथ मैं नहीं हूं। लड़ाई हो सकती है, लेकिन वह लड़ाई व्यर्थ होगी। न तो दायां जीत सकता है, न बायां। चाहूं तो मैं किसी को जिताने के भ्रम में पड़ सकता हूं, कि मैं दाएं को ऊपर कर लूं और बाएं को नीचे कर लूं, और सोचूं कि दायां जीत गया है। लेकिन यह जीत बिल्कुल मिथ्या है, क्योंकि किसी भी क्षण मैं बाएं को ऊपर कर सकता हूं। चूंकि दोनों के भीतर मैं ही लड़ रहा हूं, इसलिए जीतने का कोई उपाय नहीं है, हारने का भी कोई उपाय नहीं है। न तो कभी पूरी हार होगी, न कभी पूरी जीत होगी। एक बात निश्चित है कि इस संघर्ष में--इन दोनों हाथों की लड़ाई में, जो मेरे हैं--मेरी शक्ति क्षीण होगी, व्यय होगी, और नष्ट होगी। इस मार्ग से जो

चलेगा, वह सिर्फ चुकेगा। जीतेगा कभी नहीं, हार भी कभी पूरी न होगी और भ्रम बना ही रहेगा कि जीत हो सकती है।
इसे हम समझने की कोशिश करें। क्योंकि हमने इसी रास्ते को जन्मों- जन्मों से पार किया है। इसलिए न तो हम जीत गए हैं और न हम हार गए हैं। तुम जहां खड़े हो, वह जगह न तो जीत की है और न हार की है। तुम अगर हार भी गए होते तो तुमने दूसरा रास्ता चुन लिया होता! हार भी पक्की नहीं हो पाई और आशा जीत की बनी हुई है। और जीत भी नहीं हो पाई।
क्रोध से तुम लड़ते हो। क्षण भर को लगता है कि जीत जाओगे, लेकिन दूसरे दिन ही पता चलता है कि जीत कल्पना थी। क्रोध फिर पकड़ लेता है। तुम कामवासना से लड़ते हो। क्षण भर को लगता है कि तुम विजेता हो गए हो, लेकिन फिर तुम हार जाते हो।
और जरा इस प्रक्रिया को ठीक से समझ लेना।
कामवासना से तुम लड़ते कब हो? जब कामवासना का ज्वार उतार पर होता है, तब तुम्हें भ्रम होता है कि तुम जीत रहे हो। काम-कृत्य के बाद अपने आप ही कामवासना उतार पर होती है। जैसे कि भोजन कर लेने के बाद भूख नष्ट हो गई होती है, उस वक्त तुम सोच सकते हो कि उपवास किया जा सकता है। वह कोई आश्चर्य की बात नहीं है। भूख के बाद, भूख के मिट जाने के बाद, भोजन के बाद, तो आदमी उपवास करता ही है। लेकिन आठ-दस घंटे के बाद यह निर्णय टिकेगा नहीं। क्योंकि भूख जब फिर वापस आ जाएगी, तब तुम पाओगे कि उपवास मुश्किल है। भरे पेट आदमी उपवास का निर्णय ले सकता है। न भी ले तो उपवास की प्रशंसा कर सकता है। भूखे पेट निर्णय टूट जाता है।
जब कामवासना की शक्ति तुम में भरी होती है, तब तुम कामातुर हो जाते हो। और जब तुम संभोग कर लिए हो और कामवासना की शक्ति विसर्जित हो गई है, वह भूख मिट गई है, तब तुम पश्चात्ताप करते हो। और तब तुम सोचते हो कि किस व्यर्थ के काम में मैं पड़ा हूं? क्यों जीवन की शक्ति को नष्ट कर रहा हूं? यह सब क्या है? यह तो पशुओं जैसा है! और तब तुम निर्णय लेते हो ब्रह्मचर्य के। लेकिन वे निर्णय झूठे हैं। थोड़े ही समय बाद जब काम-ऊर्जा पुनः इकट्ठी हो जाएगी, तुम पाओगे तुम्हारे निर्णय टूट गए। स्त्री पुनः सुंदर मालूम पड़ने लगी है, पुरुष पुनः आकर्षक हो गया है, मन फिर वासना से भर गया है।
तो तुम, जब तुम्हारा पेट भरा होता है, उपवास के पक्ष में हो जाते हो।
जब तुम्हारा पेट भूखा होता है, तब तुम भोजन के स्वप्न देखने लगते हो। न तो तुम कभी जीतते हो, और न कभी तुम हारते हो। कभी तुम्हें जीत का भ्रम होता है, और कभी तुम्हें हार का भ्रम होता है, लेकिन पूरी कोई भी बात नहीं हो पाती। इसका कारण क्या है? क्योंकि जिससे तुम लड़ रहे हो, जो लड़ रहा है, और जिससे लड़ रहा है, वे दोनों एक ही शक्ति के हिस्से हैं। कौन लड़ रहा है कामवासना से? कौन लड़ रहा है इंद्रियों से? कौन लड़ रहा है पाप से? कौन लड़ रहा है क्रोध से?
इसे थोड़ा ठीक से समझ लेना। जो क्रोध करता है, वही क्रोध से लड़ रहा है। सुबह क्रोध करता है, सांझ क्रोध से लड़ता है--जिसने किया था, वही! तुम अपने को दो में बांट लेते हो।
तुममें से अगर कोई ताश खेलने के शौकीन हैं, वे जानते हैं कि ताश का एक खेल होता है, जिसमें अकेला ही खिलाड़ी होता है। वह दोनों तरफ के पत्ते बिछा देता है। एक दफा इस तरफ से चलता है, दूसरी दफा उस तरफ से चलता है! अकेला ही खेलता है और हार-जीत का मजा भी लेता है! अब यह बहुत मजे की बात है! कौन जीतेगा, कौन हारेगा? वह अकेला ही एक खेल में है! अपने ही साथ लुका-छिपउअल चलती है।
इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। क्योंकि इस रास्ते पर, जहां विजय
की आशा रहती है और विजय कभी घटित नहीं होती है, हमने जन्मों-जन्मों की शक्ति नष्ट की है। अधिक लोग आज भी उसी तरह शक्ति नष्ट कर रहे हैं। उनकी भूल स्वाभाविक है, क्योंकि आशा तो बंधती है।
मैं एक घर में मेहमान था। एक बहुत बड़े करोड़पति के घर मेहमान था। वह बड़े वृद्ध थे। अब तो चल बसे। बड़े दानी थे, राजस्थान के ही थे। जब मैं उनके घर मेहमान था, तब उनकी उम्र कोई पैंसठ के ऊपर रही होगी। उन्होंने मुझसे

कहा कि मैं जीवन में चार बार ब्रह्मचर्य का नियम ले चुका हूं। मेरे साथ एक और मित्र थे, वे बड़े प्रभावित हुए। मैंने उनसे कहा कि तुम इतने प्रभावित मत होओ, पहले यह पूछो कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया। क्योंकि चार बार ब्रह्मचर्य के नियम लेने का मतलब क्या होता है? मतलब होता है कि तीन बार तो टूटा। और जिसका तीन बार टूटा--जल्दी मत करो, उससे पूछो कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? वे वृद्ध रोने लगे और उन्होंने कहा कि आपने ठीक नस पकड़ ली। जिससे भी मैं कहता हूं कि मैंने चार बार नियम लिया, तो किसी ने मुझसे अब तक नहीं पूछा कि पांचवीं बार क्यों नहीं लिया? पांचवीं बार इसलिए नहीं लिया कि चार बार हार चुका, तो पांचवीं बार लेने की हिम्मत नहीं पड़ी, समझ गया कि यह अपने से न हो सकेगा।
पर वह आदमी ईमानदार है। यह भी समझ काफी ईमानदारी की है। यही समझ अगर थोड़ी और गहरी हो--लेकिन वह इतनी गहरी नहीं हो पाई। उन्होंने समझा कि मैं कमजोर हूं, इसलिए नहीं जीत पा रहा हूं। यह बात गलत है। आप कमजोर नहीं हैं। आप जिस ढंग से लड़ रहे हैं, वह ढंग ही ऐसा है कि उसमें जीत नहीं सकते।
इस फर्क को ठीक से समझ लें। नहीं तो सारी साधना-पद्धतियां आपको अनजाने हीन-भाव, हीन-ग्रंथि से भर देती हैं।
साधु हैं, संन्यासी हैं, वे आपको समझाते हैं कि ब्रह्मचर्य का व्रत ले लो। उनकी बात प्रभावित करती है आपको। क्योंकि कामवासना के क्षण में आपको लगता है कि आप किसी चीज के गुलाम हो गए हैं। कोई चीज आपको चला रही है, आप अपने मालिक नहीं हैं। इसलिए कामवासना में दंश है। कामवासना की जो पीड़ा है, वह कामवासना नहीं है, वह गुलामी का अनुभव है। ऐसा लगता है कि कोई खींच रहा है जबर्दस्ती और मुझे खिंचना पड़ रहा है। और मैं कुछ भी नहीं कर सकता। इसलिए साधु-संन्यासियों की बात आकर्षक लगती है। सभी चाहते हैं कि हमारी मालकियत हो। हम ऐसे हों कि कोई हमें चला न सके। हम ऐसे हों कि हम जो करना चाहें, वही करें। ऐसी हालत न बने हमारी कि जो हम नहीं करना चाहते, वह भी हमें करना पड़े। वही तो गुलामी है।
तो कामवासना के खिलाफ बातें सुननी हमें अच्छी लगती हैं। अच्छी लगती हैं इसलिए, क्योंकि उस कामवासना की गुलामी का हमने अनुभव किया है। तो जब भी कोई कहता है तो हम प्रभावित होते हैं। उस प्रभाव के क्षण में हम निर्णय भी ले लेते हैं कि ठीक है, अब हम ब्रह्मचर्य पर अपने को रोकेंगे, अब हम लड़ेंगे। लेकिन निर्णय से थोड़े ही कोई जीत होती है। निर्णय काफी नहीं है। निर्णय जरूरी है, लेकिन अकेले निर्णय से जीत नहीं होती। क्या रास्ता आप चुनेंगे, इस पर निर्भर करेगा। कैसा रास्ता आप चुनेंगे! वह रास्ता अगर जीत तक जाता ही नहीं है, तो फिर आपका निर्णय सिर्फ भटकाएगा। और आपके निर्णय का एक ही परिणाम होगा, जो हुआ है। और वह यह होगा कि आप दीन-भाव से भर जाएंगे। बार-बार हारेंगे, पराजित होंगे। बार-बार निर्णय टूटेगा तो आपको लगेगा मैं निर्बल, मैं कमजोर, मैं नपुंसक, मुझसे यह न होगा। यह तो महावीरों का काम है।
यह महावीर वगैरह का कोई लेना-देना नहीं है। फर्क आप में और महावीर में
यह नहीं है कि आप कमजोर हैं और महावीर ताकतवर हैं। फर्क इतना है कि वे ठीक रास्ते पर हैं और आप गलत रास्ते पर हैं। और गलत रास्ते पर कोई भी हो, परिणाम नहीं आएंगे।
तो सारे धर्मों ने मनुष्य को हीन-ग्रंथि से भर दिया है। यह बड़ी हैरानी
की बात है। सारे धर्म कहते हैं कि तुम हो परमात्मा, तुम हो मोक्ष, तुम हो ब्रह्म-स्वरूप, लेकिन परिणाम उलटा दिखाई पड़ता है। जहां-जहां धर्म प्रभावी होता है, वहां लोग अनुभव करते हैं कि हम हैं पापी! धर्म कहते हैं कि तुम हो परमात्मा, लेकिन अनुभव में बैठता है लोगों के कि हम हैं पापी! अनुभव में बैठता है कि हम हैं दीन-हीन, हमसे कुछ न होगा!
क्या कारण होगा? कि धर्म जोर तो देते हैं तुम्हारे परम-पुण्य का, और परिणाम होता है अपराध का भाव! इनफिरिआरिटि, गिल्ट, दीनता, हीनता, निर्बलता तुममें पैदा होती है। और तुम्हारे मन में अपने प्रति एक निंदा गहन हो जाती है कि मैं बुरा हूं। और ध्यान रहे जिस आदमी को यह भाव पैदा हो गया कि मैं बुरा हूं, उस आदमी का परमात्मा से संबंध जुड़ना बहुत कठिन है, अति कठिन है।

इसलिए जितना धार्मिक होता है मुल्क, उतना ही पाप की भावना से ग्रस्त होता है। होना उलटा चाहिए, लेकिन होता यह है।
और इसके पीछे यही कारण है कि आप जिस रास्ते से चलते हैं, वह रास्ता सफलता तक जाता ही नहीं। सफलता का आभास तो है, नहीं तो आप चलते ही नहीं, ऐसा लगता तो है बार-बार कि जीत जाएंगे, लेकिन जीत कभी होती नहीं है।
जो महात्मा आपको समझाते रहते हैं, वे भी नहीं जीते हैं। क्योंकि उन्हें भी मैं निकट से जानता हूं, एकांत में वे भी मुझसे वही पूछते हैं, जो आप पूछते हैं। इसलिए आपके महात्माओं में और आपमें रत्ती भर का फर्क नहीं है। फर्क है अगर तो इतना ही कि आप थोड़े ईमानदार हैं, वे ज्यादा बेईमान हैं। जहां वे नहीं जीते हैं, वहां भी जीत के आभास बनाए रखते हैं!
साधु-संत मेरे पास आते हैं। बड़े आचार्य हैं, सैकड़ों उनके शिष्य हैं, सैकड़ों उनके साधु-संन्यासी हैं, वे भी एकांत में मुझसे पूछते हैं कि कामवासना पर कैसे विजय प्राप्त हो! और ब्रह्मचर्य पर वे किताबें लिखते हैं! ब्रह्मचर्य का लोगों को नियम और व्रत दिलवाते हैं! बड़ा जाल है। मैं उनसे पूछता हूं कि जब आपको ब्रह्मचर्य उपलब्ध नहीं हुआ है, तो क्यों ब्रह्मचर्य का व्रत लोगों को दिलवा रहे हैं? जिस झंझट में आप फंसे हैं, लोगों को क्यों फंसा रहे हैं? ईमानदारी से कहो कि यह मुझे नहीं हो सका, तो शायद रास्ता भी बने। हम सब मिल कर सोचें कि भूल कहां हो रही है? अड़चन कहां है?
भूल यहां हो रही है। आदमी गलत रास्ते से चले, तो परिणाम में सिर्फ विफलता ही हाथ आती है। ठीक रास्ता... ठीक रास्ता क्या है? अगर आप अपने से ही लड़ते हैं तो आप जीत नहीं सकेंगे। क्योंकि कौन जीतेगा, कौन हारेगा? और ये सारी ऊर्जाएं आपकी ही हैं। काम है, क्रोध है, लोभ है--आपकी ही ऊर्जाएं हैं, आपकी ही शक्तियां हैं।
तब क्या किया जाए? यह सूत्र आपको बताएगा कि क्या किया जाए।
आपके भीतर एक ऐसे बिंदु को खोजना जरूरी है जो इन दोनों के पार है, तो जीत शुरू होगी। कामवासना है, ब्रह्मचर्य का भी लोभ है, ये दोनों हैं। इन दोनों में संघर्ष है। ये एक ही तल पर हैं, इनमें जीत नहीं हो सकती। ये समान शक्ति वाले हैं, इनमें जीत नहीं हो सकती। अगर इन दोनों के ऊपर, आपके भीतर एक ऐसा बिंदु भी खोजा जा सके, जो न तो कामवासना में आतुर है, न ब्रह्मचर्य में आतुर है--फर्क समझ लें--जो न तो कहता है कि मुझे कामवासना में रस है, न जो कहता है कि मुझे ब्रह्मचर्य में रस है; आपके भीतर अगर एक ऐसा बिंदु खोजा जा सके, तो वह विजय की तरफ ले जाएगा।
उस बिंदु को ही हमने साक्षी-भाव कहा है, विटनेस। यह जो साक्षी मिल जाए आपके भीतर, जो दोनों के प्रति तटस्थ भाव से देख सके, तो आप जीत की यात्रा पर निकल जाएंगे। क्योंकि उस तीसरे की कोई भी लड़ाई नहीं है। वह किसी से लड़ ही नहीं रहा है। और साक्षी हो कर देखेगा कामवासना को भी और ब्रह्मचर्य-वासना को भी।
मैं शब्द का प्रयोग करता हूं--ब्रह्मचर्य-वासना। इसे ठीक से समझ लेना। काम भी वासना है, ब्रह्मचर्य भी वासना है। किसी ने कहा नहीं है आपको कि ब्रह्मचर्य भी वासना है। लेकिन वह भी वासना है और कामवासना के विपरीत वासना है। कामवासना में जब हम परेशान होते हैं, तो हम ब्रह्मचर्य की वासना करते हैं। क्रोध भी वासना है और अक्रोध भी वासना है। जब हम क्रोध से थक जाते हैं, जल जाते हैं, घाव पड़ जाते हैं, तब हम अक्रोध की वासना करते हैं। लेकिन वह भी वासना है। क्रोध के जो विपरीत है, वह वासना ही होगी। काम के जो विपरीत है, वह वासना ही होगी। दोनों का तल समान है। विपरीत होने से कोई चीज वासना नहीं होती, ऐसा मत समझना। संसार भी वासना है। और अगर संसार से घबड़ा कर आप संन्यास लेते हैं, तो संन्यास भी वासना है।
संसार से घबड़ा कर नहीं, संसार के साक्षी-भाव से जिस संन्यास का जन्म होता है, वह वासना नहीं, वह मुक्ति है।
थोड़ा जटिल है। लेकिन एक बात ख्याल में रख लें कि विपरीत समान-धर्मा होते हैं। विपरीत असमान-धर्मा नहीं हो सकते। अगर काम वासना है, तो उसके विपरीत जो ब्रह्मचर्य है, वह भी वासना है। फर्क इतना ही है कि जैसे आप सीधे

खड़े हैं पैर के बल, और फिर आप शीर्षासन कर रहे हैं। दोनों ही आप हैं। सिर के बल खड़े भी आप हैं, पैर के बल खड़े भी आप हैं। कामवासना पैर के बल खड़ी है, ब्रह्मचर्य सिर के बल खड़ा है। लेकिन वह उसी का ही उलटा रूप है।
क्या आप इन दोनों वासनाओं के भीतर एक साक्षी-भाव को पकड़ सकते हैं जो दोनों को देख रहा है! जो दोनों में से किसी के भी पक्ष में नहीं है। जो इसके खिलाफ उसको नहीं चुनता, जो उसके खिलाफ इसको नहीं चुनता। जो दोनों को देख रहा है। जो दोनों का द्रष्टा है। इस द्रष्टा-भाव की ही विजय हो सकती है। क्योंकि इस द्रष्टा को जीतना ही नहीं है, यह जीता ही हुआ है।
इस बात को ठीक से समझ लें। यह द्रष्टा-भाव जितना गहरा होता चला जाए--यह जीता ही हुआ है। इसको जीतना नहीं है। जीतने को कुछ है नहीं इसको। यह लड़ाई के बाहर खड़ा हो गया, लड़ाई के भीतर रहा ही नहीं।
और जैसे ही आप लड़ाई के बाहर खड़े होते हैं, वैसे ही आपको दिखाई पड़ता है
कि आप किस पागलपन में पड़े थे। काम से ब्रह्मचर्य, ब्रह्मचर्य से काम--आप घड़ी के पेंडुलम की तरह घूम रहे थे। पहले पेंडुलम बाईं तरफ गया, तब आप सोचते थे कि बाईं तरफ जा रहा है। लेकिन आपको पता नहीं, बाईं तरफ जाते समय पेंडुलम दाईं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा है। वह बाईं तरफ जा इसलिए रहा है ताकि दाईं तरफ जा सके, मोमेंटम इकट्ठा कर रहा है। घड़ी की यंत्र-व्यवस्था यह है कि बाईं तरफ पेंडुलम जब जा रहा है, तो आपको दिखाई पड़ता है कि बाएं जा रहा है, लेकिन आपको पता नहीं कि वह दाईं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा है। जितना वह बायां जाएगा, उतना ही दायां जा सकेगा अब। फिर वह दाएं जा रहा है, तो आप सोचते हैं, विपरीत जा रहा है। लेकिन जब वह दाएं जा रहा है, तो पुनः बाईं तरफ जाने की शक्ति इकट्ठी कर रहा है।
इसका अर्थ, जब आप ब्रह्मचर्य के विचार से भरते हैं, तब आप कामातुर होने की शक्ति इकट्ठी कर रहे हैं। जब आप उपवास का विचार करते हैं, तब आप भोजन का रस पुनः पैदा कर रहे हैं। अगर आप भोजन ही करते जाएं, भोजन ही करते जाएं, तो भोजन का रस समाप्त हो जाएगा। बीच में उपवास जरूरी है। उससे भोजन का रस पुनः-पुनः पैदा होता है। अगर आपको कोई भोजन करवाता ही चला जाए, तो आप घबड़ा उठेंगे, आप भोजन के दुश्मन हो जाएंगे। अगर कोई आपको कामवासना में डाल दे ऐसा कि आपको कामवासना में ही पड़ा रहना पड़े, तो आप ऐसे भागेंगे उस जगह से, कि लौट कर रुकेंगे नहीं, लौट कर देखेंगे नहीं। बीच में गैप चाहिए। काम-कृत्य किया, फिर दो दिन का उपवास रहा, ब्रह्मचर्य रहा। उस ब्रह्मचर्य में आप फिर काम-कृत्य में उतरने का रस इकट्ठा कर लेंगे। इस अंतर-यांत्रिकता को आप नहीं समझेंगे, तो आप लड़ते रहेंगे और कभी मुक्त न हो पाएंगे। आपकी ब्रह्मचर्य की बातें काम-रस को पैदा करने वाली हैं। उससे स्वाद पुनः जन्मता है।
इससे विपरीत भी सच है। आपका काम-कृत्य में उतरना, पुनः ब्रह्मचर्य को महत्वपूर्ण बना देता है। काम-कृत्य में उतर कर फिर आप पश्चात्ताप करते हैं। और फिर आपका मन बड़ा साधु-महात्मा जैसा हो जाता है। क्रोध करके आप पश्चात्ताप करते हैं। और आप सोचते हैं कि आपका पश्चात्ताप क्रोध के विपरीत है। नहीं, आपका पश्चात्ताप आपको पुनः क्रोध करने की शक्ति देता है। इसलिए जो पश्चात्ताप करते हैं, वे क्रोध करते रहेंगे। वे कभी मुक्त नहीं हो सकते।
पश्चात्ताप क्रोध का दुश्मन नहीं है, क्रोध का मित्र है। अगर आप पश्चात्ताप छोड़ दें, आपका क्रोध खतम हो जाए। लेकिन आप पश्चात्ताप छोड़ेंगे नहीं। और क्रोध के बाद आप बड़ा मजा लेते हैं कि पश्चात्ताप कर रहे हैं, अब अक्रोधी हुए जा रहे हैं। आपको पता नहीं कि वह क्रोध के कारण जो पेंडुलम एक तरफ चला गया है, अब पश्चात्ताप में दूसरी तरफ जाएगा! और फिर से क्रोध की तरफ जाने की शक्ति अर्जित हो जाएगी!
विपरीत का सहारा है। विपरीत के कारण रस निर्मित होता है। इसलिए जब आप
के स्वाद बदलते हैं तब आप... । जो लोग मन की खोज करते हैं, उनके निर्णय बड़े भिन्न हैं। आप सोचते हैं कि जब आप स्वाद बदलते हैं, तो आप शायद पहले स्वाद से दुश्मन हो रहे हैं। नहीं, आप पहले स्वाद को पुनः अर्जित करने की कोशिश कर रहे हैं।

अभी पश्चिम के मनस्विद ने एक प्रस्ताव दिया है। वह बहुत हैरान करने वाला है, लेकिन बहुत सही है। वह प्रस्ताव यह है कि पति-पत्नी इसलिए एक-दूसरे से लड़ते रहते हैं, क्योंकि बीच में स्वाद बदलने का मौका नहीं है। यह बहुत घबड़ाने वाला है--कम से कम पुरानी धारणा के लोगों को। लेकिन इसके पीछे सचाई है। और पश्चिम में इस पर प्रयोग चल रहे हैं। और वह प्रयोग यह हैं कि अगर एक पति, एक पत्नी बीच-बीच में दूसरे स्त्री-पुरुषों से संबंध स्थापित कर लें, तो उनका पुराना संबंध फिर से रसपूर्ण हो जाता है, नष्ट नहीं होता है।
हमारी अब तक की धारणा उलटी है। हमारी धारणा यह है कि अगर पति किसी और स्त्री में उत्सुक हो जाए तो फिर पत्नी के लिए उसका रस समाप्त हो गया। यह बिल्कुल गलत है। उसका दूसरी स्त्री में उत्सुक होना, थोड़ी देर के लिए पत्नी के प्रति उपवासा हो जाना, वापस पत्नी में रस ले आएगा। और अगर पत्नी जल्दी न करे, सिर्फ प्रतीक्षा करे, तो वह वापस लौट आएगा। और यह वापसी फिर ताजी हो जाएगी। यह रस फिर नया हो जाएगा।
इसलिए स्त्रियां बदलने का प्रयोग अमरीका में चलता है। छोटे-छोटे क्लब हैं, जहां लोग अपनी पत्नियां बदलते हैं। और जिन लोगों ने ये प्रयोग किए हैं, उन सबका वक्तव्य इसके अनुकूल है कि हमारा अपनी पत्नियों में रस बढ़ गया है। और हमारे संघर्ष कम हो गए हैं।
यह कितना ही खतरनाक लगे पुरानी नैतिक धारणाओं के लोगों को, लेकिन भविष्य इसके साथ होने वाला है। पुरानी नैतिक धारणा बच नहीं सकती, क्योंकि उसने पति-पत्नियों को काफी कष्ट दे दिया है। स्वाभाविक है। नियम यही है कि आपको एक ही भोजन रोज दिया जाए तो आप कितनी देर तक कर पाएंगे? सात दिन में आप घबड़ा जाएंगे और सोचने लगेंगे कि इससे तो उपवास ही बेहतर है। लेकिन रोज भोजन बदल देते हैं, रस कायम रहता है। चार-छः दिन के बाद फिर वही भोजन, और आपका रस कायम रहता है।
जीवन के सभी तलों पर यह बात गहरे रूप में सच है। तो आप जो विपरीत में डोलते रहते हैं, तो उसमें आप यह मत समझना कि कभी-कभी आप बड़े साधु चित्तवान हो जाते हैं। और बड़े ब्रह्मचर्य की धारणा आ जाती है और बड़ी ज्ञान की और आत्मज्ञान की बातें उठने लगती हैं। वह कुछ भी नहीं है, आपके देह-भाव में लौटने का उपाय है। जब आप आत्मा वगैरह की बहुत बातें करने लगते हैं, उसका कुल मतलब इतना है कि देह से ऊब गए हैं, अब थोड़ी आत्मा की बातें करके देह में लौटने में रस आएगा। पर इन दोनों से भिन्न भी एक बिंदु आदमी के भीतर है और वही विजय का सूत्र है। वह बिंदु है, साक्षी-भाव।
अब हम इन सूत्रों को लें।
पहला सूत्र, "भावी जीवन-संग्राम में साक्षी-भाव रखो। और यद्यपि तुम युद्ध करोगे, पर तुम योद्धा मत बनना।"
युद्ध तो जारी रहेगा, लेकिन साक्षी-भाव के युद्ध में एक फर्क होगा।
युद्ध तो तुम करोगे, लेकिन योद्धा मत बनना, तुम पार्टी मत बनना। तुम क्रोध के खिलाफ पश्चात्ताप मत बनना। तुम कामवासना के विपरीत ब्रह्मचर्य मत बनना। तुम योद्धा मत बनना। युद्ध तो जारी रहेगा, लेकिन तुम साक्षी बनना। तुम दूर खड़े हो कर दोनों को समान भाव से देखना।
तुम समभावी बनना। तुम वासना समझना काम को भी और ब्रह्मचर्य को भी। तुम संसार को भी वासना समझना और संन्यास को भी। तुम बंधन को भी बंधन समझना और मोक्ष को भी। और तुम दोनों के पार, विपरीत के पार अपने को ठहराना। तुम कहना कि मैं सिर्फ देखने वाला हूं, करने वाला नहीं हूं। मैं कर्ता नहीं हूं, क्योंकि कर्ता योद्धा बन जाता है। जैसे ही तुमने कुछ किया कि तुम योद्धा बने।
और सिर्फ एक ही सूत्र है न-करने का--और वह है साक्षी। नहीं तो सभी कुछ करना हो जाता है। हम जो भी करते हैं, उसमें कर्ता भाव आ जाता है। और कर्ता भाव जिस तल पर होता है, उस तल पर विजय नहीं होती। उसमें हम एक पक्ष को चुन लेते हैं एक बार। जब हम एक पक्ष को चुनते हैं, दूसरा पक्ष मजबूत होता चला जाता है। एक दिन आता है कि हमें दूसरा पक्ष चुनना पड़ता है। जब हम दूसरे को

चुनते हैं तो पहला मजबूत होता चला जाता है। और ऐसे हम द्वंद्व के बीच डोलते रहते हैं। इस द्वंद्व का नाम संसार है।
इस द्वंद्व के बाहर होने की एक ही विधि है कि तुम द्वंद्व में चुनना
ही मत, तुम सिर्फ द्वंद्व को देखना।
क्या अर्थ हुआ इसका? इसका अर्थ हुआ कि जब कामवासना आए, तो तुम देखना कि कामवासना आई। जब कामवासना आए तो तुम अनुभव करना कि कामवासना ने तुम्हें घेर लिया। लड़ना मत, सिर्फ जानना कि घेर लिया। कामवासना जो भी करवाए, करना। लेकिन दूर खड़े हो कर देखते रहना कि कामवासना ये-ये करवा रही है। जैसे कि तुम एक दर्शक हो और तुम एक खेल देख रहे हो। तुम्हारी कोई लड़ाई नहीं है। जब कामवासना पूरे शिखर पर पहुंचे, तब भी तुम देखते रहना कि कामवासना में ये- ये हो रहा है। जब कामवासना शिखर से वापस गिरने लगे, तब भी तुम देखना कि अब कामवासना शिखर से गिरने लगी और पश्चात्ताप मन को पकड़ने लगा, उसे भी देखना। पश्चात्ताप घना होने लगे और ब्रह्मचर्य के भाव उठने लगें, उनको भी देखना, कि अब ब्रह्मचर्य के भाव उठ रहे हैं।
अगर यह पूरी बात साक्षी-भाव से देखी, तो तुम समझ जाओगे कि कामवासना और ब्रह्मचर्य दो चीजें नहीं हैं, एक ही लहर का उठना और गिरना है। और जिस दिन तुम्हें यह बात दिखाई पड़ गई कि कामवासना और ब्रह्मचर्य दोनों ही वासना हैं--काम है उठती हुई लहर और ब्रह्मचर्य है गिरती हुई लहर, क्रोध है उठती हुई लहर और पश्चात्ताप है गिरती हुई लहर, संसार है उठती हुई लहर और संन्यास है गिरती हुई लहर--जिस दिन तुमने इन दोनों को एक साथ देख लिया जुड़ा हुआ, उसी दिन तुम पाओगे कि युद्ध में विजय शुरू हो गई, बिना योद्धा बने। चुनाव बंद हो गया, अ-चुनाव पैदा हो गया। अब चुनना ही क्या है? अगर दोनों ही एक हैं, तो चुनने को कुछ बचा नहीं। और जब चुनने को कुछ भी नहीं बचता, द्वंद्व के बाहर तुम सरकना शुरू हो गए।
चुनाव द्वंद्व है, अ-चुनाव द्वंद्वातीत है। इस साक्षी को पकड़ना और धीरे-धीरे इसी साक्षी में लीन होते चले जाना। अचानक तुम पाओगे कि जो विजय लड़ कर नहीं मिली थी, वह बिना लड़े मिलनी शुरू हो गई।
"योद्धा मत बनना।"
यह सूत्र बहुत गहरा है, योद्धा मत बनना। कल हमने जो सूत्र लिया, वह था
कि अब तुम प्रवेश कर सकोगे प्रज्ञा के मंदिर में। और उसकी दीवालों पर लिखे हैं ज्वलंत अक्षर, वे तुम पढ़ सकोगे। यह पहला सूत्र प्रज्ञा के मंदिर का है। यह ज्वलंत अक्षरों में प्रज्ञा के मंदिर पर लिखा हैः
"भावी जीवन-संग्राम में साक्षीभाव रखो। और यद्यपि तुम युद्ध करोगे,
पर तुम योद्धा मत बनना। वह तुम्हीं हो।"
वह साक्षी जो है, वह तुम्हीं हो।
"फिर भी तुम सीमित हो और भूल कर सकते हो।"
वह साक्षी तुम्हारा अंतरतम है। वह साक्षी तुम्हारे जीवन का गहनतम रूप है। और तुम अपनी परिधि पर खड़े हो अभी। तुम भूल कर सकते हो, वह साक्षी भूल नहीं कर सकता। वह साक्षी तुम्हारी श्रेष्ठतम सत्ता है। तुम विकृत हो। जीवन-अनुभवों ने, रास्तों ने, मार्गों ने, संसार ने, अनेक-अनेक जन्मों ने, संस्कारों ने तुम्हें विकृत किया है। तुम परिधि पर धूल-धवांस से भरे हो, तुम भूल कर सकते हो। तुम पर भरोसा नहीं किया जा सकता। तुम अपने पर भरोसा मत करना कर्ता की तरह, क्योंकि कर्ता परिधि पर खड़ा है। वह कर्म के निकट खड़ा है, वह कर्म से जुड़ा हुआ है। अगर भरोसा तुम अपने पर करोगे, तो तुम वही दोहराते जाओगे, जो तुमने हमेशा किया है। तुम एक वर्तुल हो, एक दुष्चक्र हो। तुम घूमते रहोगे वैसे ही, जो तुमने बार-बार किया है।
इसे थोड़ा समझ लें।
आप कभी कुछ नया करते हैं? पीछे जिंदगी में लौट कर देखें, तो आप पाएंगे
कि एक वर्तुलाकार में घूमते रहते हैं। सुबह क्रोध किया, दोपहर पश्चात्ताप किया, सांझ प्रेमपूर्ण हो गए, रात क्रोध से भर गए, सुबह घृणा आ गई; वह घूमता रहता है। अगर आप अपनी डायरी रखें एक तीन महीने की, तो आप चकित हो जाएंगे कि आप मशीन हैं या आदमी? और अगर आप बहुत ईमानदारी से डायरी रखें तो आप अपनी घोषणा भी कर सकते हैं कि आने वाले तीन महीनों में किस दिन क्या होगा! आप

सुबह से ही घर में अपना कैलेंडर लटका सकते हैं कि आज इतने बजे मैं क्रोध करूंगा, और इतने बजे शांत रहूंगा, और इतने बजे विषाद से भर जाऊंगा। और अगर घर के सब सदस्य अपना-अपना कैलेंडर रोज सुबह लटका लें, तो बड़ी सुविधा हो जाए। क्योंकि पत्नी कह सकती है कि पांच बजे तुम दफ्तर से लौटोगे, तो मैं ठीक अवस्था में नहीं रहूंगी, तुम इसका ध्यान रखना। तो पति कैलेंडर देख सकता है कि आज क्या-क्या होने वाला है, उस हिसाब से चल सकता है। पत्नी पति का कैलेंडर देख सकती है। और दोनों किसी समझौते पर आ सकते हैं।
अभी हम अंधे की तरह टकराते रहते हैं। और बड़ा मजा यह है कि जब हम टकराते हैं, तो हम सदा यह सोचते हैं कि कोई और हमें परेशान कर रहा है। जब कि आपका भीतर का वर्तुल ही चल रहा है, कोई और परेशान नहीं कर रहा है। जैसे स्त्रियों को मासिक-धर्म होता है, तो कोई उनका खून निकाल नहीं रहा है शरीर से, कोई चोट नहीं पहुंचा रहा है उनको। वह उनका भीतर का वर्तुल है, जिससे मासिक-धर्म हो रहा है। ठीक वैसे ही आपके चौबीस घंटे के वर्तुल चल रहे हैं, कोई आपको परेशान नहीं कर रहा है। लेकिन किसी क्षण में आप उदास होते हैं, और किसी क्षण में खुश होते हैं। जब खुश होते हैं, तब आप सोचते हैं कि कोई खुश कर रहा है। और जब आप उदास होते हैं, तो सोचते हैं कि कोई उदास कर रहा है। और यह बड़े मजे की बात है कि आपकी भीतरी दशा पर निर्भर करता है। वही चीज उदास कर सकती है, अगर आप भीतर उदास होने को हैं। और वही चीज प्रसन्न कर सकती है, अगर आप भीतर प्रसन्न होने को हैं। इसका थोड़ा आत्मिक निरीक्षण करेंगे तो बहुत चकित हो जाएंगे, बहुत हैरान हो जाएंगे। तब आप दुनिया में किसी को दोष देने नहीं जाएंगे। आप पाएंगे कि भीतर के मौसम बदलते रहते हैं। कभी वर्षा है, कभी धूप है, कभी शीत है--भीतर के मौसम बदलते रहते हैं। और अपने भीतर के मौसम के अगर आप साक्षी हो जाएं, तो आप मालिक हो जाएंगे। लेकिन आप कर्ता बन जाते हैं! जब क्रोध आता है, तो आप क्रोधी बन जाते हैं। जब कामवासना आती है, तो आप कामी बन जाते हैं। जब ब्रह्मचर्य की वासना आती है, तो आप ब्रह्मचर्य का झंडा ले कर खड़े हो जाते हैं। बाकी आप तादात्म्य कर लेते हैं। दूर खड़े हों। जितने दूर हो सकेंगे अपनी इन वृत्तियों से, उतनी ही मालकियत है।
साक्षीभाव में मालकियत है। योद्धा बनने में पराजय है।
यह बहुत उलटा लगेगा, क्योंकि हम सोचते हैं कि बिना योद्धा बने हम जीतेंगे कैसे? इस संसार में योद्धा बन कर जीता जाता है। अध्यात्म में योद्धा बन कर सिवाय हारने के कुछ भी हाथ नहीं लगता। और हार भी पूरी नहीं लगती, नहीं तो आदमी ऊब जाए! हार भी अधूरी रहती है और आशा सदा बनी रहती है कि जीतूंगा, जीतूंगा। और जीत कभी हाथ में नहीं आती!
"वह तुम्हीं हो।"
वह साक्षी भाव तुम्हारा ही अंतरतम है।
"फिर भी तुम सीमित हो और भूल कर सकते हो। वह शाश्वत और निःसंशय है। वह शाश्वत सत्य है। जब वह एक बार तुममें प्रविष्ट हो चुका और तुम्हारा योद्धा बन गया, तो फिर तुम्हें वह कभी सर्वथा त्याग न देगा और महाशांति के दिन वह तुमसे एकात्म हो जाएगा।"
तुम्हारे दो रूप हैंः तुम्हारी परिधि पर खड़े हुए तुम और तुम्हारे केंद्र में छिपे हुए तुम। तुम्हारा जो केंद्र है, वहां तुम परमात्मा हो, वहां तुम परम-शक्ति हो। तुम्हारी जो परिधि है, वहां तुम एक कमजोर आदमी हो। अगर तुम परिधि पर ही लड़ते रहे, तो तुम्हारी जितनी शक्ति है, उतनी ही काम आएगी। अगर तुम केंद्र की तरफ सरके, तो तुम्हारी शक्ति बढ़ती चली जाती है। ठीक केंद्र पर खड़े हुए आदमी को लड़ना ही नहीं पड़ता। वह इतना महा-शक्तिवान होता है कि वृत्तियां उस महाशक्ति में जल जाती हैं और राख हो जाती हैं।
बड़ा सवाल यह नहीं है कि कैसे लड़ें! बड़ा सवाल यह है कि कैसे महा- शक्तिवान हो जाएं! उस महा-शक्तिवान के मौजूद होते ही परिधि नप जाती है, चुक जाती है।
परिधि का वह जो उपद्रव था, सब शांत हो जाता है। बिना लड़े कैसे तुम जीतो, इसका यह सूत्र है। और बिना लड़े ही जीत आती है।
दूसरा सूत्र, "सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो।"
तुम साक्षी रहो।

"सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो। उसे खोजने में सतर्क रहो, नहीं तो लड़ाई के आवेश और उतावलेपन में तुम उसके पास से निकल जाओगे। और वह तुमको तब तक न पहचानेगा, जब तक तुम स्वयं उसे न जान लो। यदि उसके ध्यान से सुनने वाले कानों तक तुम्हारी पुकार पहुंचेगी, तो वह तुम्हारे भीतर से लड़ेगा, और तुम्हारे भीतर के नीरस शून्य को भर देगा।"
यह जो साक्षी-भाव है, तुम इसे खोजो। इसकी खोज के साथ ही तुम्हें वह सैनिक मिल जाएगा, जो परिधि पर लड़ेगा। पर बड़ा फर्क है। तुम वह सैनिक नहीं बनोगे, तुम योद्धा नहीं बनोगे, तुम लड़ने नहीं जाओगे, तुम सिर्फ मौजूद रहोगे। इसका क्या अर्थ है?
इसका यह अर्थ है कि जब तुम्हारे भीतर क्रोध उठता है, तब तुम्हारे भीतर पश्चात्ताप नहीं उठता है अभी। दोनों साथ उठें, तो एक-दूसरे को काट दें और तुम शांत हो जाओ। अभी तुम्हारे भीतर क्रोध जब उठता है, तब पश्चात्ताप नहीं उठता। और जब पश्चात्ताप उठता है, तब क्रोध नहीं उठता। एक-एक उठते हैं। अभी जब कामवासना उठती है, तब ब्रह्मचर्य नहीं उठता। और जब ब्रह्मचर्य उठता है, तब कामवासना नहीं उठती। इन दोनों की कहीं मुलाकात नहीं होती। अगर मुलाकात हो जाए तो ये कट जाएं। ये दोनों ही एक-दूसरे को काट दें। जैसे ऋण और धन काट देते हैं एक-दूसरे को, ऐसे ये एक-दूसरे को काट दें, और तुम शांत हो जाओ। लेकिन जब एक आता है, तब दूसरे का पता नहीं होता। जब दूसरा आता है, तब पहला जा चुका होता है। इनका कहीं मिलना ही नहीं होता।
इसे थोड़ा समझो। क्योंकि यह जीवन की, विजय की अंतरतम घटना है। अगर ये दोनों एक साथ आ जाएं तो क्या होगा? जब तुम क्रोध से भरते हो, तभी तुम पश्चात्ताप से भी भर जाओ, तो क्या होगा? पश्चात्ताप और क्रोध एक-दूसरे को काट देंगे। जब तुम कामवासना से भरे हो, तभी ब्रह्मचर्य की वासना भी मौजूद हो जाए, तो एक-दूसरे को काट देंगे। और जब एक-दूसरे को काट देंगे, तो हिसाब में न तो ब्रह्मचर्य बचेगा और न कामवासना।
इस फर्क को समझ लेना।
इसलिए जो परम-ब्रह्मचारी है, उसको ब्रह्मचर्य का भाव भी नहीं होता।
जो सच में ब्रह्मचर्य को उपलब्ध होता है, उसे ब्रह्मचर्य की कोई अस्मिता, कोई अहंकार नहीं होता। जिसको लगता है कि मैं ब्रह्मचारी हूं, और जो अपने ब्रह्मचर्य को साधता है, सम्हालता है; यह ब्रह्मचर्य कामवासना के विपरीत चुना गया है। कामवासना कटी नहीं है, वह रास्ता देख रही है। इस आदमी ने ब्रह्मचर्य से भाव अपना इकट्ठा कर लिया है, लेकिन कामवासना प्रतीक्षा कर रही है। जल्दी ही भाव बदलेगा, मौसम बदलेगा। इस जगत में कुछ टिकता नहीं, सब बदल जाता है।
सिर्फ साक्षी को छोड़ कर इस जगत में सभी परिवर्तनशील है। सिर्फ एक बिंदु इस जगत में शाश्वत, सनातन है, जहां कोई बदलाहट नहीं होती, बाकी सब बदल जाता है। परिधि पर तो घूमता ही रहता है चाक, सिर्फ बीच की कील जहां साक्षीभाव है, वहां कुछ भी नहीं घूमता। वहां सब चीजें थिर हैं।
तो कामवासना के खिलाफ ब्रह्मचर्य को चुन लिया, तो कामवासना दबी है अचेतन में, प्रतीक्षा कर रही है। जब तुम थक जाओ ब्रह्मचर्य से, तब वह तुम्हारे सिर को पकड़ लेगी; छोड़ेगी नहीं। साधु-संन्यासी रात सोने तक से डरने लगते हैं, क्योंकि सपने में पकड़ लेगी कामवासना! भयभीत इतने हो जाते हैं फिर कि अगर कहीं स्त्री बैठी है, तो शास्त्रों में लिखा है इस तरह के पागलों ने, कि उस जगह पर इतने मिनिट तक मत बैठना! अगर कहीं बैठ चुकी है स्त्री, वह जा भी चुकी है; वह जगह भी खतरनाक है, वहां मत बैठना! क्योंकि उस पर अगर बैठ गए तो कामवासना उठेगी।
स्त्री जिस जगह पर बैठी है, उस जगह पर बैठने से कामवासना नहीं उठती। लेकिन अगर मन में कामवासना बहुत दबाई हो तो उठ सकती है। वह स्पर्श पृथ्वी का भी सुखद मालूम पड़ेगा, जहां स्त्री बैठी थी! अब यह पागलपन का लक्षण है। यह ब्रह्मचर्य का लक्षण नहीं है, यह गहन वासना का लक्षण है।
ब्रह्मचर्य का तो लक्षण ही यह होगा कि स्त्री गले से भी आ कर लग गई हो,
तो भी कामवासना न उठे। पागलपन का लक्षण यह होगा कि स्त्री जिस जमीन पर बैठी थी--वह जा भी चुकी है--अब आप उस जमीन पर बैठ गए और कामवासना उठ रही है!

यह आप ही उठा रहे हो, जमीन-वगैरह पर कुछ नहीं हो गया है। यह चमत्कार सिर्फ महात्माओं को ही घटित हो सकता है। यह चमत्कार कि स्त्री जिस जगह बैठी हो, वहां बैठ कर कामवासना का उठना, सिर्फ महात्माओं को घटित हो सकता है। इसमें स्त्री का कोई हाथ नहीं है, महात्मा की ही कारीगिरी है। वह जो महात्मा अपने साथ कर रहा है, वह जो दबा रहा है, वह जो लड़ रहा है, वह इतना ज्यादा परेशान है भीतर से कि कोई भी बहाना काफी हो सकता है--कोई भी बहाना। सुना होगा आपने, पढ़ा होगा कि सभी ऋषि-मुनि जब सिद्ध अवस्था में पहुंचने लगते हैं, तो स्वर्ग से अप्सराएं उतर कर उन्हें सताने लगती हैं। अब यह स्वर्ग में कौन सा धंधा है? किसने खोला है? और किसको प्रयोजन है इन ऋषि-मुनियों को भ्रष्ट करने में? किसकी उत्सुकता है?
नहीं, कोई अप्सराएं कहीं से नहीं आ रही हैं। यह ऋषि-मुनियों का ही अचेतन मन है। स्त्रियों को इस बुरी तरह दबाया है भीतर कि आखिरी क्षण तक पीछा नहीं छोड़ता। और फिर ऋषि-मुनि भ्रष्ट हो जाते हैं! और भ्रष्ट वगैरह नहीं हो रहे। यह पूरा मनोवैज्ञानिक खेल है। कोई भ्रष्ट नहीं कर रहा उनको। लेकिन जो दबाया है, वह शक्तिशाली हो रहा है। और जब आखिरी क्षण आएगा तो वह इतना शक्तिशाली हो जाएगा कि उसी की वजह से वे हार जाएंगे। वह जो जीता हुआ हाथ था, वह हार जाएगा। और वे दोनों हाथ उन्हीं के हैं। ब्रह्मचर्य आरोपित था, खींच-खींच कर उसको खड़ा कर लिया था। लेकिन वह भीतर जो दबी है वासना, वह रास्ता देख रही है। एक क्षण आएगा, जब पेंडुलम घूमना शुरू होगा। जब पेंडुलम घूमेगा... ।
तो आपको यह रस नहीं आ सकता। आपके पास अप्सराएं नहीं आतीं। उसके लिए
ऋषि होना जरूरी है। अगर अप्सराओं को बुलाना हो, तो पहले ऋषि की प्रक्रिया से गुजरना जरूरी है। पेंडुलम इतना बाएं जाना चाहिए कि जब दाएं जाए तो स्वर्ग तक पहुंच जाए। उसके दाएं जाने के लिए इतनी ऊर्जा अर्जित होनी चाहिए। अगर अप्सराएं चाहिए हों, तो ऋषि होना जरूरी है। जब से ऋषि खो गए, अप्सराएं खो गईं!
आजकल कोई अप्सराएं नहीं आतीं! उसका कारण यह नहीं है कि अप्सराएं बची नहीं। ऋषि नहीं बचे। ऋषि पैदा करिए, अप्सराएं आनी शुरू हो जाएंगी। वे ऋषियों के मस्तिष्क की विक्षिप्तता हैं। वह जो दबाया है, वह प्रकट होगा, पीछा करेगा। और अगर बहुत दबाया है, तो वह इतना साकार हो जाएगा। इसमें ऋषियों की भूल नहीं है। उन्होंने रिपोर्ट तो बिल्कुल ठीक दी है कि अप्सराएं आईं। और अप्सराएं इतनी सुंदर होंगी, जितनी कोई स्त्री कभी नहीं होती।
वह सौंदर्य जो है, दबी हुई वासना से आ रहा है। वह जो सौंदर्य है, स्वयं
का निर्माण है। जब आप वासना से भरे होते हैं, जितनी गहरी वासना से भरे होते हैं, उतनी ही स्त्रियां ज्यादा सुंदर मालूम होंगी, या पुरुष ज्यादा सुंदर मालूम होंगे। अगर वासना से बहुत भरे हों तो कुरूप स्त्री भी सुंदर मालूम पड़ेगी। अगर वासना से बहुत भरे हों और उपवास बहुत करना पड़ा हो तो वृद्ध स्त्री भी सुंदर मालूम पड़ने लगेगी।
वह जो सौंदर्य दिखाई पड़ता है, वह आपका प्रक्षेपण है। वह ऐसे ही है, जैसे भूखे आदमी को रूखी-सूखी रोटी भी परम-भोग मालूम पड़ेगी। वह कुछ रूखी- सूखी रोटी में नहीं है परम-भोग, वह परम-भोग उसकी भूख में है। अगर आप भरे पेट हैं तो परम-भोग भी रखा हो, तो आपको ख्याल न आएगा कि यहां भोजन रखा है।
किसी दिन उपवास करके सड़क से निकलें, उस दिन सिर्फ होटल, रेस्ट्रारेंट--इनके ही बोर्ड आप पढ़ेंगे। बाकी कोई दुकान दिखाई नहीं पड़ेगी! और बड़े रस से पढ़ेंगे और बोर्ड बड़े सुंदर मालूम पड़ेंगे। और वे जो भोजन और मिठाइयां दिखाई पड़ रही हैं, वह आपको पहली दफे दिखाई पड़ेंगी। और उनमें जैसा रंग और जैसी गंध और उनमें जैसा सौंदर्य और परम-रहस्य प्रगट होगा, वैसा कभी नहीं हुआ था! वह वहां है नहीं, वह आपके भीतर है, वह आप डालते हैं।
आदमी अपने चारों तरफ डालता है अपने ही भावों को। तो ऋषि-मुनियों ने जरूर अप्सराएं देखीं, पर वे अप्सराएं उनकी मनो-सृष्टियां थीं, उनका अपना ही सृजन था।

अगर आप साक्षी बनते हैं तो यह परिणाम घटित होगा कि दोनों बातें आप एक साथ देख सकेंगे। जितना आप दूर हटेंगे, उतने ही दोनों बातें आप एक साथ देख सकेंगे। दूरी चाहिए दोनों को देखने के लिए। अगर आप बहुत पास हैं, तो एक ही दिखाई पड़ता है।
मैं यहां बैठा हूं तो आप सब मुझे दिखाई पड़ते हैं। मैं आपके और पास आऊं
तो मुझे और कम लोग दिखाई पड़ेंगे। मैं और पास आऊं तो और कम लोग दिखाई पड़ेंगे। अगर मैं किसी के बिल्कुल पास आ जाऊं तो सिर्फ वही दिखाई पड़ेगा। जितनी दूरी होती है, उतना विस्तीर्ण परिप्रेक्ष्य होता है।
तो जब कोई व्यक्ति साक्षी हो जाता है, तो उसको क्रोध, अक्रोध; लोभ, अलोभ; घृणा, प्रेम; काम, ब्रह्मचर्य; साथ दिखाई पड़ने लगते हैं। और तब वह चकित हो जाता है कि यह तो एक ही तरंग है--इधर क्रोध, उधर पश्चात्ताप; इधर संसार, उधर संन्यास; इधर भोग, उधर त्याग--यह तो एक ही तरंग के दो रूप हैं। जैसे ही यह दिखता है, दोनों चीजें एक साथ उपस्थित हो कर एक-दूसरे को काट देती हैं। वही सैनिक है। योद्धा बनने की जरूरत नहीं है।
उस सैनिक को खोज लेना जरूरी है, जहां विपरीत कट जाते हैं। अपनी समान सह-उपस्थिति से अपने आप कट जाते हैं। यह जो उनका अपने आप कट जाना है, यह बिना किसी हिंसा के युद्ध में विजय है--बिना लड़े।
"सैनिक को खोजो और उसे भीतर युद्ध करने दो।"
सैनिक का अर्थ है, विपरीत की सह-उपस्थिति, एक साथ दोनों का अनुभव।
"उसे खोजने में सतर्क रहो, नहीं तो लड़ाई के आवेश में और उतावलेपन में तुम उसके पास से निकल जाओगे।"
बहुत बार तुम उसके करीब पहुंचते हो। मगर तुम समझने को कम और लड़ने को इतने आतुर हो, तुम्हारा मन इतने उतावलेपन और जल्दबाजी से भरा है विजय के लिए कि तुम उस सैनिक से, जो तुम्हें जिता सकता है, उसके पास से निकल जाते हो, उसे तुम देखते भी नहीं। अगर तुम जल्दबाजी में हो, और लड़ने की शीघ्रता में हो, और जीतने के लिए उतावले हो, तो तुम उससे चूकते रहोगे। क्योंकि उसे देखने के लिए गैर-उतावलापन, शांति, मौन, सहजता चाहिए। तो ही तुम्हें वह दिखाई पड़ेगा। तो ही तुम इतनी दूरी बना सकोगे। तो ही तुम दोनों को एक साथ देख पाओगे।
तो जल्दी मत करना जीतने की, अगर जीतना हो। अगर जल्दी जीतना हो, तो जल्दी बिल्कुल मत करना। शीघ्रता मत करना, अगर चाहते हो कि शीघ्र परिणाम आ जाए। क्योंकि तुम जितनी शीघ्रता करोगे, तुम उतनी ही अशांति में रहोगे और तुम चूकते चले जाओगे।
तुम्हारे भीतर ही वह शक्ति मौजूद है, जो तुम्हें मुक्त कर देगी। तुम्हारे ही भीतर की शक्ति ने तुम्हें बांधा है, तुम्हारे ही भीतर की शक्ति तुम्हें मुक्त भी कर देगी। लेकिन तुम जल्दी मत करना। धैर्य, प्रतीक्षा और जीत की कोई उतावली नहीं, तो तुम्हारी जीत निश्चित है।
"और वह तुमको तब तक न पहचानेगा"... ध्यान रखना कि वह सैनिक तुम्हारे भीतर है। लेकिन "वह तब तक तुमको न पहचानेगा, जब तक तुम स्वयं उसे न पहचान लो।"
वह बैठा रहेगा, उसका तुम उपयोग ही नहीं कर रहे हो! एक महान शक्ति का उपयोग तुम छोड़ रहे हो! वह महान शक्ति इसमें छिपी है कि दो विपरीत को साथ देख लो। उसको तुम चूके जा रहे हो। एक को तुम देखते हो; जब उससे थक जाते हो, तब तुम दूसरे को देखते हो। लेकिन दोनों का मिलन न हो तो काट नहीं हो सकती। दोनों एक-दूसरे को ऋण नहीं कर सकते, दोनों एक-दूसरे को मिटा नहीं सकते। "यदि उसके ध्यान से सुनने वाले कानों तक तुम्हारी पुकार पहुंचेगी, तो
वह तुम्हारे भीतर से लड़ेगा और तुम्हारे भीतर के नीरस शून्य को भर देगा।" तीसरा सूत्र, "युद्ध के लिए उसका आदेश प्राप्त करो और उसका पालन करो। सेनापति मान कर उसकी आज्ञाओं का पालन न करो, वरन इस प्रकार करो कि मानो वह तुम्हारा ही स्वरूप है और उसके शब्दों में मानो तुम्हारी ही गुप्त इच्छाएं मुखरित हो रही हैं। क्योंकि वह तुम्हीं हो, परंतु वह तुमसे असीम रूप से अधिक ज्ञानी और शक्तिशाली है।"

यह जो साक्षी है तुम्हारे भीतर, उस पर छोड़ दो युद्ध पूरा। उसे तुम योद्धा मत बनाओ। लेकिन जैसे ही तुम उसका उपयोग करने में समर्थ हो जाओगे, उसके द्वारा देखने में समर्थ हो जाओगे, तुम्हें आदेश मिलने लगेंगे, जो कि सुनिश्चित विजय की तरफ ले जाते हैं। शास्त्रों से आदेश मत लेना, शब्दों से आदेश मत लेना, अपने साक्षी से आदेश लेना। वह तुम्हें हमेशा ही ठीक दिशा पर ले जाएगा। उससे गलती होने की कोई संभावना ही नहीं है।
लेकिन हम सब न मालूम किस-किस से आदेश ले लेते हैं! हमें इसकी भी फिक्र नहीं होती कि जिनसे हम आदेश ले रहे हैं, वे भी कहीं पहुंचे हैं या नहीं? बड़ा मजा तो यह है कि हम अपने ही जैसे लोगों से आदेश लेते हैं। क्योंकि हमें अपने ही जैसे लोग, हमारी बुद्धि में उतरते हैं। अगर तुम कामवासना से पीड़ित हो, तो बहुत संभावना इस बात की है कि तुम ऐसा गुरु खोज लोगे, जो कामवासना से पीड़ित है और ब्रह्मचर्य को थोपे हुए है। बहुत संभावना इस बात की है कि तुम उसको खोज लोगे। तुम ऐसे गुरु के पास पहुंच ही न पाओगे, जो कामवासना से पीड़ित नहीं है और जिसका ब्रह्मचर्य सहज है। क्योंकि वह सहज ब्रह्मचर्य तुम्हारी पकड़ में ही नहीं आएगा। तुम इतने पीड़ित हो कामवासना से, तुम इतने असहज हो कि असहज ब्रह्मचर्य ही तुम्हारी समझ में आएगा। अगर तुम सहज व्यक्ति के पास पहुंच गए तो तुम पच्चीस बहाने निकाल कर वहां से भाग निकलोगे।
क्यों? क्योंकि तुम्हें जो चीजें परेशान करती हैं, अगर तुमने देखा कि तुम्हारे गुरु को वे चीजें परेशान नहीं कर रही हैं, तो तुम यह मान ही नहीं सकते कि उसको परेशान नहीं कर रही होंगी। क्योंकि तुमको परेशान करती हैं। तुम भाग खड़े होओगे। तुम तो उसी गुरु को चुनोगे, जो तुम्हारे जैसा है। बड़ा मुश्किल है। और उससे तुम कभी मुक्त न होओगे, क्योंकि वह तुम्हें उसी जाल में डाल देगा। जिस जाल में तुम पहले से ही पड़े थे, उसके विपरीत जाल में डाल देगा। लेकिन वह एक हीशृंखला है--कामी ब्रह्मचारियों को चुन लेते हैं। मैं निरंतर देखता हूं और लोग मुझसे आ कर बात करते हैं कि ऐसा हुआ। अभी चार-छः दिन पहले पार्लियामेंट के एक सदस्य और एक बड़े उद्योगपति मुझे मिलने आए। आते से ही उन्होंने कहा कि आपकी स्मृति बड़ी अदभुत है। तभी मुझे लगा कि इस आदमी की स्मृति कमजोर होनी चाहिए, यह भी कोई बात है करने की! स्मृति से क्या लेना-देना है, अच्छी है या बुरी, इससे क्या? तो इसकी स्मृति जरूर कमजोर होनी चाहिए। जब बार-बार वे कहने लगे कि गजब हैं आप, कि न नाम भूलते हैं आप, न किताब भूलते हैं आप, न कोई परिचित आदमी को भूलते हैं वर्षों तक आप। आपकी स्मृति बड़ी अदभुत है। तभी उन्होंने कहा कि अभी पिछले महीने जब आप क्रास मैदान में रामायण पर व्याख्यान कर रहे थे--मैं रामायण पर कभी बोला नहीं, गीता पर बोल रहा था--वे कह रहे हैं कि रामायण पर प्रवचन कर रहे थे! क्या बातें आपने कहीं! बड़े-बड़े पंडितों से रामायण सुनी है। तब मैंने कहा, कि महाराज, जब आप आए, तभी मैं समझ गया था कि आप स्मृति की कमजोरी से बीमार हैं।
आपको क्या प्रभावित करता है, वह खबर देता है आपके संबंध में। वह दूसरे
के संबंध में बहुत खबर नहीं देता, सिर्फ आपके संबंध में खबर देता है। अगर आपको पता चल जाए कि फलां आदमी बाल-ब्रह्मचारी है। तो बिचारे महात्मा घोषणा करवाते रहते हैं कि फलां बाल-ब्रह्मचारी हैं। कामी लोग जल्दी उत्सुक होते हैं बाल-ब्रह्मचारियों में। इसका और कोई कारण नहीं है। इसका कारण उनकी कमजोरी है, उनकी तकलीफ है। एक अति पर वे खड़े हैं, दूसरी अति उन्हें बुलाती है।
आप लोभी हैं। तो अगर कोई कह दे कि उसने लाखों रुपए त्याग कर दिए, बस आप चरणों में गिर प.ड़ते हैं। यह आपके बाबत खबर दे रहा है। उसने लाख छोड़े कि नहीं, इसका कोई बड़ा मतलब नहीं है। मगर आप कौड़ी भी पकड़े हुए हैं, इसलिए लाख छोड़ने वाला आपको एकदम प्रभावित करता है, आप एकदम चरण पकड़ लेते हैं।
जैनी अपने शास्त्रों में लिखते हैं, महावीर ने इतने घोड़े छोड़े, इतने हाथी छोड़े! ये इतने हाथी-घोड़ों की बाबत जो इतनी चर्चा चलाते हैं, इनके संबंध में यह खबर है। महावीर ने छोड़े कि नहीं, यह बड़ा महत्वपूर्ण नहीं है।

और क्यों घोड़े-गधे--इनके छोड़ने से क्या लेना-देना है? कितने छोड़े इसकी संख्या का क्या प्रयोजन है?
लेकिन संख्या को बढ़ाए चले जाते हैं! यह इनकी पकड़ की खबर है। इसलिए महावीर के आसपास लोभी इकट्ठे हो गए हैं। इसलिए जैनियों ने अगर खूब पैसा इकट्ठा किया है तो उसका कारण है। अगर वे समृद्ध बन सके तो उसका कारण है। असल में लोभी उत्सुक हुए महावीर की तरफ। वे त्यागी थे, तो लोभी एकदम पकड़ता है।
आप किसको पकड़ते हैं, यह आप पर निर्भर है। और तब बड़ी दुर्घटना घटती है।
इस जगत में महागुरु भी असफल हो जाते हैं, क्योंकि उनको जो लोग पकड़ लेते हैं, वे बिल्कुल उलटे लोग होते हैं। महावीर को आप नहीं समझ सके। आपके लोभ की वजह से आप उत्सुक हो गए कि इस आदमी ने इतना छोड़ा, गजब है! क्योंकि आप छोड़ नहीं सकते एक कौड़ी। और इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने रत्न छोड़ दिए! बस यह आदमी ठीक गुरु है। और आप बिल्कुल गलत आदमी हैं इस गुरु के लिए।
जिंदगी बहुत जटिल है। ठीक-ठीक आदेश अगर आपको पाना है और अपने से बचना है, क्योंकि आप गुरु को भी खोजेंगे तो उसे आपकी परिधि का ही आदमी खोजेगा। आप गलत को ही खोज लेंगे। आप ठीक को भी खोजेंगे, तो उसमें भी गलत को ही आरोपित करके खोजेंगे। उचित है कि आप पीछे सरकें और साक्षीभाव में खड़े हों। क्योंकि आप पहले तो अपने को ही साक्षीभाव से देखें। इस साक्षीभाव से देखने की जैसे ही क्षमता आपमें विकसित होगी, आपको अंतर-आदेश उपलब्ध होने शुरू हो जाएंगे। वे ही आदेश सत्य हैं। वे आदेश आपको ठीक मार्ग पर ले जाएंगे। अपनी वाणी की खोज, अंतर-आत्मा की, अंतःकरण की, अत्यंत जरूरी है। उस खोज के बिना आप भटकते रहेंगे लहरों पर लकड़ी के टुकड़े की तरह, कभी यहां टकराएंगे, कभी वहां टकराएंगे। समय नष्ट होगा।
सबसे पहले आपको अंतर की खोज करनी है। क्योंकि उस अंतर की खोज के बाद
जो गुरु भी आप चुनेंगे, वह बात ही और होगी। क्योंकि तब वह आपके परिधि के आदमी ने नहीं चुना है, आपके बीमार आदमी ने नहीं चुना है। आपकी ही अंतर-वाणी आई है।
साक्षीभाव को अगर आप थोड़ा भी समझ लें, तो जिस गुरु को आप चुनेंगे, उसके सहारे आप पार हो सकेंगे। वह नाव बन सकता है। पर वह होना चाहिए अंतर का आदेश, आपकी परिधि की बातें नहीं।
"युद्ध के लिए उसका आदेश प्राप्त करो और उसका पालन करो। सेनापति मान
कर उसकी आज्ञाओं का पालन न करो, वरन इस प्रकार करो मानो कि वह तुम्हारा ही स्वरूप है और उसके शब्दों में मानो तुम्हारी ही गुप्त इच्छाएं मुखरित हो रही हैं। क्योंकि वह तुम्हीं हो, परंतु वह तुमसे असीम रूप से अधिक ज्ञानी और शक्तिशाली है।"
तुम्हारे ही भीतर छिपा है तुम्हारा ही एक रूप, जो तुमसे बहुत ज्यादा शक्तिशाली और बहुत ज्ञानी है। उसकी सुनो, उसका अनुसरण करो। लेकिन उसके लिए जरूरी है कि तुम द्वंद्व के बीच जाग कर साक्षी बनना सीखो।

साधना-सूत्र
ग्यारहवां प्रवचन

जीवन का संगीत

4. जीवन का संगीत सुनो।

उसे खोजो और पहले उसे अपने हृदय में ही सुनो।
आरंभ में तुम कदाचित कहोगे कि यहां गीत तो है नहीं,
मैं तो जब ढूंढ़ता हूं तो केवल बेसुरा कोलाहल ही सुनाई देता है।
और अधिक गहरे ढूंढ़ो,
यदि फिर भी तुम निष्फल रहो,
तो ठहरो और भी अधिक गहरे में फिर ढूंढ़ो।
एक प्राकृतिक संगीत, एक गुप्त जल-स्रोत प्रत्येक मानव हृदय में है।
वह भले ही ढंका हो, बिल्कुल छिपा हो और नीरव जान पड़ता हो--
किंतु वह है अवश्य।
तुम्हारे स्वभाव के मूल में तुम्हें श्रद्धा, आशा और प्रेम की प्र्राप्ति होगी।
जो पाप-पथ को ग्रहण करता है,
वह अपने अंतरंग में देखना अस्वीकार कर देता है,
अपने कान हृदय के संगीत के प्रति मूंद लेता है
और अपनी आंखों को अपनी आत्मा के प्रकाश के प्रति अंधी कर लेता है।
उसे अपनी वासनाओं में लिप्त रहना सरल जान पड़ता है,
इसी से वह ऐसा करता है।
परंतु समस्त जीवन के नीचे एक वेगवती धारा बह रही है,
जिसे रोका नहीं जा सकता।
सचमुच गहरा पानी वहां मौजूद है, उसे ढूंढ़ निकालो।
इतना जान लो कि तुम्हारे अंदर निःसंदेह वह वाणी मौजूद है।
उसे वहां ढूंढ़ो और जब एक बार उसे सुन लोगे,
तो अधिक सरलता से तुम उसे अपने आसपास के लोगों में पहचान सकोगे।

मनुष्य अपने हृदय की प्रतिध्वनि ही अपने जीवन के सारे अनुभवों में सुनता है। जो तुम्हें बाहर मिलता है, वह तुम्हारे भीतर का ही प्रक्षेपण होता है। बाहर तो केवल पर्दे हैं। तुम अपने को ही उन पर्दों पर, अपनी ही छायाओं को उन पर देखा करते हो। अगर जीवन में दुख मालूम पड़ता है और चारों ओर दुख की छाया दिखाई पड़ती है, तो तुम्हारे हृदय का ही दुख है। अगर जीवन में विषाद दिखाई पड़ता है, तो वह विषाद तुमने ही जीवन में डाला है। वही दिखाई पड़ता है बाहर, जो हम बाहर अपने भीतर से फैलाते हैं।
ऐसा समझें कि जगत एक दर्पण है, और हमें अपनी ही तस्वीर उसमें दिखाई पड़ जाती है। लेकिन हम सोचते हैं कि जो हमें दिखाई पड़ रहा है, वह जगत में है। और तब हम उसे जगत से मिटाने की कोशिश में संलग्न हो जाते हैं। यही कोशिश अज्ञान है। और यही कोशिश और गहरे दुख में ले जाती है। क्योंकि जिसे हम वहां मिटा रहे हैं, उसका मूल वहां नहीं है। जैसे कि दर्पण में आपको अपनी तस्वीर दिखाई पड़े और लगे कि तस्वीर कुरूप है, और आप दर्पण को तोड़ने में लग जाएं। तो आप दर्पण को तोड़ सकते हैं, लेकिन इससे आपका कुरूप चेहरा बदलेगा नहीं। दर्पण टूटने पर यह भी हो सकता है कि आपको अपनी कुरूप अवस्था दिखाई न पड़े। लेकिन न दिखाई पड़ना, मिट जाना नहीं है।
इसलिए बहुत से लोग समाज को छोड़ कर भाग जाते हैं, क्योंकि समाज में उनकी कुरूपता दिखाई पड़ती है। संबंधों में, संबंधों के दर्पण में, उनके भीतर का सब रोग प्रकट होता है। जंगल में, एकांत में, हिमालय में, कोई दर्पण नहीं रह जाता। उन्हें वहां दिखाई नहीं पड़ता कि वे कैसे हैं। और तब इस न दिखाई पड़ने को वे समझ लेते हैं कि आत्मिक रूपांतरण हो रहा है। वह भ्रांति है। उन्हें वापस हिमालय से लौट कर आना होगा। और जब वे समाज के बीच खड़े

होंगे, तब ही उन्हें पता चलेगा कि कुछ मिटा था हिमालय में, या केवल दर्पण के न होने से दिखाई नहीं पड़ता था।
इसलिए जो एक बार जंगल के एकांत में भाग जाता है, वह समाज में आने से भयभीत हो जाता है। क्योंकि फिर वही दिखाई पड़ना शुरू होगा, जो उसने सोचा है कि मिट गया है। कोई दूसरा चाहिए। बिना दूसरे के आप अपने को नहीं देख पाते हैं। दूसरे की मौजूदगी, दूसरे से संबंध, आपको खुद को प्रकट करने में सुविधा हो जाती है।
कैसे क्रोध करिएगा, अगर कोई मौजूद न हो? तो क्रोध को मिटाने के दो रास्ते हैं, या तो क्रोध को मिटाइए या दूसरे की मौजूदगी से भाग जाइए। कैसे वासना करोगे, कैसे परिग्रह करोगे, कैसे अहंकार को निर्मित करोगे--अगर दूसरा मौजूद न हो? अगर जमीन पर आप बिल्कुल अकेले हों, तो क्या करिएगा? किस बात का लोभ करिएगा? लोभ का अर्थ ही क्या होगा? पूरी जमीन ही आपके लिए, अकेले के लिए है। कहां बागुड़ बनाइए? कहां मकान की दीवाल-रेखा खींचिए? कहां दावा करिए कि यह मेरा है? अकेले होंगे तो दावे का कोई अर्थ नहीं। दावा तो दूसरे के खिलाफ है। दूसरे की मौजूदगी चाहिए।
अहंकार की घोषणा भी क्या करिएगा? क्या कहिएगा कि मैं सिकंदर हूं, कि मैं नेपोलियन हूं? क्या प्रयोजन होगा? किससे कहिएगा? कौन सुनेगा? कौन आपकी तरफ आंख उठा कर देखेगा कि आप सिकंदर हैं? नहीं, अहंकार का भी कोई अर्थ न होगा। और विनम्रता भी साधिएगा तो क्या सार है? किसको खबर करिएगा कि मुझ जैसा विनम्र कोई भी नहीं है?
आप अकेले होंगे, तो आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। क्योंकि आपके भीतर जो
भी छिपा है, उसे प्रकट करने के लिए कोई भी सुविधा न होगी। यह भी हो सकता है कि आपको पता ही न चले कि आपके भीतर क्या-क्या छिपा है।
इसलिए जो संन्यास समाज को छोड़ कर फलता-फूलता है, वह संन्यास कच्चा है।
वह टूट जाएगा। वह भयभीत है, वह सुरक्षा में ही जी सकता है। एक विशेष स्थिति उपलब्ध हो, तो ही बच सकता है। सामान्य जीवन में, खुले आकाश के नीचे, उसका रंग-रोगन उतर जाएगा।
जो समाज के भीतर फलित होता है संन्यास, उसको ही मैं वास्तविक कहता हूं। क्योंकि वहां दर्पण मौजूद थे। और तुमने दर्पण नहीं तोड़े, बल्कि दर्पण में अपनी कुरूप तस्वीर देख कर अपने को बदलने की कोशिश की और सुंदर बनाया। वहां लोग मौजूद थे, जिन्हें देख कर क्रोध आता, जिन पर तुम क्रोध को फेंकते, जो क्रोध का कारण बन जाते और तुम्हारे भीतर के क्रोध की अग्नि बाहर लपटें फेंकती। लेकिन तुम उन्हें छोड़ कर नहीं भागे, न तुमने उन्हें दोषी ठहराया, न तुमने यह कहा कि तुम क्रोध के कारण हो। तुमने समझा कि तुम तो केवल खूंटी हो, क्रोध तो मेरे भीतर है। उस क्रोध को मैं तुम्हारी खूंटी पर टांगता हूं, तुम्हारी कृपा है कि तुमने मौका दिया। और मुझे, मेरे भीतर जो छिपा था, वह देखने की सुविधा जुटाई। तुम परिस्थिति बने और मेरा आत्म-अध्ययन बढ़ा।
और तुम अपने को बदलोगे, खूंटी को नहीं तोड़ोगे, दर्पण को नहीं तोड़ोगे
और समाज को छोड़ कर नहीं भागोगे, तो तुम हैरान हो जाओगे। जिस दिन तुम्हारे भीतर से क्रोध विसर्जित हो जाएगा, उस दिन अचानक तुम पाओगे कि सारे जगत से क्रोध विसर्जित हो गया है। ऐसा नहीं कि सारे जगत से क्रोध विसर्जित हो जाएगा। क्योंकि क्रोधी अब भी क्रोधी रहेंगे। लेकिन तुम्हारे लिए यह जगत क्रोध-शून्य हो जाएगा। क्योंकि तुम्हें अब इस जगत की कोई भी परिस्थिति क्रोधित न कर पाएगी। अब कोई भी खूंटी समर्थ नहीं होगी कि तुम्हारे भीतर के क्रोध को अपने पर टांग ले, क्योंकि भीतर क्रोध नहीं बचा। अब कोई भी दर्पण तुम्हारी कुरूपता को प्रकट नहीं कर जाएगा, क्योंकि अब वह वहां नहीं है। अध्यात्म की खोज इस मौलिक सूत्र से शुरू होती है कि जो भी हम अपने बाहर पाते हैं, वह हमारे भीतर छिपा है। अगर हम मानते हैं कि वह बाहर ही है, तो आप कभी भी धार्मिक नहीं हो सकते।
इसलिए कार्ल मार्क्स, फ्रेड्रिक एंजिल्स और लेनिन, उन्होंने इनकार किया धर्म को। उनके इनकार करने में बड़ा अर्थ है। और उन्होंने इनकार किया तो तर्कयुक्त है। क्योंकि कार्ल मार्क्स ने कहा कि बीमारी समाज में है,

व्यक्ति में नहीं है। इसलिए समाज को बदलना होगा, तभी दुनिया बेहतर होगी। व्यक्ति को बदलने का कोई अर्थ ही नहीं है। क्योंकि व्यक्ति के भीतर कोई बीमारी नहीं है। यह मूल प्रस्तावना है कम्यूनिज्म की। इसलिए मार्क्स ने कहा, धर्म निष्प्रयोजन है, व्यर्थ है। अगर उसकी बात ठीक है, तो धर्म निष्प्रयोजन है। उसने बात तो ठीक पकड़ी। क्योंकि अगर कम्यूनिज्म ठीक है, तो धर्म व्यर्थ है। मौलिक प्रस्तावना कम्यूनिज्म की यह है कि बीमारी बाहर है, भीतर नहीं है। और धर्म की मौलिक प्रस्तावना यह है कि बीमारी भीतर है, बाहर नहीं है।
इसलिए इस जमीन पर धर्म और कम्यूनिज्म बड़े से बड़े प्रतिद्वंद्वी हैं। गहरे से गहरा संघर्ष, इन दो मान्यताओं के बीच हो रहा है। और होगा। अगर बीमारी बाहर है तो फिर व्यक्ति को कुछ करने की जरूरत नहीं। न कोई ध्यान, न कोई साधना, न कोई आत्म-क्रांति। सब निष्फल बातें हैं। तब तो हमें बाहर की स्थिति बदल देनी चाहिए। और जब स्थिति बदल जाएगी, जब दर्पण बदल जाएगा, तो आप सुंदर दिखाई पड़ने लगेंगे। आपको बदलने की कोई जरूरत नहीं।
लेकिन कम्यूनिज्म की मान्यता में एक बुनियादी कठिनाई है। यह बदलेगा कौन? बदलेंगे व्यक्ति! वे व्यक्ति, जो उस समाज में पैदा हुए हैं, जो कुरूप था, गंदा था, शोषक था! और वे व्यक्ति समाज के निर्माता हैं! क्योंकि कम्यूनिज्म मानता नहीं है कि व्यक्ति की कोई सामर्थ्य है। सब सामर्थ्य समाज की है। तो जिस समाज में पैदा हुए व्यक्ति हैं, वे उसको बदलेंगे कैसे! और यहां कम्यूनिज्म मुश्किल में पड़ जाता है। वे ही व्यक्ति बदलेंगे जो इस समाज ने पैदा किए हैं? और व्यक्ति की कोई सामर्थ्य नहीं है, सब सामर्थ्य समाज की है। तो इन व्यक्तियों के द्वारा जो समाज निर्मित होगा, वह नया समाज नहीं हो सकता। क्योंकि नयापन आएगा कहां से? पुराने में पले हुए, पुराने को ही फिर से स्थापित कर देंगे। और यही हुआ।
रूस में क्रांति हुई, बदलाहट ऊपर-ऊपर हुई, भीतर फिर वही का वही पुराना ढांचा आ गया। नाम बदल गए, व्यवस्था बदल गई, बड़ा उपद्रव हुआ, बड़ी हत्याएं हुईं, लेकिन मौलिक रूप समाज का वही रहा, जो था। पूंजीपति नहीं रहा, गरीब नहीं रहा, लेकिन अब मैनेजर और मजदूर हो गए! फर्क वही का वही है, फासला उतना का उतना है, शोषण वैसा का वैसा है। दीन अब भी दीन है, समृद्ध अब भी समृद्ध है। समृद्धि का ढंग बदल गया। अब उसके पास बैंक-बैलेंस नहीं है! अब समृद्धि के लिए रुपऐ की ताकत नहीं रही रूस में। अब समृद्धि के लिए कम्यूनिस्ट पार्टी के कितने बड़े पद पर है, वह यह ताकत हो गई।
इससे क्या फर्क पड़ता है कि नोट हाथ में हैं कि कम्यूनिस्ट पार्टी का सर्टिफिकेट हाथ में है? इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ताकतवर, ताकतवर है; कमजोर, कमजोर है। और उनके बीच का फासला उतना ही है, जितना था। शायद फासला ज्यादा हो गया है। क्योंकि गरीब मुल्क में कोई गरीब भी अमीर हो सकता है, लेकिन रूस में जो कम्यूनिस्ट नहीं है, उसको कम्यूनिस्ट सीढ़ियां चढ़ना करीब-करीब असंभव है। पिछले चालीस-पचास साल से दस-पंद्रह लोगों का एक छोटा सा जत्था पूरे रूस पर हावी है। एक छोटा सा ग्रुप पूरे रूस पर कब्जा किए हुए है। सारा मुल्क गुलामी की हालत में है। कोई गरीब इतना गुलाम कभी नहीं था। धर्म की मान्यता यह है कि रोग व्यक्ति के साथ है, समाज के साथ नहीं है। मौलिक गुण अगर व्यक्ति का बदल जाए, तो ही समाज भी बदल सकता है। अगर क्रांति व्यक्ति में हो सकती है, तो ही हो सकती है, नहीं तो कोई क्रांति नहीं हो सकती है।
व्यक्ति की क्रांति का क्या अर्थ होता है? व्यक्ति की क्रांति का अर्थ होता है कि मैं जो भी अपने जीवन में पाता हूं, वह मेरे भीतर से ही डाला गया है।
इसे हम ऐसा समझें। आप भूखे हैं, आप दुखी हैं, आप उदास हैं, मन विषाद से घिरा है। वसंत आ गया, फूल खिल गए, पक्षी गीत गाने लगे। लेकिन आपको न तो पक्षियों के गीत सुनाई पड़ेंगे, न फूलों का खिलना सुनाई पड़ेगा, न फूलों से झरती सुगंध आपके नासापुटों को स्पर्श करेगी। वसंत आ गया है, यह आपको पता भी नहीं चलेगा। आप अपनी उदासी में घिरे हैं, आप अपने विषाद में घिरे हैं। यह भी हो सकता है कि फूलों का खिलना कष्टप्रद मालूम पड़े। और पक्षियों का

गीत शोरगुल मालूम पड़े। और आप चाहें कि सब शांत हो जाए। यह क्या उपद्रव मचा है? वसंत की हवाएं आपके लिए दंश दें। क्योंकि आपके भीतर जो विषाद है, आप उसी के माध्यम से देख पाएंगे।
ऐसा भी हो जाता है कि आप बड़े प्रेम में हैं, आप बड़े आनंद में हैं, आप बड़े प्रफुल्लित हैं। तो यह भी हो सकता है कि जहां फूल के पौधे में फूल न हों सिर्फ कांटे ही कांटे हों, तो उन कांटों में भी आपको सौंदर्य की अनुभूति हो सकती है। एक कैक्टस का पौधा भी परम सौंदर्य का प्रतीक हो सकता है। अगर भीतर प्रेम और आनंद का उल्लास हो तो कांटे फूल बन जाते हैं। क्योंकि देखने वाला ही तो देखता है, सुनने वाला ही तो सुनता है। आंखें जो बाहर देखती हैं, वह कम मूल्य का है। जो भीतर छिपा है, जो आंखों से झांकता है, वह ज्यादा मूल्य का है।
आपकी आत्मा ही आपके चारों तरफ फैलती है और चीजों पर छा जाती है। तो जो
भी आप देखते हैं, जो भी आप पाते हैं, वह आपका ही फैला हुआ रूप है। अगर ऐसा है, तो ही जीवन में परिवर्तन का कोई उपाय है। क्योंकि तब मैं अपने को बदल लूं, तो मैं पूरे जगत को बदल लेता हूं।
इसको हम ऐसा भी समझें कि हम एक ही जगत में नहीं रहते हैं। ऐसा लगता है
कि एक ही जगत में रहते हैं, लेकिन हम सबका मानसिक जगत अलग-अलग है। जितने लोग हैं यहां बैठे, उतने जगत यहां मौजूद हैं। क्योंकि कोई आपमें से दुखी होगा, कोई आपमें से सुखी होगा, और कोई शांत होगा, और कोई अशांत होगा। तो एक ही जगत के आप सदस्य नहीं हो सकते। जो यहां शांत बैठा है, उसे यह चारों तरफ का जो जगत है, परिपूर्ण शांति से भरा हुआ मालूम होगा। इस हवा का कण-कण, आकाश का एक-एक तारा, पत्तों का, फूलों का, वृक्षों का सब कुछ, उसे शांति देता हुआ मालूम पड़ेगा। हवा की एक हल्की सी लहर भी उसे शांति का एक झोंका होगी। वह ताजगी से भर जाएगा। और जो उसके पास में ही उदास और दुखी बैठा है, घटनाएं यही उसके पास भी घटेंगी, लेकिन व्याख्या अलग होगी।
व्याख्या से जगत निर्मित होता है, वस्तुओं से नहीं। हम क्या व्याख्या करते हैं, हम कैसे देखते हैं, इससे जगत निर्मित होता है।
और हम सबकी दृष्टि अलग-अलग है। हम सबका दर्शन अलग-अलग है। हम सबके जगत अलग-अलग होते हैं। हर आदमी अपने मानसिक जगत में रहता है। और इसलिए हम एक-दूसरे से टकराते हैं, क्योंकि हमारे जगत इतने अलग होते हैं।
दो व्यक्ति विवाह कर लेते हैं। और कभी भी एक तालमेल नहीं हो पाते हैं। क्योंकि दोनों का जगत, मानसिक रचना का जो लोक है, वह इतना अलग है कि वे टकराते हैं, संघर्षण होता है। पति कुछ कहता है, पत्नी बिल्कुल कुछ और ही समझती है, जो उसने कहा ही नहीं। वह लाख दफे कहता है कि यह मेरा मतलब नहीं है, लेकिन पत्नी यह मान नहीं सकती कि यह तुम्हारा मतलब नहीं है। यही तुम्हारा मतलब है। पत्नी जो कहती है, पति नहीं समझ पाता। संवाद बिल्कुल असंभव मालूम पड़ता है। तुम कुछ कहते हो, कुछ समझा जाता है। कोई दूसरा कुछ कहता है, तुम कुछ अर्थ निकालते हो। दूसरा लाख सिर पटके कि यह मेरा प्रयोजन नहीं, तो भी तुम्हें भरोसा नहीं आता। तुम कहते हो, प्रयोजन तो यही है, अब तुम बदल रहे हो। देखने का ढंग... ।
हम कितने ही पास आ जाएं, हमारे जगत अलग-अलग होते हैं। और उनके बीच संघर्षण बना रहता है। जब तक कि तुम यह न समझ लो कि हर व्यक्ति अपने मनस-लोक में रह रहा है, जब तक कि तुम इतने सजग न हो जाओ कि तुम, दूसरा कैसा देख रहा होगा, जब तक तुम अपने को उसकी जगह रख कर न देखना शुरू कर दो, तब तक संघर्ष जारी रहेगा। तब तक मित्रता भी एक तरह की शत्रुता है। संबंध भी एक तरह की कलह है। परिवार भी एक तरह का उपद्रव है। क्योंकि वहां इतने जगत पैदा हो जाते हैं और उनके बीच संघर्ष है।
लेकिन हमें यह ख्याल नहीं कि हम एक खोल के भीतर से देखते हैं, कि हम एक चश्मे के भीतर से देखते हैं। और हमारे चश्मे का रंग सब तरफ की चीजों पर फैल जाता है। और फिर हम चीजों को बदलने में लग जाते हैं, बजाय इसके कि हम चश्मे को बदल दें, बजाय इसके कि हम चश्मे को अलग कर दें। बजाय इसके कि मैं अपने को बदलूं, मैं बाहर की व्यवस्था जुटाने में लग जाता हूं--कि दुनिया कैसे

अच्छी हो, मकान कैसे अच्छा हो, सौंदर्य कैसे मेरे चारों तरफ हो। और भीतर का आदमी कुरूप होता है, वह सब चीजों को कुरूप कर लेता है।
मैं धनपतियों के घर में ठहरता हूं तो मैं देख कर चकित होता हूं। उनके पास धन है, लेकिन सौंदर्य का बोध नहीं है। तो घर में कबाड़, कचरा इकट्ठा कर लेते हैं--बड़ा कीमती। कीमती लाते हैं, सारी दुनिया से बटोर लाते हैं, लेकिन उनके पास सौंदर्य का कोई बोध नहीं है। पैसा उनके पास है, तो घर उनका कबाड़-खाना मालूम होता है। वे चीजें रख लेते हैं ला-ला कर, जो भी बाजार में नया आता है, वह खरीद लाते हैं। लेकिन न तो उसे रखने का सलीका है, न देखने की दृष्टि है, न काव्य का कोई बोध है, न सौंदर्य का कोई अनुभव है। अनुभव तो सिर्फ रुपया इकट्ठा करने का है, जो कि इस जगत में कुरूपतम कृत्य है। तो सारी आत्मा तो कुरूप है, लेकिन फिर पैसा पास में है तो वे सौंदर्य को खरीद ले सकते हैं। तो जो भी उन्हें लगता है कि सुंदर है... अगर खबर आ जाती है कि पिकासो का चित्र घर में होना जरूरी है, तो वे लाखों रुपया खर्च करके पिकासो का चित्र खरीद लाते हैं! न वे समझते हैं कि यह चित्र क्या है! वे यह भी नहीं बता सकते कि चित्र उलटा टंगा है कि सीधा टंगा है। लेकिन पिकासो का है, तो घर में होना चाहिए। फिर उसे वे लटका देते हैं।
पिकासो ने अपने एक पत्र में लिखा है कि मेरा जीवन एक दुखी आदमी का जीवन है। क्योंकि मैंने जो भी जीवन में श्रम से तैयार किया है, वह ऐसे घरों में लटका है, जिनमें न तो देखने वाली आंखें हैं, न समझने वाले हृदय हैं। कहीं किसी बाथरूम में, कहीं किसी बैठक-घर में मैं लटका हूं। मेरे सारे जीवन का श्रम उन लोगों के पास चला गया है, जो कभी एक क्षण रुक कर भी नहीं देखते, कि क्या है, क्या वह ले आए हैं!
आप कितनी ही चीजें इकट्ठी कर लें, अगर भीतर सौंदर्य का बोध नहीं है, तो आपके चारों तरफ कुरूपता होगी। और एक झोपड़े में भी सौंदर्य हो सकता है, अगर आपके भीतर सौंदर्य का बोध है। तब एक खाली जगह भी सुंदर हो सकती है। वह बोध आरोपित होता है। वह बोध ही आपके चारों तरफ के जगत को निर्मित करता है। तब हो सकता है कि आपके फूलदान में कीमती फूल न हों और आपने सिर्फ एक साधारण पत्तों की सजावट कर रखी हो, लेकिन उसमें भी सौंदर्य होगा। क्योंकि सौंदर्य आपके भीतर से आता है।
यह सूत्र समझने जैसा है। क्योंकि जीवन-क्रांति की दिशा में चलने वालों के लिए बहुत ही विचारणीय है।
चौथा सूत्र, "जीवन का संगीत सुनो। उसे खोजो और पहले उसे अपने हृदय में
ही सुनो। आरंभ में तुम कदाचित कहोगे कि यहां गीत तो है ही नहीं, मैं तो जब ढूंढ़ता हूं तो केवल बेसुरा कोलाहल ही सुनाई देता है। और अधिक ढूंढ़ो। यदि फिर भी तुम निष्फल रहो, तो ठहरो और भी अधिक गहरे में फिर ढूंढ़ो। एक प्राकृतिक संगीत, एक गुप्त जल-स्रोत प्रत्येक मानव हृदय में है। वह भले ही ढंका हो, बिल्कुल छिपा हो, और नीरव जान पड़ता हो--किंतु वह है अवश्य।"
"जीवन का संगीत सुनो।"
लेकिन इसे सुनने की पहली शर्त है कि उसे पहले अपने हृदय में सुनो। नहीं तो यह बाहर सुनाई नहीं पड़ेगा। हम बाहर संगीत सुनते हैं। शायद सोचते भी हैं कि संगीत समझ में आ रहा है। सिर भी हिलाते हैं, आनंदित भी होते हैं। लेकिन अगर भीतर का संगीत नहीं सुना है, तो यह सब ऊपर-ऊपर की बात है, इससे संगीत में प्रवेश न हो पाएगा।
संगीत अध्यात्म है। और जब तक आपके हृदय में राग का अनुभव न होने लगे,
और जब तक आपकी श्वास-श्वास में एक लयबद्धता न आ जाए, और जब तक आपका जीवन-स्पंदन वीणा न बन जाए; जब तक आपको भीतर न सुनाई पड़ने लगे वह नाद, जो जीवन का नाद है, जिसको पैदा नहीं करना होता, जो चल ही रहा है, जो आप हैं ही; जब तक आपको वह सुनाई न पड़ जाए, तब तक इस जगत में जो अनंत संगीत गुंजायमान हो रहा है, उससे आपकी कोई पहचान न होगी। और एक बार आपको अपने हृदय में सुनाई पड़ जाए वह नाद, तब आप पाएंगे कि हर तरफ, झरने की कलकल में, हवाओं का गुजरना वृक्षों के पत्तों के बीच से, उसमें; पत्थर के गिरने में, नदी के बहने में, नीरवता में, रात्रि के सन्नाटे में, झींगुरों की आवाज में, सब तरफ आपको अपने हृदय की प्रतिध्वनि सुनाई पड़ने लगेगी। यह जगत एक संगीत हो जाएगा।

लेकिन यह होगा उस दिन, जिस दिन हृदय को सुना जा सके।
क्यों? क्योंकि हृदय इतना निकट है कि जब आप उसका संगीत नहीं सुन पाते,
तो और सब चीजें तो दूर हैं, उनका संगीत आप न सुन पाएंगे। तारे बहुत दूर हैं, उनका संगीत आपको कैसे सुनाई पड़ेगा? और हृदय इतना निकट है, उसका ही सुनाई नहीं पड़ रहा है!
जो निकटतम है, उससे यात्रा शुरू करो।
पुराने दिनों में--बहुत पुराने दिनों में, इतिहास ने जिसका स्मरण भी छोड़ दिया है--संगीत की शिक्षा ध्यान से शुरू होती थी। क्योंकि वाद्य पर क्या करोगे, कंठ से क्या होगा, जब तक हृदय के संगीत का स्वर अनुभव न होने लगे? नृत्य की शिक्षा ध्यान से शुरू होती थी। क्योंकि शरीर को हिलाने से क्या होगा? जब तक कि स्पंदन भीतर न आने लगे, जब तक कि भीतर विद्युत प्रवाहित न होने लगे, जब तक कि भीतर कोई न नाच उठे--तब तक शरीर को हिलाना कवायद होगी, तब तक वह नृत्य नहीं होगा। और चाहे कितनी ही कुशलता आ जाए शरीर को नचाने की, वह कुशलता टेक्निकल होगी, हार्दिक नहीं होगी। उसमें कहीं भी हृदय नहीं होगा, कुशलता होगी। और कुशलता बहुत गहरी हो सकती है। फिर भी आत्मा नहीं होगी, शरीर ही नाचेगा। वही फर्क है।
बड़े से बड़ा संगीतज्ञ भी नाच सकता है, नृत्यकार नाच सकता है। बड़े से बड़ा संगीतज्ञ संगीत को जन्म दे सकता है। लेकिन कृष्ण के नृत्य में बात कुछ और है। टेक्निकली वह गलत भी हो सकते हैं। उनके नृत्य में भूल-चूक खोजी जा सकती है। और पंडितों को लगा दें, तो वे जरूर खोज लेंगे। लेकिन फिर भी उनका नृत्य किसी और आयाम में है।
मीरा के संगीत में भूल-चूक खोजी जा सकती है, काव्य में भूल-चूक खोजी जा सकती है, व्याकरण में भूल-चूक खोजी जा सकती है। क्योंकि मीरा न तो कोई कवि है, न वह कोई नर्तकी है, न वह कोई संगीतज्ञ है। लेकिन फिर भी किसी अंतस के कोने में, गहरे में, संगीत घटा है, नृत्य घटा है, काव्य का जन्म हुआ है। वही काव्य, वही नृत्य शरीर तक आ गया है, बाहर तक फैल गया है। इसलिए उसके नृत्य में कुछ बात ही और है। वह इस जगत का नहीं है नृत्य। तो वह कहीं पार से आती है कोई किरण, वह कहीं दूर की खबर लाती है। इसलिए मीरा छा गई हृदय पर। बहुत बड़े संगीतज्ञ हुए, मीरा की कोई तुलना नहीं उनसे। टेक्निकली कोई उसका अस्तित्व नहीं है, लेकिन संगीतज्ञों को हम भूलते चले जाएंगे, मीरा को भूलना असंभव है।
चैतन्य नाचते हैं। उनके नाचने में न कोई व्यवस्था है, न कोई जानकारी है, नाचना अनगढ़ है। लेकिन नृत्य में कुछ प्राण हैं, कोई आत्मा है, नृत्य सजीव है। शरीर ही नहीं कंप रहा है, भीतर कहीं गहरे में स्पंदन हो रहे हैं। और शरीर उन स्पंदनों की केवल खबर दे रहा है।
नृत्य-संगीत जैसी सारी कलाओं का जन्म कभी मंदिर में हुआ था, उनका जन्म मंदिर से है। वे कलाएं मंदिर से फिर लोक-लोक में व्याप्त हो गई हैं। उनका प्राथमिक चरण कभी अध्यात्म की खोज का ही हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे सभी चीजों के साथ होता है कि हम उसके बाह्य आवरण में ज्यादा उत्सुक हो जाते हैं। फिर बाह्य आवरण की व्यवस्था में उत्सुक हो जाते हैं। फिर हम इतनी व्यवस्था कर लेते हैं कि हम भूल ही जाते हैं कि जिसके लिए व्यवस्था कर रहे हैं, वह कभी का मर चुका है। अब हम शरीर की सजावट किए चले जा रहे हैं।
संगीत बहुत दूर चला गया अध्यात्म से, नृत्य बहुत दूर चला गया। इतने दूर कि करीब-करीब उलटा हो गया है। करीब-करीब नृत्य और संगीत अब वासना की सेवा कर रहा है। कभी वह आत्मा से पैदा हुआ था, अब वासना की सेवा में रत है! इसलिए इस्लाम को तो इनकार ही कर देना पड़ा संगीत को कि यह पाप है। यह हैरानी की बात है। मगर सोचने जैसी है।
हिंदुओं ने संगीत को श्रेष्ठतम समझा। संगीत की अनुभूति को परम-ध्यान समझा। और हजारों साल बाद जो आखिरी धर्म जमीन पर आया, इस्लाम, उसने संगीत को वर्जित कर दिया, कि मस्जिद के सामने संगीत नहीं बज सकता! संगीत को पाप घोषित कर दिया!
इस्लाम भी सही है और हिंदू भी सही हैं। जिस दिन संगीत पैदा हुआ था, उस दिन वह परम-ज्ञान का हिस्सा था, ध्यान का हिस्सा था। लेकिन धीरे-धीरे हटते-

हटते वह वासना की सेवा में रत हो गया। और जब मोहम्मद का जन्म हुआ तो संगीत वासना की सेवा में रत था। वह कामवासना का हिस्सा हो गया था। इसलिए मोहम्मद ने कहा कि संगीत मस्जिद के सामने नहीं। तो वह पाप है। दोनों सही हैं। क्योंकि संगीत के दोनों बिंदु हैं, दो छोर हैं।
एक बात स्मरणीय है कि संगीत वासना की सेवा में लग जाएगा, अगर आपने उसे पहले भीतर न सुना। अगर बाहर सुना तो उसकी जो चोट है, वह आपके काम-केंद्र पर होगी। क्योंकि काम-केंद्र आपका सबसे बाहरी केंद्र है--सबसे निम्न, सबसे बाहरी। अगर आपने संगीत भीतर सुना, तब तो वह आत्मा में प्रतिध्वनित होगा। अगर आपने बाहर सुना तो उसकी पहली चोट, पहला आघात सेक्स सेंटर पर होगा, काम-केंद्र पर होगा, क्योंकि वही निकटतम है। और तब अनिवार्य रूप से संगीत काम की सेवा में संलग्न हो जाएगा।
तो कामातुर लोग नाच में रस लेते हैं, गान में रस लेते हैं। तो धीरे- धीरे राजा-महाराजाओं के दरबार की बात हो गई। साधु दूर हटता गया, क्योंकि असाधु संगीत का रस लेने लगा। लेकिन कारण संगीत नहीं है, कारण अगर भीतर से पहले यात्रा न हुई, तो यह उलझन आएगी। अगर भीतर से यात्रा हुई, एक बार भीतर का संगीत अनुभव में आया, तो फिर जगत में जो भी संगीत संभव है--निर्मित, अनिर्मित; प्राकृतिक, कृत्रिम--वह सभी संगीत, एक बार भीतर का स्मरण आ जाए, तो वहीं चोट करेंगे।
नानक अपने साथ एक संगीतज्ञ को रखते थे। बोलते कम थे, गाते ज्यादा थे।
और बगल में बैठा मरदाना अपने इकतारा को बजाता था। पर नानक पहले अजपा की शिक्षा देते थे। कि पहले भीतर अजप का जो नाद है, वह सुना जाए। और जब उनके साधक अजपा के नाद में लीन होने लगते थे, भीतर का नाद सुनने लगते थे, तब वे बाहर का संगीत भी साथ में देते थे। यह बाहर का भी संगीत तब भीतर के उस गहन संगीत के साथ एक हो जाता था। और जब बाहर और भीतर का संगीत एक होता है, तो बाहर और भीतर मिट जाते हैं, सिर्फ संगीत रह जाता है। वह संगीत का क्षण ब्रह्म-अनुभव का क्षण हो जाता है।
"उसे खोजो और पहले उसे अपने हृदय में ही सुनो। आरंभ में तुम कदाचित कहोगे कि यहां गीत तो है ही नहीं, संगीत तो है ही नहीं, मैं तो जब ढूंढ़ता हूं तो केवल बेसुरा कोलाहल ही सुनाई पड़ता है।"
निश्चित ही, जब तुम पहली दफा भीतर जाओगे, तो सिवाय भीड़ और बाजार के वहां कुछ भी न मिलेगा। क्योंकि तुमने अब तक भीड़ और बाजार को ही अपने भीतर पहुंचाया है। तब वहां तुम शोरगुल सुनोगे। वहां व्यर्थ की आवाजें सुनाई पड़ेंगी। वहां खंड-खंड टुकड़े बातचीत के सुनाई पड़ेंगे, जिनमें कोई तुक भी नहीं है--संगीत तो बहुत दूर--जिनमें कोई संगति भी नहीं है, जिनमें कोई संबंध भी नहीं है। अगर तुम बैठ जाओ एकांत में और तुम्हारे भीतर जो चल रहा है, उसे तुम कागज पर लिखो, तो तुम समझोगे कि यह कोई पागल है मेरे भीतर या बहुत पागल हैं मेरे भीतर।
अभी वैज्ञानिक सोचते हैं कि आज नहीं कल, ऐसा उपाय कर लेंगे कि आपकी खोपड़ी में विद्युत का यंत्र लगा कर एंप्लीफाई किया जा सके, कि वहां जो भीतर चल रहा है, उसे और लोग भी सुन सकें। कोई राजी नहीं होगा इस काम के लिए, कि आपके भीतर जो चल रहा है, उसे और लोग भी सुन लें। एक दफा औरों ने सुन लिया, फिर आपका कोई भरोसा नहीं करेगा। क्योंकि आप अपना एक चेहरा बनाए हुए बैठे हैं, वह बिल्कुल नकली है। आप बड़े बुद्धिमान दिखाई पड़ रहे हैं, वह सब नकली है। वह भीतर जो चल रहा है, वह बिल्कुल विक्षिप्त स्वर हैं वहां।
स्वभावतः जब आप भीतर जाएंगे तो पहले यह विक्षिप्तता ही सुनाई पड़ेगी। पहले आपको यही आवाजें सुनाई पड़ेंगी। उनसे डरना मत, घबड़ाना भी मत। और थोड़े भीतर प्रवेश की जरूरत है। साक्षीभाव से उन्हें सुनना, तो भीतर प्रवेश हो सकेगा। उनके विरोध में भी कुछ मत करना। क्योंकि विरोध में किया, तो वहीं उलझ जाओगे। उनसे लड़ना भी मत। क्योंकि लड़े, तो तुम भी एक हिस्सा हो जाओगे उस भीड़ में उपद्रव का। उपद्रव और बढ़ जाएगा। उनको रोकने की भी कोशिश मत करना, क्योंकि रोकने से उनसे छुटकारा नहीं है। और फिर जिसे हम रोकते हैं, उसकी छाती पर हमें बैठे रहना पड़ता है, उससे आगे नहीं जा सकते। उनके साथ कुछ करना ही मत। तटस्थ भाव से!

बुद्ध ने कहा है, उपेक्षा से भीतर की तरफ चलना।
वह चल रहा है शोरगुल, चलने देना। जैसे एक बाजार से तुम गुजर रहे हो, तो ठीक है, बाजार है। तुम उसकी चिंता नहीं ले रहे हो। ऐसे ही तुम इस भीतर के बाजार से भी गुजरते वक्त परेशान मत होना। एक उपेक्षा का भाव रखना कि ठीक है, बाजार है। अब तक यही इकट्ठा किया है, वह है। तुम चुपचाप साक्षीभाव से भीतर की तरफ चलना और गहरे खोजना।
"और अधिक गहरे ढूंढ़ो। यदि फिर भी तुम निष्फल रहो, तो ठहरो और भी अधिक गहरे ढूंढ़ो।"
डरना मत, क्योंकि निश्चित ही स्रोत है। वह स्रोत अनेकों ने पाया है और तुम भी पा सकते हो। वह जिन्होंने पाया है, उनकी गवाही है कि पाया जा सकता है। वह तुम्हारे भीतर है, पर्त दर पर्त दबा है। बहुत पर्तें हो सकती हैं। लेकिन घबड़ाना मत और उसकी खोज जारी रखना। और कितना ही उपद्रव भीतर मालूम पड़े, तुम शांत बैठ कर उस उपद्रव को देखते रहना।
श्री अरविंद जब पहली दफा साधना में उतरे, तो उनके गुरु ने उन्हें कहा
कि विचार तुम्हारे भीतर चलेंगे बहुत, तुम एक छोटा सा काम ही करना, कि तुम विचारों को मक्खियां समझ लेना, कि मक्खियां तुम्हारे सिर के आसपास मंडरा रही हैं। और तुम उनकी फिक्र न करना, उनको शोरगुल मचाने देना। तुम समझना कि तुम बीच में खड़े हो और मक्खियां गूंज रही हैं चारों तरफ। श्री अरविंद तीन दिन तक वैसी अवस्था में बैठे रहे। पहले तो वे बहुत घबड़ाए, क्योंकि मक्खियां थोड़ी न थीं। एक-एक विचार अगर एक-एक मक्खी था, तो करोड़ों मक्खियां भिनभिनाने लगीं। पर संकल्प के व्यक्ति थे। उन्होंने कहा कि अगर मक्खियां ही मानना है, तो फिर चिंता क्या करनी है, बैठे रहना है। बैठे रहे, बैठे रहे; मक्खियां भिनभिनाती रहीं, न तो उनसे लड़े, न उनको भगाया, न हटाया। धीरे-धीरे उन्होंने पाया, घंटों के बीतने के बाद, मक्खियों की भीड़ कम होती जा रही है। तब भरोसा बढ़ा कि सिर्फ बैठने से भीड़ कम हो रही है, तो और बैठने से और भी कम हो जाएगी। तो फिर प्रसन्नता भी आ गई, आस्था भी आ गई, आशा भी आ गई, आत्मविश्वास भी बढ़ा। फिर वे बैठे ही रहे, फिर उन्होंने सोचा कि अब उठना उचित नहीं, क्योंकि उठने पर हो सकता है कि फिर इतनी भीड़ से गुजरना पड़े। तो बैठे ही रहो। तो वे तीन दिन तक बिना खाए-पीए बैठे ही रहे। उन्होंने तय कर लिया कि जब तक आखिरी मक्खी न चली जाए, तब तक मैं बैठा ही रहूंगा। तीन दिन में आखिरी मक्खी भी चली गई। कोई विचार न रहा।
उस क्षण में सुना जाता है जीवन-संगीत, उस क्षण में भीतर का स्रोत प्रकट हो जाता है। जब आप होते हैं निर्विचार, तब संबंध हो जाता है हृदय के संगीत से। जब तक विचार से भरे हैं, तब तक कोलाहल रहेगा। पर यह कोलाहल, बहुत कठिन नहीं है इसको पार करना। सिर्फ उपेक्षा और इस कोलाहल में न उलझने की दृष्टि, और धीरे-धीरे अपने को शिथिल छोड़ते जाना भर जरूरी है।
अभी पश्चिम में उन्होंने फीड-बैक मशीनें बनाई हैं। सस्ती मशीनें हैं, बड़े काम की हैं। बहुत छोटी सी मशीनें हैं, कोई हजार रुपए की होंगी। आपके माथे पर दोनों तरफ जहां विचार की चोट पड़ती है और आपके मस्तिष्क के स्नायु कंपते हैं, वहां तार लगा दिए जाते हैं। ऊपर से तार चिपका दिए जाते हैं और मशीन के सामने आपको बिठा दिया जाता है और मशीन को आन कर दिया जाता है। मशीन तत्क्षण, उसका कांटा घूमने लगता है तेजी से। जितनी तेजी से आपके विचार घूम रहे हैं, मशीन का कांटा घूमने लगता है। और आपसे कहा जाता है कि आप शांत होते जाएं, शिथिल होते जाएं। आप सामने देखते हैं कि कांटा, जैसे आप शिथिल होते हैं, कम हो जाता है। उससे भरोसा बढ़ता है। जब आप और शांत होते हैं तो कांटा और धीमा हो जाता है। और जब आप ठीक एक शांति की अवस्था में आते हैं, जिसको वे अल्फा कहते हैं, तब मशीन पीप पीप पीप की आवाज करने लगती है। जैसे ही मशीन पीप पीप पीप की आवाज करती है, आपको पक्का भरोसा आ जाता है कि विचार शांत हो गए, और मैं अल्फा-वेव में आ गया, जहां ध्यान और गहरी नींद घटित होती है। उस क्षण आप अपने भीतर देखें तो एक भी विचार नहीं होता। बाहर मशीन खबर देती है, भीतर एक भी विचार नहीं होता। अगर आप और शांत होते चले जाएं, तो अल्फा से भी गहरे उतर जाते हैं, तब मशीन दूसरी तरह की आवाज देती है।

जो काम आप सालों में कर पाते हैं, वह इस मशीन पर बैठ कर तीन या सात दिन में हो जाता है। क्योंकि आप कुछ भी करते हैं, ध्यान करते हैं, कुछ भी करते हैं, तो आपको पता तो चलता नहीं कि भीतर हो क्या रहा है! पता चल जाए तो बड़ी सुविधा हो जाती है। क्योंकि आपको भरोसा आता है कि कोई गति हो रही है, कोई फर्क पड़ रहा है। इसको वे फीड-बैक कहते हैं, क्योंकि वह मशीन आपको सहायता देती है। वह फीड करती है आपको, वह खबर देती है कि हां, अब आप शांत हो रहे हैं। तो भीतर का तो आपको पता नहीं चलता, लेकिन मशीन से पता चलता है कि आप शांत हो रहे हैं। यह ख्याल कि मैं शांत हो रहा हूं, सजेशन बन जाता है, सुझाव बन जाता है। अगर मैं शांत हो रहा हूं तो आप और शांत हो जाते हैं। जब आप और शांत होते हैं, मशीन और भी खबर देती है। और इस तरह मशीन और आपके बीच एक संवाद निर्मित हो जाता है। अगर आप कुछ न करें, सिर्फ बैठ कर अपने को शिथिल छोड़ दें, तो पांच-सात मिनिट में एक दो-तीन दिन के प्रयोग में आप अल्फा-वेव को उपलब्ध कर लेते हैं।
यह जो भीतर का जगत है, इस भीतर के जगत में विचारों को शिथिल छोड़ना और विचारों से अपने को शांति से अलग हटा लेना--यही एकमात्र प्रयोग है, सारे धर्मों, सारी व्यवस्थाओं, सारे योग, सारे तंत्रों में। एक ही महत्वपूर्ण बात है कि किसी तरह भीतर के कोलाहल की पर्त को पार करके आप उस जगह पहुंच जाएं, जहां भीतर शांति का झरना है। वह झरना आपके भीतर है। वह उतना ही आपके भीतर है, जितना बुद्ध के भीतर है, उससे रत्ती भर भी कम नहीं है। उस झरने से संपर्क स्थापित करने की बात है।
"फिर भी तुम निष्फल रहो तो ठहरो और भी अधिक गहरे में फिर ढूंढ़ो। एक प्राकृतिक संगीत, एक गुप्त जल-स्रोत प्रत्येक मानव हृदय में है। वह भले ही ढंका हो, बिल्कुल छिपा हो, और नीरव जान पड़ता हो--किंतु वह है अवश्य। तुम्हारे स्वभाव के मूल में तुम्हें श्रद्धा, आशा और प्रेम की प्राप्ति होगी।"
और जिस दिन तुम इस स्रोत से संबंधित हो जाओगे, तुम्हारा जीवन श्रद्धा, आशा और प्रेम से भर जाएगा। वह लक्षण होगा।
लोगों से कहा जाता है, श्रद्धा करो। वे श्रद्धा कर भी कैसे सकते हैं? भरोसा लाओ। वे भरोसा ला भी कैसे सकते हैं? विश्वास करो। वे विश्वास कर कैसे सकते हैं? क्योंकि भरोसा, विश्वास या श्रद्धा, जब तक भीतर के आनंद, शांत-संगीत से संबंध न हो जाए, तब तक पैदा नहीं होते। वह भीतर के संगीत से संबंधित होने के बाह्य परिणाम हैं। तो चेष्टा करके लोग झूठी श्रद्धा ले आते हैं, जबर्दस्ती विश्वास कर लेते हैं। मान लेते हैं कि जब इतना कहा जाता है कि मानो, तो ठीक है, मान लेते हैं। लेकिन तब एक नुकसान होता है। तब वे असली श्रद्धा से वंचित रह जाते हैं। नकली, झूठी श्रद्धा उनके हाथ में रह जाती है। और वे सोचते हैं कि यही श्रद्धा है।
हम सबके हाथ में ऐसी श्रद्धा है। बचपन से सिखाया जा रहा है कि विश्वास करो, विश्वास करो, तो हम विश्वास कर रहे हैं। फिर अविश्वास करने में अड़चन भी है। सुविधापूर्ण भी, कनविनियेंट भी यही है कि विश्वास करो, क्योंकि चारों तरफ विश्वास करने वाले लोगों का समूह है। लेकिन झूठा विश्वास है, इससे भीतर की आस्था तक हम पहुंच ही नहीं पाते।
भीतर की आस्था तक जाना हो तो ध्यान के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। जानकारी, शिक्षा, कुछ भी सहायता न पहुंचा सकेगी, जब तक कि तुम्हें भीतर का स्वाद न आने लगे। इस स्वाद के आते ही तीन घटनाएं घटेंगी। तुम्हारे जीवन में श्रद्धा आ जाएगी।
श्रद्धा का अर्थ किसी के प्रति श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा का अर्थ है, भरोसा करने की वृत्ति। ऐसा नहीं है कि तुम अपने गुरु के प्रति श्रद्धा रखोगे, कि महावीर के प्रति श्रद्धा रखोगे। क्योंकि मैं देखता हूं, जो महावीर के प्रति श्रद्धा रखता है, वह मोहम्मद के प्रति नहीं रखता। यह श्रद्धा झूठी है। श्रद्धा किसके प्रति, यह सवाल नहीं है। तुम्हारे भीतर श्रद्धा का एक सहज भाव होगा। तुम्हारी सहज वृत्ति यही होगी कि तुम भरोसा करोगे। किसका, यह सवाल नहीं है। तुम्हारा पहला लक्षण भरोसा करना होगा। अभी क्या है? तुम्हारा पहला लक्षण अविश्वास करना है।

अगर एक नया आदमी तुम्हारे घर में आता है, अजनबी है, तुम पहले उसको ऐसे
ही देखते हो--कोई चोर तो नहीं है? कोई बदमाश तो नहीं है? सामान सम्हाल कर रखो! कुछ ले तो नहीं जाएगा? या कुछ दान लेने तो नहीं आया है? कोई पैसा तो नहीं मांगेगा? क्या करेगा? पहले तुम... फिर तुम उसके कपड़े-लत्ते देखते हो कि उसकी हालत कैसी है। क्योंकि हालत खबर देगी। पहली तुम्हारी जो दृष्टि है किसी के भी प्रति, वह अविश्वास की है। तुम भरोसा भी अगर लाते हो, तो बहुत तुम अविश्वास करके जब देख लेते हो कि नहीं, अविश्वास सफल नहीं हो रहा है, यह आदमी न तो चोरी कर रहा है, न ले कर भाग रहा है, न कुछ कर रहा है, तब तुम लाते हो।
तुम्हारा भरोसा जो है, वह तुम्हारा सहज भाव नहीं है, तुम्हारे तर्क की निष्पत्ति है। तुम्हारा सहज भाव अविश्वास है। पहली बात जो पैदा होती है, वह अविश्वास की है। अगर रात में तुम देखते हो कि कोई आदमी घर में चला आ रहा है अंधेरे में, तो तुम एकदम चिल्ला देते हो, चोर! और कोई उपाय ही नहीं है, वह तुम्हारी सहज वाणी है। अंधेरे में किसी छायाओं को देख कर, पहला ख्याल यही आता है कि दुश्मन है। मित्र, ऐसा ख्याल नहीं आता!
जो मैं कह रहा हूं, वह यह कह रहा हूं कि हमारा सहज भाव बिना किसी तर्क
के अविश्वास का है। यह कोलाहल से भरे चित्त का लक्षण है। वह डरा हुआ है। जिंदगी में सब जगह उसे शत्रुता दिखाई पड़ती है, सब जगह कोई न कोई कुछ छीनने को उत्सुक है। कोई न कोई कुछ न कुछ लेने को उत्सुक है। सब चोर हैं, सब बेईमान हैं। और सब तरफ लूट मची हुई है। और बस उसके ऊपर ही सारी दुनिया की नजर है।
जैसे ही कोई व्यक्ति अपने भीतर के संगीत से संबंधित होता है, इसके विपरीत सहज भरोसा आ जाता है। तब चोर भी आपके घर में घुस आए तो आपको पहला ख्याल यह नहीं आता कि वह चोर है। पहला यह ख्याल आना बहुत बुरा है--भला वह चोर ही क्यों न हो--लेकिन यह पहला ख्याल आना बहुत बुरा है। भला यह सही ही क्यों न हो आपका ख्याल कि वह चोर है। और वह चोर ही क्यों न साबित हो, लेकिन चोर जितना नुकसान पहुंचा सकता है, उससे ज्यादा नुकसान इस ख्याल से पहुंच रहा है। क्योंकि ऐसा व्यक्ति धार्मिक नहीं हो पाएगा। और ऐसा व्यक्ति परमात्मा से वंचित रह जाएगा। वह बचा लेगा थोड़ी-बहुत चीजें, चोर वगैरह से बच जाएगा, बेईमान से बच जाएगा, जेब सम्हाल कर रखेगा। लेकिन जो वह बचा रहा है, वह दो कौड़ी का है। और वह जो खो रहा है, वह अनंत है।
अगर भरोसा किया तो क्या खो जाएगा? आपके पास है क्या जो खो जाएगा? क्या लुट जाएगा? और वह आदमी जिसको हजार बार धोखा दिया जाए और फिर भी एक हजार एक बार मौका आए, तो भरोसा कर ले, वह आदमी संत है। उसके संतत्व का कारण यह है कि उसकी भरोसे की वृत्ति सहज है। कितना ही अनुभव विपरीत हो, वह उस वृत्ति को नहीं छोड़ेगा।
मैंने सुना है, उमा स्वाति ने कहीं लिखा है, कि एक साधु नदी में स्नान करने को उतरा था। देखा उसने कि एक बिच्छू गिर पड़ा है। तो उसने उसे हाथ पर उठा कर किनारे के बाहर रखना चाहा। उस बिच्छू ने एक डंक मारा। डंक मारने से वह हाथ से बिच्छू छूट गया, फिर पानी में गिर गया। तो उस साधु ने उसे फिर उठाया। तो पास किनारे खड़े एक मछुए ने कहा कि आप पागल तो नहीं हैं? वह बिच्छू डंक मार रहा है और अभी उसने डंक मारा है, और फिर पानी में से तुम उसे उठा रहे हो! तो उस साधु ने कहा, बिच्छू अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, मुझे भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिए। मैं बचाना चाहता हूं, पर बिच्छू बेचारा डरा हुआ है, डर के मारे वह समझ रहा है कि पता नहीं मैं उसकी हत्या कर रहा हूं या क्या कर रहा हूं, इसलिए डंक मार रहा है। लेकिन क्या तुम सोचते हो कि मैं बिच्छू से हार जाऊं, और बिच्छू जीत जाए? मैं उसे उठाऊंगा। और मैं यह कोशिश करूंगा कि ऐसा वक्त आए कि बिच्छू भी समझ जाए कि उठाने वाला मुझे हत्या करने के लिए नहीं उठा रहा है, तभी मैं रुकूंगा। बिच्छू से मैं हार नहीं सकता।
इसे हम थोड़ा समझें। बिच्छू काट कर भी क्या करेगा? थोड़ी पीड़ा देगा। लेकिन अगर यह साधु बिच्छू से नहीं हारा, तो इसे जो आनंद उपलब्ध होगा, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

यह सूत्र कह रहा है कि तुम्हारे स्वभाव के मूल में तुम्हें श्रद्धा, आशा और प्रेम की प्राप्ति होगी।
श्रद्धा सहज भाव हो जाएगी। किस पर, यह सवाल नहीं है, तुम श्रद्धालु हो जाओगे। वह चोर हो कि साधु, कि महात्मा हो कि और कोई, इससे कोई सवाल नहीं है। अपना हो कि पराया, तुम्हारा सहज भाव श्रद्धा का होगा। यह श्रद्धालु का लक्षण है।
इसलिए जिन श्रद्धालुओं को तुम देखते हो कि मंदिर के सामने माथा झुका रहे हैं और मस्जिद के सामने अकड़ कर चल रहे हैं, वे श्रद्धालु वगैरह नहीं हैं। श्रद्धालु तो सब जगह झुका होगा। कि मस्जिद को तो बचा रहे हैं और मंदिर को जला रहे हैं! वे श्रद्धालु नहीं हैं। कि कुरान को तो सिर पर रखे हुए है और गीता को लात मार रहा है! वह श्रद्धालु नहीं है। यह श्रद्धा झूठी है। और यह श्रद्धा खतरनाक है, जहरीली है।
श्रद्धालु का तो अर्थ यह है कि कुछ भी हो चारों तरफ, वह उसमें से कुछ खोज लेगा, जिसमें श्रद्धा की जा सकती है। वह खोज ही लेगा अपनी श्रद्धा के योग्य। वह उसकी सहज खोज है।
"आशा और प्रेम... ।"
जिस व्यक्ति को भीतर के संगीत का स्वर सुनाई पड़ जाएगा, उसके जीवन से निराशा समाप्त हो जाएगी। और आशा का मतलब आप यह मत समझना कि वह सोचेगा कि कल मुझे यह मिलने वाला है, परसों मुझे यह मिलने वाला है। नहीं, वह आशा तो वासना की आशा है। उसे तो हम बहुत पीछे छोड़ आए सूत्रों में। साधक उसे बहुत पीछे छोड़ आया।
आशा का अर्थ यह है अब कि जीवन में जहां भी वह देखेगा, उसे आशा का पहलू दिखाई पड़ेगा। अगर रात अंधेरी होगी, तो उसे दिखाई पड़ेगा कि सुबह बहुत करीब है। अगर आकाश में काले बादल घिरे होंगे, तो वह कहेगा कि आज की बिजली की चमक बड़ी शानदार होगी। कि दुख आएगा, तो वह कहेगा कि सुख की प्रतीक्षा करो, सुख जरूर करीब ही होगा। उसे कितना ही दुख दिया जाए, वह उसमें से सुख खोज लेगा। और उसे कितना ही परेशान किया जाए, उस परेशानी में से वह शिक्षा निकाल लेगा। उसके जीवन में कुछ भी घटित हो, उसे निराश न किया जा सकेगा। तो वह हर तरफ से आशा का बिंदु खोज लेगा। वह जो शुभ्र बिंदु है, वह हर जगह खोज लेगा। वह हर जगह मौजूद है।
निराश आदमी हर जगह अंधेरे को खोज लेता है। कुछ भी करो, निराश आदमी से पूछो, तो वह कहता है कि दुनिया बड़ी बुरी है। दो रातें होती हैं, तब कहीं एक छोटा सा दिन होता है।
इस तरह का आदमी कहेगा, दुनिया बड़ी अदभुत है, दो उजाले दिन होते हैं, तब कहीं बीच में छोटी सी रात होती है। और रात-दिन बराबर होते हैं, बाकी देखने का कोण है।
निराश आदमी गुलाब के फूल के पास जा कर कांटों की गिनती करेगा। और जब
वह देख लेगा कि हजार कांटे हैं, तो वह कहेगा कि यह एक जो फूल है, झूठ है। जहां इतने कांटे हैं, वहां फूल हो सकता है? जिस पौधे में ऐसे जहरीले कांटे निकल रहे हैं कि जान ले लें, उसमें यह फूल हो सकता है? यह फूल प्रलोभन है, ताकि कांटों में फंस जाओ। यह फूल झूठ है। और फिर वह कहेगा कि फूल सुबह खिलता है और सांझ गिर जाता है, और कांटे सदा रहते हैं। सत्य है कांटा। यह फूल तो माया है, सपना है; इसमें मत उलझना, इससे बचना।
आशा वाला व्यक्ति भी गुलाब के फूल के पास जाएगा, तो फूल उसे पहले पकड़ लेगा। वह फूल में इतना डूब जाएगा कि अगर कोई उसे याद भी दिलाएगा कि यहां कांटे हैं, तो वह कहेगा कि जहां इतना अदभुत फूल खिला है, वहां कांटे कैसे हो सकते हैं? और अगर कांटे हैं तो जरूर फूल की रक्षा के लिए होंगे। और अगर कांटे हैं तो जरूर उनका कोई अर्थ होगा। क्योंकि जहां ऐसा सुंदर फूल खिल रहा है जिस पौधे में, उस पौधे में कांटे दुश्मन की तरह नहीं लग सकते, वे मित्र की तरह ही लगेंगे।
और जो फूल के रस में ठीक से डूब जाएगा, उसके लिए कांटों में भी फूल दिखाई पड़ने लगेंगे। और जो कांटों के जहर में ठीक से डूब जाएगा, उसे फूल के

रस में भी जहर दिखाई पड़ने लगेगा। तब दुनिया वैसी ही हो जाती है, जैसा हम देखते हैं।
आशा का अर्थ है, जीवन का वह जो शुभ्र पहलू है, वह उसे दिखाई पड़ेगा।
"और प्रेम की प्राप्ति होगी।"
प्रेम का अर्थ नहीं कि वह किसी एक व्यक्ति को प्रेम करने लगेगा। प्रेम का अर्थ है इस घड़ी में, कि प्रेम उसकी सहज अवस्था होगी। वह प्रेम करेगा! और जो भी तैयार हैं, जो भी खुले हैं, वे उसके प्रेम के पाने के पात्र हो जाएंगे। उसका प्रेम कोई मोह नहीं होगा। उसका प्रेम कोई आसक्ति नहीं होगी। उसके प्रेम से कोई बंधन निर्मित नहीं होगा। उसका प्रेम एक सहज दान होगा। उसके भीतर जो शांति और आनंद घटा है, वह बांटेगा। प्रेम का कृत्य होगा कि वह अपनी शांति और आनंद को बांटता रहे। हमारे लिए प्रेम एक संबंध है, उसके लिए प्रेम एक अवस्था होगी। ऐसा नहीं है कि वह प्रेम करेगा आपको, वह प्रेमपूर्ण होगा।
दोनों में फर्क है। आप किसी को प्रेम करते हैं, तो प्रेम आपके लिए एक संबंध है, लेकिन आप प्रेमपूर्ण नहीं हैं। बुद्ध या महावीर किसी को प्रेम नहीं करते, लेकिन प्रेमपूर्ण हैं। इसका यह मतलब भी नहीं है कि सभी को उनका प्रेम बराबर मिलेगा। वे तो सभी को बराबर देते हैं, लेकिन जो जितना ले सकेगा, उतना ही पाएगा। और जो उनके पास दुश्मन की तरह खड़ा हो जाएगा, वह वंचित रह जाएगा। जो उनके पास पूरा हृदय का पात्र खोल देगा, वह पूरा भर जाएगा।
सबको अलग-अलग मिलेगा। लेकिन महावीर की तरफ से बराबर दिया जा रहा है। दिया जा रहा है, यह कहना ठीक नहीं है। यह ऐसे ही है, जैसे कि दीया जलता है तो उससे प्रकाश गिरता है। आप उसके पास से निकलेंगे, अगर आंखें खुली होंगी, तो आपको दिखाई पड़ेगा। आंखें बंद होंगी तो नहीं दिखाई पड़ेगा। प्रकाश आपके लिए गिर भी नहीं रहा है। प्रकाश तो गिर रहा है। आप निकले, आपकी आंखें खुली हैं, तो उपलब्ध हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में प्रेम एक अवस्था होगी। "जो पाप-पथ को ग्रहण करता है, वह अपने अंतरंग में देखना अस्वीकार कर देता है, अपने कान हृदय के संगीत के प्रति मूंद लेता है और अपनी आंखों को अपनी आत्मा के प्रकाश के प्रति अंधा कर लेता है। उसे अपनी वासनाओं में लिप्त रहना सरल जान पड़ता है, इसी से वह ऐसा करता है।"
पाप-पथ का एक ही अर्थ है, कि तुम अपनी तरफ, अपने भीतर न जा कर, बाहर की तरफ, किसी और की तरफ जा रहे हो। पाप का एक ही अर्थ है कि तुम्हारी अंतर्यात्रा बंद हो रही है और बहिर्यात्रा शुरू हो रही है। सभी बहिर्यात्रा पाप है। उसका नाम चाहे धार्मिक भी दे दो, तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता है। लेकिन जब भी तुम अपने से दूर जा रहे हो, तब तुम पाप-पथ पर हो। और जब तुम अपने करीब आ रहे हो, तो तुम पुण्य-पथ पर हो। और जो व्यक्ति अपने से दूर जाना चाहता है, उसे अपने भीतर की आवाज के प्रति बहरा हो जाना जरूरी है। क्योंकि वह आवाज भीतर खींचेगी। जो अपने से दूर जाना चाहता है, उसे भीतर के प्रति अंधा हो जाना जरूरी है। क्योंकि वह भीतर का दृश्य, आंखों को भीतर बुलाएगा!
तो हम धीरे-धीरे भीतर की तरफ बिल्कुल समाप्त हो जाते हैं, ताकि हम बाहर सुविधा से जा सकें, दूर जा सकें, कोई हमें रोके न। फिर जितने हम दूर चले जाते हैं, उतना ही कोलाहल, उतना ही उपद्रव हमारे चारों तरफ इकट्ठा हो जाता है। और फिर जब हम पीड़ित और परेशान हो कर भीतर लौटना चाहते हैं, तो पहले हमें इसी बाजार से लौटना पड़ता है जो हमने ही निर्मित किया है। पर अगर कोई हिम्मत रखे, साहस रखे, तो इस भीड़ के पार जाया जाता है। क्योंकि यह भीड़ बहुत कमजोर है, वह भीतर का स्वर बहुत बलशाली है। बस एक बार संबंध स्थापित हो जाए, तो अनंत के स्रोत के हम मालिक हो जाते हैं।
"परंतु समस्त जीवन के नीचे एक वेगवती धारा बह रही है, जिसे रोका नहीं
जा सकता। सचमुच गहरा पानी वहां मौजूद है, उसे ढूंढ़ निकालो। इतना जान लो कि तुम्हारे अंदर निःसंदेह वह वाणी मौजूद है। उसे वहां ढूंढ़ो और जब एक बार उसे सुन लोगे, तो अधिक सरलता से तुम उसे अपने आसपास के लोगों में पहचान सकोगे।"

काश, वह तुम्हें सुनाई पड़ जाए, तो फिर वह तुम्हें अपने आसपास सभी में सुनाई पड़ने लगेगी। जितने गहरे तुम अपने भीतर जाओगे, उतने ही गहरे तुम दूसरों के भीतर भी देख सकोगे। जिस दिन तुम अपने केंद्र को पहचान लोगे, उस दिन लोग भी तुम्हारे लिए, शरीर न हो कर आत्माएं हो जाएंगे। क्योंकि उनका केंद्र भी तुम्हारे लिए पारदर्शी हो जाएगा।
एक बात याद रखनी चाहिए, आप अपने भीतर जितने गहरे होते हैं, उतने ही गहरे आप दूसरे के भीतर देख सकते हैं। अगर आप अपने भीतर बिल्कुल नहीं हैं, उथले हैं, तो उतना ही उथला आप दूसरे के भीतर देख पाते हैं।
इसलिए कई बार ऐसा हो जाता है कि आप बुद्ध और कृष्ण के करीब से भी गुजर जाते हैं और नहीं पहचान पाते हैं। क्योंकि आप जितना अपने भीतर देख सकते हैं, उतना ही उनके भीतर भी देख सकते हैं। आप उथले हैं तो आप उनकी गहराई में नहीं झांक सकते। आपको उथला ही ख्याल आता है, आप उथली ही बातें इकट्ठी कर लेते हैं और सोचते हैं कि आपने जान लिया, पहचान लिया!
और जब मैं यह कहता हूं कि आप बुद्ध के करीब से निकलते हैं, तो मैं ऐसे
ही नहीं कह रहा हूं, आप निकले भी हैं। क्योंकि आप जमीन पर रहे ही होंगे। कोई न कोई बुद्ध, कोई न कोई क्राइस्ट, कोई न कोई महावीर, कोई न कोई राम, कोई न कोई कृष्ण, आपके रास्ते पर पड़ा ही होगा। कितने जन्मों में कितने रास्तों से आप गुजरे हैं, लेकिन आप उसको पहचान नहीं पाए! आप पहचान लेते तो शायद आज आप होते भी नहीं। या आप ऐसे न होते, जैसे दुख और पीड़ा से भरे आप हैं।
नहीं पहचानने का कारण यह है कि आप सदा अपनी ही गहराई के अनुपात में देख पाते हैं। जो आपको अपने भीतर नहीं दिखाई पड़ता, वह आपको किसी के भीतर दिखाई नहीं पड़ सकता। अगर आपको चारों तरफ बुरे लोग दिखाई पड़ते हैं, गलत लोग दिखाई पड़ते हैं, अंधकार दिखाई पड़ता है, तो एक बात निश्चित है कि आपने अपने भीतर प्रकाश नहीं देखा। एक बात निश्चित है कि आपने अपने भीतर दिव्यता नहीं देखी। एक बात निश्चित है कि भीतर का संगीत अभी सुनने में नहीं आया।

साधना-सूत्र
बारहवां प्रवचन

स्वर-बद्धता का पाठ

5. सुने गये स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।

जब तक तुम केवल मानव हो,
तब तक उस महा-गीत के कुछ अंश ही तुम्हारे कानों तक पहुंचते हैं। परंतु यदि तुम ध्यान देकर सुनते हो,
तो उन्हें ठीक-ठीक स्मरण रखो;
जिससे कि जो कुछ तुम तक पहुंचा है, वह खो न जाए।
और उससे उस रहस्य का आशय समझने का प्रयत्न करो,
जो रहस्य तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है।
एक समय आएगा,
जब तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता न होगी।
क्योंकि जिस प्रकार व्यक्ति को वाणी की शक्ति है,
उसी प्रकार उस सर्वव्यापी अस्तित्व में भी यह शक्ति है, जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व है।

6. और उन स्वर-लहरियों से स्वर-बद्धता का पाठ सीखो।

जीवन की अपनी भाषा है और वह कभी मूक नहीं रहता,
और उसकी वाणी एक चीत्कार नहीं है,
जैसा कि तुम जो बहरे हो, कदाचित समझो।
वह तो एक गीत है।
उससे सीखो कि तुम स्वयं उस सुस्वरता (हार्मनी) के अंश हो,
और उससे सुस्वरता के नियमों का पालन करना सीखो।

जीवन में सबसे अधिक सीखने योग्य यदि कुछ है, तो संगीत का बोध है, संगीत
का भाव है। संगीत का अर्थ है कि जीवन का अंतिम रहस्य स्वरों की भीड़-भाड़ नहीं है, न ही एक अराजकता है, न ही एक अव्यवस्था है; वरन सभी स्वर मिल कर एक ही तरंग, एक ही लय, एक ही इंगित, एक ही इशारा कर रहे हैं। जीवन के परम-केंद्र पर सभी संयुक्त है, सुव्यवस्थित है। और जो अव्यवस्था दिखाई पड़ती है, वह हमारे अंधेपन के कारण है। और जो स्वरों का उपद्रव दिखाई पड़ता है, जो तनाव दिखाई पड़ता है, वह भी हमारे बहरे होने के कारण है। क्योंकि हम ठीक से नहीं सुन पाते, इसलिए हम स्वरों के बीच में बहती हुई जो समस्वरता है, उसका अनुभव नहीं कर पाते हैं।
हमें स्वर तो सुनाई पड़ जाते हैं, लेकिन एक स्वर को दूसरे स्वर से जोड़ने वाला जो बीच का सेतु है--संगीत--वह हमें सुनाई नहीं पड़ता है। जैसे- जैसे सुनने की सामर्थ्य बढ़ेगी, वैसे-वैसे स्वर खोते जाएंगे और संगीत उभरने लगेगा। एक ऐसा क्षण भी आता है, जब स्वर खो जाते हैं, शून्य हो जाते हैं; सब लहरें खो जाती हैं और केवल संगीत का सागर रह जाता है, केवल संगीत की प्रतीति रह जाती है।
संगीत का अर्थ है, स्वरों के बीच जो प्रेम का संबंध है, एक स्वर दूसरे स्वर से जिस मार्ग से जुड़ा है, एक स्वर दूसरे स्वर में जिस भांति खो जाता है और लीन हो जाता है। यह जो दो स्वरों के बीच में अंतराल है, वह अंतराल खाली नहीं है। वह अंतराल भी भरा हुआ है। चाहे वह अंतराल सन्नाटे से ही भरा हो, चाहे वह अंतराल शून्य से ही भरा हो, लेकिन वह अंतराल भरा हुआ है। उस अंतराल को अनुभव करने का नाम जीवन के संगीत को अनुभव करना है।
सुना होगा कि सत्य शब्दों में नहीं कहा जा सकता। लेकिन शब्दों के बीच में जो खाली जगह होती है, वहां प्रकट होता है। और सुना होगा कि रिक्तता तोड़ती नहीं, जोड़ती है। और यह भी सुना होगा कि शून्यता भी मात्र शून्यता नहीं है, शून्यता भी एक अपूर्व संगीत से भरी है। लेकिन शून्यता को सुनने

की, सन्नाटे को सुनने की सामर्थ्य हमारे पास नहीं है। जीवन का संगीत अंतरालों में है। अंतराल हमें दिखाई नहीं पड़ते। बीच में खाई-खड्डे मालूम पड़ते हैं। एक स्वर सुनाई पड़ता है, फिर दूसरा स्वर सुनाई पड़ता है, लेकिन बीच में कोई सेतु नहीं दिखाई पड़ता। इससे अराजकता अनुभव होती है।
हम यहां इतने लोग बैठे हैं। एक व्यक्ति दिखाई पड़ता है, फिर दूसरा व्यक्ति दिखाई पड़ता है, दोनों के बीच में जो जोड़ है, वह दिखाई नहीं पड़ता। इसलिए सभी व्यक्ति अलग-अलग मालूम पड़ते हैं। अगर बीच का जोड़ दिखाई पड़ जाए, तो व्यक्ति यहां खो जाएं, जीवन की एक सरिता रह जाए। जैसे मैं देखता हूं कि आप महत्वपूर्ण कम हैं, आपके पड़ोस में बैठा हुआ व्यक्ति भी कम महत्वपूर्ण है, लेकिन दोनों के बीच जो जीवन बह रहा है, वही ज्यादा महत्वपूर्ण है। क्योंकि उसी जीवन के कारण आप भी जीवित हैं और आपका पड़ोसी भी जीवित है। लेकिन वह जीवन अदृश्य है। आप दिखाई पड़ते हैं एक छोर पर, पड़ोसी दिखाई पड़ता है दूसरे छोर पर; बीच में जो जीवन की तरंग है, वह दिखाई नहीं पड़ती।
दृश्य को ही जो देखता है, उसे जीवन में अराजकता दिखाई पड़ेगी। क्योंकि सभी दृश्य अदृश्य से जुड़े हैं। जो दिखाई पड़ता है, वह तो छोर है; जो नहीं दिखाई पड़ता--बीच की जो तरंग, बीच की जो लहर--वही वास्तविक अस्तित्व है। उस अदृश्य को अनुभव करना ही जीवन के संगीत को अनुभव करना है।
संगीत का अर्थ ठीक से ख्याल में ले लेंगे। अंतराल को जो भरे हुए है, रिक्त को भी जो पूर्ण किए हुए है, शून्य में भी जो पूर्ण की तरह मौजूद है। जो दिखाई नहीं पड़ता, और है। लेकिन अनुभव किया जा सकता है। जैसे-जैसे हम भीतर ज्यादा संवेदनशील होते जाएं, वैसे-वैसे अनुभव होने लगेगा। और तब व्यक्ति न दिखाई पड़ेंगे, उनको जोड़ने वाला परमात्मा दिखाई पड़ेगा। तब एक वृक्ष नहीं दिखाई पड़ेगा, दूसरा वृक्ष नहीं दिखाई पड़ेगा, बल्कि दोनों वृक्षों में जो जीवन एक सा बह रहा है--भीतर भी और दोनों वृक्षों के बाहर भी--वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा।

जिस दिन वह दिखाई पड़ने लगता है, उस दिन यह जगत एक की ही अभिव्यक्ति है। इसलिए इन सूत्रों में संगीत पर बड़ा जोर दिया गया है। क्योंकि संगीत को जो अनुभव कर लेगा--स्वरों को नहीं, स्वरों को जोड़ने वाली तरंगों को, अदृश्य तरंगों को, स्वरों के बीच में बहने वाली लयबद्धता को जो अनुभव कर लेगा--वह ब्रह्म को अनुभव कर लेगा। क्योंकि ब्रह्म वही है, जो सबको जोड़े हुए है और दिखाई नहीं पड़ता।
निश्चित ही, जो दिखाई पड़ता है, वह मिटेगा। जो दिखाई पड़ता है, वह खो जाएगा। जो नहीं दिखाई पड़ता है, वह नहीं मिटेगा। उसके मिटने का कोई उपाय नहीं है। लहरों की तरह हम उठते हैं और दिखाई पड़ते हैं। और फिर लहरें गिर जाती हैं और खो जाती हैं। और जो सागर कभी दिखाई नहीं पड़ता... । आप हैरान होंगे, आप कहेंगे, सागर दिखाई पड़ता है। लेकिन मैं आपसे कहता हूं, सागर कभी दिखाई नहीं पड़ता। जब दिखाई पड़ती हैं, लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। सागर को आपने नहीं देखा। जब दिखाई पड़ती हैं, लहरें ही दिखाई पड़ती हैं। क्योंकि सागर की सतह दिखाई पड़ती है। सतह तो सदा लहरों से भरी है। सागर को आप कभी देख नहीं पाते हैं। देखते उन लहरों को ही हैं, सागर तो अनुमान है आपका। लहरें दिखती हैं, उठती हैं, गिरती हैं। लेकिन जिस सागर में उठती हैं, जिस सागर से उठती हैं, और जिस सागर में खो जाती हैं, वह है संगीत। लहरें तो स्वर हैं। पर स्वर सुनाई पड़ते हैं और संगीत सुनाई नहीं पड़ता है! लहरें दिखाई पड़ती हैं, सागर दिखाई नहीं पड़ता!
और बहुत मजे की बात है कि लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं। और स्वर बिना संगीत के नहीं हो सकते। सागर बिना लहरों के हो भी सकता है, लेकिन लहरें बिना सागर के नहीं हो सकतीं। संगीत बिना स्वरों के भी हो सकता है, लेकिन स्वर बिना संगीत के नहीं हो सकते। फिर भी संगीत सुनाई नहीं पड़ता, सागर दिखाई नहीं पड़ता! लहरें दिखाई पड़ती हैं, स्वर सुनाई पड़ते हैं!
वह जो निरव्यक्ति है, वह जो ब्रह्म है, वह जो जीवन का परम गुह्य विस्तार है, वह अनुभव में नहीं आता; व्यक्ति अनुभव में आते हैं। व्यक्ति की सीमा है, इसलिए दिखाई पड़ जाता है। लहर छोटी है, दिखाई पड़ जाती है। सागर

बड़ा है, आंखें छोटी हैं, दिखाई नहीं पड़ता। स्वर छोटा है, चोट पड़ती है, सुनाई पड़ जाता है। संगीत सागर का विराट है, उसकी चोट भी नहीं पड़ती। वह अनुभव में नहीं आता। लेकिन अगर हम भीतर चलना शुरू करें, तो जैसे-जैसे हम भीतर सरकेंगे, वैसे-वैसे वह संगीत हमें सुनाई पड़ेगा।
लेकिन क्यों? भीतर सरकने से क्यों सुनाई पड़ेगा?
लहर की बात को थोड़ा और ख्याल में ले लें। अगर एक लहर भी उठ कर देखे, लहर
के पास आंखें हों--और कोई कठिनाई नहीं कि लहर के पास आंखें हों, क्योंकि हम भी लहर हैं और हमारे पास आंखें हैं--अगर लहर के पास बुद्धि हो और लहर अपने चारों तरफ देखे, तो उसे लहरें ही लहरें दिखाई पड़ेंगी, सागर दिखाई नहीं पड़ेगा। और लहर को यह भी दिखाई पड़ेगा कि सभी लहरें मुझसे भिन्न हैं। निश्चित ही, कोई लहर बड़ी हो रही है, कोई छोटी हो रही है, कोई गिर रही है, कोई बन रही है। तो यह मेरी लहर कैसे मान सकती है कि मैं लहरों के साथ एक हूं। क्योंकि कोई लहर मेरे सामने ही मिट रही है, और मैं नहीं मिट रहा हूं। अगर हम एक होते तो मिट जाते साथ-साथ। कोई लहर उठ रही है, मुझसे बड़ी हो रही है। तो हम एक नहीं हो सकते। क्योंकि अगर हम एक होते, तो मैं भी उसके साथ बड़ा हो जाता। तो निश्चित ही, लहर अगर देखें चारों तरफ, तो एक बात--सागर दिखाई नहीं पड़ेगा। क्योंकि तरंगें छाती पर भरी हैं सागर के। और दूसरी बात--लहर को सब लहरें अपने से भिन्न मालूम पड़ेंगी। और तीसरी बात--लहर को सारी लहरें उसकी दुश्मन हैं, उसको मिटाने को उत्सुक हैं, हटाने को उत्सुक हैं, ऐसा भी प्रतीत होगा।
संघर्ष, प्रतियोगिता, स्पर्धा--यही हमारे साथ हो रहा है। लेकिन अगर लहर भीतर की तरफ मुड़ सके, बाहर से आंख बंद कर ले और भीतर की तरफ मुड़े, तो क्या मिलेगा? अगर लहर भीतर की तरफ मुड़े तो जैसे ही भीतर की तरफ जाएगी, वैसे ही सागर में उतरने लगेगी। क्योंकि लहर के भीतर तो सागर ही है, लहर के नीचे सागर ही है।
लहर अगर अपने से बाहर देखे तो लहरें दिखाई पड़ती हैं, अगर भीतर देखे तो सागर अनुभव में आएगा। और भीतर देख कर फिर सारी स्थिति बदल जाएगी। अगर सागर अनुभव में आए तो लहर हंसेगी कि वह जो लहरें दिखाई पड़ रही थीं, वह वास्तविक न थीं। उनके भीतर भी वही सागर है। अब तो लहर अपने भीतर से दूसरी लहरों के भीतर भी प्रवेश करके देख सकती है। क्योंकि नीचे एक ही सागर है, कहीं कोई बाधा नहीं है, कहीं कोई दीवाल नहीं है, कहीं जाने में कोई अड़चन नहीं है। जो अपने भीतर जाता है, वह किसी के भी भीतर प्रवेश कर सकता है। क्योंकि उसे वह रास्ता मिल गया है नीचे का, अंतर-गर्भ का, जहां से हम एक हैं।
इसलिए जब आप बुद्ध या महावीर जैसे व्यक्ति के पास जाते हैं, तो आपको पता नहीं चलता, आपको लगता है कि वे आपको ऊपर से ही देख रहे हैं। लेकिन उनके पास एक भीतर का रास्ता भी है, जहां से वे आपको भीतर से देख रहे हैं। जहां से वे आपको उस भांति देख रहे हैं, जैसे आपने भी अपने को नहीं देखा।
इसीलिए इतना जोर है परंपराओं में, कि गुरु के प्रति पूरा समर्पण कर देना ही मार्ग बन सकता है। क्योंकि आप अपने संबंध में जो नहीं जानते, वह भी आपके संबंध में जान सकता है, जानता है। जो आप अपने संबंध में बताते हैं, वह दो कौड़ी का है। जो आप अपना परिचय देते हैं, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है। क्योंकि आपकी पहचान क्या है?
आपने अपनी ही लहर की ऊपर की परत को देखा है। और यह भी हो सकता है कि वह
जो आपको कहे, आपकी समझ में न आए। क्योंकि वह आपको गहरे से देख रहा है, वहां से देख रहा है जहां से आपका अभी तक कोई संबंध, कोई संपर्क स्थापित नहीं हुआ है।
पूर्ण समर्पण का अर्थ यह है कि आप अपने परिचय को, जो आप जानते हैं, छोड़ते हैं। और आप उस मार्ग से अब परिचित होने को राजी हैं, जो गुरु जानता है और आप नहीं जानते हैं। अगर कोई लहर अपने भीतर चली जाए, तो वह दूसरी लहरों के भीतर भी चली गई। तो उसे अनुभव होगा कि लहर होना अवास्तविक है, सागर होना वास्तविक है। उसे अनुभव होगा कि दूसरी लहरें मुझसे भिन्न नहीं हैं, कितनी ही भिन्न दिखाई पड़ती हों, हम एक ही सागर का खेल हैं।

और तीसरी बात उसे दिखाई पड़ेगी कि लहर की तरह तो मैं मिट जाऊंगी, लेकिन सागर की तरह मेरे मिटने का कोई उपाय नहीं है। अमृत का यही अनुभव है। और अगर ज्ञानियों ने कहा है कि आत्मा नहीं मरती, तो आप यह मत समझना कि आप नहीं मरते। आप तो मरेंगे ही। आप पैदा हुए हैं और आप मरेंगे--आत्मा नहीं मरती। आत्मा का अर्थ है, आपके भीतर जो सागर है, वह नहीं मरता है। आपके भीतर जो लहर है, वह तो मरती ही है।
लेकिन अभी तो आप लहर को ही समझते हैं अपना होना। इसलिए बड़ी भ्रांति होती है। लोग पढ़ लेते हैं कि आत्मा नहीं मरती, तो वे सोचते हैं कि मैं नहीं मरूंगा। आप तो मरेंगे ही! आपके बचने का तो कोई उपाय ही नहीं है। लेकिन जब मैं कहता हूं कि आप मरेंगे ही, तो मैं यही कह रहा हूं कि जिसको आप अभी समझते हैं कि आप हैं, वह मरेगा। लेकिन आपके भीतर एक ऐसा केंद्र भी है, जिसको आप पहचानते ही नहीं कि आप हैं, वह नहीं मरेगा।
लहर की भांति मृत्यु निश्चित है, सागर की तरह अमृत निश्चित है।
अब हम इन सूत्रों में प्रवेश करें।
पांचवां सूत्र, "सुने गए स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।
जब तक तुम केवल मानव हो, तब तक उस महा-गीत के कुछ अंश ही तुम्हारे कानों तक पहुंचते हैं। परंतु यदि तुम उन्हें ध्यान दे कर सुनते हो, तो उन्हें ठीक-ठीक स्मरण रखो, जिससे कि जो कुछ तुम तक पहुंचा है, वह खो न जाए। और उससे उस रहस्य का आशय समझने का प्रयत्न करो, जो रहस्य तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है। एक समय आएगा, जब तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता न होगी। क्योंकि जिस प्रकार व्यक्ति को वाणी की शक्ति है, उसी प्रकार उस सर्वव्यापी में भी यह शक्ति है, जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व है।"
"सुने गए स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।"
निश्चित ही उस महा-संगीत को पूरा नहीं सुना जा सकता आज। अभी जैसे तुम हो, वहां से उस पूरे संगीत को नहीं सुना जा सकता। उस पूरे संगीत को सुनने के लिए तो तुम्हें भी धीरे-धीरे भीतर लयबद्ध होना पड़ेगा, क्योंकि समान ही समान का अनुभव कर सकता है।
इस महा-सूत्र को सदा याद रखो, कि समान ही समान का अनुभव कर सकता है।
अगर तुम उस महा-संगीत को सुनना चाहते हो, तो तुम्हें खुद भी संगीतपूर्ण हो जाना पड़ेगा। अगर तुम उस महा-प्रकाश को देखना चाहते हो, तो तुम्हें प्रकाश-पूर्ण हो जाना पड़ेगा। अगर तुम्हें उस अमृत का अनुभव करना है, तो तुम्हें मृत्यु के भय के पार हो जाना होगा।
तुम जिसको जानना चाहते हो, उसके जैसा ही तुम्हें होना पड़ेगा। क्योंकि समान को ही जाना जा सकता है, असमान को जानने का कोई उपाय नहीं।
इसलिए पुराने अनुभवियों ने कहा है कि आंख तुम्हारे भीतर सूरज का ही हिस्सा है, इसीलिए प्रकाश को देख पाती है। कान तुम्हारे भीतर ध्वनि का ही हिस्सा है, इसीलिए सुन पाता है। कामवासना तुम्हारे भीतर पृथ्वी का ही हिस्सा है, इसलिए नीचे की ओर तुम्हें खींचती है। ध्यान तुम्हारे भीतर परमात्मा का ही अंश है, इसलिए परमात्मा की तरफ ले जाता है।
ध्यान रखना, जो जिससे जुड़ा है, उसी का यात्रा-पथ बन जाता है। तो अगर तुम उस महा-संगीत को सुनना चाहते हो, वैसे ही जैसे तुम हो, तो न सुन पाओगे। क्योंकि तुम इतने असंगीत से भरे हो, तुम्हारी जिंदगी इतनी स्वर-माधुर्य से हीन है। तुम्हारे भीतर उपद्रव तो बहुत है, लयबद्धता जरा भी नहीं है। तुम्हारे उठने में, बैठने में, चलने में, जीने में, सोचने में, एक भीड़-भाड़, शोरगुल है। जैसे कि तुम एक बाजार की सड़क हो, जिस पर न मालूम क्या-क्या चल रहा है; जिसके बीच कोई व्यवस्था नहीं है, अराजकता है। इस अराजक स्थिति से अगर तुम चाहो कि तुम उस महा-संगीत को सुन लोगे, तो असंभव है।
पर अगर तुम था.ेड़ी चेष्टा करो, तो उसके खंड सुनाई पड़ सकते हैं। क्योंकि तुम चाहे कितनी ही अराजकता में होओ, तुम जीवित हो। यही इस बात की खबर है कि कुछ न कुछ लय तुम्हारे भीतर भी होगी, अन्यथा जी नहीं सकते हो; तुम टूट जाते, बिखर जाते। अगर सच में ही तुम्हारी भीड़ इतनी बड़ी हो गई हो कि तुम्हारे भीतर उस भीड़ को जोड़ने वाला कोई भी न बचा हो, तो तुम खंड-खंड हो कर

गिर जाओगे। तुम उस मकान की तरह गिर जाओगे, जिसकी ईंटों के बीच का सब जोड़ खो गया है। तुम भूमिसात हो जाओगे।
लेकिन तुम जीवित हो, मिट नहीं गए हो, भूमिसात नहीं हुए हो। इसलिए चाहे कितना ही उपद्रव तुम्हारे भीतर हो, और कितना ही स्वरों के बीच तनाव हो, और कितना ही स्वरों के बीच संघर्ष हो, कहीं न कहीं, कोई न कोई चीज तुम्हें जोड़ती होगी। अन्यथा तुम हो कैसे सकते हो? कोई न कोई चीज तुम्हें बांधे होगी। कहीं न कहीं, कुछ न कुछ संगीत तुम्हारे इस उपद्रव में भी मौजूद है। चाहे कभी उसकी झलक मिलती हो।
किसी दिन सुबह सूरज को उगते देख कर तुम्हें शांति की लहर दौड़ जाती हो।
या किसी दिन रात आकाश में तारे भरे हों और तुम जमीन पर लेटे उन्हें देख रहे हो, अचानक सब मौन हो जाता हो। या किसी के प्रेम के क्षण में, या किसी संगीत को सुन कर, या किसी नर्तक को नाचते देख कर तुम्हारे भीतर भी कुछ नृत्य बन जाता हो। कहीं कोई क्षणों में तुम्हें भी एक झलक संगीत की मिलती है। उस झलक को ही तुम कभी सुख कहते हो, उसी झलक को तुम कभी शांति कहते हो, उसी झलक को कभी तुम रस कहते हो। तुमने बहुत नाम दिए हैं।
लेकिन वह झलक इसी बात की है कि बाहर की कोई घटना की उपस्थिति में भीतर तुम बंध जाते हो। तुम्हारा उपद्रव एक क्षण को खो जाता है, और तुम्हारे भीतर स्वर एक क्षण को मिल जाते हैं। लहरें एक क्षण को सागर हो जाती हैं। और तुम्हारे भीतर जैसे एक द्वार खुल जाता है। क्षण भर को ही सही, एक झलक मिलती है, और जगत दूसरा हो जाता है। यह संभावना है। खंड ही तुम्हें अनुभव में आएगा। बहुत दूर की ध्वनि तुम्हें सुनाई पड़ेगी।
इसलिए यह सूत्र कहता है पांचवां, "सुने गए स्वर-माधुर्य को अपनी स्मृति में अंकित करो।"
तुम्हारे जीवन में जो भी ऐसी घटनाएं घटी हों, जब तुमने रस का, संगीत का, लय का अनुभव किया हो, तो उनको अपनी स्मृति में संजोओ, उनको खो मत जाने दो।
ईसाइयों का एक पुराना संप्रदाय था--ईसेन, जिसमें जीसस को दीक्षा मिली थी। ईसेन संप्रदाय का एक ध्यान-मार्ग था। और वह ध्यान-मार्ग यह था, कि तुम्हारे जीवन में अगर कभी भी कोई ऐसा क्षण घटा हो, जिस क्षण में विचार न रहे हों और तुम आनंद से भर गए हो, तो उसी क्षण को पुनः-पुनः स्मरण करके, उसी पर ध्यान करो। वह क्षण कोई भी रहा हो, उसी को बार-बार स्मरण करके उस पर ही ध्यान करो, क्योंकि उस क्षण में तुम अपनी श्रेष्ठतम ऊंचाई पर थे, जहां तक तुम अब तक जा सके हो। उसी को खोदो, उसी जगह मेहनत करो।
सभी के जीवन में ऐसा कोई क्षण है। उसी की आशा में आदमी जीए चला जाता है
कि शायद वह क्षण फिर आए। इसी भरोसे में जीए चला जाता है कि शायद वह क्षण और गहरा हो जाए। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जिसके जीवन में एकाध ऐसी स्मृति न हो। कभी-कभी तो बहुत क्षुद्र कारणों में वैसी घटना घट जाती है। कभी तुम जा रहे हो, सूरज की किरणें तुम्हारे सिर पर पड़ रही हैं, अचानक तुम पाते हो कि तुम शांत हो। तुमने कुछ किया नहीं है, आकस्मिक, तुम उस जगह आ गए हो, जहां ट्यूनिंग हो गई।
कभी बहुत साधारण सी घटनाओं में, कि तुम अपने बिस्तर पर पड़े हो, सुबह तुम्हारी आंख खुली और अचानक तुम पहचान भी नहीं पाते हो कि तुम कौन हो? वह जो आदमी रात सोया था--उपद्रव, परेशानी, चिंता से भरा--वह नहीं है। एक क्षण को तुम्हें यह भी समझ में नहीं आता कि तुम कहां हो? तुम एकदम शांत हो। तुम इतने शांत हो कि खुद की पहचान भी भूल गई है। कभी किन्हीं भी कारणों में-- उनका कोई संबंध नहीं है। तुम्हारे भीतर जिंदगी चलती रहती है। कभी तुम्हारे अनजाने भी तुम्हारे भीतर के खंड-खंड इकट्ठे पड़ जाते हैं-- संयोगवश। और तब कोई भी घड़ी बाहर मौजूद हो, तुम अचानक शांत हो जाते हो।
इन स्मृतियों को संजोओ। फिर अगर तुम ध्यान कर रहे हो, तो ऐसी स्मृतियां बढ़ती चली जाएंगी। इन स्मृतियों को इकट्ठा करो। इनको हृदय के कोने में इकट्ठा करते जाओ, ताकि वे गहरी हो जाएं। और सारी स्मृतियां जितनी तुम्हारे जीवन में इस आनंद की घटी हों, जब तुमने संगीत जाना हो, उन सबको पास ले आओ, उनको एकाग्र कर दो एक बिंदु पर, ताकि उन सबके सहारे तुम आगे बढ़

सको। अभी तुम्हें खंड-खंड मिलेंगे, तुम इन्हें इकट्ठे करते जाना। कभी ये खंड इकट्ठे होते जाएंगे, तो और बड़े खंडों के मिलने की संभावना बढ़ती जाएगी। ऐसे धीरे-धीरे एक-एक ईंट रख कर वह भवन खड़ा होगा, जिस दिन तुम उस महा-संगीत को सुन सकोगे, जिसे जीवन का संगीत कहा जा रहा है।
लेकिन आदमी बहुत उलटा है। हम दुख की स्मृति संजोते हैं! हम दुख में बड़ा रस लेते हैं। हम बार-बार दुख की चर्चा करते हैं। लोगों की बातें सुनो, वह अपना दुख रोते रहते हैं। सुख कोई भी नहीं हंसता, दुख लोग रोते हैं! तो यह भाषा में शब्द ही नहीं कि फलां आदमी सुख हंस रहा है। भाषा में शब्द यह है कि फलां आदमी दुख रो रहा है। लोग अपना दुख एक-दूसरे को बताते रहते हैं, जैसे कि दुख कुछ बताने जैसा है, जैसे कि दुख कुछ बड़ी घटना है! कोई आपने महान कार्य किया है कि आप दुखी हैं!
लेकिन क्यों आदमी दुख की इतनी चर्चा करता है? और उसे पता नहीं कि वह अपना आत्मघात कर रहा है। क्योंकि दुख की चर्चा से दुख घना हो जाता है। दुख की चर्चा से दुख इकट्ठा हो जाता है। दुख की चर्चा से दुख पर ध्यान बंट जाता है, ध्यान बंध जाता है। दुख की चर्चा से दुख घनीभूत होता है और नए दुखों को पैदा करता है। क्योंकि तुम जो संजोते हो, उसी को जानने में समर्थ होते चले जाते हो।
सुख की कोई बात ही नहीं करता! सुख को हम छोड़ कर ही चलते हैं! वैसे सुख
है भी कम। लेकिन उसके कम होने का एक कारण यह भी है कि हम सुख को इकट्ठा नहीं करते हैं। हम दुख को इकट्ठा करते हैं।
पर क्यों? आदमी दुख की चर्चा क्यों करता है?
उसके कारण हैं। क्योंकि जब भी कोई आदमी दुख की चर्चा करता है, तो उसका अर्थ केवल इतना ही है कि वह दूसरे की सहानुभूति चाहता है, दूसरे का प्रेम चाहता है। और सुख की चर्चा इसलिए नहीं करता कि सुख से कोई सहानुभूति नहीं करता। और सुखी आदमी से लोग ईर्ष्या करते हैं, प्रेम नहीं करते। इस भय से कि दूसरे ईर्ष्या करेंगे, इस भय से कि कोई सहानुभूति न देगा, आदमी दुख की चर्चा करता है। आदमी सहानुभूति का प्यासा है, प्रेम का प्यासा है।
लेकिन ध्यान रहे, दुख सुन कर जो सहानुभूति की जाती है, वह प्रेम नहीं है। और दुख सुन कर जो दया प्रकट की जाती है, वह आपकी दीनता की स्वीकृति है। लेकिन इस भांति आप और दीन होते चले जाएंगे। और अगर आपने एक ही रस बना लिया है अपने जीवन का, सहानुभूति पाना, तो फिर आप झूठे दुखों की भी कल्पना कर लेंगे, जो कभी नहीं घटे। और धीरे-धीरे उनके घटने का रास्ता बना देंगे। ध्यान रहे, अपने दुख की चर्चा मत करो। उससे क्या प्रयोजन है?
सुख की चर्चा के लिए नहीं कह रहा हूं, लेकिन अपने सुख को प्रकट करो। दुख को एकांत में विसर्जित कर दो। द्वार-दरवाजे बंद कर लो, हृदयपूर्वक रो लो, चीख लो, चिल्ला लो; लेकिन दूसरे के पास जा कर दुख की चर्चा मत करो। क्योंकि न तो तुम दूसरे के सुख में सहयोगी हो रहे हो, तुम उसे भी दुखी कर रहे हो। इसलिए दुख की चर्चा करने वाले पर हम सहानुभूति कितनी ही बताएं, लेकिन उस आदमी से हम बचना चाहते हैं। वह न मिले तो अच्छा है। क्योंकि वह अपने दुख की तरंगें हम तक भी पहुंचा देता है। और अगर हम उसकी दुख की चर्चा सुनते भी हैं, तो इसी आशय में कि वह चुप हो जाए, तो हम अपने दुख की चर्चा उसको सुनाएं। ऐसा दुख का लेन-देन चलता रहता है।
दुख की बात ही बंद कर दो। दुख तुम्हारा निजी है, उसे तुम निज में ही भोग लो। दबाने को नहीं कह रहा हूं, उसे प्रकट तो जरूर करो; लेकिन शून्य-आकाश में, जहां वह किसी की भी छाती पर बोझ नहीं बनेगा। और दुख बता कर सहानुभूति मत मांगो। यह भिखमंगापन है। अकेले में छोड़ दो, दुख को विसर्जित कर दो।
और जब भी कोई तुम्हारे पास हो, तो तुम्हारे भीतर जो सुख की स्मृति है, उसको ऊपर ले आओ। जब भी तुम किसी के पास हो, तो तुम्हारे सुख को प्रकट करो, अपने सुख को नाचो और हंसो, और अपने सुख को जीओ, ताकि तुम दूसरे के दुख को थोड़ा कम कर पाओ। और तुम जितना इस सुख को जीने लगोगे, उतना ही सुख बढ़ता जाएगा। और जितना तुम इस सुख की स्मृति करोगे, उतनी ही ज्यादा गहन सुख में तुम्हारी गति होने लगेगी।

हम जिस पर ध्यान देते हैं, वह बढ़ता जाता है। ध्यान बढ़ोत्तरी का मार्ग है।
अभी वनस्पति-शास्त्री कहते हैं कि अगर पौधे पर आप ठीक से ध्यान दें,
तो वह जल्दी बढ़ता है--पौधा भी। इसलिए माली बगीचे में जिस पौधे को ज्यादा प्रेम करता है, वह जल्दी बढ़ता है। जिस पर वह ज्यादा ध्यान देता है, वह जल्दी बढ़ता है, उसमें जल्दी फूल आते हैं।
अब तो इस पर बहुत वैज्ञानिक प्रयोग हुए हैं। सिर्फ ध्यान देने से! जिस पौधे को कोई ध्यान नहीं देता, उसको मिट्टी दो, खाद दो, पानी दो, सूरज दो, सब दो; सिर्फ ध्यान मत दो, उपेक्षा दो; उसकी बढ़ती रुकती है!
वैज्ञानिक अब कहते हैं कि बच्चा मां के पास जो बढ़ता है गति से, उसका कारण है मां का ध्यान। वह चाहे दूर हो, चाहे वह दूसरे कमरे में हो, लेकिन ध्यान उसका बच्चे की तरफ लगा है। वह चाहे सैकड़ों मील दूर चली गई हो, वह हजार काम में उलझी हो, लेकिन भीतर उसके ध्यान अपने बच्चे में लगा है। रात वह सो रही है, तो भी ध्यान उसका बच्चे में लगा है। आकाश में बादल गरजते रहें, तो भी उसकी नींद नहीं टूटती; लेकिन बच्चा जरा सा कुनमुना दे, और उसकी नींद टूट जाती है! उसका ध्यान बच्चे में लगा है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि बच्चे की बढ़ती में मां का दूध जितना जरूरी है, उससे भी ज्यादा जरूरी उसका ध्यान है। इसलिए अनाथालय में भी बच्चे बड़े होते हैं; दूध उनको शायद मां के दूध से भी अच्छा मिल सकता है, वह कोई अड़चन की बात नहीं है; सेवा उनको प्रशिक्षित नर्सों की मिल सकती है; मां उतनी अच्छी सेवा नहीं कर सकती, क्योंकि उसका कोई प्रशिक्षण नहीं है; उनको वस्त्र, दवा, सारा इंतजाम अच्छा मिलता है; लेकिन न मालूम क्या है कि उनके भीतर बढ़ती नहीं होती मालूम पड़ती है। सब सूखा-सूखा लगता है। कोई एक चीज कमी हो रही है। ध्यान नहीं मिल रहा है।
हम प्रेम के लिए इतने आतुर होते हैं। तुम्हें पता नहीं होगा कि क्यों? क्योंकि प्रेम के बिना ध्यान नहीं मिलता। प्रेम की तलाश वस्तुतः ध्यान की तलाश है। कोई तुम पर ध्यान दे, तो तुम्हारे भीतर जीवन का फूल खिलता है, बढ़ता है। कोई ध्यान न दे, कुम्हला जाता है। इसलिए प्रेम की प्यास कि कोई प्रेम करे, वस्तुतः प्रेम की नहीं है। कोई ध्यान दे, कोई तुम्हारी तरफ देखे, कोई तुम्हारी तरफ देख कर प्रसन्न हो, आनंदित हो, तो तुम बढ़ते हो। मगर कभी-कभी यह रुग्ण रूप ले लेता है। रुग्ण रूप हर चीज के होते हैं। प्रेम की खोज तो स्वस्थ है, लेकिन कोई आदमी फिर यह भी कोशिश करता है कि किसी भी भांति ध्यान मिले, तो खतरा हो जाता है। तुम अगर जोर से रोओ-चिल्लाओ, तो लोगों का ध्यान तुम्हारी तरफ आएगा। बच्चा सीख जाता है, मां अगर उसे ठीक से प्रेम नहीं करती। जिस बच्चे को मां ठीक से प्रेम करती है, वह रोता, चीखता, चिल्लाता नहीं है। लेकिन जिसकी मां ठीक से प्रेम नहीं करती, बच्चा ज्यादा रोता, चीखता, चिल्लाता है। क्योंकि अब वह एक तरकीब सीख रहा है कि जब वह चिल्लाता है, तो मां ध्यान देती है; सामान पटक देता है, तो मां ध्यान देती है; कोई चीज तोड़ देता है, तो मां ध्यान देती है।
कभी आपने ख्याल किया कि आपके घर में मेहमान आ जाएं, तो बच्चे ज्यादा चीजें पटकते हैं, ज्यादा उपद्रव मचाते हैं? वे मेहमानों का ध्यान खींच रहे हैं। वैसे शांत बैठे थे। और आप चाहते हैं कि जब मेहमान आएं तब वे शांत रहें। वे कैसे शांत रहें? घर में और लोग आए हों, उनका ध्यान... । और मेहमान आपसे ही बातें कर रहे हैं और बच्चे की तरफ कोई ध्यान नहीं दे रहे हैं, तो बच्चा पच्चीस उपद्रव खड़े करेगा कि आप भी ध्यान दो, मेहमान भी ध्यान दें। अनजाने चल रहा है। लेकिन ध्यान बढ़ोत्तरी का हिस्सा है। वह बढ़ेगा, जितना ज्यादा ध्यान दिया जाएगा।
फिर लोग बीमार हो जाते हैं। जैसे एक राजनीतिज्ञ है, वह भी और कुछ नहीं मांग रहा है। पद पर हो कर मिलेगा क्या उसको? हजार तरह की गालियां मिलेंगी, हजार तरह का अपमान मिलेगा, हजार तरह की निंदा मिलेगी, और कुछ मिलने वाला नहीं है। लेकिन एक बात है, कि जब वह पद पर होगा, कुर्सी पर होगा, तो ध्यान मिलेगा, चारों तरफ से लोग देखेंगे।

पद की खोज ध्यान की खोज है, लेकिन रुग्ण। क्योंकि यह जो ध्यान है, इस तरह मांगना, जबर्दस्ती मांगना है, हिंसात्मक है। जैसे बच्चा चीज तोड़ कर ध्यान मांग रहा है, ऐसे ही राजनीतिक भी हिंसात्मक हो कर ध्यान मांग रहा है।
इसलिए आप देखें, अगर कभी इस मुल्क में युद्ध हो जाए, तो युद्ध के समय में जो मुल्क का बड़ा नेता है, वह महा नेता हो जाता है। क्योंकि युद्ध के समय में जितना ध्यान आपको नेता पर देना पड़ता है, शांति के समय में नहीं देना पड़ता है। इसलिए राजनीतिशास्त्र कहता है कि अगर किसी को महान नेता होना हो, तो पद पर होते वक्त युद्ध होना ही चाहिए। नहीं तो नहीं होता। हिंदुस्तान-पाकिस्तान का युद्ध हो गया बंगलादेश को ले कर, तो इंदिरा
को आप कहने लगे कि महाकाली है। वह आपने कभी नहीं कहा होता। नेता खो जाते हैं, अगर युद्ध उनके जीवन में न घटे। और अगर युद्ध में वे हार जाएं, तो फिर ध्यान उनको बिल्कुल नहीं मिलता। अगर युद्ध में जीत जाएं, तो फिर पूरा ध्यान मिलता है। इसलिए नेता बड़ी कोशिश में होता है कि किसी तरह जीत का सेहरा उसके सिर पर बंध जाए, तो सारा मुल्क, सारी दुनिया ध्यान देती है। मगर यह रुग्ण है। क्योंकि यह ध्यान प्रेम से नहीं मिल रहा है, यह ध्यान सृजनात्मकता से नहीं मिल रहा है। यह ध्यान मिल रहा है विध्वंस से, हिंसा से, घृणा से। मगर ये वे ही बच्चे हैं, जिन्होंने घर में बर्तन तोड़ कर ध्यान आकर्षित किया होगा। अब वे एम.एल.ए., एम.पी., मिनिस्टर हो कर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। ये वे ही बच्चे हैं, जिनको मां का प्रेम नहीं मिला। अगर मां का प्रेम मिला हो तो आदमी हिंसात्मक ढंग से ध्यान आकर्षित नहीं करता। तब सृजनात्मक ढंग से... तब वह आनंदित होता है। और अगर आनंद को ध्यान मिल जाए तो ठीक है, तब वह रोता-चिल्लाता नहीं है।
यह जो ध्यान की तलाश है, यह आप दुख के साथ मत जोड़ना, नहीं तो आप और दुखी होते चले जाएंगे। या दूसरे को दुख दे कर भी ध्यान मत मांगना आप, क्योंकि तब आप और दुखी होते चले जाएंगे।
आप अपने जीवन के सुख-क्षणों को इकट्ठा करना, उनकी स्मृति संजोना। ध्यान के प्रयोग में जब भी आपको कोई अनुभव मिले--कोई ताजी हवा आपके भीतर से गुजर जाए, कोई सूरज की किरण कौंध जाए, कोई फूल खिल जाएं भीतर, कोई सुगंध भर जाए, कोई संगीत का एक टुकड़ा आपको सुनाई पड़ जाए--उसे इकट्ठा करते जाना, हृदय के गहन में उसे संजोते जाना। और उसको ज्यादा से ज्यादा जीने की कोशिश करना। उसे ज्यादा से ज्यादा पुकारना। उसे ज्यादा से ज्यादा अनुभव में उतारना। जब भी मौका मिले, एकांत क्षण मिले, आंख बंद कर लेना, उसी क्षण में लौट जाना, उसे पुनः जीना। तो आप उसको बढ़ा रहे हैं, और आप उसको जीवन और ध्यान दे रहे हैं। आप धीरे-धीरे पाएंगे, और बड़े खंड आने लगे, और बड़े टुकड़े उतरने लगे, और चीजें साफ होने लगीं, संगीत का बोध और प्रगाढ़ होने लगा।
"जब तक तुम केवल मानव हो, तब तक उस महा-गीत के कुछ अंश ही तुम्हारे कानों तक पहुंचते हैं। परंतु यदि तुम ध्यान दे कर सुनते हो, तो उन्हें ठीक-ठीक स्मरण रखो; जिससे कि जो कुछ तुम तक पहुंचा है, वह खो न जाए। और उससे उस रहस्य का आशय समझने का प्रयत्न करो, जो रहस्य तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है।"
जो भी श्रेष्ठतम मिलता है, वह खोया जा सकता है। जब तक कि पूर्ण की उपलब्धि नहीं होती, तब तक कुछ भी पाया हुआ, खोया जा सकता है।
इसे ध्यान रखना। ऐसा मत सोच लेना कि जो पा लिया है, वह खोएगा नहीं। जब
तक पूर्ण न मिल जाए, तब तक तो तुम्हें लापरवाही नहीं करनी है, तब तक तो जो थोड़ा-बहुत मिलता है, उसे बचाने की कोशिश करना। क्योंकि दुख तुम्हारे पास बहुत है, सुख का कण कभी मिलता है। अगर तुमने लापरवाही की, तो इस दुख में वह कहीं भी खो जाएगा। तुम्हारे घर में कूड़ा-कर्कट इतना है, कि अगर तुम्हें एक हीरे का टुकड़ा भी मिल जाए, तो तुम उसे अपने घर के ही कूड़े-कर्कट में खो सकते हो। कहीं बाहर जा कर खोने की कोई जरूरत नहीं है। वह तुम्हारे घर की धूल में कहीं भी दब सकता है। वह इतना छोटा है और कभी मिलता है। और तुमने घर में इतना कचरा इकट्ठा किया है कि उस कचरे में ही वह दबा पड़ा रह जाएगा।

तो अपने हृदय के एक कोने को साफ कर लो और वहां केवल सुख को संजोओ! जब तक
कि पूर्ण की उपलब्धि नहीं होती। पूर्ण की उपलब्धि पर तो तुम्हारा गर्द, तुम्हारा कचरा सब खो जाता है। फिर तो कोई डर नहीं है, फिर खोने का कोई डर नहीं है। आखिरी सीमा तक से भी गिरना हो सकता है। एक क्षण पहले भी परम-अनुभूति के, भटकना हो सकता है। उसके हो जाने के बाद फिर कोई डर नहीं है। क्योंकि जहां तुम खो सकते हो, वह तुम्हारे पास काफी सामान है। जिसमें तुम खो सकते हो, वह तुम्हारे पास बहुत है। तो एक हृदय का कोना बिल्कुल साफ-सुथरा कर लो। जैसे घर में कोई एक मंदिर बना लेता है, तो उस मंदिर में सोता नहीं है, उस मंदिर में लड़ने-झगड़ने नहीं जाता और उस मंदिर में खाना नहीं खाता। उस मंदिर में सिर्फ प्रार्थना को जाता है, पूजा को जाता है। घर कितना ही अपवित्र हो, उस छोटे से कोने को पवित्र रखता है।
ऐसे ही हृदय के एक कोने में एक मंदिर बना लो, वहां सिर्फ तुम्हारे जीवन में जो सुख की कभी-कभी प्रतीतियां आती हैं, उन्हें इकट्ठी करते जाओ। और कभी जब तुम्हारे पास मौका हो तो आंख बंद कर लो और उस कोने में सरक जाओ।
पुनः जीयो, उन्हीं स्मृतियों को फिर लौटा लो। कोई प्रेम का क्षण, कोई आनंद का क्षण, कोई ध्यान का क्षण, उनको पुनः-पुनः जीओ। पुनः जीने का अर्थ सिर्फ स्मृति नहीं है। पुनः जीने का अर्थ है पुनः जीना। दोनों में फर्क है। समझो, अपने बचपन की तुम याद करते हो। तुम याद करते हो कि बचपन सुखद था।
या तुम्हें कोई ख्याल है कि एक दिन सुबह बगीचे में तुम गए, वृक्ष मौन थे, सन्नाटा था, वृक्षों के किनारे से सूरज की किरणें भीतर प्रवेश कर रही थीं, और एक तितली को तुमने उड़ते देखा और तुम उसके पीछे दौड़ने लगे थे। वह तुम्हें आज भी याद है। तुम इसे दो तरह से याद कर सकते हो। एक--बौद्धिक स्मृति की तरह विवरण दे सकते हो कि ऐसा-ऐसा हुआ अपने सामने। दूसरा रास्ता यह है कि आंख बंद कर लो और पुनः बच्चे हो जाओ। स्मरण करो कि तुम फिर उन वृक्षों की छाया में खड़े हो, जहां तुम बीस साल, पचास साल पहले खड़े थे। स्मरण करो कि धूप की किरणें तुम्हें छू रही हैं, तुम पुनः एक बच्चे हो गए हो। तुम भूल जाओ बीच के यह पचास वर्ष, हटा दो, तुम पुनः बच्चे हो जाओ। रि- लिव, पुनः जीयो; स्मरण भर मत करो। स्मरण तो ऊपर से है, बाहर से है। तुम पचास साल के हो, तो पचास साल के रह कर स्मरण करते हो।
पुनः जीने का अर्थ है कि तुम फिर पांच-छह साल के हो गए। अब तुम भूल ही
गए कि बीच के पैंतालीस साल गुजरे। तुम पांच साल के बच्चे हो, वही क्षण फिर मौजूद है। धूप उतर रही है वृक्षों के किनारे से, एक तितली उड़ रही है, तुमने उसके पीछे दौड़ना शुरू कर दिया है। तुम दौड़ो। तुम घड़ी भर पांच साल के बच्चे हो जाओ। जब तुम वापस लौटोगे, तुम पाओगे तुम ताजगी ले कर वापस लौटे। इस पचास साल की उम्र में पुनः तुम अगर पांच साल के बच्चे हो सकते हो, तो तुमने पचास साल की उम्र को भी एक नई ताजगी और नए जीवन से भर दिया। जब तुम आंख खोलोगे, तो तुम पाओगे तुम्हारे पास आंखें हैं, जो पांच साल के बच्चे के पास हैं, निर्दोष। क्षण भर यह टिकेगा, लेकिन इसे पुनः-पुनः जीना तुम्हारे जीवन को बदलने का रास्ता हो सकता है।
सुख के क्षण को, आनंद के क्षण को जीयो, संगीत के क्षण को जीयो, ताकि वह
खो न जाए।
"एक समय आएगा, जब तुम्हें किसी गुरु की आवश्यकता न होगी। क्योंकि जिस प्रकार व्यक्ति को वाणी की शक्ति है, उसी प्रकार उस सर्वव्यापी में भी यह शक्ति है, जिसमें व्यक्ति का अस्तित्व है।"
अगर तुम संगीत के इन टुकड़ों को पकड़ते चले गए और ये टुकड़े आपस में बैठ
कर एक बड़े संगीत को जन्म देने लगे, तो एक दिन ऐसी घड़ी आ जाएगी कि तुम उस अंतर-आत्मा की या उस परमात्मा की, या जो भी नाम तुम देना चाहो, उसकी वाणी, और उसके निर्देश को सीधा ही सुन सकोगे। तुम्हें तब किसी व्यक्ति को गुरु बनाने की जरूरत न रहेगी। वह तो तभी तक जरूरत है, जब तक तुम सीधा नहीं सुन सकते। तब तक तुम्हें एक मध्यस्थ की जरूरत है, जो सीधा सुन सकता है। वह तुमसे वही कह रहा है, जो तुम सीधा भी सुन सकते थे। वह तुमसे वही कह रहा है, जो तुम भी सुनने में समर्थ हो। लेकिन अभी तुम समर्थ नहीं हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर इतना कोलाहल है। यह कोलाहल जैसे-जैसे गिरता जाएगा, और जैसे-

जैसे तुम्हारे भीतर की भूमि के टुकड़े साफ होते जाएंगे, और जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर से कचरा अलग फिंकता जाएगा और व्यर्थ के झाड़-झंखाड़ उखड़ जाएंगे, और तुम्हारे भीतर वही रह जाएगा, जो जरूरी है; तुम जैसे-जैसे भीतर साफ-सुथरे होते जाओगे, वैसे-वैसे तुम खुद ही पकड़ने लगोगे अनंत के स्वर को, अनंत की वाणी को, अनंत के शब्द को।
जिस दिन तुम खुद पकड़ने लगोगे, उस दिन बाहर के गुरु की कोई जरूरत न रह जाएगी। वह केवल मध्यस्थ था। वह पकड़ता था, तुम नहीं पकड़ पाते थे। वह तुमसे वही कहता था, जो तुम्हारी अंतर-आत्मा भी तुमसे कहेगी। लेकिन एक-एक कदम सुख के अनुभव को, जितना ज्यादा तुम पकड़ सको, उसे पकड़ कर भरते जाना।
इसमें एक बात और ख्याल में ले लेना जरूरी है, जो बड़ी बुरी तरह बाधा बनती है। इससे कहीं वैसी भूल आप भी मत कर लेना। बहुत से लोग करते हैं। वे मेरे पास आते हैं, वे कहते हैं कि कल तो ध्यान में बड़ा आनंद आया था, आज वैसा आनंद नहीं आया। शुरू में तो ध्यान में बड़ा आनंद आया था, अब वैसा नहीं आ रहा है, कोई आ कर कहता है। वह बड़ा परेशान है इससे।
ध्यान रहे, इस सूत्र का यह अर्थ नहीं है। कल जो ध्यान आया था, उसे अगर तुम आज मांगोगे, तो वह नहीं आएगा। क्योंकि आनंद जबर्दस्ती नहीं लाया जा सकता है। उसकी कोई अपेक्षा भी नहीं की जा सकती। उसके लिए अगर तुमने अपेक्षा की, तो तुम इतने तन जाओगे कि वह नहीं आएगा।
इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि पहली दफा जो लोग ध्यान शुरू करते हैं, तो उन्हें जैसा आनंद अनुभव होता है, फिर उन्हें बाद में नहीं होता। उसका कारण वे खुद ही हैं। क्योंकि जो पहली दफा उनको अनुभव में आया, उस वक्त तो कोई प्रतीक्षा भी नहीं थी, उन्हें पता भी नहीं था, कोई तनाव भी नहीं था कि आना चाहिए। नहीं आया तो दुखी हो जाएंगे, यह भी नहीं था। कुछ पता ही नहीं था। वे भोले-भाले थे। उस भोले-भाले अपेक्षा-रहित मन में आनंद उतरा था।
एक दफे आनंद उतर आया, तो अब उनकी अपेक्षा है। ध्यान में खड़े होते हैं,
तो उनकी शर्त है कि अब आनंद आना चाहिए। अब वे तने हुए हैं, अब वे खिंचे हुए हैं। अब ध्यान नहीं कर रहे हैं, अब वे सिर्फ आनंद की मांग कर रहे हैं। पहली दफा आया था, तब कोई मांग नहीं थी, अब मांग है। अब वह न आएगा। आपने उसकी बुनियादी आधार-शिला बदल ली।
इस सूत्र का यह अर्थ नहीं है कि जो मिला है, उसको मांगो। इस सूत्र का अर्थ है, जो भी मिला है, उसको जीयो, स्मरण करो। लेकिन उसकी पुनरुक्ति की मांग मत करो, तो वह पुनरुक्त होगा। उसको मांगो मत, तो वह मिलेगा। उसको जबर्दस्ती लाने की कोशिश मत करो। क्योंकि जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, उसके साथ जबर्दस्ती नहीं हो सकती। सिर्फ निकृष्ट के साथ जबर्दस्ती हो सकती है। श्रेष्ठ के साथ जबर्दस्ती नहीं हो सकती। तुमने जबर्दस्ती की कि वह टूट जाएगा।
एक अजनबी आदमी तुम्हें मिलता है। तुम प्रेम में पड़ जाते हो, बड़ा सुख मिलता है। फिर तुम विवाह कर लेते हो और फिर वैसा सुख नहीं मिलता। वही हो रहा है। अब तुम्हारी अपेक्षा है कि अब वह सुख कहां है, लाओ? जो सुख पहले दिन जाना था, वह वापस लाओ। कोई भी नहीं ला सकता दुनिया में। कोई उसे खींच-तान कर नहीं लाया जा सकता।
तुम अपनी पत्नी से मांग रहे हो कि जब तू मेरी प्रेयसी थी, और जैसा सुख
का क्षण तूने मुझे दिया था, अब क्यों नहीं दे रही है? क्या तेरा प्रेम खतम हो गया? पत्नी पति से कह रही है, अब तुम उस तरह की बातें नहीं करते, उस तरह का प्रेम प्रकट नहीं करते, जैसा तुम पहले करते थे! क्या बात है? कहीं किसी और के साथ तो तुम प्रेम में नहीं उलझ गए हो? अब पति-पत्नी चिंतित हैं, परेशान हैं। एक-दूसरे पर पहरा दे रहे हैं। और एक-दूसरे से मांग कर रहे हैं। और कुछ भी हाथ नहीं आ रहा है। और जीवन रिक्त होता जाता है, चुकता जाता है। अब वे केवल एक-दूसरे को कष्ट दे रहे हैं। कष्ट का कारण वही है। जो पहले दिन घटा था, वह अनजान में घटा था। उस दिन वह तुम्हारी पत्नी न थी, उस दिन तुम्हारा कोई बल न था उसके ऊपर। उस दिन तुम मांग नहीं सकते थे, उस दिन दिया था। उस दिन तुमने भी दिया था बिना मांगे। अनजान में घटना घटी थी। जो अनजान

में घटा था, अब तुम जान कर घटाना चाहते हो। तुम एक नई शर्त प्रविष्ट कर रहे हो, वह शर्त सब खराब कर देगी।
प्रेयसी और प्रेमी के भीतर जो प्रेम की धारा होती है, वह पति-पत्नी के बीच नहीं रह जाती है। बड़ा कठिन है। असंभव है।
पहले दिन जब तुम ध्यान में उतरे हो, तो जो सुख अनुभव होता है, वह दूसरे दिन नहीं होगा। क्योंकि दूसरे दिन तुम तैयारी से आ रहे हो कि अब सुख लेने जा रहे हैं। यह तैयारी पहले दिन नहीं थी, ध्यान रखो। दूसरे दिन भी उसी तरह गैर-तैयार आओ, जैसे पहले दिन आए थे, और भी बड़ा सुख घटेगा। तीसरे दिन और भी गैर-तैयार हो कर आओ। मांग ही मत करो, सिर्फ ध्यान करो। पूछो ही मत कि अब यह कब होगा? यह बात ही मत उठाओ। तुम तो सिर्फ ध्यान करो, यह बढ़ता जाएगा।
इस सूत्र का अर्थ है कि जो तुम्हारा सुख है, उसे इकट्ठा करो। उसे पुनः जीयो, लेकिन उसकी पुनरुक्ति की कामना मत करना।
पुनः जीने का मतलब है कि पीछे से जो तुमने इकट्ठा किया है, उसका बार-बार स्वाद लो, उसकी जुगाली करो। भैंस-गाय जुगाली करना जानती हैं, वह सीखो।
वह भोजन कर लेती हैं, फिर उसकी जुगाली करती हैं, बार-बार चबाती हैं। जो सुख का अनुभव हो, उसकी जुगाली करो।
दुख के अनुभव की तुम काफी करते हो, इसलिए जुगाली तो तुम जानते ही हो। कोई आदमी एक दफा गाली दे दे, तो तुम पचास बार उसकी गाली अपने भीतर दोहराते हो, कि उसने ऐसा कहा। फिर-फिर तुम जोश में आ जाते हो। क्या लेना है? उसने एक दफा दिया, तुम पचास दफे दे रहे हो! रात तुम्हें नींद नहीं आती कि उसने गाली दी। अब तुम उसकी जुगाली किए जा रहे हो। गाली में इतना क्या रस है? जरा सा दुख हो जाए, तो तुम फिर उसको सोचते ही चले जाते हो, सोचते ही चले जाते हो, कि ऐसा क्यों हुआ, ऐसा नहीं होना था!
सुख की इस भांति जुगाली करो। दुख की जुगाली करके तुमने खूब दुख बढ़ा लिया है। तो सुख की जुगाली करो, और खूब सुख बढ़ जाएगा। लेकिन मांग मत करो। भविष्य में तो जाओ खाली। अतीत से रस को खींच लो पूरा अपने प्राणों में, लेकिन भविष्य में जाओ खाली, शून्य। वह जो अतीत से तुम सुख का रस खींच रहे हो, वह तुम्हें भविष्य के लिए तैयार कर रहा है। तुम्हें मांगने की जरूरत नहीं है, तुम्हारा सुख बढ़ता चला जाएगा।
छठवां सूत्र, "और उन स्वर-लहरियों से स्वर-बद्धता का पाठ सीखो। जीवन
की अपनी भाषा है और वह कभी मूक नहीं रहता, और उसकी वाणी एक चीत्कार नहीं है, जैसा कि तुम जो बहरे हो, कदाचित समझो। वह तो एक गीत है। उससे सीखो कि तुम स्वयं उस सुस्वरता के अंश हो, और उससे सुस्वरता के नियमों का पालन करना सीखो।"
यह जो संगीत के खंड तुम भीतर इकट्ठे कर लोगे, इनको खंडों की भांति इकट्ठा मत करना, इनके बीच संबंध भी खोजना।
कठिन है। और जीवन की कला चाहिए। बचपन में तितली के साथ दौड़ कर एक सुख मिला था, वह तुम्हारे भीतर पड़ा है। फिर पहली बार तुम किसी के प्रेम में गिर गए थे, और तब तुमने एक आनंद का अतिरेक अपने में अनुभव किया था, वह भी तुम्हारे भीतर पड़ा है। और तब किसी एक रात सागर के किनारे बैठ कर सागर के गर्जन में तुम डूब गए थे, वह भी तुम्हारे भीतर पड़ा है। और कभी अकारण ही, खाली तुम बैठे थे और अचानक तुमने पाया कि सब मौन और शांत हो गया, वह भी तुम्हारे भीतर पड़ा है। ऐसे दस-पांच अनुभव तुम्हारे भीतर पड़े हैं। ये टुकड़े-टुकड़े हैं। इनमें तुमने कभी यह खोजने की कोशिश नहीं की है कि इन सबके भीतर कामन एलिमेन्ट क्या है? इन सबके भीतर सम-स्वरता कहां है? तितली के पीछे दौड़ता हुआ बच्चा और अपनी प्रेयसी के पास बैठा हुआ युवक--इन दोनों के बीच क्या मेल है? दोनों से सुख मिला है, और दोनों से एक संगीत का अनुभव हुआ है, और दोनों के बीच आनंद की कोई झलक थी, तो जरूर दोनों के बीच कोई तत्व समान होना चाहिए। बात बिल्कुल भिन्न है। तितली के पीछे दौड़ता हुआ बच्चा, अपनी प्रेयसी के पास बैठा हुआ जवान, ओम का पाठ करता हुआ बूढ़ा, कहीं इनमें कोई तालमेल ऊपर से नहीं दिखता; लेकिन भीतर जरूर कोई घटना समान है। क्योंकि तीनों कहते हैं, बड़ा आनंद है। वे स्वाद जरूर समान हैं, भोजन कितने ही भिन्न हों।

तो जरा खोजना कि तितली के पीछे दौड़ते हुए बच्चे को जो सुख मिला था, वह क्या था? एकाग्रता थी, तितली ही रह गई थी। सारा जगत भूल गया था। बच्चा दौड़ रहा है उसके पीछे, यह भी उसे पता नहीं था। दौड़ने के साथ एक हो गया था। उसकी आंखें तितली पर बंध गई थीं। चित्त में सारे विचार खो गए थे, क्योंकि तितली पकड़नी थी, उतना ही विचार था। वह भी विचार था, ऐसा कहना कठिन है। एक भाव था। उस भाव-एकाग्रता के कारण सुख का अनुभव हुआ था।
फिर जवान हो गया था वही बच्चा जो तितली पकड़ रहा था, फिर वह अपनी प्रेयसी के पास बैठा है एक तारों भरी रात में। तितली और प्रेयसी में कोई संबंध नहीं है। लेकिन इस प्रेयसी के पास बैठ कर वह पुनः एकाग्र हो गया है। बस एक ही भाव रह गया, जगत मिट गया है, यह प्रेयसी ही रह गई है। अब कोई मन में उसके विचार नहीं है। इस प्रेयसी की मौजूदगी में वह उसी को पीता है। अब कोई दूसरा भाव, कोई दूसरा विचार उसको नहीं पकड़ता। इस क्षण में वह पुनः भाव-एकाग्रता में डूब गया है।
फिर बूढ़ा ओम का पाठ करता है। कहां तितली, कहां प्रेयसी, कहां ओम का पाठ! कहां यह मंदिर का कोना, धूप-दीप-बाती! कोई संबंध नहीं दिखता। लेकिन ओम के पाठ में वह फिर भाव-एकाग्र हो गया। जगत मिट गया है, ओंकार का नाद ही सब कुछ है। भूल गया है अपने को। वह जो मंत्र बोल रहा है, उसका भी पता नहीं है। मंत्र ही रह गया है, ओम की ध्वनि ही रह गई है। फिर भाव-एकाग्र हो गया है। तब आपको समझ में आएगा कि तीन खंड हैं, अब खंड न रहे। इनके भीतर एक सूत्र मिल गया। वही संगीत है, वही सम-स्वरता है।
तो अपने जीवन-अनुभव, अपने आनंद, अपने संगीत के बीच जो खंड तुम इकट्ठे
कर लो, उनके बीच सम-स्वरता, हार्मनी को खोजना। और तब तुम बहुत चकित हो जाओगे। तब तुम बहुत चकित हो जाओगे कि कितने ही भिन्न दिखाई पड़ने वाले अनुभव भी, अगर उनके भीतर सुख है, तो समान होते हैं। और कितने ही भिन्न दिखाई पड़ने वाले अनुभव, अगर उनके भीतर दुख है, तो समान होते हैं।
दुख की एक ही भाषा है। सुख की भी एक ही भाषा है। इनको अलग-अलग देखते रहोगे, तो तुम्हें जीवन-दृष्टि न मिलेगी। तब तुम सोचते रहोगे... कि बूढ़ा ओंकार का पाठ करता हुआ सोचेगा कि जवान नासमझ है, कि कहां स्त्रियों के पीछे भटक रहा है? जवान प्रेयसी के पास बैठा हुआ बच्चों को देख कर समझेगा कि क्यों व्यर्थ अपना समय खो रहे हैं, तितलियों के पीछे भटक रहे हैं!
तब ये एक-दूसरे को न समझ पाएंगे। इसलिए नहीं समझ पाएंगे कि बूढ़ा अपनी
ही जवानी को भी न समझ पाया, अपने बचपन को भी नहीं समझ पाया। वह बूढ़ा हो गया है, लेकिन उसे यह अभी तक पता नहीं चल पाया है, कि जवानी, बचपन, बुढ़ापा, एक ही जीवन-धारा के अंग हैं। और जब भी कहीं कोई सुख मिलता है, कोई आनंद की प्रतीति होती है, तो चाहे बाहरी वातावरण कितना ही भिन्न हो, भीतर की घटना एक ही होती है।
तितली के पीछे दौड़ो कि ओम का पाठ करो, बराबर है। तितली के पीछे दौड़ना, बच्चे का ढंग है ओंकार का पाठ करने का। ओंकार का पाठ करना, बूढ़े का ढंग है तितली के पीछे दौड़ने का। जवान भी अपनी प्रेयसी के पास ओंकार का पाठ कर रहा है और तितली के पीछे दौड़ रहा है। यह जिस दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगा, उस दिन सब खंड एक संगीत में गिर जाएंगे, और तुम्हें भीतर का सूत्र मिल जाएगा। तब माला के मनके महत्वपूर्ण न रह जाएंगे, भीतर का धागा तुम्हारी पकड़ में आ गया। और वही धागा परम-सत्य की तरफ ले जा सकता है।
तब बूढ़ा बच्चे पर नाराज नहीं होता, क्योंकि वह अपने बचपन को समझ चुका
है और आत्मसात कर लिया है। जो बूढ़ा बच्चे पर नाराज हो रहा है, वह ठीक से बुद्धिमान नहीं है। वह अपने बचपन के प्रति ही नाराज है। असल में, दूसरे बच्चे पर तो वह प्रक्षेपण कर रहा है। जो बूढ़ा जवान को कह रहा है कि क्यों जिंदगी नष्ट कर रहे हो, वह जीवन के अनुभव को समझ नहीं पाया। उसका किसी जवान से यह कहना है कि तुम जीवन नष्ट कर रहे हो, इस बात की प्रतीति है, कि वह समझता है कि जवानी में उसने जीवन नष्ट किया, और कुछ अर्थ नहीं है इसका। इस बूढ़े के जीवन में जवानी और बचपन एकाकार नहीं हो पाए। यह ब.ूढा खंड-खंड में जी रहा है।

खंड-खंड में दुख है। नहीं तो बूढ़ा बच्चे को सहायता देगा तितली पकड़ने में। और बूढ़ा जवान को सहायता देगा प्रेम की कला में उतरने में। क्योंकि बूढ़ा जानता है कि वह सब ओंकार का ही नाद है अलग-अलग अवस्थाओं में। तब वह नाराज नहीं है। तब वह किसी चीज पर नाराज नहीं है। तब उसकी कोई शिकायत नहीं है।
और ध्यान रहे, इस तरह के बूढ़े को ही हम ऋषि कह सकते हैं, हर किसी बूढ़े
को नहीं। तो बूढ़े तो सब हो जाते हैं उम्र से, लेकिन वार्धक्य बहुत कम लोगों को उपलब्ध होता है। वार्धक्य का अर्थ है, जीवन का सारा अनुभव निचोड़ लिया। इसलिए हमने इस देश में बूढ़ों को आदर दिया था, बुढ़ापे के कारण नहीं। बूढ़े को हमने आदर दिया था, क्योंकि बच्चे के पास तितली पकड़ने का अनुभव है, लेकिन ओंकार का अनुभव नहीं है। जवान के पास प्रेयसी के पास बैठने का अनुभव है, लेकिन ओंकार का अनुभव नहीं है। बूढ़े के पास तीनों हैं। उसके पास सब है। इसलिए हमने बूढ़ों के चरणों में झुकने को कहा था, कि झुकना। इसलिए नहीं कि उसकी उम्र ज्यादा है, बल्कि इसलिए कि उसके मनके सब पूरे हो गए और हो सकता है कि उसने उस धागे को पकड़ लिया हो। जिसने नहीं पकड़ा है, वह बूढ़ा हुआ ही नहीं। उसने बाल धूप में पका लिए हैं। उसकी उम्र समय के भीतर गुजरी है, लेकिन उसने समयातीत को अनुभव नहीं किया है।
क्या है समयातीत? विभिन्न, अनंत अनुभवों के बीच एक स्वर-संगीत को पकड़ लेना समयातीत है। वह समय के बाहर है।
और जिसने उसको पकड़ लिया है, उसके लिए इस जगत में फिर कोई दुख नहीं है। उसके लिए इस जगत में फिर कुछ भी बंधन नहीं है। उसने इस जीवन का सार पा लिया है। सार पाते ही व्यक्ति जीवन से मुक्त हो जाता है।
जीवन है ही इसलिए कि तुम सार पा सको। अगर तुम सार न पाओगे तो बूढ़े से फिर तुम्हें बच्चा होना पड़ेगा, फिर नया जन्म लेना पड़ेगा, फिर तुम्हें तितलियां पकड़नी पड़ेंगी, और फिर तुम्हें प्रेयसियों के पास बैठना पड़ेगा, फिर तुम्हें ओंकार का नाद करना पड़ेगा। और अगर फिर भी तुम जीवन के पूरे सार का सूत्र न पकड़ पाए, फिर तुम्हें बच्चा होना पड़ेगा। अगर तुम पूरे जीवन को एकसूत्रता में पकड़ लो, तो तुम्हारे फिर बच्चे होने की कोई जरूरत नहीं है। बच्चा होने का मतलब है कि तुम्हें फिर छोटी क्लास में वापस भेजा गया है। मैट्रिक तक आ गए थे, फिर तुम्हें उतार कर पहली क्लास में बिठा दिया। बहुत दुखद है।
इसलिए इस मुल्क में हमारे मन की पीड़ा एक ही रही है कि आवागमन से कैसे छुटकारा हो? उसका कुल मतलब यह है कि बार-बार बूढ़ा हो कर बच्चा होने का मतलब क्या होता है? उसका मतलब यह होता है कि वह समय व्यर्थ गया। पहुंच गए आखिरी क्लास तक, फिर उतार कर पहली क्लास में बिठा दिया गया! वह तो आपको नया शरीर मिल जाता है, इसलिए ज्यादा पीड़ा नहीं होती।
अगर परमात्मा फिर से सृष्टि बनाए, तो उससे यह प्रार्थना करनी चाहिए
कि दूसरा शरीर मत देना। बूढ़े को वापस बच्चा बना देना, वैसे का वैसा। फिर वह तितलियां पकड़े तो ज्यादा लाभ होगा। वह दूसरा शरीर मिल जाता है, तो आप भूल ही जाते हैं कि क्या मामला है! आप क्या कर रहे हैं! वह तो बेहतर यही हो कि बूढ़े को बूढ़े ही रहते हुए फिर तितलियां पकड़वाना, फिर स्त्रियों के पीछे दौड़वाना, फिर मंदिर में पहुंचाना। मगर हो यही रहा है, क्योंकि भीतर की आत्मा तो वही रहती है।
"उन स्वर-लहरियों से स्वर-बद्धता का पाठ सीखो।"
वही पाठ जीवन का संचित सार है।

साधना-सूत्र
तेरहवां प्रवचन

जीवन का सम्मान

7. समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है।

अपने आसपास के निरंतर बदलने वाले और चलायमान जीवन पर ध्यान दो, क्योंकि यह मानवों के हृदय का ही बना है।
और ज्यों-ज्यों तुम उसकी बनावट और उसका आशय समझोगे,
त्यों-त्यों क्रमशः तुम जीवन का विशालतर शब्द भी
पढ़ और समझ सकोगे।

8. समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो।

मनुष्यों के हृदयों का अध्ययन करो,
ताकि तुम जान सको कि वह जगत कैसा है,
जिसमें तुम रहते हो और जिसके तुम एक अंश बन जाना चाहते हो।
बुद्धि निष्पक्ष होती है।
न कोई तुम्हारा शत्रु है और न कोई मित्र।
सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं।
तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है,
जिसे तुम्हें हल करना है,
चाहे इस हल करने में युगों का समय लग जाए,
क्योंकि मानव को समझना तो है ही।
तुम्हारा मित्र तुम्हारा ही एक अंग बन जाता है,
तुम्हारा ही एक विस्तृत रूप हो जाता है,
जिसे समझना कठिन होता है।

जीवन-सत्य की खोज में जो बड़ी से बड़ी कठिनाई हो सकती है, वह है जीवन के प्रति असम्मान का भाव। और हम सबके भीतर जीवन के प्रति असम्मान का भाव है। और यह बात उलटी लगेगी और समझने में थोड़ी मुश्किल पड़ेगी कि तथाकथित धर्मों ने ही हमें जीवन के प्रति असम्मान से भर दिया है, जब कि वास्तविक धर्म हमें जीवन के प्रति सम्मान से भरेगा।
क्योंकि परमात्मा जीवन में ही छिपा है। जीवन उसका ही वस्त्र है, उसका
ही आच्छादन है। जीवन उसकी ही श्वास है। और अगर जीवन के प्रति असम्मान का भाव है, तो परमात्मा को खोजना असंभव है। क्योंकि उस सम्मान से ही तो उसमें प्रवेश का द्वार मिलेगा। असम्मान से तो हमारी पीठ उसकी तरफ हो जाती है। पर ऐसी उलझन हो गई है कि धर्म कहते हैं कि परमात्मा को खोजो। और धर्म
यह भी कहते हैं कि परमात्मा जीवन के कण-कण में छिपा है। लेकिन परमात्मा को खोजने की बात, जो रुग्ण चित्त लोग हैं, वे समझते हैं, जैसे जीवन का निषेध करके खोजना है! जैसे परमात्मा की खोज जीवन का विरोध है। जैसे परमात्मा को पाना है तो जीवन को छोड़ना होगा।
अगर यह सच है कि परमात्मा को पाने के लिए जीवन को छोड़ना होगा, तो फिर जीवन का सम्मान नहीं हो सकता है; जीवन की निंदा होगी, अपमान होगा। और जीवन का अपमान होगा तो जीवन का जो परम-रहस्य है, उसका सम्मान कैसे हो सकता है? कृष्ण तो जीवन के प्रति सम्मान से भरे हैं, जीसस तो जीवन के प्रति सम्मान से भरे हैं, बुद्ध तो जीवन के प्रति सम्मान से भरे हैं, लेकिन उनके अनुयायिओं का बड़ा वर्ग जीवन के प्रति अपमान से भरा है। इसका कारण बुद्ध, कृष्ण या क्राइस्ट की शिक्षाओं में नहीं है। इसका कारण अनुयायिओं की समझ में है।
क्योंकि वे सभी कहते हैं कि परम-सत्य को खोजो। हम भी उसे खोजना चाहते हैं। लेकिन जब भी हम उसकी खोज का विचार करते हैं, तभी हमें लगता है कि हमारा जो आज का क्षण, अभी का जो जीवन है, उसे छोड़ना पड़े, तभी उसकी खोज हो

सके। इससे हटना पड़े, इसे नष्ट करना प.ड़े, तभी उसकी खोज हो सके। इसलिए नहीं कि उसकी खोज के लिए इससे हटना जरूरी है, बल्कि सचाई यह है कि हम इससे इतने ऊब गए हैं, और परेशान हो गए हैं, और हम इसमें इतने दुखी और इतने दीन हो गए हैं, कि जब भी हमें कोई मौका मिले, इसे छोड़ने और तोड़ने का, तो हम तैयार हैं। कोई भी बहाना मिले तो हम जीवन को नष्ट करने को तैयार हैं। हम आत्मघाती हैं, हम रुग्ण हैं। और ये रुग्ण लोग इकट्ठे हो जाते हैं, और ये सारी जीवन की परिभाषा बदल देते हैं, सारा ढंग बदल देते हैं। और ये पूरी व्यवस्था को उलटा कर देते हैं।
धर्म की तरफ पैथालाजिकल, रुग्ण चित्त लोग बहुत तीव्रता से उत्सुक होते हैं। उनकी उत्सुकता का कारण है। क्योंकि वे जीवन के तो विरोध में हैं। क्योंकि जीवन से तो उनको कोई सुख और शांति नहीं मिली। इसका कारण यह नहीं है कि जीवन में सुख और शांति नहीं है। इसका कारण यह है कि उनका जो ढंग था जीवन से सुख और शांति पाने का, वह गलत था। तो वे जीवन के प्रति विरोध से भर गए हैं। और जब भी उन्हें कोई शिक्षक मिल जाता है, जो किसी और बड़े जीवन की तरफ इशारा करता है, तभी वे तत्काल यह निर्णय बना लेते हैं कि इस जीवन में ही पाप है, इस जीवन में ही दुख है। इसको छोड़ेंगे तो वह परम-जीवन मिलेगा। जीवन में दुख नहीं है, जीवन को देखने के ढंग में दुख है। और अगर यही ढंग ले कर तुम परम-जीवन में भी प्रवेश कर गए, तो वहां भी दुख पाओगे। वह ढंग तुम्हारे साथ है। तुम कहां हो यह सवाल नहीं है। तुम जहां भी रहोगे, वह ढंग तुम्हारे साथ रहेगा। तुम जहां भी जाओगे, तुम्हारी आंख तुम्हारे साथ रहेगी। तुम्हें परमात्मा भी मिल जाए, तो तुम उससे भी दुखी होने वाले हो! तुम सुखी हो नहीं सकते, तुम्हारा जो ढंग है उसको बिना बदले। लेकिन ढंग तुम बदलना नहीं चाहते, तुम परिस्थिति बदलने को उत्सुक हो जाते हो। तुम जीवन की निंदा करने में रस लेते हो। खुद गलत हो, यह तुम्हें सोचना मुश्किल हो जाता है।
यह जो निंदकों का एक समूह है, यह जीवन को नुकसान तो पहुंचा देता है, लेकिन परमात्मा की तरफ एक भी कदम बढ़ने में सहायता नहीं कर पाता।
एक बात समझ लेनी जरूरी है कि अगर कोई परम-जीवन भी है, तो इस जीवन की ही गहराई का नाम है। अगर कोई पार का जीवन भी है, तो भी इसी जीवन की सीढ़ियों से होकर वह रास्ता जाता है। यह जीवन तुम्हारा दुश्मन नहीं है। यह जीवन तुम्हारा सहयोगी है, साथी है, संगी है। और अगर इस जीवन से तुम्हें कोई रास्ता दिखाई नहीं पड़ता, तो तुम अपने देखने के ढंग को बदलना। तुम अपने देखने की वृत्ति को बदलना। लेकिन कोई भी आदमी अपने को बदलने को तैयार नहीं!
मैं तो इतना चकित होता हूं कि जो लोग कहते भी हैं कि हम स्वयं को बदलने
को तैयार हैं, वे भी स्वयं को बदलने को तैयार नहीं होते, कहते ही हैं। उनकी उत्सुकता भी होती है कि सब बदल जाएं और वे न बदलें। क्योंकि खुद को बदलना-- अहंकार को बड़ी चोट लगती है, बहुत पीड़ा होती है।
मेरे पास लोग आते हैं। वे मुझे भी बदलने की योजनाएं ले कर आ जाते हैं!
वे कहते हैं कि अगर आप ऐसा करें तो बहुत अच्छा होगा, अगर आप ऐसा कहें तो बहुत अच्छा हो, अगर आप ऐसे जीएं तो बहुत अच्छा हो! मैं उनसे पूछता हूं कि तुम यहां किसलिए आए थे? तुम अपने को बदलने आए हो या मुझे? मैं जैसा हूं, आनंदित हूं। मुझे इसमें रत्ती भर बदलने का कोई सवाल नहीं है। तुम अगर दुखी हो तो खुद को बदलने की फिक्र करो। अगर तुम भी आनंदित हो तो बात खतम हो गई। लेकिन दुखी आदमी भी आता है तो उसे इसका ख्याल ही नहीं कि वह किसलिए आया हुआ है! वह किसलिए आया हुआ है? अपने को बदलने!
यहां शिविर में लोग आते हैं, दिन भर मेरा सिर खाते हैं--फलां आदमी ऐसा
कर रहा है, ढिकां आदमी ऐसा कर रहा है! तुम यहां किसलिए आए हो? तुम सारे लोगों की चिंता के लिए यहां आए हो? तुम्हें किसने ठेका दिया सबकी चिंता का? तुम्हारे पास बहुत समय मालूम पड़ता है, बहुत शक्ति मालूम पड़ती है। अपना जीवन तुम दूसरों के लिए चुका रहे हो कि कौन आदमी क्या कर रहा है। क्या प्रयोजन है? कौन आदमी किस स्त्री के साथ बात कर रहा है, कौन आदमी किस स्त्री के पास बैठा हुआ है, तुम्हें चिंता का क्या कारण है? तुम कौन हो?

लेकिन तुम आए थे यहां अपने को बदलने को और यहां तुम फिक्र में पड़ जाते
हो किसी दूसरे को बदलने की! असल में तुम अपने को बदलने आए ही नहीं हो, इसीलिए यह फिक्र पैदा होती है। तुम्हारा ख्याल गलत था कि तुम अपने को बदलने आए हो। तुमने अपने को धोखा दिया। तुम चाहते तो सारी दुनिया को बदलना हो, तुम तो जैसे हो, उससे तुम रत्ती भर हटना नहीं चाहते! और फिर तुम चाहते हो कि तुम्हारा दुख समाप्त हो जाए, तुम्हारी पीड़ा समाप्त हो जाए! तुम जैसे हो, वैसे ही रह कर दुख समाप्त न होगा। फिर इससे क्या तुम्हें पीड़ा होती है कि कोई आदमी किसी स्त्री के साथ बात कर रहा है, प्रेमपूर्ण ढंग से बैठा हुआ है? इससे तुम्हें क्या पीड़ा होती है?
मुझे खबर दी किसी ने कि फलां आदमी किसी स्त्री के साथ इस ढंग से बैठा है, जो शोभादायक नहीं है। शोभा का कौन निर्णायक है? और जो आदमी खबर दे रहा है, उसे इस बात का ख्याल ही नहीं है कि उसको यह पीड़ा क्यों पकड़ रही है। इस आदमी को मैं भलीभांति जानता हूं। यह किसी भी स्त्री के पास बैठने में समर्थ नहीं है। कोई स्त्री इसके पास बैठने में समर्थ नहीं है। यह परेशान है। यह उस आदमी की जगह बैठना चाहता था, इसलिए यह परेशानी की खबर ले आया। लेकिन इसे यह ख्याल नहीं है कि इसका खुद का रोग इसको खा रहा है। यह दूसरे को बदलने की फिक्र में है!
मैंने उस आदमी को कहा कि जो आदमी वहां बैठा है स्त्री के पास, तुमने उस आदमी के बाबत एक बात ख्याल की, कि वह आदमी सदा प्रसन्न रहता है, सदा हंसता है, सदा खुश है। और तुम सदा उदास, दुखी और परेशान हो। तुम उस आदमी से कुछ सीखो, उसके पास में बैठी स्त्री की फिक्र छोड़ दो। और यह भी हो सकता है कि तुम भी उतने खुश हो जाओ कि कोई स्त्री तुम्हारे पास भी बैठना चाहे। लेकिन तुम्हारी शकल नारकीय है। तुम इतने दुख और परेशानी से भरे हो कि कौन तुम्हारे पास बैठना चाहेगा! और फिर अगर दो व्यक्ति प्रेमपूर्ण ढंग से बैठे हैं, तो इसमें अशोभन क्या है?
यह बहुत मजे की बात है कि जीवन के असम्मान के कारण प्रेम अशोभन मालूम पड़ता है। क्योंकि प्रेम जीवन का गहनतम फूल है। अगर दो आदमी सड़क पर लड़ रहे हों तो कोई नहीं कहता कि अश्लील है। लेकिन दो आदमी गले में हाथ डाल कर एक वृक्ष के नीचे बैठे हैं, तो लोग कहेंगे, अश्लील है! हिंसा अश्लील नहीं है, प्रेम अश्लील है! प्रेम क्यों अश्लील है? हिंसा क्यों अश्लील नहीं है? हिंसा मृत्यु है, प्रेम जीवन है। जीवन के प्रति असम्मान है और मृत्यु के प्रति सम्मान है!
देखिए, कितनी हैरानी की बात है! युद्ध की फिल्में बनती हैं, कोई सरकार
उन पर रोक नहीं लगाती। हत्या होती है, खून होता है फिल्म में, कोई दुनिया की सरकार नहीं कहती कि अश्लील है। लेकिन अगर प्रेम की घटना है तो सारी सरकारें चिंतित हो जाती हैं। सरकारें तय करती हैं कि चुंबन कितने दूर से लिया जाए! छः इंच का फासला हो, कि चार इंच का फासला हो! कि कितने इंच के फासले पर चुंबन श्लील होता है और कितने इंच के फासले पर अश्लील हो जाता है! लेकिन छुरा भोंका जाए फिल्म में, तो अश्लील नहीं होता! कोई नहीं कहता कि छः इंच दूर छुरा रहे।

यह बहुत विचार की बात है कि क्या कठिनाई है। चुंबन में ऐसा क्या पाप है, जो छुरा भोंकने में नहीं है? लेकिन चुंबन जीवन का साथी है और छुरा मृत्यु का। छुरे पर किसी को एतराज नहीं है। हम सब आत्मघाती हैं। हम सब हत्यारे हैं। लेकिन प्रेम के हम सब दुश्मन हैं! यह दुश्मनी क्यों है? इसको अगर हम बहुत गहरे में खोजने जाएं तो हमारा जीवन के प्रति सम्मान का भाव नहीं है।
फिर अगर दो व्यक्ति प्रेम से बैठे हैं, किसी को नुकसान नहीं पहुंचा रहे हैं, यह उनकी निजी बात है, यह उनका निजी आनंद है। अगर यह आपको कष्ट देता है तो आपको अपने भीतर खोज करनी चाहिए। आपके जीवन में प्रेम की कमी रह गई है। या आपकी कामवासना पूरी नहीं हो पाई है, अटकी रह गई है। आपकी कामवासना रोग बन गई है, घाव बन गई है। मगर ये आदमी जो मेरे पास आ कर खबर लाएंगे, वे यह

नहीं कहते कि हम अपनी कामवासना से पीड़ित हैं! वे यह कहते हैं कि यह क्या हो रहा है!
अपनी तरफ ख्याल करो, अपने दृष्टिकोणों को सोचो, दूसरे की चिंता मत करो। और एक बात सदा ख्याल में रखो कि तुम किस बात का सम्मान करते हो? जीवन का?
दो व्यक्तियों का प्रेमपूर्ण ढंग से खड़ा होना, इस पृथ्वी पर घटने वाली सुंदरतम घटनाओं में से एक है। और अगर प्रेम सुंदर नहीं है, तो फूल सुंदर नहीं हो सकते, पक्षियों के गीत सुंदर नहीं हो सकते, क्योंकि फूल भी प्रेम की घटना है। वह भी वृक्ष की कामवासना है। उससे वृक्ष अपने बीज पैदा कर रहा है, अपने वीर्य-कण पैदा कर रहा है। पक्षियों के सुबह के गीत सुंदर नहीं हो सकते, क्योंकि वह भी प्रेयसियों के लिए बुलाई गई पुकार है या प्रेमियों की खोज है--वह भी कामवासना है।
अगर कोई व्यक्ति जीवन के प्रति असम्मान से भरा है तो इस जगत में फिर कुछ भी सुंदर नहीं है, सब अश्लील है। आपको फूल में दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि फूल की कामवासना का आपको पता नहीं है। जब वसंत आता है, तो पृथ्वी जवान होती है। वह जो आप खुशी देखते हैं चारों तरफ, वह भी कामवासना की ही खुशी है, वह जो उत्सव दिखाई पड़ता है।
जीवन की निंदा में कामवासना भी एक कारण है। न मालूम किस-किस भांति से हमने कामवासना का विरोध किया है, उसको पाप कहा है। वह पाप हो सकती है, क्योंकि उसमें पुण्य होने की क्षमता है। एक बात ख्याल रखनाः वही चीज पाप हो सकती है, जिसमें पुण्य होने की क्षमता हो।
एक छोटा बच्चा अगर कोई भूल करता है, तो हम उसे माफ कर देते हैं। हम पाप नहीं कहते, हम कहते हैं कि वह बच्चा है। अभी ठीक करने की क्षमता ही उसमें नहीं है, तो गलत करना माफ किया जाए। एक आदमी शराब पी कर कोई जुर्म कर लेता है, तो अदालत भी माफ कर देती है, क्योंकि उसने बेहोशी में किया है। होश में होता तो हम मानते हैं कि उसमें ठीक करने की क्षमता भी थी। जब क्षमता ही न थी तो फिर गलत का जुम्मा भी नहीं रह जाता। एक आदमी पागल सिद्ध हो जाए तो बड़े से बड़ा जुर्म भी माफ हो जाता है, क्योंकि पागल को क्या दोष देना? वह ठीक कर ही नहीं सकता था, तो गलत करने के लिए जिम्मेवार भी नहीं रह जाता। एक बात--कि जिस स्थिति में पाप हो सकता है, वह वही स्थिति है, जिसमें पुण्य भी हो सकता था। नहीं तो पाप नहीं हो सकता है। जो ऊर्जा पाप बन सकती है, वही ऊर्जा पुण्य भी बन सकती है। इसलिए कामवासना का जो विरोध किया है जानने वालों ने, उसका कारण दूसरा है। न जानने वालों ने विरोध को पकड़ लिया, उसका कारण दूसरा है। जानने वालों ने इसलिए कहा है कि तुम कामवासना में मत पड़ो, ताकि तुम्हारी काम-ऊर्जा परमात्मा की तरफ प्रवाहित हो सके। इसमें कामवासना की निंदा नहीं है, केवल उसका महत्तर उपयोग है। सच पूछें तो इसमें उसकी महत्ता है। क्योंकि कामवासना में पड़ कर तुम संसार में प्रवेश कर जाओगे, और गहन अंधकार में। अगर तुम कामवासना में न पड़ो, तो यही ऊर्जा ऊपर चढ़ने की सीढ़ी बन जाएगी।
तो जो सीढ़ी तुम्हें ऊपर ले जा सकती हो, उसको तुम नीचे की यात्रा पर मत लगाओ। इसमें सम्मान है, अपमान नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि काम-ऊर्जा परम-सत्य तक ले जा सकती है। और तुम उसे व्यर्थ मत खो देना। लेकिन रुग्ण लोगों ने उसका जो अर्थ लिया, उन्होंने अर्थ लिया कि कामवासना के शत्रु हो जाओ। वे सीढ़ी ऊपर की तरफ तो लगाते नहीं, सीढ़ी नीचे की तरफ भी नहीं लगाते! वे सीढ़ी कंधे पर ले कर घूमते रहते हैं, वे सीढ़ी लगाते ही नहीं!
ऊपर की तरफ लगाओ, बहुत सुखद है, परम-आनंदपूर्ण है। ऊपर की तरफ न लगा सको, तो कंधे पर ले कर मत घूमो। क्योंकि उससे तुम सिर्फ रुग्ण हो रहे हो और बोझ ढो रहे हो। कामवासना के विरोध के कारण जीवन का भी अपमान हो गया हमारे मन में। क्योंकि जीवन उसी से तो उठता है, जीवन उसी से तो जगता है। जीवन कामवासना का ही तो फैलाव है।
प्रेम छुप-छुप कर करना पड़ता है, कहीं भाव है कि पाप है। अगर प्रेम पाप है, तो प्रेम से पैदा होने वाले बच्चे पुण्य नहीं हो सकते। अगर प्रेम पाप है, तो पूरा जीवन पाप है।

ये सूत्र बहुत कीमती हैं, समझने जैसे हैं। पहला सूत्र है--
सातवां सूत्र, "समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है।"
समस्त जीवन का सम्मान करो--मृत्यु का नहीं, हिंसा का नहीं, विध्वंस का नहीं--जीवन का, सृजन का, प्रेम का। जहां से जीवन उठता है, जहां से जीवन जन्मता है, जहां से जीवन फैलता है--चाहे पौधों में, चाहे पक्षियों में, चाहे मनुष्यों में--जीवन का सम्मान करो, समग्र जीवन का।
"अपने आसपास के निरंतर बदलने वाले और चलायमान जीवन पर ध्यान दो, क्योंकि यह मानवों के हृदय का ही बना है। और ज्यों-ज्यों तुम उसकी बनावट और उसका आशय समझोगे, त्यों-त्यों क्रमशः तुम जीवन का विशालतर शब्द भी पढ़ और समझ सकोगे।"
जीवन के सम्मान में एक सृजनात्मक दृष्टिकोण है। चारों ओर देखो, हृदय
से बना है सब कुछ। तुम्हारे पड़ोस में जो बैठा है, उसका हृदय भी धड़क रहा है। वह जो वृक्ष लगा है, उसकी भी जीवन-धारा प्रवाहित हो रही है। वह जो तुम्हारे नीचे पृथ्वी है, वह भी श्वास ले रही है। छोटा सा कीड़ा-मकोड़ा हो या आकाश के बड़े से बड़े तारा-मंडल हों, उन सबमें एक ही जीवन विभिन्न रूपों में प्रकट हो रहा है। इसका सम्मान अगर मन में न हो, तो तुम अस्तित्व में प्रवेश कैसे करोगे? तुम कैसे प्रवेश करोगे? कहां से द्वार खोजोगे? अगर तुम्हारी घृणा है, अगर तुम्हारा विरोध है, निंदा है, तो तुम पीठ करके खड़े हो जाओगे द्वार की तरफ। जहां भी जीवन दिखाई पड़े, उसकी पूजा करो। जहां भी जीवन की कली खिलती हो, उसका स्वागत करो। विध्वंस तुम्हारे मन में न आए, निंदा तुम्हारे मन में न आए, सम्मान तुम्हारी भावदशा बन जाए।
श्वीत्जर ने किताब लिखी है, रिवरेन्स फार लाइफ, जीवन के प्रति सम्मान। और श्वीत्जर ने अपना पूरा जीवन, जीवन के प्रति सम्मान में समर्पित किया। और श्वीत्जर ने कहा है कि जीवन का सम्मान करते-करते ही मुझे प्रभु की प्रतीति होने लगी। और न मैंने कोई पूजा की है, और न मैंने कोई प्रार्थना की है, और न मैंने कोई ध्यान किया है। मुझे तो जहां भी जीवन दिखाई पड़ा, जो भी मुझसे बन सका जीवन के स्वागत, सेवा, समादर के लिए, वह मैंने किया है। और जहां भी मुझे ख्याल आ गया कि मैं मृत्यु का पक्षपाती हो रहा हूं, वहीं से मैंने अपने को हटा लिया। जहां भी मुझे लगा कि मुझसे कोई विध्वंस हो रहा है, वहीं मैंने अपने हाथ रोक लिए। मैंने अपनी शक्ति को विध्वंस में नियोजित नहीं किया। कुछ मैंने तोड़ने में अपनी शक्ति नहीं लगाई। कुछ जोड़ सका, कुछ बना सका, कुछ निर्मित कर सका; जीवन के लिए कोई रास्ता, कोई सहारा--वही मैंने किया है। तो यही मेरी पूजा है। और मैं इसमें तृप्त हूं। क्योंकि मैंने पा लिया वह, जो मुझे पाने जैसा लगता है। कोई और खोज बाकी नहीं है।
लेकिन यह तभी हो सकेगा, जब तुम्हारा दृष्टिकोण बदले। अभी तो तुम विध्वंस की तलाश में रहते हो। कहीं तुम्हें कुछ तोड़ने-फोड़ने को मिल जाए, तो तुम्हारे आनंद का अंत नहीं होता। बनाने में किसी को कोई रस नहीं है, मिटाने की बड़ी उत्सुकता है।
इस उत्सुकता को अपने भीतर खोजना। निंदा का बड़ा भाव है। अगर मैं किसी
की निंदा करूं, तो आप बिना किसी विवाद के स्वीकार कर लेते हैं। अगर मैं किसी की प्रशंसा करूं, तो आपका मन एकदम चौंक जाता है, आप स्वीकार करने को राजी नहीं होते हैं। आप कहते हैं, सबूत क्या है? प्रमाण क्या है? आप वहम में पड़ गए हैं! लेकिन जब कोई निंदा करता है, तब आप ऐसा नहीं कहते।
कभी आपने देखा कि कोई आ कर जब आपको किसी की निंदा करता है, तो आप कैसे
मन से, कैसे भाव से स्वीकार करते हैं? आप यह नहीं पूछते कि यह बात सच है? आप यह नहीं पूछते कि इसका प्रमाण क्या है? आप यह भी नहीं पूछते कि जो आदमी इसकी खबर दे रहा है, वह प्रमाण योग्य है? आप यह भी नहीं पूछते कि इसको मानने का क्या कारण है? क्या प्रयोजन है?
नहीं, कोई निंदा करता है तो आपका प्राण एकदम खुल जाता है, फूल खिल जाते हैं, सारी निंदा को आत्मसात करने के लिए मन राजी हो जाता है! और इतना ही नहीं, जब आप यही निंदा दूसरे को सुनाते हैं, क्योंकि ज्यादा देर आप रुक

नहीं सकते। घड़ी, आधा घड़ी बहुत है। आप भागेंगे किसी को बताने को। क्योंकि निंदा का रस ही ऐसा है। वह हिंसा है। और अहिंसक दिखाई पड़ने वाली हिंसा है। किसी को छुरा मारो अदालत में, पकड़े जाओगे। लेकिन निंदा मारो, तो कोई पकड़ने वाला नहीं है। कोई कारण नहीं है, कोई झंझट नहीं है। हिंसा भी हो जाती है साध्य, रस भी आ जाता है तोड़ने का, और कोई नुकसान भी कहीं अपने लिए होता नहीं। भागोगे जल्दी। और ख्याल करना, कि जितनी निंदा पहले आदमी ने की थी, उससे दुगुनी करके तुम दूसरे को सुना रहे हो। अगर उसने पचास कहा था, तो तुमने सौ संख्या कर ली है। तुम्हें ख्याल भी नहीं आएगा कि तुमने कब यह सौ कर ली है। निंदा का रस इतना गहरा है कि आदमी उसे बढ़ाए चला जाता है।
लेकिन कोई तुमसे प्रशंसा करे किसी की, तुमसे नहीं सहा जाता फिर, तुम्हारा हृदय बिल्कुल बंद हो जाता है, द्वार-दरवाजे सख्ती से बंद हो जाते हैं। और तुम जानते हो कि यह बात गलत है, यह प्रशंसा हो नहीं सकती, यह आदमी इस योग्य हो नहीं सकता। तुम तर्क करोगे, तुम दलील करोगे, तुम सब तरह के उपाय करोगे, इसके पहले कि तुम मानो कि यह सच है। और तुम जरूर कुछ न कुछ खोज लोगे, जिससे यह सिद्ध हो जाए कि यह सच नहीं है। और तुम आश्वस्त हो जाओगे कि नहीं, यह बात सच नहीं थी। और यह कहने तुम किसी से भी न जाओगे, कि यह प्रशंसा की बात तुम किसी से कहो। यह तुम्हारा जीवन के प्रति असम्मान है और मृत्यु के प्रति तुम्हारा सम्मान है।
अखबार में अगर कुछ हिंसा न हुई हो, कहीं कोई आगजनी न हुई हो, कहीं कोई लूटपाट न हुई हो, कोई डाका न पड़ा हो, कोई युद्ध न हुआ हो, कहीं बम न गिरे हों, तो तुम अखबार ऐसा पटक कर कहते हो कि आज तो कोई खबर ही नहीं है! क्या तुम इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे? क्या तुम सुबह-सुबह उठ कर यही अपेक्षा कर रहे थे कि कहीं यह हो? कोई समाचार ही नहीं है। तुम्हें लगता है कि अखबार में जो दो आने खर्च किए, वे व्यर्थ गए। तुम्हारे दो आने के पीछे तुम क्या चाह रहे थे, इसका तुमने कुछ सोच-विचार किया? तुम्हारे दो आने की सार्थकता का कितना मूल्य तुम लेना चाहते हो जगत से?
अखबार भी तुम्हारे लिए ही छपते हैं। इसलिए अखबार वाले भी अच्छी खबर नहीं छापते। उसे कोई पढ़ने वाला नहीं है, उसमें कोई सेन्सेशन नहीं है, उसमें कोई उत्तेजना नहीं है। अखबार वाले भी वही छापते हैं, जो तुम चाहते हो। वहीं खोजते हैं, जो तुम चाहते हो। दुनिया में जो भी कचरा और गंदा और व्यर्थ कुछ हो, उस सबको इकट्ठा कर लाते हैं। तुम प्रफुल्लित होते हो सुबह से, तुम्हारा हृदय बड़ा आनंदित होता है। तुम अखबार से जो इकट्ठा कर लेते हो, दिन भर फिर उसका प्रचार करते हो। तुम्हारा ज्ञान अखबार से ज्यादा नहीं है, फिर तुम उसी को दोहराते हो
पर कभी यह ख्याल किया कि तुम्हारा रस क्या है? लोग डिटेक्टिव कहानियां पढ़ते हैं। क्यों? क्यों जासूसी उपन्यास पढ़ते हैं? क्यों जा कर हत्या और युद्ध की फिल्में देखते हैं? अगर रास्ते पर दो आदमी लड़ रहे हों, तो तुम हजार काम रोक कर खड़े हो कर देखोगे। हो सकता है तुम्हारी मां मर रही हो और तुम दवा लेने जा रहे हो। लेकिन फिर तुम्हारे पैर आगे न बढ़ेंगे। तुम कहोगे कि मां तो थोड़ी देर रुक भी सकती है, ऐसी कोई जल्दी नहीं है। बाकी यह जो दो आदमी लड़ रहे हैं, पता नहीं, क्या से क्या हो जाए? और अगर दो आदमी लड़ते रहें और कुछ से कुछ न हो, तो थोड़ी देर में तुम वहां से निराश हटते हो कि कुछ भी न हुआ।
इसलिए मैं कह रहा हूं, इसे तुम निरीक्षण करना। इससे तुम्हें पता चलेगा कि तुम्हारा कोण क्या है जीवन को देखने का? तुम चाहते क्या हो? तुम्हारी क्या है मनोदशा? इसको तुम पहचानना और तब इसे बदलना। तब देखना जहां-जहां तुम्हें लगे कि मृत्यु, हिंसा और विध्वंस के प्रति तुम्हारा रस है, उसे हटाना। और जीवन के प्रति बढ़ाना। अच्छा हो कि जब कली फूल बन रही हो, तब तुम रुक जाना। घड़ी भर वहां बैठ कर ध्यान कर लेना उस फूल बनती कली पर, क्योंकि वहां जीवन खिल रहा है। अच्छा हो कि कोई बच्चा जहां खेल रहा हो, हंस रहा हो, नाच रहा हो, वहां घड़ी भर तुम रुक जाना।
दो आदमी छुरा ले कर लड़ रहे हों, वहां रुकने से क्या प्रयोजन है? और तुम्हें शायद पता न हो और तुमने कभी सोचा भी न हो कि वे दो आदमी जो छुरा मार

रहे हैं एक-दूसरे को, उसमें तुम्हारा हाथ हो सकता है। क्योंकि तुम ध्यान देते हो। अगर भीड़ इकट्ठी न हो तो लड़ने वालों का रस भी चला जाता है। अगर कोई देखने न आए, तो लड़ने वाले भी सोचते हैं कि बेकार है; फिर देखेंगे, फिर कभी। जब भीड़ इकट्ठी हो जाती है तो लड़ने वालों को भी रस आ जाता है। जितनी भीड़ ब.ढ़ती जाती है, उतना उनका जोश गरम हो जाता है, उतना अहंकार और प्रतिष्ठा का सवाल हो जाता है।
इसलिए तुम यह मत सोचना कि तुम खड़े थे तो तुम भागीदार नहीं थे, तुम्हारी आंखों ने भी हिंसा में भाग लिया। और वह जो छुरा भोंका गया है, अगर दुनिया में कोई सच में अनूठी अदालत हो, तो उसमें छुरा मारने वाला ही नहीं, तुम भी पकड़े जाओगे, क्योंकि तुम भी वहां खड़े थे। तुम क्यों खड़े थे? तुम्हारे खड़े होने से सहारा मिल सकता है। तुम्हारे खड़े होने से उत्तेजना मिल सकती है। तुम्हारे खड़े होने से वह हो सकता है, जो न हुआ होता।
पर अपनी उत्सुकता को खोजो, और अपनी उत्सुकता को जीवन की तरफ ले जाओ।
और जहां भी तुम्हें जीवन दिखाई पड़े, वहां तुम सम्मान से भर जाना। वहां तुम अहोभाव से भर जाना। और तुमसे जीवन के लिए जो कुछ बन सके, तुम करना।
अगर ऐसा तुम्हारा भाव हो तो तुम अचानक पाओगे, तुम्हारी हजार चिंताएं
खो गईं, क्योंकि वे तुम्हारी रुग्ण-वृत्ति से पैदा होती हैं। तुम्हारे हजार रोग खो गए, क्योंकि तुम्हारे रोग, तुम विध्वंस की भावना से भरते थे। तुम्हारे बहुत से घाव मिट गए, क्योंकि उन घावों को तुम दूसरे को दुख पहुंचा- पहुंचा कर खुद भी अपने को दुख पहुंचाते थे और हरा करते थे।
इस जगत में केवल वही आदमी आनंद को उपलब्ध हो सकता है, जो अपनी तरफ से, जहां भी आनंद घटित होता हो, उस आनंद से आनंदित होता है।
लेकिन जब तुम किसी को सुखी देखते हो, तो तुम दुखी होते हो। तुम्हारी पूरी चिंता यह हो जाती है कि इस व्यक्ति को दुखी कैसे किया जाए। जान कर शायद तुम ऐसा न भी करते हो, लेकिन अनजाने यह चलता है कि तुम किसी को सुखी नहीं देख पाते। जब तुम किसी को दुखी देखते हो, तब तुम्हारे पैरों में थिरकन आ जाती है। तब तुम बड़ी सहानुभूति प्रकट करते हो। और शायद तुम सोचते हो कि तुम दुखियों के बड़े साथी हो, क्योंकि कितनी सहानुभूति प्रकट करते हो। लेकिन एक बात ध्यान रखना कि अगर तुम दूसरे के सुख में सुखी नहीं होते, तो तुम्हारा दूसरे के दुख में दुखी होना झूठा है। यह हो ही नहीं सकता। जब तुम दूसरे के सुख में सुखी नहीं होते, तो तुम दूसरे के दुख में दुखी नहीं हो सकते।
जब तुम दूसरे के सुख में दुखी होते हो, तो खोज करना अपने भीतर, तुम दूसरे के दुख में जरूर सुखी होते होगे। क्योंकि यह तो सीधा गणित है। इस गणित से विपरीत नहीं होता। तुम्हारी सहानुभूति दूसरे के लिए नहीं है, तुम्हारी सहानुभूति में तुम मजा लेते हो। दूसरा नीचे पड़ गया है आज, उसका पैर छिलके से फिसल गया है और जमीन पर चारों खाने चित्त पड़ा है। तुम्हारा चित्त बड़ा प्रसन्न है कि तुम नहीं गिरे, कोई और गिर गया है। अब तुम बड़ी शिष्टता और सभ्यता दिखला रहे हो; बड़ी सहानुभूति--उठा कर झाड़ रहे हो, उस आदमी के वस्त्रों को। लेकिन तुम्हारा हृदय प्रसन्न हो रहा है कि तुम नहीं गिरे, और यह पड़ोसी गिर गया। कितनी दफा तुमने इसे गिराना चाहा था, आज केले के छिलके ने वह काम कर दिया है। तुम जब किसी के दुख में दुख प्रकट करने जाते हो, तब जरा अपने भीतर देखना कि तुम सुखी तो नहीं हो रहे हो?
मैं एक घर में रहता था। उस घर की गृहिणी बड़ी तलाश में रहती थी कि कब, कौन, कहां मर गया! न भी हो पहचान, तो भी वह गृहिणी संवेदना प्रकट करने जाती थी! और जब भी मैंने उस गृहिणी को संवेदना प्रकट करते जाते देखा, तो उसकी चाल का मजा ही और था! मैंने पूछा भी कि मामला क्या है? कोई मर जाता है, कुछ हो जाता है, तो तू इतनी क्यों प्रसन्न हो कर जाती है? उसने कहा कि दुख में तो साथ देना ही चाहिए। मैंने कहा कि तेरी आंखों से दुख का कोई पता नहीं चलता, तेरी चाल से कुछ पता नहीं चलता। मुझे तो ऐसा लगता है कि तू प्रतीक्षा में थी कि कब कोई मरे। तेरी जल्दी, तेरा रस, यह सब शक पैदा करते हैं।
आप अपने पर ध्यान करना। जब आप किसी के दुख में दुख प्रकट कर रहे हों,
एक क्षण आंख बंद करके भीतर देखना कि रस तो नहीं आ रहा है। आपको अच्छा तो

नहीं लग रहा है, मजा तो नहीं ले रहे हैं सहानुभूति में। अगर मजा ले रहे हैं, तो इस मजे को आप समझना कि रोग है। और जब कोई सुखी दिखाई पड़े, तो क्या आपको ईर्ष्या पकड़ती है? क्या यह होता है कि दूसरा आदमी सुखी है, तो आपको कष्ट होता है? अगर कष्ट होता है, तो आपके मन में जीवन का सम्मान नहीं है।
जीवन कहीं भी खिलता हो और खुश होता हो, आपको खुश होना चाहिए।
और यह मैं इसलिए नहीं कह रहा हूं कि इससे दूसरों को लाभ होगा, यह मैं इसलिए कह रहा हूं कि इससे तुम रोग से मुक्त हो जाओगे। तुम्हारे घाव मिट जाएंगे। तुम अपने लिए दुख पैदा करना बंद कर दोगे। क्योंकि जो दूसरों के लिए दुख पैदा करता है, वह अपने ही लिए दुख पैदा कर रहा है; उसे इसका पता नहीं है। जो दूसरे के लिए सुख पैदा करता है, वह अपने लिए बड़े सुख का आयोजन कर रहा है।
अगर तुम दुखी हो तो तुम जिम्मेवार हो। और यह जिम्मेवारी तुम्हारी तभी तुम्हारे ख्याल में आनी शुरू होगी। क्योंकि हर आदमी अपने को तो सुखी करना ही चाहता है। ऐसा आदमी खोजना कठिन है, जो अपने को सुखी नहीं करना चाहता। और बड़े मजे की बात है कि पृथ्वी पर चार अरब आदमी हैं, सभी आदमी अपने को सुखी करना चाहते हैं और सभी आदमी दुखी हैं! जरूर कहीं कुछ भूल हो रही है। और भूल कुछ बड़ी है और बुनियादी है। नहीं तो चार अरब आदमी एक ही भूल को कैसे दोहराते रहेंगे? और सभी सुखी होना चाहते हैं और कोई सुखी नहीं है!
भूल यह हो रही है कि आप खुद तो सुखी होना चाहते हैं, लेकिन दूसरे को दुखी करना चाहते हैं। और जो दूसरे को दुखी करना चाहता है, वह कभी सुखी नहीं हो सकता। भूल यह हो रही है कि आप खुद तो सुखी होना चाहते हैं, लेकिन किसी को सुखी नहीं देखना चाहते हैं। और जो किसी को सुखी नहीं देख सकता, वह दुखी रहेगा, वह कभी सुखी नहीं हो सकता।
जो हम दूसरों के लिए चाहते हैं, वह हमें उपलब्ध हो जाता है। जो हम दूसरों के लिए करते हैं, वह प्रतिध्वनित हो कर हम पर बरस जाता है। यह जगत एक गूंज है। यहां सब जो तुम लुटाते हो, तुम पर ही बरस जाता है। तुम गालियां फेंकते हो, गालियां तुम पर लौट आती हैं। तुम सुख लुटाते हो, सुख तुम पर लौट आता है। यह जगत तुम्हें वही दे देता है, तुम जो इसे देने को तत्पर हो।
अगर तुमने जीवन का सम्मान किया है, तो यह सारा जगत, यह सारा अस्तित्व, तुम्हारे प्रति सम्मान से भर जाएगा। अगर तुमने जीवन का अपमान किया है, तो यह सारा अस्तित्व तुम्हारे प्रति अपमान से भर जाएगा।
और तब एक बहुत कठिन समस्या पैदा हो जाती है। अगर तुम जगत का अपमान करते हो, जीवन का अपमान करते हो, तो जगत और जीवन तुम्हारा अपमान करता है। और जब तुम्हारा अपमान जगत और जीवन करता है, तो तुम सोचते हो कि ठीक ही था मेरा दृष्टिकोण, यह जगत अपमान के ही योग्य है। अब तुम एक चक्कर में पड़ गए, जिसके बाहर आना बहुत मुश्किल हो जाएगा। अब तो तुम्हें लगेगा कि तुम्हारा यह ख्याल ठीक ही था, कि यह जगत एक दुख है। यह कोई उत्सव नहीं है, यह एक रुदन है। अब तो तुम्हें पक्का ही हो जाएगा। क्योंकि यह जगत तुम्हें दुख देगा। और तुम्हें यह ख्याल भी न आएगा कि यह दुख तुम्हारा ही बोया हुआ है, जो तुम्हारी तरफ वापस लौट रहा है।
अगर कर्म के सिद्धांत का कोई मौलिक अर्थ है, तो यह है कि तुम जो करते हो, वह तुम पर ही लौट आता है। तुम जो भी करते हो, वही तुम्हें मिल जाता है। तुम्हारा किया हुआ ही तुम्हारी संपदा बन जाती है। वही संपदा फिर तुम्हें ढोनी पड़ती है। वह संपदा दुख की है, तो तुम समझना कि तुमने जो किया है, वह दुख लाने वाला था। वह सुख की है, तो तुम समझना कि तुमने जो किया है, वह सुख लाने वाला था।
ये सूत्र महा-सुख के सूत्र हैं।
"समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों ओर से घेरे हुए है। अपने आसपास के निरंतर बदलने वाले और चलायमान जीवन पर ध्यान दो, क्योंकि यह मानवों के हृदय का ही बना है। और ज्यों-ज्यों तुम उसकी बनावट और उसका आशय समझोगे, त्यों-त्यों क्रमशः तुम जीवन का विशालतर शब्द भी पढ़ और समझ सकोगे।"
आठवां सूत्र, "समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो।"

"समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो। मनुष्यों के हृदय का अध्ययन करो, ताकि तुम जान सको कि वह जगत कैसा है, जिसमें तुम रहते हो और जिसके तुम एक अंश बन जाना चाहते हो।"
समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो--हम झांकते ही नहीं, समझ की तो बात ही दूर है। नासमझी तक से नहीं झांकते। दूसरे के हृदय में झांकने की हम झंझट नहीं लेते। सच तो यह है कि हम बिना दूसरे को समझे, दूसरे के संबंध में धारणाएं बना लेते हैं। हम अपनी धारणाओं से ही चलते हैं। हम दूसरे के हृदय में नहीं झांकते, हम पहले से ही पक्का कर लेते हैं, कौन कैसा है! फिर हम जो पक्का कर लेते हैं, उसी के अनुकूल हम तथ्य भी खोज लेते हैं। हमने हजार तरकीबें बना ली हैं, जिससे हम मानव हृदय में झांकने से बच जाते हैं। वह कष्ट हमें नहीं उठाना पड़ता, वह श्रम नहीं उठाना पड़ता।
आप किसी के पड़ोस में बैठे हैं। आप उससे पूछते हैं कि कौन हैं आप? क्या
है धर्म आपका? क्या है जाति? नाम-धाम? पता-ठिकाना? आप यह इसलिए पूछते हैं, ताकि उस आदमी में झांकने से बच सकें। अगर वह आदमी कह दे कि मैं ब्राह्मण हूं और आप भी ब्राह्मण हैं, तो आप आश्वस्त हुए, अब झांकने की जरूरत नहीं है। आप ब्राह्मण के संबंध में जानते ही हैं। लेकिन कोई ब्राह्मण दूसरे ब्राह्मण जैसा ब्राह्मण नहीं है। हर आदमी अलग है।
अगर वह आदमी कह दे कि मैं मुसलमान हूं, तो आप पक्के हो गए कि अब इससे आगे बातचीत बढ़ाना ठीक नहीं है। आदमी मुसलमान है। और मुसलमान बुरा है हिंदू के लिए। हिंदू है तो मुसलमान के लिए बुरा है। बात तय हो गई। अब इस निजी एक व्यक्ति में झांकने की कोई जरूरत नहीं है। हमने लेबल चिपका दिया है कि यह मुसलमान है। हमारे भीतर हृदय ने कह दिया है कि आदमी बुरा है। अब आगे संबंध बढ़ाना ठीक नहीं है। अगर उस आदमी ने कहा कि मैं कम्युनिस्ट हूं, तब हम सरक कर बैठ गए कि अब जरा दूर ही बैठना उचित है।
हम व्यक्तियों में झांकने से बचते हैं, हम लेबल लगा देते हैं।
कोई दो मुसलमान एक से होते हैं? कि कोई दो हिंदू एक से होते हैं? कि कोई दो कम्युनिस्ट एक से होते हैं? एक आदमी तो अकेला अपने ही जैसा होता है, दूसरा उसके जैसा कोई होता ही नहीं। लेकिन सुविधा इसमें है। क्योंकि अगर हम एक-एक को अद्वितीय मान लें, तो एक-एक का अध्ययन करना पड़ेगा। इतनी झंझट में कौन पड़े? तो हम उसका धंधा पूछ लेते हैं, व्यवसाय पूछ लेते हैं, फिर हम निश्चिंत हो जाते हैं। उससे हम तय कर लेते हैं। ऊपर-ऊपर से दो मिनट में तय हो जाता है कि दूसरा आदमी कौन है।
पूरी जिंदगी भी अध्ययन करके मुश्किल है दूसरे आदमी को जानना कि वह क्या है! हम दो मिनट में तय कर लेते हैं, उस हिसाब से चलने लगते हैं! फिर हम इमेज बना लेते हैं, प्रतिमाएं बना लेते हैं। वे भी तरकीबें हैं हमारी। आपके मन में आपकी पत्नी की एक प्रतिमा है। आपकी पत्नी के मन में आपके बाबत, अपने पति के बाबत एक प्रतिमा है। बस उसी प्रतिमा से काम चलता है! सीधे आदमी से कोई संबंध नहीं है! पत्नी जानती है कि पति को क्या करना चाहिए। अगर पति वही करता है तो ठीक है, अगर वही नहीं करता है तो गलत है। लेकिन पति क्या है, इसके समझने की उसे कोई चिंता नहीं है। सिद्धांत पहले से तय हैं। उन सिद्धांतों पर, आदमियों को हम ढांचे में बिठा देते हैं! ढांचे आदमियों के लिए नहीं हैं, आदमी ढांचों के लिए मालूम पड़ते हैं! तो वह यह नहीं देखती कि यह जो पति सामने खड़ा है, यह क्या है? पति की एक धारणा है, उस धारणा से वह जीवित है! अगर वह धारणा के अनुकूल है तो ठीक है, अगर प्रतिकूल है तो ठीक नहीं है!
लेकिन कोई भी आदमी किसी धारणा के अनुकूल, प्रतिकूल नहीं होता। प्रत्येक आदमी अपने ही जैसा होता है। सभी धारणाएं ओछी पड़ जाती हैं। सभी धारणाएं रेडीमेड कपड़ों की तरह होती हैं। वह आपके लिए नहीं बनाई गई होती हैं। सामान्य हिसाब से बनाई गई होती हैं, औसत होती हैं। और हर आदमी औसत से भिन्न होता है। कोई आदमी औसत में नहीं होता।
जैसे, हो सकता है आप अपने गांव की ऊंचाई नपवा लें, सब आदमी की ऊंचाई नाप ली जाए-- छोटे बच्चे भी हैं, बूढ़े भी हैं, लंबे लोग भी हैं, ठिगने लोग भी हैं, पांच सौ आदमी हैं--पांच सौ की ऊंचाई नाप कर पांच सौ का भाग दे दिया जाए,

तो जो आएगा, वह औसत ऊंचाई होगी। फिर आप उस औसत ऊंचाई के आदमी को खोजने जाएं, गांव में एक आदमी नहीं मिलेगा, जो उस औसत ऊंचाई का हो। क्योंकि कोई औसत होता ही नहीं। औसत तो एक झूठ है। हर आदमी अपनी ही ऊंचाई का होता है। औसत जैसी कोई चीज नहीं होती। एवरेज गणित का हिसाब है, जिंदगी का नहीं है।
तो हम सिद्धांत, प्रतिमाएं निर्मित करके उनमें जीते रहते हैं। सीधा कोई देखता ही नहीं, हृदय में कोई झांकता नहीं! हृदय में क्या हो रहा होगा, इससे किसी को प्रयोजन भी नहीं! वह जरा खतरनाक मामला भी है। क्योंकि हृदय में झांको तो आप उलझन में पड़ सकते हो। इसलिए दूर बाहर खड़े रहना अच्छा है। ज्यादा गहराई में किसी के भी उतरना खतरनाक है। क्योंकि तब दूसरे की गहराई आपको भी बदलेगी। तब इतनी आसानी से आप निपटारा न कर सकेंगे।
आपका नौकर है। आप उसके हृदय में कैसे झांक सकते हैं? झांकेंगे तो झंझट आएगी। झांकेंगे तो फिर उसके साथ नौकर जैसा व्यवहार करना मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि तब वह एक मानव हृदय है। उसके साथ नौकर जैसा व्यवहार रखना है, तो फिर आपको हृदय में नहीं झांकना चाहिए।
कभी आपने ख्याल किया है कि आप कमरे में बैठे अखबार पढ़ रहे हैं, अगर कोई अजनबी कमरे में आ जाए तो आप उसकी तरफ उठ कर खड़े हो जाएंगे, बैठने को कहेंगे। कोई परिचित आ जाए, तो आप उस पर ध्यान देंगे। नौकर कमरे में आ कर बुहारी लगा जाएगा, आपको पता ही नहीं चलेगा कि कोई आया और गया! जैसे नौकर कोई मनुष्य नहीं है, एक यंत्र है। काम फंक्शनल है, उसका काम से संबंध है। उसके हृदय में झांकना खतरनाक है। क्योंकि उसकी मां बीमार है, उसके बच्चे को शिक्षा चाहिए। उसके हृदय में भी वही सब घटित होता है, जो किसी मनुष्य के हृदय में घटित होता है।
अगर आप उसके हृदय में झांकते हैं, तो आप झंझट में पड़ेंगे। आपको कुछ करना पड़ेगा। तब आप भी सोच में पड़ जाएंगे कि पचास रुपए वेतन इस आदमी को हम देते हैं, क्या होता होगा? इसकी मां है बूढ़ी, इसका बच्चा है, इसकी पत्नी है, घर है, पचास रुपए में यह कैसे जीता होगा? अगर इसके हृदय में झांकेंगे तो आपको किसी न किसी दिन इस आदमी की जगह अपने को रख कर सोचना पड़ेगा कि अगर मुझे पचास रुपए मिलें, तो क्या होगा?
इससे उचित है कि भीतर हृदय में न उतरा जाए, दूर रहा जाए। इतना ही समझा जाए कि यह आदमी काम करता है, पचास रुपए काम के दिए जाते हैं। इससे ज्यादा इस आदमी के संबंध में समझदारी खतरनाक है। इसलिए हमने दीवालें खड़ी कर ली हैं। हम किसी के हृदय में नहीं झांकते, हम दूर-दूर रहते हैं। हम सब एक-दूसरे से अछूत की तरह रहते हैं।
यह सूत्र कहता है, "समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो।"
क्योंकि जब तक तुम मानव के हृदय में झांकना न सीखोगे, तब तक तुम पिघलोगे भी नहीं, गलोगे भी नहीं, तब तक तुम मिटोगे भी नहीं, तब तक तुम्हारे अहंकार से छुटकारा बहुत मुश्किल है। तुम दूसरे के हृदय में बहो, तो धीरे- धीरे तुम्हारा अहंकार अपने आप गल जाएगा। क्योंकि तुम पाओगे कि तुम्हारा जैसा ही हृदय दूसरों में भी धड़कता है। तब तुम पाओगे कि ठीक तुम ही, दूसरे के भीतर भी बैठे हुए हो। तब तुम्हें अपना जो दंभ है, वह व्यर्थ दिखाई पड़ने लगेगा। तब तुम्हें यह भी दिखाई पड़ना साफ हो जाएगा, यह भी दिखाई पड़ने लगेगा कि व्यक्ति-व्यक्ति के जो फासले हैं, वह बहुत ऊपरी हैं। भीतर शायद एक ही महा-हृदय धड़क रहा है। अगर हृदय में झांकना तुम सीख लो तो हृदय की जो शुद्धतम गहराई है, वह तुम्हें दिखाई पड़नी शुरू हो जाएगी। तब तुम पाओगे कि एक ही हृदय धड़क रहा है बहुत हृदयों में। फेफड़े बहुत होंगे, हृदय शायद एक ही है। और यह प्रतीति तुम्हें परमात्मा की तरफ ले जाने में एक बहुत बड़ा कदम सिद्ध होगी।
"मनुष्यों के हृदय का अध्ययन करो, ताकि तुम जान सको कि यह जगत कैसा है, जिसमें तुम रहते हो और जिसके तुम एक अंश बन जाना चाहते हो। बुद्धि निष्पक्ष होती है। न कोई तुम्हारा शत्रु है और न कोई मित्र। सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं। तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है, जिसे तुम्हें हल करना है, चाहे इस हल करने में युगों का समय लग जाए। क्योंकि

मानव को समझना तो है ही। तुम्हारा मित्र तुम्हारा ही एक अंग बन जाता है, तुम्हारा ही एक विस्तृत रूप हो जाता है, जिसे समझना कठिन होता है।" मनुष्यों के हृदय का अध्ययन अगर करना है, तो निष्पक्ष होना जरूरी है, नहीं तो अध्ययन न हो सकेगा। अगर तुम्हारे पक्ष पूर्व से ही तय हैं, तो तुम जो भी खोज लोगे, वह तुम्हारी ही मान्यता का पुनः आविष्कार होगा, वह तुम्हारी ही धारणा की पुनरुक्ति होगी। तुम अपने को ही ठीक सिद्ध कर लोगे। हम इसी तरह जीते हैं। हमारा पक्ष तो पहले से तय होता है, फिर हम सत्य की खोज करने निकलते हैं। तो यह सत्य की खोज तो पहले से ही झूठ हो गई। अगर तुम्हारा पक्ष पहले से ही तय है, तो बात ही व्यर्थ हो गई।
राजस्थान विश्वविद्यालय में एक अध्यापक हैं, वे मृत-आत्माओं और पुनर्जीवन की खोज करते हैं। तो कभी कोई उन्हें मुझसे मिलने लिवा लाया था। तो उन्होंने कहा कि मैं वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूं कि पुनर्जन्म होता है।
तो मैंने उनको कहा कि तुमने मुझे आते से ही मुश्किल में डाल दिया। क्योंकि तुम कहते हो कि वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहता हूं कि पुनर्जन्म होता है! इसका एक मतलब तो यह हुआ कि तुम तो मान ही चुके हो कि पुनर्जन्म होता है, और अब तुम वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करना चाहते हो कि पुनर्जन्म होता है। तो तुम्हारा पक्ष तो पहले से तय है। उचित हो, अगर तुम सच में ही वैज्ञानिक बुद्धि के हो, तो तुम यह कहो कि मैं जानना चाहता हूं वैज्ञानिक रूप से कि पुनर्जन्म होता है या नहीं होता है। तुम तो कहते हो कि मैं सिद्ध करना चाहता हूं! तो इसका अर्थ हुआ कि यह तो तय ही है तुम्हारे लिए कि पुनर्जन्म होता है! अब रह गई बात वैज्ञानिक रूप से सिद्ध करने की, तो वह तुम करके दिखा दोगे। क्योंकि तुम वही घटनाएं खोज लोगे, जो सिद्ध करती हैं; और वे घटनाएं छोड़ दोगे, जो सिद्ध नहीं करतीं। तुम मतलब की बातें छांट लोगे, और गैर-मतलब की छा--ेड़ दोगे। तब तो आदमी कुछ भी सिद्ध कर सकता है।
एक आदमी ने किताब लिखी है, जिसमें सिद्ध किया है कि तेरह तारीख अपशकुन है। और वैज्ञानिक रूप से सिद्ध किया है कि तेरह तारीख अपशकुन है। उसने क्या किया है? उसने तेरह तारीख को दुनिया भर की अदालतों में जितने मुकदमे चलते थे, वे सब इकट्ठे कर लिए हैं। तेरह तारीख को कितने लोगों को फांसी लगती है, वह इकट्ठी कर ली है। तेरह तारीख को कितने एक्सीडेंट होते हैं, वे इकट्ठे कर लिए हैं। तेरह तारीख को कितने लोग मरते हैं, वह इकट्ठा कर लिया है। तेरह तारीख को जो लोग पैदा होते हैं, उनमें से कितने लोग बीमार रहते हैं, वह इकट्ठा कर लिया है। उसने सब इकट्ठा कर लिया है उपद्रव। उसने एक भारी किताब लिखी है। अगर आप भी किताब पढ़ेंगे, तो आप भी डर जाएंगे कि तेरह तारीख से बचना चाहिए।
लेकिन यह चौदह तारीख के बाबत भी इतने ही तथ्य उपलब्ध हैं। और पंद्रह
के बाबत भी इतने ही उपलब्ध हैं। लेकिन उसने उसकी कोई फिक्र नहीं की, बस तेरह के उपलब्ध कर लिए! और तेरह को दुर्घटनाएं ही नहीं होतीं, सुघटनाएं भी होती हैं, वह उसने छोड़ दीं! तेरह को असफलताएं ही नहीं होतीं, सफलताएं भी होती हैं। और तेरह को मृत्यु ही नहीं होती, जन्म भी होते हैं। तेरह को फांसी ही नहीं लगती, तेरह को मुकदमे खारिज भी होते हैं और फांसियां छूटती भी हैं। लेकिन वह उसने छोड़ ही दी हैं! और यही सब चौदह को भी होता है। लेकिन किताब पढ़ कर तो आप भी थोड़े घबड़ा जाएंगे, क्योंकि इतने तथ्य उसने इकट्ठे किए हैं कि तेरहवीं मंजिल से कितने लोग गिर कर मर जाते हैं। बारहवीं से भी मरते हैं। कोई मरने वाला तेरह और चौदह, बारह को खोजने जाता है?
उसकी किताब का यह परिणाम हुआ कि अमरीका में होटलों में तेरह नंबर की मंजिल समाप्त कर दी। अमरीका की बड़ी होटलों में आपको बारह नंबर की मंजिल मिलेगी, फिर सीधी चौदह नंबर की! क्योंकि तेरह पर कोई रुकने को राजी नहीं होता कि कौन झंझट ले, जब तेरह में इतना उपद्रव हो रहा है! तेरह का आंकड़ा ही खराब है। मकान लोग बनाते हैं तो तेरहवें नंबर की मंजिल को छोड़ देते हैं। नंबर नहीं रखते तेरह का। नहीं तो कोई उसको खरीदता ही नहीं, वह खाली रह जाता है हिस्सा!

यह विक्षिप्तता पैदा हो सकती है, अगर पक्ष पहले से तय है।
यह सूत्र कहता है कि अगर सच में तुम मनुष्यों के हृदय का अध्ययन करना चाहते हो, तो तुम निष्पक्ष रहना।
और बुद्धि का लक्षण निष्पक्षता है। अगर तुम बुद्धिमान हो, तो निष्पक्ष होओगे। अगर तुम पक्षपातपूर्ण हो तो तुममें बुद्धि नहीं है। बुद्धि का अर्थ ही है कि जानने के पहले तय नहीं करेंगे। जब तक पूर्णता से कोई बात सिद्ध न हो जाए, तब तक हम कोई पक्ष न लेंगे, तब तक हम बीच में ही खड़े रहेंगे। हम इस पार या उस पार कोई निर्णय न करेंगे।
बुद्धिमान होना कठिन है, क्योंकि उसके लिए प्रतीक्षा चाहिए और धैर्य चाहिए। बुद्धिहीन होना बहुत आसान है, उसमें दिक्कत ही नहीं है। जल्दी से कहीं भी सम्मिलित हो जाता है कोई आदमी। अगर तुम निष्पक्ष हो तो तुम्हें ख्याल करना प.ड़ेगा कि न कोई तुम्हारा शत्रु है और न कोई मित्र। सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं।
यह सूत्र बड़ा गजब का है, "सभी समान रूप से तुम्हारे शिक्षक हैं।" तुम्हारा मित्र भी तुम्हें कुछ सिखा रहा है, तुम्हारा शत्रु भी तुम्हें कुछ सिखा रहा है। और कई बार मित्र से भी ज्यादा शत्रु सिखाता है। बहुत बार शत्रु से तुम इतना सीख सकते हो, जिसका हिसाब नहीं। लेकिन अगर तुम्हारे मन में यह ख्याल हो कि शत्रु भी शिक्षक है और मित्र भी, तब तुम शत्रु के हृदय में भी उतर सकते हो। तब शत्रु का हृदय भी तुम्हारे लिए बंद नहीं होगा। तब तुम्हारे लिए जगत में कोई चीज बंद नहीं है, सभी चीजें खुली हैं, क्योंकि तुम खुले हो।
"तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है, जिसे तुम्हें हल करना है।"
आखिर कोई तुम्हारा शत्रु क्यों है? हम तो आमतौर से तय कर लेते हैं, क्योंकि वह आदमी बुरा है, इसलिए शत्रु है। आप अच्छे आदमी हैं, वह आदमी बुरा है, इसलिए आपका शत्रु है। और यही वह भी मानता है कि वह अच्छा आदमी है और आप बुरे आदमी हैं, इसलिए उसके शत्रु हैं।
नहीं, अपने को अच्छा मान कर, दूसरे को बुरा मान कर आप हल नहीं कर रहे हैं कुछ भी। समझ भी नहीं बढ़ रही है आपकी। आप वहीं खड़े हैं, जहां आप सदा से खड़े थे। वह शत्रु है आपका, तो समझने की कोशिश करें कि क्यों शत्रु है? क्या बात है कि वह आपका शत्रु है?
उसकी शत्रुता में आपका होना भी सम्मिलित है। आप जिस ढंग के हैं, वह भी सम्मिलित है। वह जिस ढंग का है, वह भी सम्मिलित है। यह एक रहस्य है।
यह सूत्र कहता है, तुम्हारा शत्रु एक रहस्य बन जाता है, एक मिस्ट्री, जिसे तुम्हें हल करना है।
इसे तुम हल करो। और यह तभी हल हो सकेगा, जब तुम निष्पक्ष हो।
जीसस ने मरते वक्त सूली पर कहा है, क्षमा कर देना इन सबको जो मुझे सूली
पर चढ़ा रहे हैं, क्योंकि इन्हें पता ही नहीं कि ये क्या कर रहे हैं! हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना!
यह है शत्रु के हृदय में झांकना। जीसस मर रहे हैं, सूली पर चढ़ाए जा रहे हैं, फांसी लगने के करीब है, और उनसे कहा जाता है कि कोई प्रार्थना आखिरी तुम्हें परमात्मा से करनी हो तो कर लो, क्योंकि आखिरी क्षण आ गया है। तो क्या प्रार्थना जीसस ने की? गजब की प्रार्थना, मनुष्य-जाति के इतिहास में कभी किसी ने इतनी महत्वपूर्ण प्रार्थना नहीं की। जीसस ने प्रार्थना की कि हे पिता, एक ही बात मुझे तुझसे कहनी है, कि इन सबको माफ कर देना जो मुझे सूली लगा रहे हैं, क्योंकि इन्हें पता ही नहीं कि ये क्या कर रहे हैं! ये अज्ञान-वश कर रहे हैं, ये क्षमा योग्य हैं। ये भूल में कर रहे हैं। ये सोचते हैं कि मैं इनका शत्रु हूं, इसलिए कर रहे हैं। ये सोचते हैं कि मैं बुरा आदमी हूं, इसलिए कर रहे हैं। ये सोचते हैं कि मैं नुकसान पहुंचा रहा हूं, इसलिए कर रहे हैं। बाकी ये नासमझ हैं, और इनको मेरी फांसी के लिए दंड मत देना।
यह शत्रु के हृदय में झांकना है। यह निष्पक्ष भाव है। नहीं तो जो आपको सूली लगा रहा है, उसके लिए आप ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं? आप तो प्रार्थना करते कि इन सबको जड़-मूल से ही नष्ट कर देना, नरक में डाल देना।

और ऐसा नहीं कि आप ही ऐसा करते हैं, ऐसे ऋषि तक हो गए हैं, उनको हम ऋषि
भी कहते है, जो अभिशाप दे देते हैं! अगर दुर्वासा होते जीसस की जगह, तो आप सोच सकते हैं कि क्या होता? थोड़ी कल्पना करिए--सारा जगत नरक में पड़ा होता! हम ऐसे व्यक्तियों को भी ऋषि कह देते हैं! उसका जिम्मा ऋषियों पर नहीं है, हम पर है। हमें समझ में नहीं आ रहा है कि हम क्या कर रहे हैं। हम कहते हैं कि दुर्वासा ऋषि ने अभिशाप दे दिया। ऋषि और अभिशाप दे सकता है! तो फिर आपमें और ऋषि में फर्क क्या है? और अगर ऋषि अभिशाप दे सकता है, तो आप क्यों कंजूसी कर रहे हैं? अभिशाप दें और ऋषि हो जाएं।
लेकिन जो दुर्वासा को ऋषि कह रहे हैं, ये अपने संबंध में खबर दे रहे हैं, दुर्वासा के संबंध में नहीं। यह अपने संबंध में खबर दे रहे हैं। इनको दुर्वासा तक में ऋषि दिख जाता है! उसका अर्थ है, इनको ख्याल ही नहीं है कि विध्वंस, घृणा और हिंसा, इनसे ऋषित्व का क्या संबंध हो सकता है?
निष्पक्ष जिसका मन हो, शत्रु भी उसे एक पहेली है। चाहे इसे हल करने में युगों का समय लग जाए, तो भी कोई हर्ज नहीं। जल्दी मत करना, निष्पक्ष रहना। जल्दी के कारण पक्ष मत बनाना, चाहे कितना ही समय लग जाए; मानव को समझना तो है ही।
"तुम्हारा मित्र तुम्हारा एक अंग बन जाता है, तुम्हारा ही एक विस्तृत रूप हो जाता है, जिसे समझना कठिन होता है।"
शत्रु को समझना कठिन है, क्योंकि वह एक पहेली है। मित्र को भी समझना कठिन है, क्योंकि वह भी एक पहेली है! शत्रु को समझना कठिन है, क्योंकि वह बहुत दूर खड़ा हो जाता है। मित्र को समझना कठिन है, क्योंकि वह बहुत पास आ जाता है।
आप अपने मित्रों को भी नहीं समझते। आप फिक्र ही नहीं करते कि किसी को समझना है; कि मानव हृदय एक किताब है, जिसे खोलना है और पढ़ना है; कि मानव हृदय एक सितार है, जिसे सीखना है और बजाना है; कि मानव हृदय एक बीज है, जिसे भूमि देनी है, प्रकाश और पानी देना है और अंकुरित करना है!
नहीं, मानव हृदय के संबंध में हम कुछ सोचते ही नहीं।
ये दो सूत्र ख्याल रखें, "समग्र जीवन का सम्मान करो, जो तुम्हें चारों
ओर से घेरे हुए है। और समझपूर्वक मानव हृदय में झांकना सीखो।"
ये तुम्हें परम हृदय, परमात्मा के हृदय तक ले चलने वाली सीढ़ियां बन सकते हैं।

साधना-सूत्र
चौदहवां प्रवचन

अंतरात्मा का सम्मान

9. अपनी अंतरात्मा का पूर्णरूप से सम्मान करो।

क्योंकि तुम्हारे हृदय के द्वारा वह प्रकाश प्राप्त होता है,
जो जीवन को आलोकित कर सकता है
और उसे तुम्हारी आंखों के समक्ष स्पष्ट कर सकता है।
समझने में कठिन केवल एक ही वस्तु है--
स्वयं तुम्हारा अपना हृदय।
जब तक व्यक्तित्व के बंधन ढीले नहीं होते,
तब तक आत्मा का गहन रहस्य खुलना आरंभ नहीं होता है।
जब तक तुम उससे अलग एक ओर खड़े नहीं होते,
तब तक वह अपने को तुम पर प्रकट नहीं करेगा।
तभी तुम उसे समझ सकोगे और उसका पथ-प्रदर्शन कर सकोगे, उससे पहले नहीं।
तभी तुम उसकी समस्त शक्तियों का उपयोग कर सकोगे
और उन्हें किसी योग्य सेवा में लगा सकोगे, उससे पहले नहीं।
जब तक तुम्हें स्वयं कुछ निश्चय नहीं हो जाता,
तुम्हारे लिए दूसरों की सहायता करना असंभव है।
जब तुमको आरंभ के पंद्रह नियमों का ज्ञान हो चुकेगा
और तुम अपनी शक्तियों को विकसित
और अपनी इंद्रियों को उन्मुक्त करके ज्ञान-मंदिर में प्रविष्ट हो जाओगे,
तब तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम्हारे भीतर एक स्रोत है,
जहां से वाणी मुखरित होगी।
ये बातें केवल उनके लिए लिखी गयी हैं,
जिनको मैं अपनी शांति देता हूं और जो लोग,
जो कुछ मैंने लिखा है,
उसके बाह्य अर्थ के अतिरिक्त उसके भीतरी अर्थ को भी साफ समझ सकते हैं।

हजारों-हजारों वर्ष की धारणाओं ने तुम्हारे मनों को इस भांति विकृत
कर दिया है, कि जो भी तुम देखते हो, वह निसर्ग का सत्य नहीं होता, तुम्हारी अपनी धारणाओं से देखा गया विकृत रूप होता है। फिर उससे तुम जो भी निर्णय लेते हो, वे भ्रांति में ले जाते हैं।
और जीवन को बदला जा सकता है निसर्ग की सहायता से, निसर्ग के विपरीत नहीं। क्योंकि तुम निसर्ग से ही निर्मित होते हो, उसके विपरीत बहने का कोई भी उपाय नहीं है।
तुम जिस प्रकृति में खड़े हो, उसको ही संस्कारित किया जा सकता है। उस प्रकृति के नियमों के ही माध्यम से तुम उसके पार भी जा सकते हो। सीढ़ी के सहारे ही आदमी पार भी चला जाता है। रास्ते के सहारे ही आदमी मंजिल तक पहुंच जाता है, रास्ते को छोड़ देता है। लेकिन रास्ते के विपरीत चल कर कोई मंजिल तक नहीं पहुंचता।
लेकिन तर्क में भ्रांति हो सकती है। अगर मैं आपसे कहूं कि यह रास्ता मंजिल तक पहुंचा देगा, लेकिन ध्यान रखना, मंजिल पर जब पहुंचोगे तो इस रास्ते को छोड़ देना होगा; क्योंकि अगर तुमने रास्ते को पकड़ लिया तो मंजिल को नहीं पहुंच सकोगे। तो इसका अर्थ यह भी हो सकता है, तुम यह भी सोच सकते हो, कि जिस रास्ते को अंत में छोड़ ही देना है, उसे पहले ही क्यों न छोड़ दिया जाए। लेकिन तब तुम मंजिल तक कभी न पहुंच सकोगे।
रास्ते को पकड़ना भी होगा और छोड़ना भी होगा। प्रारंभ में पकड़ना होगा, अंत में छोड़ना होगा।

लेकिन इसका उलटा अर्थ दो तरह से हो सकता है। एक तो यह कि रास्ते को पकड़ें ही क्यों, जब उसे छोड़ना है। यह तर्कयुक्त लगता है, कि जो चीज छोड़ ही देनी है, उसे पकड़ना ही क्यों? लेकिन जिसे तुमने पकड़ा ही नहीं है, उसे तुम छोड़ न पाओगे। और बिना छोड़े तुम मंजिल तक न पहुंचोगे। इसका दूसरा उपद्रव भी संभव है। और वह यह कि जिस रास्ते को पकड़ा है, उसको छोड़ेंगे नहीं। जब पकड़ ही लिया है तो फिर छोड़ना क्या? तब भी तुम मंजिल तक न पहुंच पाओगे। रास्ता मंजिल तक ले जाता है, मंजिल में नहीं ले जाता। और जब तुम रास्ते को छोड़ देते हो, तो मंजिल में प्रवेश होता है।
सीढ़ियां छत तक ले जाती हैं, छत में नहीं ले जातीं। अगर तुम सीढ़ियों पर
ही खड़े रहो तो तुम छत के पास पहुंच गए, लेकिन छत पर नहीं पहुंचे। लेकिन सीढ़ियों को अगर तुम पहले ही छोड़ दो, तो तुम छत के पास भी न पहुंच सकोगे। सीढ़ियां छोड़नी पड़ती हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि तुम सीढ़ियों के दुश्मन हो जाओ। सीढ़ियां पकड़नी पड़ती हैं, इसका यह अर्थ नहीं कि सीढ़ियों के तुम प्रेमी हो जाओ। सीढ़ियों का उपयोग करना है।
निसर्ग सीढ़ी है, वहां तुम खड़े हो। इस निसर्ग के लिए यह सूत्र है। पहला सूत्र था, जीवन का सम्मान करो। वह निसर्ग का सम्मान है। और उसे समझो, अगर पार जाना है। पार जाना है जरूर। क्योंकि निसर्ग में ही रह कर तुम परम आनंद को उपलब्ध न हो सकोगे। निसर्ग में सुख और दुख दोनों होंगे।
निसर्ग द्वंद्व है, वह द्वंद्व पर ही खड़ा है। वहां सुख भी मिल सकता है, दुख भी मिलेगा। और जिस अनुपात में तुम सुख चाहोगे, उसी अनुपात में दुख मिलेगा। और जिस अनुपात में तुम सुख पाने में समर्थ हो जाओगे, उसी अनुपात में तुम दुख पाने में भी समर्थ हो जाओगे। निसर्ग तो द्वंद्व है। और द्वंद्व के पलड़े सदा समान बने रहते हैं, समतुल रहते हैं। नहीं तो निसर्ग विकृत हो जाए, अस्तव्यस्त हो जाए।
तो तुम एक तरफ जो कमाते हो, उससे विपरीत भी तुम कमा रहे हो। अगर तुम यश चाहते हो तो अपयश तुम्हारे साथ ही बढ़ रहा है। वह साथ ही चलेगा। अगर तुम स्वास्थ्य चाहते हो तो बीमारी तुम्हारे साथ ही खड़ी है। अगर तुम जीवन चाहते हो तो तुम्हें मृत्यु को भी स्वीकार करना होगा। निसर्ग में रह कर सुख-दुख दोनों मिलेंगे। वह द्वंद्व है। पार तो जाना ही है, क्योंकि द्वंद्व ही तो उपद्रव है। और उस घड़ी को तो उपलब्ध करना है, जहां द्वंद्व खो जाए।
जहां सुख-दुख दोनों खो जाते हैं, उस घड़ी को हमने आनंद कहा है, उस घड़ी को हमने शांति कहा है, उस घड़ी को हमने मुक्ति कहा है। मुक्ति का अर्थ है, द्वंद्व के बाहर। जहां दो नहीं दबाते, जहां दोनों तरफ से विपरीत तुम्हें नहीं कसते। जहां विपरीत तुम्हें खींचते नहीं। जहां किनारे खो जाते हैं और नदी सागर में लीन होती है। किनारों के सहारे ही लेकिन नदी सागर तक आती है। इसलिए किनारे मित्र हैं और सागर तक उनका उपयोग करना है। लेकिन किनारे इतने मित्र नहीं हैं कि सागर में गिरने से तुम रुक जाओ और किनारों को पकड़ कर ठहर जाओ।
तो निसर्ग का सम्मान, जीवन का सम्मान। और जीवन के नियमों का समझपूर्वक उपयोग।
एक मित्र मेरे पास आए। युवा हैं, स्वभावतः स्त्रियों में रस होगा। लेकिन हजारों साल की मन में धारणा है। बचपन से साधु-सत्संग में पड़ गए होंगे, तो ख्याल भी आया कि यह पाप है। जितना ख्याल आया कि स्त्री के प्रति रस लेना पाप है, उतना ज्यादा रस बढ़ता गया। स्त्रियों से भागने भी लगे। लेकिन जितना भागने लगे, उतना उद्दाम वेग होने लगा। भीतर दबाने लगे वासना को, तो वासना और भी नए-नए रूपों में खड़ी होने लगी। दिन में विचार; रात में स्वप्न; सब वासना से भर गए। फिर किसी महात्मा के पास गए, तो महात्मा ने कहा कि स्त्री में मां को देखो। तो बड़ी मुश्किल थी, कैसे स्त्री में मां को देखो! और वह जो प्रबल वेग था वासना का, वह धक्के मार रहा है। तो महात्मा ने सहायता के लिए उनको कहा कि फिर तुम ऐसा करो, अगर स्त्री में मां को नहीं देख सकते, तो तुम देवी की पूजा करो। देवी में मां को देखो। और धीरे-धीरे जब

तुम्हारा देवी में भाव दृढ़ हो जाएगा, तो तुम देवी को ही सभी स्त्रियों में भी देख सकोगे।
महात्मा का प्रयोजन ठीक ही था। सहायता की ही इच्छा थी। लेकिन बिना समझ के सहायता भी नहीं की जा सकती। और जीवन जटिल है। और जीवन के नियमों को समझे बिना आप शुभ इच्छा से भी कुछ सहायता करें, तो भी अशुभ ही फलित होगा। परिणाम आप सोच भी नहीं सकते। परिणाम यह हुआ कि उस व्यक्ति ने देवी की पूजा शुरू कर दी और देवी का चित्र अपने साथ रखने लगा। जो परिणाम न महात्मा ने सोचा था, न महात्मा कभी सोच पाते हैं। परिणाम यह हुआ कि अब देवी के प्रति ही वासना खड़ी हो गई। और रात स्वप्न में देवी से ही काम-संबंध स्थापित होने लगा। तो बेचारा घबड़ा गया। जो काम को ही पाप समझता था, वह देवी के साथ कामवासना का भाव आ जाए, तो भयंकर पाप से भर गया कि अब तो मैं मरा, अब तो मेरे बचाव का कोई उपाय ही न रहा। उस व्यक्ति ने मुझे आ कर कहा कि मैं ऐसा पाप कर रहा हूं कि जिसका कोई हिसाब नहीं। मैं देवी का ख्याल करता हूं तो भी कामवासना ही उठती है!
तो मैंने उसको कहा कि जिनसे तुमने सहायता ली है, उनके पास समझ नहीं है। यही होने वाला था। कामवासना को समझ कर उससे पार हुआ जा सकता है। यह तो नासमझी का काम है कि स्त्रियों को मां समझ लो। समझ लेने से क्या होगा? कि देवी के प्रति आरोपित कर लो अपने को! तो तुम्हारे भीतर जो है, वही तो आरोपित होगा। जो तुम्हारे भीतर नहीं है, वह आरोपित कहां से होगा। देवी थोड़े ही सवाल है, सवाल तो तुम हो। भीतर तो कामवासना धक्के मार रही है। और कामवासना इतनी प्रबल है कि तुम जहां भी जाओगे, वह वहीं आरोपित हो जाएगी। तो एक पाप से छूटने को और बड़ा पाप हो गया। और अब वह व्यक्ति इतना दीन और दुर्बल हो गया, क्योंकि उसे लग रहा है कि देवी नाराज हो जाएगी। मैंने कहा, कोई देवी नाराज नहीं होगी। देवी तुम्हारे महात्माओं से ज्यादा समझदार है। तुम फिकर न करो, कोई नाराज नहीं हो जाएगा।
लेकिन अब इस आदमी की पीड़ा आप समझ सकते हैं कि यह आदमी नरक में पड़ गया है। और कोई भी महात्मा को जिम्मेदार नहीं ठहराएगा कि उसने इसको नरक में डाला है। उसने ही डाला है। और जिस महात्मा ने इसको इस नर्क में डाला है, वह खुद भी इसी तरह के नर्क में होगा। नहीं तो इस तरह की समझ, इस तरह की सहायता, जो बिल्कुल नासमझी से भरी है और अज्ञान से भरी है, कभी भी पैदा नहीं हो सकती।
अब मैं इस व्यक्ति को क्या कहूं? मैं इसको नहीं कहूंगा कि तू ऐसा कर। मैं इससे कहूंगा कि बजाय इस तरह की विकृतियों में पड़ने के, तू किसी स्त्री से प्रेम कर। और घबरा मत। और अपने प्रेम को स्वाभाविक कर। यह देवी वाला प्रेम घातक है, क्योंकि अस्वाभाविक है और कल्पनाजन्य है। तू वास्तविक स्त्री के प्रेम में ही उतर और घबरा मत। और प्रेम में ही उतर कर प्रेम को समझ कि प्रेम क्या है? तो तेरा सारा प्रेम पहले तो प्राकृतिक होना जरूरी है विकृति से। क्योंकि प्रकृति के सहारे फिर पार जाया जा सकता है। फिर तू प्रेम को ध्यान बना। और फिर प्रेम को तू जितना शुद्ध कर सके, उतना शुद्ध कर। और जितना प्रेम को ध्यानपूर्ण कर सके, उतना ध्यानपूर्ण कर। और प्रेम तेरे जीवन में पाप की तरह न रहे, पुण्य की तरह हो जाए, उस भाव से जी।
और अपराध मत समझ! क्योंकि जो वासना है, वह भी प्रभु-प्रदत्त है। वह भी परमात्मा ने तुझे दी है। और कोई महात्मा, जो परमात्मा ने दिया है उसे छीन नहीं सकता। कोई उपाय नहीं है। जो तुझे प्रकृति से मिला है, उसका तू सम्यक उपयोग कर और उससे पार उठ। लेकिन पार दुश्मन की तरह तू न उठ सकेगा। ये दुश्मनी की तो इस तरह के परिणाम होंगे। दुश्मनी कहां तक पहुंच जाती है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
विक्टोरिया के जमाने में इंग्लैंड में घरों में लोग कुर्सियों की टांग पर भी कपड़ा बांधते थे, कि नंगी टांग से कामवासना पैदा होती है! कुर्सी की टांग! अगर किसी घर में आप जाते और आपको नंगी कुर्सी मिल जाती, तो आप समझते कि यह आदमी अशोभन काम कर रहा है, कुर्सी की टांग नंगी है! विक्टोरिया बहुत सख्त थी इस मामले में। यह अनीति का काम था। तो घर-घर में लोग कुर्सी

रखते थे और उसमें टांग पर कपड़ा रखते थे। अब टांग पर कपड़ा डाला हो तो ज्यादा कामवासना का ख्याल आता है कि यह क्या बेवकूफी है?
लेकिन ऐसा कोई विक्टोरिया के जमाने में था ऐसा नहीं, ऐसे लोग सब तरफ मौजूद हैं। अभी भी इंग्लैंड में स्त्रियों का एक समाज है--वे स्त्रियां जरूर ही प्रेम से वंचित रही होंगी और उनके जीवन में प्रेम का कोई अनुभव न होगा--उनका एक समाज है, वह उसका प्रचार करता है कि सड़क पर जानवर भी कपड़े में निकाले जाने चाहिए! कुत्ते, घोड़े, बैल, ये नंगे नहीं होने चाहिए। क्योंकि नंगे होने से कामवासना पैदा होती है! अगर आपको बैल को देख कर यह ख्याल भी आता है कि बैल नंगा है, तो इसका मतलब है कि आप रुग्ण हैं। आपके भीतर कोई रोग है, आप स्वस्थ नहीं हैं। नहीं तो यह कोई सवाल नहीं है। अगर आप स्वस्थ होते तो मनुष्य को भी नग्न देख कर आपको कोई तकलीफ न होगी। अगर आप अस्वस्थ हों तो कुर्सी को भी नग्न देख कर तकलीफ हो सकती है। वह आपके अस्वस्थ होने का प्रतीक है।
लेकिन आप जानवरों को भी कानून बना कर कपड़े पहना सकते हैं, कुर्सियों
को भी पहना सकते हैं। लेकिन यह जो मन काम में लगा हुआ है, यह मन निसर्ग के प्रतिकूल जा रहा है। और यह मन और भी जाल में पड़ जाएगा। और यह मन हिम्मत खो रहा है, और अपराधी बन जाएगा।
एक युग था इस मुल्क में कि हमने कोणार्क, खजुराहो, भुवनेश्वर और पुरी
के मंदिर बनाए। बड़े हिम्मतवर लोग रहे होंगे। शानदार लोग थे, प्रकृति को पूरा स्वीकार किया था। मंदिर के बाहर की दीवाल पर नग्न चित्र खोदे थे, मैथुन-चित्र खोदे थे। संभोग की मूर्तियां बनाई थीं, मंदिर के द्वार पर, मंदिर की दीवाल पर। बहुत हिम्मतवर लोग रहे होंगे, बड़े शानदार लोग रहे होंगे। जीवन की ऐसी स्वीकृति थी कि मंदिर भी प्रकृति के ही भीतर था। मंदिर की बाहर की दीवाल पर प्रकृति थी, और मंदिर के भीतर की दीवाल पर परमात्मा था।
और ख्याल यह था इन खजुराहो और कोणार्क के मंदिर बनाने वालों का, कि जब
तक तुम्हारा बाहर की दीवालों में रस है, तुम भीतर प्रवेश न कर पाओगे। तो अपने रस को बाहर की दीवाल पर पूरा कर लो, इन मैथुन-चित्रों पर ध्यान कर लो। और जिस दिन तुम्हें बाहर की दीवाल में कुछ भी रस न रह जाए, और तुम बाहर की दीवाल से ऐसे गुजर जाओ, जैसे वहां कोई चित्र नहीं है, उसी दिन तुम समझना कि अब भीतर प्रवेश के अधिकारी बने, तो तुम भीतर आ जाना। लेकिन मंदिर की बाहर की दीवाल से बच कर भीतर तुम न आ सकोगे। अगर तुम्हारा रस मंदिर की बाहर की दीवाल पर है, तो तुम भीतर भी आ जाओगे, तो भी तुम्हारे मन में बाहर की दीवाल ही चलती रहेगी। उसको दबाने की जरूरत नहीं है।
मंदिर के बाहर की दीवाल पर मैथुन-चित्र खोदना, बड़े अदभुत मनोवैज्ञानिकों का काम रहा होगा। उन्होंने समझा होगा। लेकिन फिर एक कमजोरी इस मुल्क में आई। एक नपुंसकता का लंबा युग आया। मुल्क गुलाम हुआ। और इसने सारी हिम्मत खो दी। तो आखिर में परिणाम यह हुआ कि महात्मा गांधी और पुरुषोत्तमदास टंडन ने एक सुझाव रखा कि खजुराहो, और पुरी, और कोणार्क के मंदिरों को मिट्टी से ढांक कर दबा दिया जाए, चूंकि इनको देखना खतरनाक है।
एक बहादुर लोग वे थे, जिन्होंने ये मूर्तियां खोदीं, उन्होंने प्रकृति को स्वीकार किया था। ये एक कमजोर लोग हैं, कमजोरी का लक्षण यह है कि इनको थोप दिया जाए! खजुराहो की मूर्तियां थोपी जा सकती हैं, मिटाई जा सकती हैं, लेकिन आदमी की प्रकृति को कैसे मिटाइएगा? आदमी की प्रकृति नहीं मिटाई जा सकती। आदमी की प्रकृति का उपयोग किया जा सकता है, विनाश नहीं किया जा सकता।
स्मरण रखें एक नियम, कि जगत में कोई भी शक्ति नष्ट नहीं की जा सकती-- असंभव है--सिर्फ रूपांतरण हो सकता है। निसर्ग रूपांतरित हो सकता है और ब्रह्म में लीन हो सकता है, लेकिन निसर्ग नष्ट नहीं हो सकता।
तो जीवन के सम्मान में यह महा-सूत्र ख्याल में रखें कि जीवन ने जो भी दिया है बाहर और भीतर, उसका सम्मान करना। लेकिन ध्यान रहे, बाहर भी आप तभी सम्मान कर सकते हैं, जब भीतर सम्मान हो। बाहर आप उसी चीज का अपमान करते

हैं, जिसका भीतर अपमान है। अगर आपके मन में भीतर किसी चीज के प्रति अपमान है तो बाहर भी अपमान होगा। और अगर भीतर सम्मान है तो बाहर भी सम्मान होगा।
आप अपने निसर्ग की खोज करना। अपने भीतर की अंतरात्मा की खोज करना, स्वभाव की खोज करना।
ध्यान रखें दो शब्द, स्वभाव और स्वरूप। स्वभाव प्रकृति है और स्वरूप ब्रह्म है। जब तक आप स्वभाव को न समझेंगे, तब तक स्वरूप में न जा सकेंगे। जैसे ही आप भीतर जाएंगे तो पहले मिलेगा, स्वभाव, निसर्ग। और भी भीतर जाएंगे तो मिलेगा, स्वरूप, निसर्ग के पार जो ब्रह्म है वह। लेकिन अगर आप स्वभाव से ही डर गए तो भीतर ही न जाएंगे। फिर आप बाहर-बाहर घूमेंगे। और अगर आप स्वभाव से डर गए, तो स्वभाव के विपरीत अपने चारों तरफ आप एक दीवाल बना लेंगे। उस दीवाल का नाम व्यक्तित्व है, पर्सनेलिटी है।
अब हम इस सूत्र को समझें।
नौवां सूत्र, "अपनी अंतरात्मा का पूर्ण रूप से सम्मान करो।"
सोच कर ही कठिनाई होती है, हम कहेंगे कि अपनी अंतरात्मा का तो हम सम्मान करते ही हैं। नहीं, अभी यह जो मित्र मेरे पास आए, इन्होंने अपनी कामवासना का सम्मान नहीं किया; अपमान किया, उसे दबाया, उसे नष्ट करने की कोशिश की। और अब कामवासना उनसे बदला ले रही है। देवी का सहारा लिया था उन्होंने कामवासना से मुक्त होने के लिए, अब कामवासना देवी पर ही आरोपित हो रही है। देवी कमजोर सिद्ध हो रही है, कामवासना ज्यादा बलवती सिद्ध हो रही है। यह बदला है। यह अपने स्वभाव को नहीं समझा, तो कठिनाई खड़ी होगी। "अपनी अंतरात्मा का पूर्ण रूप से सम्मान करो।"
जो भी तुम्हारे भीतर है। और अभी पहले तो निसर्ग से ही मुलाकात होगी।
जब आप आंख बंद करोगे, तो पहले आपका किससे मिलना होगा? आपके देह की प्रकृति मिलेगी। मन की प्रकृति मिलेगी। और जब इन दोनों के आप पार चले जाएंगे, तो आपको आत्मा की प्रकृति मिलेगी। ये तीन तल हैं। देह की प्रकृति है, उसका सम्मान करो।
पर हम उसका भी अपमान करते हैं! हम उपवास में रस लेते हैं या भोजन में
रस लेते हैं। या तो हम भोजन में इतना रस लेते हैं कि भोजन ही हमारे लिए मृत्यु का कारण बन जाता है। वह भी शरीर का सम्मान नहीं है। जब आप ज्यादा भोजन करते हैं, तब आप शरीर का अपमान कर रहे हैं। क्योंकि जो शरीर को जरूरत नहीं है, वह आप थोप रहे हैं उस पर। आप उसके लिए जहर पैदा कर रहे हैं। चिकित्सक कहते हैं कि दुनिया में भूख से कम लोग मरते हैं, भोजन से ज्यादा लोग मरते हैं। हालांकि ऐसा होना नहीं चाहिए, क्योंकि दुनिया में बहुत भूख है। लेकिन फिर भी चिकित्सक कहते हैं कि दुनिया में भूख से बहुत कम लोग मरते हैं, भोजन से ज्यादा लोग मरते हैं! भूखा आदमी जी सकता है, लेकिन ज्यादा भोजन किया हुआ आदमी अपने भीतर जहर इकट्ठा करता है, टॉक्सिन इकट्ठे करता है, और नष्ट होता है।
तो जो आदमी ज्यादा खा रहा है, आप यह मत समझना कि वह शरीर का प्रेमी है,
वह शरीर का दुश्मन है। वह अपमान कर रहा है। शरीर की जो सहज सूचना है, उसको स्वीकार नहीं कर रहा है। जब शरीर कहता है मत खाओ, तब भी वह खाए चला जाता है। यह शरीर को नष्ट करने का एक उपाय हुआ। इस तरह का आदमी, आज नहीं कल उपवास में उत्सुक हो जाएगा। क्योंकि जिसने ज्यादा खा कर शरीर को पीड़ित किया है, फिर शरीर दुख देगा, बदला लेगा। तो दूसरी अति पर जाएगा, उपवास करने लगेगा। उपवास भी शरीर का अपमान है। क्योंकि जब शरीर भूखा है, तब आप उसे भोजन नहीं दे रहे हैं। एक अपमान है कि शरीर जब भूखा नहीं है, तब आप उसमें भोजन ठूंस रहे हैं। एक अपमान है कि जब शरीर भूखा है, तब आप भोजन नहीं दे रहे हैं। सम्मान क्या है? सम्मान यह है कि शरीर की जो निसर्ग प्रकृति है, शरीर
की जो सहज, स्वाभाविक मांग है, उसको उतना ही पूरा कर देना--सम्मानपूर्वक, आदरपूर्वक। क्योंकि शरीर तो एक यंत्र है। और इतना महान यंत्र है कि उसके सहारे ही तो आप संसार का अनुभव लेंगे, और उसके सहारे ही आप परमात्मा के द्वार तक पहुंचेंगे। उसके सम्मान की जरूरत है। लेकिन हमें कोई चिंता नहीं है।

हम मन का भी कोई सम्मान नहीं करते। हम मन के साथ भी उपद्रव मचाए रखते हैं। अति पर हम डोलते हैं। एक अति से दूसरी अति पर चले जाते हैं। मध्य में सम्मान है।
इसलिए बुद्ध ने तो अपने पूरे जीवन-दृष्टिकोण का नाम मज्झिम-निकाय दे दिया, मध्य-मार्ग। उन्होंने कहा, न तो यह अति न वह अति, क्योंकि दोनों में अपमान होता है प्रकृति का। तुम ठीक बीच में रुक जाना। अति पर मत जाना। तो तुम सम्मानपूर्वक रहोगे।
शरीर, मन, इनका अगर अपमान किया जाए, तो आपमें झूठा व्यक्तित्व पैदा होता है।
अंग्रेजी में शब्द है, पर्सनेलिटी। वह बहुत कीमती शब्द है। यूनान में
जो नाटक होते थे, उन नाटकों में पात्रों को अपने चेहरे पर एक मुखौटा लगाना पड़ता था। उस मुखौटे का नाम परसोना होता था। और उसी शब्द परसोना से पर्सनेलिटी बना है। पर्सनेलिटी का अर्थ है, ओढ़ा हुआ व्यक्तित्व, ओढ़ा हुआ मुखौटा। जो आप नहीं हैं, वैसा चेहरा।
तो जो व्यक्ति अपने भीतर की प्रकृति के विपरीत होता है, अनिवार्य रूप
से उसे उस प्रकृति के विपरीत एक मुखौटा निर्मित करना होता है। एक व्यक्तित्व की खोल अपने चारों तरफ बना लेता है। यह खोल अंतरात्मा से मिलन न होने देगी। निसर्ग आपके खिलाफ नहीं है, लेकिन आपका व्यक्तित्व आपके खिलाफ है। और हर आदमी व्यक्तित्व बनाए हुए है, और उसको मजबूत किए चला जाता है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आत्मा को जानना है, लेकिन व्यक्तित्व को छोड़ने की जरा भी तैयारी नहीं होती। वे अपने व्यक्तित्व को पकड़ कर ही आत्मा को पाना चाहते हैं! यह असंभव है। इस व्यक्तित्व को ठीक से समझ लेना जरूरी है, तो ही आप आत्मा की खोज में आगे बढ़ सकेंगे, अन्यथा आप हमेशा भटकते रहेंगे। क्योंकि जिसको आपने पकड़ा है, वही तो बाधा है।
ऐसा समझ लें कि एक आदमी जेल के बाहर आना चाहता है, और जेल की दीवालों
को जोर से पकड़े हुए है, और कहता है कि ये दीवालें मैं कभी न छोडूंगा, क्योंकि इन दीवालों के साथ मैं इतने दिन रहा हूं। अपनी ही जंजीरों को तोड़ने के लिए राजी नहीं है! कहता है, ये मेरे आभूषण हैं, ये बड़े कीमती हैं! और कहता है, इन आभूषणों के बिना तो मैं सो भी न सकूंगा! इनके बिना तो मुझे नींद भी न आएगी। इनके बिना तो मुझे खाली-खाली, नंगापन मालूम पड़ेगा! इनको मैं नहीं छोड़ सकता। लेकिन मुझे स्वतंत्र होना है, मुझे मुक्त होना है! आपकी अवस्था ऐसी ही है। जिसको आप बचाना चाहते हैं, वही है दीवाल। और उसको तोड़े बिना आप अंतरात्मा में प्रवेश न कर पाएंगे।
समझें।
"अपनी अंतरात्मा का पूर्णरूप से सम्मान करो। क्योंकि तुम्हारे हृदय
के द्वारा वह प्रकाश प्राप्त होता है, जो जीवन को आलोकित कर सकता है और तुम्हारी आंखों के समक्ष स्पष्ट कर सकता है। समझने में कठिन केवल एक ही वस्तु है--स्वयं तुम्हारा अपना हृदय। जब तक व्यक्तित्व के बंधन ढीले नहीं होते, तब तक आत्मा का गहन रहस्य खुलना संभव नहीं होता है।"
क्या हैं व्यक्तित्व के बंधन? हम सब पैदा होते हैं। अनिवार्यरूपेण समाज, परिवार, शिक्षा हमें उपलब्ध होती है, संस्कार उपलब्ध होते हैं, धारणाएं उपलब्ध होती हैं। कैसे जीना, कैसे उठना, कैसे बैठना, क्या ठीक है, क्या गलत है--सब हमें रेडीमेड मिलता है। फिर हम उसके अनुसार बड़े होते हैं। और हमें उसके अनुसार ही बड़ा होना पड़ता है। क्योंकि जिनके बीच हम बड़े हो रहे हैं, वे शक्तिशाली हैं। वे जो भी सिखा रहे हैं, वह हमें सीखना ही पड़ेगा। क्योंकि अगर हम न सीखेंगे तो वे हमें जिंदा ही न रहने देंगे। उनकी धारणाएं हमें माननी ही पड़ेंगी, क्योंकि उनका दबाव चारों तरफ है, वे शक्तिशाली हैं। समाज उनका है, अधिकार उनका है, ताकत उनकी है, राज्य उनका है। वे सब तरफ से एक छोटे बच्चे को जो भी मनवाना चाहते हैं, मनवा देंगे।
फिर यह बच्चा बड़ा होगा एक व्यक्तित्व को ले कर, जो दूसरों ने इसे दिया है।
इस व्यक्तित्व के सहारे आज नहीं कल, इसको भयंकर पीड़ा और संताप पैदा होगा।
क्योंकि यह झूठा है। झूठ से पीड़ा पैदा होती है।

आनंद तो केवल सत्य से पैदा हो सकता है, जो तुम्हारा स्वभाव है उससे ही। तो फिर यह खोज में लगेगा अध्यात्म की, परमात्मा की, ज्ञान की, योग की, ध्यान की। लेकिन इसे यह ख्याल ही नहीं है कि यह जो व्यक्तित्व है, इसे तोड़ना पड़ेगा। यह जैसे एक खोल की तरह तुम्हारे झरने के चारों तरफ हो गया है। जैसे एक पत्थर की तरह तुम्हारे झरने को रोके हुए है। पर यह चाहेगा कि इस व्यक्तित्व को ले कर ही परमात्मा तक पहुंच जाए और शांति तक पहुंच जाए, तो अड़चन है।
और व्यक्तित्व को तोड़ना बड़ी कठिन बात है, क्योंकि हमारा बड़ा मोह निर्मित हो जाता है। हम तो सोचते ही यही हैं कि यही व्यक्तित्व हमारा स्वभाव है, यही हम हैं। व्यक्तित्व के साथ इस तादात्म्य का नाम ही अहंकार है।
अहंकार की बहुत चर्चा होती है। लोग कहते हैं, अहंकार छोड़ो। लेकिन अहंकार आप समझते ही नहीं कि क्या है। इस व्यक्तित्व के साथ जो तादात्म्य है--कि यही व्यक्तित्व मैं हूं--यही अहंकार है। कोई हिंदू व्यक्तित्व को लिए है, कोई मुसलमान व्यक्तित्व को लिए है, कोई जैन व्यक्तित्व को लिए है, कोई ईसाई व्यक्तित्व को लिए है। वह अड़चन डाल रहा है। और उससे हम जुड़े हुए हैं कि यह मैं हूं।
इसको तोड़ना जरूरी है। इसमें थोड़े से छेद भी हो जाएं, तो आपको थोड़ी सी निसर्ग की ताजी हवा मिले। जरूरी नहीं है कि आप इसको तोड़ कर समाज के विपरीत हो जाएं। क्योंकि इसको तोड़ कर अगर आप बिल्कुल फेंक दें, तो आप समाज के विपरीत हो जाएंगे। जरूरी नहीं है कि आप समाज के दुश्मन हो जाएं। इतना ही जरूरी है कि आप इस खोल को उतार कर पहनने में समर्थ हो जाएं।
आप मेरी बात को समझ लें। ऐसा नहीं है कि आप वस्त्रों को फेंक दें सारे व्यक्तित्व के। तो आप दिक्कत में पड़ जाएंगे। क्योंकि जिनके बीच आप रह रहे हैं, उन्होंने व्यक्तित्व नहीं फेंका है। आप अड़चन में पड़ जाएंगे। वे आपको मुसीबत में डाल देंगे। क्योंकि आप उनकी व्यवस्था को तोड़े डाल रहे हैं। और उनकी व्यवस्था में उनका न्यस्त स्वार्थ है, सुविधा है।
व्यक्तित्व को छोड़ने का एक ही अर्थ है कि आपको यह स्मरण आ जाए कि व्यक्तित्व आप नहीं हैं, और चाहें तो उतार कर एक तरफ रख सकते हैं। बस इतना काफी है। फिर समाज में काम के लिए आप व्यक्तित्व को ओढ़े रहें। लेकिन फिर आपकी गुलामी नहीं रही, फिर खेल हो गया। फिर समाज के लिए आप व्यक्तित्व को ओढ़ लेते हैं, और अपने लिए उतार कर रख देते हैं। ध्यान के वक्त आप व्यक्ति नहीं रह जाते, सिर्फ आत्मा हो जाते हैं।
तो आपके जीवन में बाहर के जगत के लिए एक नाटक, एक अभिनय शुरू हो जाएगा। बुद्धिमान आदमी अनिवार्य रूप से समाज में अभिनय के अतिरिक्त और किसी ढंग से नहीं जीता है। समाज के साथ उसका संबंध नाटकीय है।
लेकिन यह नाटकीयता अपने साथ अगर हो जाए, तो कठिनाई खड़ी होती है। आप दूसरे के लिए चेहरा ओढ़ लें। दूसरे को अच्छा लगता है वैसा ही चेहरा, तो क्या अड़चन है? लेकिन जब आप अपने एकांत में हैं, तो वहां तो कम से कम चेहरा उतार दें। क्योंकि अब आप किसके लिए चेहरा ओढ़े हुए हैं? आप किसको धोखा दे रहे हैं अब? लेकिन यह बोधपूर्वक हो तो व्यक्तित्व बंधन नहीं होता! तब व्यक्तित्व एक कुशलता हो जाती है। तब व्यक्तित्व अच्छी बात है। क्योंकि उससे संबंधों में, सामाजिक संबंधों में, लुब्रीकेन्ट का काम हो जाता है, उससे थोड़ा सा संघर्षण कम होता है। व्यर्थ का संघर्षण बच जाता है।
लेकिन खुद के लिए, खुद के एकांत में अगर आप उसको ओढ़े बैठे रहें, तो आप अपनी हत्या कर रहे हैं। समाज के साथ व्यक्तित्व, अपने साथ कोई व्यक्तित्व नहीं। और यह व्यक्तित्व के बंधन जब तक ढीले नहीं होते, तब तक आत्मा का रहस्य खुलना प्रारंभ नहीं होता है। क्योंकि इसके भीतर, इस व्यक्तित्व की गांठ के भीतर ही आत्मा का रहस्य छिपा है।
थोड़ा समझें, क्या है व्यक्तित्व और कैसे ढीला हो सकता है?
आपको भूल ही जाता है। एक मित्र हैं मेरे, हंसते रहते हैं। और मैं जानता हूं कि दुखी आदमी हैं। और बुरा भी नहीं है, क्योंकि किसी दूसरे को क्या दुख जाहिर करना! लेकिन एक रात मेरे पास रुके। आधी रात मैं उठ कर

बाथरूम की तरफ गया, प्रकाश जलाया तो देखा कि नींद में भी उनका मुंह हंसी की तरह फैला हुआ है। तो मैं थोड़ा चिंतित हुआ। वह आदमी दुखी हैं, दिन भर मुस्कुराते रहते हैं, यह मुस्कुराहट थोपी हुई है। क्योंकि वे अपना हृदय भी मुझे खोलते हैं और कहते हैं, मैं दुखी हूं, और मुस्कुराहट तो सिर्फ मेरी एक सामाजिक आदत है। रात सोते में भी उनका मुंह मुस्कुरा रहा है!
तो मैंने सुबह उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा, अभी इतनी आदत हो गई है कि कभी-कभी मैं अकेले में भी चाहता हूं कि अब न मुस्कुराऊं, तो भी जबड़े को ढीला करना मुश्किल होता है, जकड़ गया है।
आप जरा अपने चेहरे पर ख्याल करना। जब आप किसी से मिल कर आते हैं, तत्काल आईने के सामने जा कर खड़े हो जाना और चेहरे को ढीला छोड़ना, तब आप फौरन दो चेहरे देखेंगे। एक चेहरा जो अभी आप ले कर आए थे, और जब वह शिथिल होगा, तो एक दूसरा चेहरा होगा।
यहां मैं देखता हूं आपके चेहरे। जब आप ध्यान शुरू करते हैं, तब आपके पास एक चेहरा होता है। जब आप दूसरे चरण में बिल्कुल विक्षिप्त हो जाते हैं, तब आपके हजारों चेहरे एक साथ बदलते हैं--एक चेहरा, दूसरा चेहरा, तीसरा चेहरा; एक कतार लग जाती है चेहरों की आपके ऊपर! आपके सब चेहरे, जिनका आप उपयोग करते हैं अलग-अलग रूपों में, सब झलक देते हैं। फिर चौथे चरण में जब आप शांत खड़े होते हैं, तो आपके सब चेहरे खो जाते हैं, और एक तरह की फेसलेसनेस, एक तरह की चेहरा-शून्यता पैदा होती है। आपका चेहरा जैसे नहीं रह जाता, उसकी सब रेखाएं तनाव की, खो गई होती हैं। आपका चेहरा शायद वैसा होता है, जैसा बचपन में रहा होगा, जब समाज ने आपको बिगाड़ना शुरू नहीं किया था। या मां के गर्भ में रहा होगा, जब कि किसी ने आपको कोई शिक्षा न दी थी। अगर इसमें आप थोड़े और गहरे प्रवेश करते जाएं, तो आपको वह चेहरा उपलब्ध हो जाएगा, जो आपका चेहरा है, दूसरों का दिया हुआ नहीं है।
जापान में झेन फकीर कहते हैं कि अपने ओरिजनल चेहरे को, अपने मूल चेहरे
को खोजो, जो जन्म के पहले तुम्हारे पास था, या मृत्यु के बाद तुम्हारे पास होगा। बीच के सब चेहरे उधार हैं।
पर ये चेहरे सीखने पड़ते हैं। आपके घर में छोटा बच्चा है, घर में कोई मेहमान आते हैं, आप उससे कहते हैं, चलो पैर पड़ो। और वह बिल्कुल नहीं पड़ना चाह रहा है। लेकिन आपकी आज्ञा उसे माननी पड़ेगी।
मैं किसी के घर में जाता हूं, मां-बाप पैर पड़ते हैं, और अपने छोटे-छोटे बच्चों को गर्दन पकड़ कर झुका देते हैं! वे बच्चे अकड़ रहे हैं, वे इंकार कर रहे हैं। उनका कोई संबंध नहीं है, उनका कोई लेना-देना नहीं है, और बाप उनको दबा रहा है!
यह बच्चा थोड़ी देर में सीख जाएगा कि इसी में कुशलता है कि पैर छू लो। इसका पैर छूना व्यक्तित्व का हिस्सा हो जाएगा। फिर यह कहीं भी झुक कर पैर छू लेगा, लेकिन इसमें कभी आत्मीयता न होगी। इसकी एक महत्वपूर्ण घटना जीवन से खो गई। अब यह किसी के भी पैर छू लेगा और वह कृत्रिम होगा, औपचारिक होगा। और वह जीवन का परम अनुभव, जो किसी के पैर छूने से उपलब्ध होता है, इसको नहीं उपलब्ध होगा। अब इसका पैर छूना एक व्यवस्था का अंग है। यह समझ गया कि इसमें ज्यादा सुविधा है। यह अकड़ कर खड़े रहना ठीक नहीं है। बाप झुकाता ही है, और बाप को नाराज करना उचित भी नहीं है, क्योंकि वह पच्चीस तरह से सताता है, और सता सकता है। तो इसमें ही ज्यादा सार है, बुद्धिमान बच्चा झुक जाएगा। समझ लेगा।
मगर यह झुकना यांत्रिक हो जाएगा। और खतरा यह है कि किसी दिन ऐसा व्यक्ति भी इसको मिल जाए, जिसके चरणों में सच में यह झुकना चाहता था; तो भी यह झुकेगा, वह कृत्रिम होगा। क्योंकि वह सच इतने पीछे दब गया, और व्यक्तित्व इतना भारी हो गया है।
बच्चों से मां-बाप कह रहे हैं कि यह तुम्हारी मां है, इसको प्रेम करो।
यह भी कोई कहने की बात है! कि यह तुम्हारे पिता हैं, इनको प्रेम करो! इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब हुआ कि मां का और बेटे का संबंध प्रेमपूर्ण नहीं है, इसलिए प्रेम करवाना पड़ रहा है। मां कहती है, मैं तुम्हारी मां हूं, मुझे प्रेम करो। यह भी कोई कहने की बात है! मां होनी चाहिए, प्रेम फलित

होना चाहिए। लेकिन वह नहीं फलित हो रहा है। और भूल अगर कहीं होगी, तो मां की ही हो सकती है, बच्चे की क्या भूल हो सकती है? बच्चा तो अभी कुछ भी नहीं जानता है।
लेकिन जिस मां को बेटे से यह कहना पड़ता है, मैं तुम्हारी मां हूं, मुझे प्रेम करो; वह जननी होगी, मां नहीं है। उसने पैदा किया होगा। लेकिन मातृत्व कुछ और बात है, सभी स्त्रियों को उपलब्ध नहीं होता। जननी तो कोई भी स्त्री बन सकती है, लेकिन मां बनना बड़ा कठिन है। क्योंकि मां तो एक बड़ी लंबी प्रेम की प्रक्रिया है।
तो वह बेटे को कह रही है कि मुझे प्रेम करो, मैं तुम्हारी मां हूं। बेटा धीरे-धीरे प्रेम दिखाने लगेगा। क्योंकि क्या करेगा? इस मां से दूध लेना है, इस मां से पैसे लेना है, इस मां के ऊपर सब कुछ निर्भर है। बेटा बिल्कुल असहाय है। यह मां ही उसकी जीवन सुविधा है, सहारा है, सुरक्षा है। तो सौदा हो जाएगा, बेटा प्रेम प्रकट करने लगेगा। मां को देख कर हंसने लगेगा, चाहे हंसी उसे न आ रही हो। मां को देख कर कहने लगेगा कि मेरी जैसी सुंदर मां और कहीं भी नहीं है। और मां इससे प्रफुल्लित होगी। और बेटा धोखा सीख रहा है, और बेटा झूठ सीख रहा है, और प्रेम जैसी परम घटना असत्य हुई जा रही है। फिर यह बेटा बड़ा तो मां के पास होगा, और झूठा प्रेम गहरा हो जाएगा, वह उसका व्यक्तित्व बन जाएगा।
फिर जब यह किसी स्त्री के प्रेम में भी पड़ेगा, तो वह प्रेम आंतरिक नहीं हो पाएगा। यह झूठ ही बोलता रहेगा। यह उस स्त्री से भी कहेगा कि तुझसे ज्यादा सुंदर स्त्री कोई भी नहीं है। यह स्त्री से भी प्रेम करने की कोशिश करेगा। यह प्रेम प्रकट करेगा। यह दिन में दस दफे कहेगा कि मैं तुझे प्रेम करता हूं। मगर यह सब झूठ हुआ जा रहा है।
इसे आप कभी सोचना। जब आप अपनी पत्नी को कहते हैं कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तो भीतर कुछ भी होता है प्रेम जैसा जब आप कहते हैं? अक्सर तो डर के कारण कहते हैं। अक्सर तो इसलिए कहते हैं कि कहते रहना बार-बार ठीक रहता है, याददाश्त बनी रहती है। पत्नी को भी भरोसा रहता है, आपको भी भरोसा रहता है। पत्नी भी इसी तरह दोहरा रही है, वह भी झूठ है।
आपके व्यक्तित्व बातें कर रहे हैं, आपकी अंतर-आत्माएं नहीं मिल रही हैं। तब इस झूठ से कोई आनंद पैदा नहीं होता है। और तब इस झूठ से कोई भी संतोष नहीं मिलता। झूठ से मिल भी नहीं सकता।
झूठे बीज से कहीं अंकुर पैदा हुए हैं? झूठे कंठ से कहीं गीत पैदा हुए हैं? झूठी आंख से कहीं कोई दृश्य दिखाई पड़े हैं? झूठ का अर्थ ही है कि जो नहीं है। उससे कुछ भी पैदा नहीं होगा। झूठ का अर्थ ही है कि जो दिखाई पड़ता है और है नहीं! उससे कुछ भी पैदा नहीं होगा। जीवन तब एक रिक्तता बन जाएगी। इस व्यक्तित्व को पहचानें! आपके भीतर जो-जो झूठ है, उसे पहचानें।
मैं आपसे यह नहीं कहता कि झूठ इसलिए मत बोलें कि दूसरे को नुकसान पहुंचता है, वह तो पहुंचता ही है। झूठ से लेकिन पहले आपको नुकसान पहुंच रहा है। आप झूठे हुए जा रहे हैं, मिथ्या हुए जा रहे हैं। हुए जा रहे हैं कहना ठीक नहीं है, आप बिल्कुल हो चुके हैं। आप निष्णात हो गए हैं! आप इतने कुशल हो गए हैं कि आपको याद ही नहीं आता कि आप क्या कर रहे हैं!
मैं झूठ बोलने वाले लोगों को जानता हूं। मैं उनको दोषी नहीं ठहराता, क्योंकि वे झूठ जान कर नहीं बोल रहे हैं अब। अब उनसे झूठ बोला जा रहा है। और कभी-कभी वे ऐसे झूठ बोलते हैं कि जिससे न तो कोई लाभ है, न कोई उनका हित है। और जान कर भी नहीं बोल रहे हैं। झूठ ऐसा पक्का हो गया है कि उनसे बोला जाता है। जैसे ही वे बोलते हैं, कुछ भी वे सोचते हैं, उनके झूठ के ढांचे में पड़ कर वह झूठ हो जाता है। वे सच भी बोलें तो थोड़ा झूठ बिना मिलाए नहीं बोल सकते! अपने इस ढांचे को पहचानें। इसके प्रति सजग हों। और इसको उतार कर रखने की कोशिश करें।
एक मित्र मेरे पास आए। कैसे झूठ मजबूत हो जाता है, वह मैं आपसे कहूं।
वे मेरे पास आए, वे कहने लगे कि आप कहते हैं कि दूसरे चरण में बिल्कुल पागल हो जाओ, तो मैं नाचता-कूदता हूं, रोता-चिल्लाता हूं, लेकिन आज मुझे ख्याल आया कि यह तो मैं झूठ ही कर रहा हूं। न मुझे रोना आ रहा है, न मुझे नाचना आ

रहा है, यह तो मैं झूठ कर रहा हूं। यह तीन दिन करने के बाद उनको ख्याल आया! इसको मैं कहता हूं, झूठ कैसा मजबूत ढांचा बन जाता है। तीन दिन से वे नाच-कूद रहे हैं। तीन दिन बाद उनको ख्याल आया कि यह तो मैं झूठ कर रहा हूं। लेकिन फिर भी जल्दी आ गया। उनका ढांचा बहुत मजबूत नहीं है। यह तो पहले ही क्षण याद आ जाना चाहिए कि आप क्या कर रहे हैं?
और झूठ आप कितना ही करें, कितना ही नाचें-कूदें; थोड़ी कवायद हो जाएगी। अच्छा भी लगेगा, जैसे व्यायाम से अच्छा लगता है। लेकिन ध्यान नहीं होगा। ध्यान तो आपके भीतर से सत्य टूटना शुरू हो, तो होगा।
लेकिन कठिनाई है। बचपन से समझाया जा रहा है, रोना मत। खास कर पुरुषों
को तो इस बुरी तरह समझाया गया है कि रोना मत। तो वे रोने की कला ही भूल गए हैं। उनको इस बुरी तरह समझाया गया है कि क्या लड़कियों जैसा काम कर रहे हो? जैसे रोने का ठेका लड़कियों ने ले रखा है! जैसे पुरुष रोने का अधिकारी नहीं है। तो परमात्मा ने आंसू क्यों बनाए हैं? और पुरुष की आंखों के पीछे आंसू की ग्रंथियां क्यों बनाई हैं? तो रोने की क्षमता पुरुष को दी गई है, तो वह किसलिए दी गई है? मगर नहीं, हर लड़के को समझाया जा रहा है कि यह क्या लड़कियों जैसा काम कर रहे हो! जैसे यह कुछ बुरा काम है।
और बड़ा मजा यह है कि स्त्रियां भी कहती हैं, मां भी कहती है कि क्या लड़कियों जैसा काम कर रहा है? जैसे यह कोई बुरा काम हो, और सिर्फ स्त्रियां ही कर सकती हैं। बुरे काम क्या स्त्रियों ने करने का कोई ठेका लिया हुआ है?
लेकिन पुरुष को कठोर बनाना है, यह समाज का इंतजाम है। उसको कठोर बनाना है, ताकि वह दुष्ट बन सके, हिंसा कर सके, मार सके, पीट सके। अगर वह रोएगा और तरल होगा, कोमल होगा, तो यह सब काम नहीं कर सकेगा। युद्ध पर भेजोगे उसको बंदूक ले कर, वह रोने लगेगा कि अरे, इसको मारना है आदमी को! मर जाएगा, ठीक नहीं है। तो आदमी को कठोर बनाना है, पथरीला बनाना है। उसके भीतर से आत्मा मारनी है बुरी तरह। इसलिए उसको समझाया जा रहा है, उसके अहंकार को फुसलाया जा रहा है कि तू पुरुष है, तू रोना मत; यह स्त्रियों का काम है।
स्त्रियां भी अगर कठोर हो जाएं, तो पुरुष बड़ी प्रशंसा करते हैं! वे कहते हैं कि खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी थी! मर्दाना होना जैसे कोई बड़े गौरव की बात है। एक स्त्री खराब हो गई, वह उसकी प्रशंसा कर रहे हैं! और अगर कोई पुरुष जरा कोमल हो, नाजुक हो, तो वे कहते हैं, स्त्रैण, गैर-मर्दाना!
पुरुष को हमने सिखाया है, हिंसा के लिए तैयार किया है। तो आप रो नहीं सकते! आपके आंसू सूख गए हैं। वर्षों से आप रोए नहीं हैं, आपकी गं्रथियां जड़ हो गई हैं। तो आप चीख-पुकार भी मचाते हैं, तो भी आंसू नहीं आते! लेकिन मैं चाहता हूं कि आपकी ग्रंथियां पुनः सक्रिय हो जाएं, आंसू पुनः आ जाएं। उन आंसुओं के आते ही आपका तीस साल का जो समाज का व्यक्तित्व था, वह एक तरफ हट जाएगा। और आप तीस साल, चालीस साल पहले, जब छोटे बच्चे थे और रो सकते थे, और जब किसी ने आपको यह नहीं कहा था कि क्या लड़कियों जैसा काम कर रहे हो, उस क्षण में वापस लौट जाएंगे। आपके आंसू अगर बह सकें, सच्चे आंसू ग्रंथियों से खुल जाएं, तो आप पाएंगे कि आपका व्यक्तित्व सरक गया, नीचे गिर गया; आप हल्के हो गए, एक छेद हो गया।
इसलिए इतना मेरा आग्रह है कि रोओ, चिल्लाओ, हंसो; क्योंकि तुमसे सब कुछ छीन लिया गया है। तुम खिलखिला कर हंस भी नहीं सकते। क्योंकि लोग कहते हैं, खिलखिला कर हंसना असभ्यता है। आदमी को इस बुरी तरह मारा है! खिलखिला कर हंस नहीं सकते, असभ्यता है! अगर चार आदमी जोर से खिलखिला कर हंस रहे हैं, तो लोग उनकी तरफ ऐसे देखेंगे, जैसे कि असंस्कृत हैं! पढ़े-लिखे नहीं हैं, गंवार हैं! मुस्कुरा सकते हैं सिर्फ आप, आवाज नहीं होनी चाहिए!
यह तो ऐसा है, जैसे कि झरनों से हम कहें कि बस बिल्कुल धीरे-धीरे सरक सकते हो, शोरगुल नहीं। हवाएं इस तरह बहो कि पत्तों में आवाज न हो। जब आप दिल खोल कर हंस लेते हैं, तो आपको पता नहीं कि कितना कचरा उस कोलाहल में बह जाता है। लेकिन आप हंस नहीं सकते, वह कचरा अटका रह जाता है। आपको कुछ भी हृदयपूर्वक नहीं करने दिया जा रहा है अपने आप से। खतरा है, क्योंकि

हृदयपूर्वक अगर आप कुछ भी करेंगे, तो समाज आपको गुलाम नहीं बना सकेगा; यह कारण है।
अगर आपकी सारी वृत्तियों को दबा दिया जाए, तो आप गुलाम बनाए जा सकते हैं। अगर आपकी सारी वृत्तियों को उन्मुक्त छोड़ दिया जाए, तो आप इतने ताजे और इतने जीवंत होंगे, कि कोई ताकत आपको गुलाम नहीं बना सकती। और समाज चाहता है कि आप गुलाम हों, मालिक न हों। सेवक हों! समाज जिस तरफ इशारा करे, वैसा आप करें! समाज जो कहे, उस तरह उठें और बैठें! आप मुक्त न हों। क्योंकि मुक्त व्यक्ति रिबेलियस, विद्रोही हो जाता है। तो समाज सब तरह की मुक्ति छीन लेता है, और आपके ऊपर एक खोल चढ़ा देता है। उस खोल के भीतर से आप हंसें भी, तो वह खोल जगह नहीं देती, रोएं तो वह खोल आंसू नहीं बहने देती।
एक स्त्री को मेरे पास लाया गया। उसका पति मर गया, और तीन महीने से उसे हिस्टीरिया हो गया था, बेहोश हो जाती थी। तो मैंने पूछा कि यह स्त्री पति के मरने पर रोई या नहीं? तो जो लाए थे, उन्होंने बड़ी प्रशंसा से कहा, कि बड़ी हिम्मतवर स्त्री है, युनिवर्सिटी में प्रोफेसर है, बड़ी बुद्धिमान है, इसने एक आंसू नहीं गिराया। मैंने कहा कि हिस्टीरिया उसका परिणाम है। और तुम नासमझों ने इसकी प्रशंसा की होगी, कि तू गजब की है, क्या हृदय पाया है मजबूत!
हृदय और कहीं मजबूत होता है? हृदय की तो खूबी ही, उसकी मजबूती तो उसकी कोमलता ही है। वह तो फूल जैसी कोमल चीज है। मजबूत हृदय का क्या मतलब? कोई पत्थर का फूल बनाया हुआ है?
उन सबने उसकी खूब प्रशंसा की, उन सबने हिस्टीरिया पैदा करवा दिया। और कोई नहीं सोचता कि इसका कर्मफल किसको भोगना पड़ेगा? और वह स्त्री बेहोश हो- हो जाती है। वह रो नहीं पाई। मैंने उस स्त्री को कहा कि तू इन नासमझों की बातों में पड़ी है, तू रो ले। क्योंकि प्रोफेसर होने से कोई ऐसा थोड़े है कि तू स्त्री नहीं रह गई। लेकिन प्रोफेसर भारी है, युनिवर्सिटी में किसी डिपार्टमेंट की हेड है वह, कैसे रो सकती है? समझदार है। समझदारी से रोने से क्या वैपरीत्य है? समझदार हृदयपूर्वक रोएगा, बस इतना फर्क होगा।
वह कहने लगी, आप क्या कहते हैं, मुझे रोना चाहिए था?
तुझे रोना ही चाहिए था। क्योंकि जिसको तूने प्रेम किया है, और जिससे तूने सुख पाया है, तो दुख क्या मैं पाऊंगा? दुख तुझे पाना होगा। सुख पाते वक्त तू मेरे पास कभी नहीं आई। अब दुख कौन लेगा? संसार द्वंद्व है, वहां सुख तूने पाया, तो दुख तुझे पाना होगा। तब तराजू तुल जाएंगे, संतुलन पैदा हो जाएगा। तू खूब छाती पीट, रो, लोट।
उसने कहा कि आप क्या बातें कर रहे हैं! मैंने कहा, तो फिर हिस्टीरिया होगा।
यह हिस्टीरिया, जो दबा है, वेगपूर्वक दबा है, उसका उफान है, उसका धक्का है। जो नहीं बह पा रहा है दुख, वह इतना धक्का मार रहा है कि तेरे स्नायु-जाल में पूरी की पूरी जकड़न पैदा हो जाती है। यह हालत ऐसी ही है, जैसे कोई कार चला रहा हो; एक्सीलेटर भी दबा रहा हो, और ब्रेक भी दबा रहा हो, तो कार की जो हालत हो जाए, वह हिस्टीरिया उसका नाम होगा।
इस औरत का पूरा हृदय रोना चाहता है। क्योंकि मैंने उससे पूछा कि तूने अपने पति से आनंद पाया? उसने कहा, मैंने बहुत आनंद पाया। मैं बहुत सुखी थी। तो फिर मैंने कहा कि उतना ही दुखी होना जरूरी है। तो तेरा पूरा हृदय बहना चाह रहा है। और तेरा प्रोफेसर, तेरा ज्ञान और यह नासमझों की कतार, जो चारों तरफ मौजूद है, इनकी प्रशंसा, कि तू गजब की है, ऐसा होना चाहिए--तू ब्रेक लगा रही है। और एक्सीलेटर भी दबा रही है और ब्रेक भी लगा रही है! जब भी किसी व्यक्तित्व में एक्सीलेटर और ब्रेक एक साथ दबता है, तो हिस्टीरिया पैदा हो जाता है। या तो ब्रेक ही लगा, एक्सीलेटर मत दबा। लेकिन वह तभी संभव है, जब तूने पति से कोई सुख न पाया हो। लेकिन सुख तूने पाया है, तो उसका दूसरा पहलू झेलना ही पड़ेगा।
वह स्त्री मेरे सामने बैठी-बैठी रोने लगी। और मैंने उससे कहा कि तू आधा घंटा यहीं बैठ, और हृदयपूर्वक रो ले। और आधा घंटे बाद उसने कहा कि मैं जानती हूं कि हिस्टीरिया अब नहीं आएगा। और मैंने कहा कि तू किसी की मत

सुनना। चार-छः महीने लगेंगे, दुख को भोगना ठीक से। दुख का भोगना भी कीमती है, जरूरी है। वह भी जीवन-शिक्षा का अंग है। हिस्टीरिया वापस नहीं लौटा।
कोई आठ महीने हो गए, फिट नहीं आया है। लेकिन वह जो समझदारों की कतार है, उन जैसे नासमझ खोजने कठिन हैं।
व्यक्तित्व को अपने पहचानना और अपने व्यक्तित्व को तोड़ना।
मेरे ध्यान की प्रक्रिया आपके व्यक्तित्व को तोड़ने के लिए व्यवस्था है। वह ध्यान नहीं है, वह आपके व्यक्तित्व का हटाना है! और वह हट जाए, तो ध्यान तो बड़ी सहज बात है। आपका पत्थर हट जाए, तो झरने के बहने के लिए कुछ करना थोड़े ही पड़ता है। झरना अपने से बहता है, सिर्फ पत्थर नहीं चाहिए। ध्यान तो स्वभाव है। अगर व्यक्तित्व के पत्थर न हों, तो वह आ जाएगा। लेकिन कुछ तो सहज बनने दो। आंसू, मुस्कुराहट, नाचना, कुछ तो सहज होने दो। तो फिर वह जो परम सहज है, वह भी हो सकता है।
"जब तक तुम अपने व्यक्तित्व से अलग एक ओर खड़े नहीं होते, तब तक वह अपने
को तुम पर प्रकट नहीं करेगा।"
वह जो तुम्हारा स्वरूप है, तुम पर प्रकट नहीं होगा।
"तभी तुम उसे समझ सकोगे और उसका पथ-प्रदर्शन कर सकोगे, उससे पहले नहीं। तभी तुम उसकी समस्त शक्तियों का उपयोग कर सकोगे और उन्हें किसी योग्य सेवा में लगा सकोगे, उससे पहले नहीं।"
यह भी थोड़ा समझ लेने जैसा है। कि लोग खुद को बिना समझे-बूझे दूसरे की सेवा में लगा देते हैं! ऐसे बहुत सेवक हैं, हमारे मुल्क में तो जरूरत से ज्यादा हैं। जिनको कोई बोध नहीं है स्वयं का, और जिनके जीवन में अंतरात्मा की एक किरण नहीं उतरी है, वे भी दूसरों की सेवा में अपने को लगा देते हैं। तब उनकी सेवा से दुष्परिणाम होता है। और सेवक जितना नुकसान कर सकते हैं, कोई भी नहीं कर सकता। क्योंकि वे आपके हित में ही करते हैं, उनसे बचना मुश्किल है। आप एक हत्यारे से बच सकते हैं, सेवक से कैसे बचिएगा? क्योंकि हत्यारा गर्दन पकड़ता है, आप फौरन सचेत हो जाते हैं। सेवक पैर से शुरू करता है, आप और पैर फैला देते हैं, कि ठीक है, सेवा करो। लेकिन फिर पैर से वह ऊपर की तरह बढ़ेगा। प्रगति तो करनी ही होगी। वह भी गर्दन तक आएगा। जरा वह फासला, वक्त लेगा। और पैर से दबाना शुरू करता है, तो जब गर्दन पकड़ लेता है, तब आप यह नहीं कह सकते कि गर्दन मत दबा देना। क्योंकि आप सोचते हैं, सेवा कर रहा है। सब सेवक आखिर में गर्दन पकड़ लेते हैं।
गांधीजी के साथ जमात थी सेवकों की। वे सब गर्दन पकड़े हुए हैं मुल्क की। वे जो-जो सेवक थे, वे सब अब पदों पर और कुर्सियों पर हैं, पूरे मुल्क की गर्दन पकड़े हुए हैं। निकले थे सेवा करने, अब वे सेवा ले रहे हैं, और भरपूर ले रहे हैं। और जो नहीं ले पा रहे हैं, वे बड़े दुखी हैं। वे कहते हैं, जीवन अकारथ हो गया, इतनी सेवा की और कुछ न पाया। वे कहते हैं, कम से कम ताम्र-पत्र ही दे दो लिख कर कि तुमने सेवा की! कुछ पेंशन बांध दो--सेवा की! कभी- कभी स्वागत-समारंभ करवा दो--सेवा की! और उन्होंने सेवा क्या की है? अगर सेवकों को समझने जाएं आप, तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे।
मेरे पास सेवक आ जाते हैं। कोई कहता है, मैं तीस साल से आदिवासी बच्चों की सेवा कर रहा हूं, कुछ शिक्षा दे रहा हूं। अभी एक महिला मेरे पास आई, कहती है, मैंने तीस साल, अपना पूरा जीवन लगा दिया। तब मैंने उससे पूछा कि तूने सेवा की, वह ठीक; तूने अपना जीवन लगाया, वह ठीक; बाकी जिन बच्चों के लिए तूने तीस साल जीवन लगाया, उनको कुछ लाभ हुआ कि नुकसान हुआ? असली सवाल तो वह है, कि उन बच्चों के जीवन में शांति बढ़ी कि घटी? सुख बढ़ा कि घटा? वे कम आनंदित हुए कि ज्यादा आनंदित हुए? तो वह थोड़ी बेचैन हो गई। क्योंकि मैंने कहा कि आदिवासी बच्चों को पढ़ा-लिखा कर, ज्यादा से ज्यादा इतना ही करोगे कि हमारे बच्चे जैसे हैं, उस तरह के हो जाएंगे, और क्या होगा? हमारे बच्चे कौन से स्वर्ग में हैं? इधर हम युनिवर्सिटीज में परेशान हैं अपने बच्चों से, क्योंकि उनको पढ़ा-लिखा लिया है, अब वे युनिवर्सिटीज जला रहे हैं, प्रिंसिपल को पीट रहे हैं, वाइस-चांसलर का घिराव करके पत्थर मार रहे हैं, छुरे दिखा रहे हैं! यह हमने शिक्षा दे कर उनको किया। तुम आदिवासी बच्चों पर बड़ी मेहनत कर रही हो, तुम कह रही हो कि तुमने जीवन लगा दिया। अगर

तुम सफल हो गईं अपने काम में, तो ये ही बच्चे यही काम करेंगे, और क्या करेंगे? कौन सा लाभ हुआ जा रहा है?
लेकिन उसे लाभ से कोई मतलब नहीं है, वह व्यस्त है! और व्यस्त रहना एक तरकीब है अपने से बचने की। वह अच्छे काम में लगी है, तो भीतर देखने का मौका नहीं आता। वह बहुत अशांत है, परेशान है, दमित है; सारे वेग रोग बन गए हैं भीतर; लेकिन वह दूसरों की सेवा में अपने को उलझाए हुए है! इस सेवा की व्यस्तता में उसे ख्याल भी नहीं आता कि मेरी कोई परेशानी है।
अक्सर लोग दूसरे की परेशानियों में उलझ जाते हैं, अपनी परेशानी भूलने को। और उनको अगर आप कहें कि एक पांच दिन की छुट्टी ले लो सेवा से तो... । क्योंकि पांच दिन में भी उनको अपनी परेशानियां दिखाई पड़नी शुरू हो जाएंगी।
आदमी बहुत चालाक है। उसके कई पलायन के रास्ते हैं। वह दूसरों में उत्सुकता लेने लगता है, ताकि अपने से बच सके, अपना ख्याल ही न आए! भागदौड़ में लगा रहता है, स्कूल खोलना है, आश्रम बनाना है, दिल्ली जाना है! वह महिला इसी काम में लगी है! चंदा इकट्ठा करना है, एक बस लानी है! लगी हुई है, फुरसत कहां है!
मैंने उससे पूछा कि तू शांत है? और उसने कहा कि नहीं, शांत तो नहीं हूं, और आप कोई रास्ता बताएं। मैंने उसको कहा कि तू आबू शिविर में आ जा। उसने कहा, वह तो बहुत मुश्किल है, उस वक्त मुझे दिल्ली जाना है। काहे के लिए दिल्ली जाना है? एक अस्पताल खुलवाना है आदिवासियों के गांव में! मैंने उससे पूछा, पहले तू इसकी तो फिक्र कर ले कि जहां अस्पताल हैं, वहां ज्यादा लोग स्वस्थ हैं? कि आदिवासी, जहां अस्पताल नहीं हैं, वहां ज्यादा लोग स्वस्थ हैं? पहले इसकी फिक्र कर ले। क्योंकि अस्पताल इलाज भी लाता है, बीमारियां भी लाता है! आदिवासी ज्यादा स्वस्थ हैं। मगर उसको तो अस्पताल खोलना है! वह बोली कि यह बात तो ठीक है, मगर फिर भी अस्पताल के बिना ठीक नहीं है, अस्पताल तो जरूरी है, प्रगति होनी चाहिए। वह यह भी मानती है कि आदिवासी ज्यादा स्वस्थ हैं, लेकिन अस्पताल होना चाहिए! फिर किसलिए अस्पताल होना चाहिए? तो ठीक सेवा यह होगी कि जहां अस्पताल हैं, वहां मिटाओ और लोगों को आदिवासी बना दो, अगर स्वास्थ्य का ही रस है। अगर और कोई रस है, तो बात दूसरी है। लेकिन स्वास्थ्य तो आदिवासियों के पास ज्यादा अच्छा है। मगर वह बोली कि नहीं, आप जो कहते हैं, वह ठीक है, अभी तो दिल्ली जाना ही पड़ेगा, फिर मैं किसी दूसरे शिविर में आ जाऊंगी!
मगर ध्यान, शांति में कोई रस नहीं है। अशांति को निकालने की तरकीब उसने आदिवासियों की सेवा बना ली है। तो कोई आदमी दुकान पर अपनी अशांति निकाल रहा है। पैसा कमाने में लगा है, उसे कोई मतलब नहीं है दूसरी बातों से। कोई आदमी राजनीति के चक्कर में लगा है, इलेक्शन जीतना है, मिनिस्टरी में जाना है, उसे कोई मतलब नहीं है आत्मा से! कोई आदमी सेवा में लगा है, उसे कोई मतलब नहीं है आत्मा से!
लेकिन ध्यान रहे, जो आदमी भी स्वयं को जाने बिना दूसरे की सेवा में लगेगा, वह नुकसान करेगा दूसरे का। क्योंकि जिसको अभी खुद का हित पता नहीं है, उसे दूसरे का हित पता नहीं हो सकता। आत्म-प्रवेश हुए बिना सेवक होने का मतलब है कि आप कोई न कोई मिसचीफ, कोई न कोई शरारत पैदा करोगे। यह दुनिया शरारतियों से कम परेशान है, शुभेच्छुओं से ज्यादा परेशान है। वे ऐसा-ऐसा इंतजाम कर देते हैं शुभेच्छा से, कि उनके साथ आपको जाना पड़ता है। वे नरक भी ले जाएं, तो भी जाना पड़ता है। क्योंकि इतनी शुभेच्छा से ले जा रहे हैं, इतने भले मन से ले जा रहे हैं, इतना कष्ट उठा रहे हैं आपके लिए, कि आप मना भी नहीं कर सकते कि क्यों नरक की तरफ घसीट रहे हो! इंकार भी करना अशोभन लगता है, क्योंकि बेचारा कितना श्रम उठ रहा है!
पुराना अरबी सूत्र है कि नरक का रास्ता शुभेच्छाओं से भरा पड़ा है। शुभेच्छाओं से भरा पड़ा है!
सेवा का हक केवल उसे उपलब्ध होता है, जो ध्यान की गहराई में पहुंच गया है। उसके पहले सेवा का कोई हक नहीं है। क्योंकि जब तक तुम्हें आनंद नहीं मिला है, तुम आनंद दे नहीं सकते। तुम दुख ही दे सकते हो, नाम तुम कुछ भी

रखो। आनंद है तुम्हारे भीतर, तो वह आनंद दूसरों में भी प्रवाहित हो सकता है।
"तभी तुम उसकी समस्त शक्तियों का उपयोग कर सकोगे और उन्हें किसी योग्य सेवा में लगा सकोगे, उससे पहले नहीं। जब तक तुम्हें स्वयं कुछ निश्चय नहीं हो जाता, तुम्हारे लिए दूसरों की सहायता करना असंभव है।" कैसे करोगे सहायता? जिस बात का तुम्हें पता ही नहीं है, उसकी भी तुम सहायता करते हो! तुम यह सोचते ही नहीं कि तुम्हें पता है? तुम्हारे पास कोई सलाह लेने आता है, कभी तुमने ऐसा कहा कि नहीं, मैं सलाह नहीं दे सकूंगा, क्योंकि मुझे कुछ भी पता नहीं है। न, सलाह देने में तुम इतने उदार हो कि कोई आ भर जाए; आने की बात ही दूसरी, तुम्हें पता भर चल जाए कि फलाने को सलाह की जरूरत है, तुम उसके घर चले जाते हो। वह तुमसे बचना भी चाहे तो बच नहीं सकता, तुम सलाह देते ही हो।
यहां मैं देखता हूं, शिविर में भी लोग एक-दूसरे के कमरे में जा रहे हैं, सलाह-मश्विरा भी दे रहे हैं, ज्ञान दे रहे हैं; एक-दूसरे को जगा रहे हैं, एक-दूसरे को शांति पहुंचा रहे हैं! चैन से नहीं बैठे हैं, और न दूसरे को चैन से बैठने देते हैं! तुम्हारी सलाह किस को चाहिए? तुम्हारे पास सलाह है?
लेकिन बड़ा मजा आता है। गुरु बनने में बड़ा मजा है! कोई शिष्य बनने को उत्सुक नहीं है! गुरु बनने में बड़ा रस है, क्योंकि अहंकार की बड़ी तृप्ति है। और इन सलाहकारों की हालत अगर देखने जाओ, तो अभी वे तुम्हें सलाह दे रहे हैं, और कल जब उन पर वही घटना घट जाए, तो तुम उन्हें सलाह दोगे! और वे इसी दयनीय हालत में होंगे, जिसमें तुम हो। अगर तुम क्रोध में हो तो वे तुमको बताएंगे कि क्रोध से कैसे मुक्त होना है! और तुम उनको जरा गाली दे कर देखो। और वे भूल जाएंगे कि क्या सलाह दे रहे थे! और तुम्हें उनको सलाह देनी पड़ेगी।
क्यों? क्यों इतनी उत्सुकता है दूसरे को सलाह देने की? बिना ज्ञान के ज्ञानी होने का रस लेना चाहते हैं। बुद्धिमान आदमी से अगर आप सलाह लेने जाएंगे, तो सौ में निन्यानबे मौके पर तो वह कह देगा कि इसका मुझे कुछ पता नहीं है। एक मौके पर जिसका उसे पता है, वह आपसे निवेदन कर देगा। लेकिन वह यह भी निवेदन कर देगा कि जरूरी नहीं है कि यह आपके काम आए, क्योंकि मेरे काम आई है। क्योंकि आदमी अलग-अलग हैं, परिस्थिति भिन्न-भिन्न है। इसलिए इतना ही मैं कह सकता हूं कि यह सलाह मेरे काम आई थी, इससे मुझे लाभ हुआ था। इससे आपको हानि भी हो सकती है, इसलिए आप सोच-समझ लेना। यह कोई अनिवार्य नियम नहीं है।
लेकिन जो सलाह आपके ही कभी काम नहीं आई, वह भी आप दूसरे को दे देते हैं! मैं पढ़ रहा था एक मनोवैज्ञानिक की पत्नी का संस्मरण। उसने मुझे संस्मरण लिख कर भेजा। उसने मुझे लिखा कि मेरे पति मैरिज काउंसलर हैं। वह लोगों के शादी-विवाह में जो झगड़ा-झांसा हो जाता है, उसको सुलझाते हैं। लेकिन हम दोनों के बीच जो झगड़ा-झांसा चल रहा है, उसका कोई हल नहीं है! वह सैकड़ों शादियों में जो झगड़े हो जाते हैं, उनको सुलझा देते हैं। पति-पत्नी लड़ते आते हैं, वे उन दोनों को समझते हैं, समझाते हैं, रास्ता बना देते हैं। न मालूम कितने तलाक उन्होंने बचा दिए। लेकिन हमारा तलाक हो कर रहेगा, यह निश्चित है! तो उसने मुझे पूछा कि तकलीफ क्या है? आखिर मेरे पति इतने बुद्धिमान हैं, यह मैं भी मानती हूं, क्योंकि मैंने अपने सामने देखा कि उन्होंने कई लोगों को ठीक रास्ते पर ला दिया, लेकिन उनकी खुद की सलाह, खुद के काम क्यों नहीं आती?
कभी-कभी यह हो सकता है कि आपकी सलाह दूसरे के काम आ जाए। लेकिन यह दूसरे के काम आ ही इसलिए रही है कि आप दूसरे से दूर खड़े हैं, तो आप निष्पक्ष देख सकते हैं। जब आपका ही मामला होता है, तो आप दूर खड़े नहीं हो पाते, निष्पक्ष नहीं देख सकते, पक्ष हो जाता है।
तो मैंने उसकी पत्नी को पत्र लिखवा दिया, तू फिकर मत कर, किसी और मैरिज काउंसलर के पास तुम दोनों चले जाओ, वह कुछ रास्ता बना देगा। इस अंधों की दुनिया में, अंधे भी एक-दूसरे को रास्ता बताते रहते हैं! चलता है। तो वह

रास्ता बनेगा। अगर तू अपने ही पति से सलाह लेना चाहती है, तो मुश्किल है। क्योंकि पति से तू सलाह ले नहीं सकती। पति तुझे सलाह निष्पक्ष दे नहीं सकता। क्योंकि वह खुद भी हिस्सा है एक, पार्टी है झगड़े में। तुम दोनों किसी और के पास चले जाओ।
यह जो बुद्धिमानी है, जो इस तरह एक-दूसरे के काम आती रहती है, यह बुद्धिमानी बहुत गहरी नहीं है। यह बुद्धिमानी किसी गहरे अनुभव से नहीं निकली है। यह बुद्धिमानी किताबी है, यह ऊपरी है। इससे बचना जरूरी है।
जब तक हमें आत्मा की कुछ झलक न मिलने लगे, तब तक कम से कम आत्मा के संबंध में सलाह-मश्विरे से बचना जरूरी है। क्योंकि उससे तुम उपद्रव ही पैदा करोगे। और दूसरे की जिंदगी में अगर तुमसे कोई आनंद न आए, तो कम से कम इतनी तो कृपा करनी ही चाहिए कि कोई उपद्रव पैदा न हो।
"जब तुमको आरंभ के पंद्रह नियमों का ज्ञान हो चुकेगा और तुम अपनी शक्तियों को विकसित और अपनी इंद्रियों को उन्मुक्त करके ज्ञान-मंदिर में प्रविष्ट हो जाओगे, तब तुम्हें ज्ञात होगा कि तुम्हारे भीतर एक स्रोत है, जहां से वाणी मुखरित होगी।"
"ये बातें केवल उनके लिए लिखी गई हैं, जिनको मैं अपनी शांति देता हूं,
और जो लोग, जो कुछ मैंने लिखा है, उसके बाह्य अर्थ के अतिरिक्त उसके भीतरी अर्थ को भी साफ समझ सकते हैं।"

साधना-सूत्र
पंद्रहवां प्रवचन

पूछो--पवित्र पुरुषों से

आंतरिक इंद्रियों को उपयोग में लाने की शक्ति प्राप्त करके, बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीतकर,
जीवात्मा की इच्छाओं पर विजय पाकर और ज्ञान प्राप्त करके,
हे शिष्य,
वास्तव में मार्ग में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो जा।
मार्ग मिल गया है,
उस पर चलने के लिए अपने को तैयार कर।

10. पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से--
उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।

तुम अपनी आंतरिक इंद्रियों के विकास के कारण यह कार्य कर सकोगे।

11. पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से,
उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं।

बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीत लेने से तुम्हें यह रहस्य जान लेने का अधिकार प्राप्त हो जाएगा।

सूत्र के पहले कुछ मित्रों ने थोड़े से प्रश्न पूछे हैं... सभी प्रश्न साधना के समय नग्न होने से संबंधित हैं।
एक मित्र ने पूछा है कि नग्नता पर रोक क्यों लगाई गई है? क्या उसका उपयोग नहीं है?
नग्नता का तो बहुत उपयोग है। सिर्फ नग्नता, नग्नता ही नहीं है इसलिए। तुम्हारे वस्त्रों के साथ तुम्हारी संस्कृति, तुम्हारी शिक्षा, तुम्हारे संस्कार, सभी जुड़े हुए हैं। उन्हें उतार कर रखते ही वह सब भी, जो तुम्हारे ऊपर चढ़ा है वस्त्रों की भांति, उतार कर रख दिया जा सकता है। नग्न होने का भय ही यही है कि मैं जैसा हूं, वैसा ही दिखाई न पड़ जाऊं।
बाह्य नग्नता तो प्रथम चरण है। वस्तुतः तो नग्न भीतर होना है, कि मैं जैसा हूं, वैसा ही प्रकट हो जाऊं। कोई नकाब, कोई चेहरा, कोई मुखौटा, कोई ऊपर का आवरण, जो झूठा है, मेरे ऊपर न रहे। लेकिन मनुष्य चूंकि बाहर ही जीता है, इसलिए बाहर की नग्नता भी भीतर की नग्नता की तरफ सहयोगी होती है। नग्न होने में भय भी लगता है। क्योंकि वस्त्रों ने तुम्हें वह रूप दिया है, जो तुम्हारे शरीर पर नहीं है। वस्त्रों ने तुम्हें ढांक रखा है, वस्त्रों ने तुम्हें छिपा रखा है। दूसरे की आंखों से तुम वस्त्रों के कारण बच जाते हो। नग्न खड़े होने का अर्थ है, मैं जैसा हूं, बुरा-भला, सुंदर-असुंदर, वैसा प्रकट हूं और अपने को छिपाता नहीं हूं।
यह एक प्रतीक है। और सुबह के ध्यान में, दूसरे चरण में, जब कि मैं तुमसे कहता हूं कि जो भी तुम्हारे भीतर हो, उसे प्रकट कर दो; तो स्वभावतः वस्त्रों को फेंक देने का ख्याल भी पैदा होता है। और वस्त्रों को जो उतार कर रख देता है, उसे दूसरे चरण में अपनी विक्षिप्तता को प्रगट करने में ज्यादा आसानी हो जाती है। क्योंकि जो नग्न होने को राजी हो गया, उसे अब दूसरे की चिंता नहीं है। अब वह चीख भी सकता है, चिल्ला भी सकता है, नाच भी सकता है। दूसरे की चिंता जैसे वस्त्रों के साथ ही उतर गई। दूसरे क्या कहेंगे, जिसको इस बात का भय है, वह तो वस्त्र भी नहीं उतार पाएगा। सहयोगी है कि वस्त्रों को उतार कर रख कर ही सुबह के ध्यान में प्रवेश किया जाए। लेकिन कुछ साधक उतना साहस नहीं भी कर पाते, तो बीच में भी दूसरे चरण में उन्हें ऐसा ख्याल आ सकता है कि वस्त्र अलग कर दें, तब भी वस्त्रों को अलग कर देना उपयोगी है।

यह उपयोगिता अगर वस्त्र सिर्फ वस्त्र ही होते, तो न होती। वस्त्रों
के साथ बहुत कुछ जुड़ा है। जब तुम बच्चे की भांति पैदा हुए थे तो नग्न थे। जब भी तुम पुनः नग्न खड़े हो जाते हो, तुम अपने बचपन में वापस लौट जाते हो। वस्त्र तुम पर आरोपित किए गए हैं। जिस दिन से तुम्हारे ऊपर वस्त्र आरोपित किए गए, उसी दिन से तुम्हें शरीर का बोध हुआ। उसी दिन से शरीर में कुछ पाप है, शरीर में कुछ छिपाने योग्य है, शरीर में कुछ ढांकने योग्य है, शरीर में कुछ बुरा है, ये सारे भाव पैदा हुए। छोटे बच्चे को उसके मां-बाप, अगर वह नग्न बाहर आ जाए, तो डांटेंगे, डपटेंगे। तो शरीर के प्रति एक निंदा का भाव, वस्त्रों के साथ ही पैदा हुआ है।
शरीर में कुछ बुरा है, विशेष कर जननेंद्रियां बुरी हैं, छिपाने योग्य हैं। उसके साथ ही तुम्हारा शरीर भी दो हिस्सों में बंट गया है। नीचे का शरीर कुछ बुरा है और ऊपर का शरीर कुछ अच्छा है! यह जो विभाजन है शरीर के भीतर, इसने तुम्हारी जीवन चेतना को भी दो खंडों में बांट दिया है। आमतौर से लोग अपने सिर को ही अपना मानते हैं, बाकी शरीर को अपना नहीं मानते! बहुत हुआ तो ऊपर के हिस्से को अपना मानते हैं, नीचे के हिस्से को ऐसा मानते हैं कि मजबूरी है। इससे तुम्हारे भीतर जो जीवन-ऊर्जा है, वह खंडित हो गई है। बच्चे के भीतर जीवन-ऊर्जा अखंड होती है, उसका वर्तुल होता है। तुम्हारे भीतर वह वर्तुल नहीं है। लेकिन जिस क्षण तुम साहस करते हो और वस्त्रों को उतार कर रख देते हो, उसी क्षण, वस्त्र पहनने के दिन से, वस्त्र जबर्दस्ती पहनाए जाने के दिन से, अब तक तुम्हारे चित्त पर जो-जो शरीर के संबंध में निंदा के भाव थे, वे भी हट जाते हैं।
तुम्हें ख्याल ही न होगा कि हम इतने वस्त्रों में रहते हैं कि धीरे- धीरे हमें खुद भी भूल गया है कि वस्त्रों के बिना हमारा शरीर क्या है। वस्त्रों में हम एक कैद की तरह हैं, वस्त्र हटते ही हम मुक्त हो जाते हैं। पशु-पक्षियों की तरह मुक्त हो जाते हैं। उस मुक्तता का उपयोग किया जा सकता है।
इसलिए उपयोगिता तो बहुत है, लेकिन इस शिविर में मजबूरी थी। मजबूरी ऐसी थी कि या तो शिविर हो, तो नग्नता की सुविधा न हो सकेगी; नग्नता की सुविधा करनी हो तो शिविर न हो सकेगा। तो इन दोनों में जो कम बुराई थी, वही चुन लेनी उचित समझी। क्योंकि राजस्थान सरकार ने केवल दो दिन पहले खबर भेज दी कि वह अपने कोई मैदान, अपनी कोई संस्था, अपना कोई भवन नहीं दे सकेंगे। दो दिन पहले कोई भी व्यवस्था होनी मुश्किल थी। और साधक सारी दुनिया से आ चुके थे। भारत के साधक तो आने वाले थे, भारत के बाहर के साधक आ चुके थे। और कोई उपाय नहीं था। और सरकार को इतना तो हक है ही कि वह अपनी जमीन के लिए इंकार कर दे, कि वहां नग्न कोई नहीं हो सकेगा। उसके हक में भी कोई बुराई नहीं है, वह जमीन उनकी है; हमारे पास अपनी कोई जमीन नहीं है। यहां इस पैलेस होटल में जहां व्यवस्था की गई है, होटल व्यवस्थापकों की भी मजबूरी है, वे भी साहस नहीं जुटा सकते हैं कि नग्न होने का मौका दें। क्योंकि उनके लिए सवाल व्यवसाय का है।
तो इसलिए मजबूरी थी कि सुबह की नग्नता पर प्रतिबंध लगा देना पड़ा। लेकिन इससे आप यह न समझें कि हमने कोई साधना की पद्धति बदल ली है। और इससे आप यह भी न समझें कि सरकार के सामने कोई हम झुक गए हैं। ये सारी बातें नहीं हैं। न तो कोई झुकने का सवाल है, न कोई व्यवस्था बदलने की बात है। सरकार ने हमें एक सुविधा ही दी और उससे लाभ ही होगा कि हम अपनी ही व्यवस्था शीघ्र कर पाएंगे, जहां किसी का कोई प्रतिबंध न हो सके।
सरकार की अपनी मजबूरियां हैं; उसके ऊपर अपने दबाव हैं--समाज के, संस्कारों के, समूह के। लेकिन हमारी निजी व्यवस्था हो तो कोई दबाव डाला नहीं जा सकता। वह हमारी निजी व्यवस्था होगी। उसके भीतर जो नग्न होना चाहते हैं, वे हो सकते हैं। वह कोई पब्लिक, कोई सार्वजनिक जगह नहीं होगी। अब यह होटल है, सार्वजनिक जगह है, और लोग भी आ सकते हैं। तो जहां और लोग भी आ सकते हैं, वहां और लोगों का ध्यान भी रखना जरूरी है।
और फिर जीवन को बदलने की जो भी प्रक्रियाएं हैं, वे आमतौर से हमेशा ही समूह के विपरीत पड़ जाती हैं। नग्नता का ही सवाल नहीं है, नग्नता तो केवल

प्रतीक है, हम जो भी कर रहे हैं, वह समूह की धारणाओं के प्रतिकूल पड़ेगा ही। क्योंकि समूह जीता है अंधे की भांति बिना सोचे-समझे। समूह जीता है परंपरा की लीक पर। जो परंपरा कहती है, उसे ठीक मानता है। चाहे उसे ठीक मानने के कारण उसे कितना ही दुख झेलना पड़ता हो। उसे ख्याल भी नहीं होता कि मेरी मान्यताएं ही मेरे दुख का कारण हैं। जो लोग भी जीवन में क्रांति करने को उत्सुक हैं, उन्हें समूह की धारणाओं के पार तो उठना ही पड़ता है।
संन्यास का यही अर्थ है। संन्यास का अर्थ समाज को छोड़ना नहीं है, क्योंकि समाज को तो छोड़ा जा नहीं सकता। संन्यास का अर्थ है, समाज की धारणाओं के पार उठना। वह जो समाज जिसको ठीक समझता है, अगर वह अनुभव से ठीक मालूम पड़े तो ही मानना, अगर अनुभव से ठीक न मालूम पड़े, तो उससे भिन्न की खोज करना।
लेकिन फिर भी बुद्धिमान व्यक्ति को यह ध्यान रखना जरूरी है कि जिनके बीच हम जीते हैं, उनकी मान्यताएं, उनकी धारणाएं, हम अपने लिए तो छोड़ सकते हैं, लेकिन उनकी धारणाओं को हम तोड़ें, वह उचित नहीं है। हम अपने लिए उनकी धारणाएं तोड़ सकते हैं, हम धारणाओं से मुक्त हो सकते हैं। वह हमारी निजी स्वतंत्रता है। लेकिन मैं आपसे नहीं कहूंगा कि आप सड़क पर जा कर नग्न खड़े हो जाएं, क्योंकि सड़क आपकी नहीं है। और सड़क के आसपास रहने वाले जो लोग हैं, उनको किसी भी बात से दुख हो, ऐसा कोई भी काम करना उचित नहीं है। लेकिन मैं सड़क के लोगों से भी कहना चाहता हूं कि उनका भी यह हक नहीं है कि कोई एकांत निर्जन में अपनी व्यवस्था के भीतर नग्न खड़ा हो, तो वह उसमें अड़चन पैदा करें। व्यक्ति की स्वतंत्रता का मूल्य होना जरूरी है।
लेकिन व्यक्ति की स्वतंत्रता का कभी भी यह अर्थ नहीं है कि वह स्वतंत्रता स्वच्छंदता हो जाए। तुम्हें मैंने अगर कहा भी है कि सुबह के ध्यान में नग्न हो सकते हो, तो वह तुम्हें कोई नग्न होने की छूट नहीं दे दी है कि तुम कहीं भी नग्न हो सकते हो। और अगर तुम कहीं भी नग्न होना चाहो, तो उसका अर्थ ही यह हुआ कि तुम्हें ध्यान में रस नहीं है, तुम्हें नग्नता में रस है। वह रोग है। फिर तो रोग हो गया, उलटा रोग हो गया। कोई वस्त्रों के दीवाने हैं, तुम नग्नता के दीवाने हो गए। उसमें कुछ फर्क न रहा। नासमझी उलटी हो गई। तुम शीर्षासन करके खड़े हो गए। कोई पागल है, वह कहता है, वस्त्र उतारना नहीं, चाहे कुछ भी हो जाए।
मैंने एक ईसाई साध्वी के संबंध में पढ़ा है कि वह अपने स्नानगृह में भी वस्त्र पहन कर ही स्नान करती थी! तो उसके साथियों-संगियों ने कहा कि तू बिल्कुल पागल है, स्नानगृह में तेरे अतिरिक्त तो कोई होता नहीं, तो वहां कपड़े पहन कर स्नान करने का क्या अर्थ है? स्नान का तो मजा ही चला गया! तो उस साध्वी ने कहा कि जब से मैंने बाइबिल में यह पढ़ा है कि परमात्मा तुम्हें सब जगह देख रहा है, तब से मैं बाथरूम में भी नग्न नहीं हो पाती।
यह एक पागलपन है। और अगर परमात्मा सभी जगह देख रहा है, तो कपड़ों के भीतर नहीं देख सकेगा? उसे कपड़े क्या अड़चन देंगे? जब दीवाल अड़चन नहीं दे रही है, तो कपड़े क्या अड़चन देंगे? और परमात्मा भी कोई पीपिंग टॉम है कि हर किसी के बाथरूम में झांक रहा है! तो रुग्ण है फिर तुम्हारा परमात्मा भी। आदमी खुद रुग्ण हो तो वह अपने परमात्मा को भी रुग्ण कर लेता है। तुम्हारे रोग तुम्हारे देवी-देवताओं पर हावी हो जाते हैं। क्योंकि तुम्हारे ईश्वर की धारणा भी तुम्हीं तो निर्मित करते हो। अगर घोड़े ईश्वर की धारणाएं बनाएं, तो उसका चेहरा आदमी जैसा नहीं बनाएंगे, घोड़े जैसा ही बनाएंगे। अगर नीग्रो ईश्वर बनाते हैं तो वे उसको काला ही चित्रित करते हैं। उनके ईश्वर के ओंठ नीग्रो के ओंठ होते हैं, उनके ईश्वर के नीग्रो के बाल होते हैं। अगर चीनी ईश्वर को बनाते हैं, तो उसकी गाल की हड्डियां निकालते हैं, चपटी नाक रखते हैं।
हम अपने ईश्वर को अपनी ही शकल में बनाते हैं। तो हमारे जो रोग होते हैं, वे हमारे ईश्वर पर भी हावी हो जाते हैं। अब ये आदमी एक-दूसरे के बाथरूम में झांक कर जरूर देखना चाहते हैं। यह आदमी का रोग है। ये ईश्वर भी ऐसा बना लेते हैं, जो सब जगह झांक रहा है!

नग्न होने का मोह अगर पैदा हो जाए, तो वह भी रोग है, बीमारी है। ध्यान रहे, आपका नग्न होना एक बात है। और आप दूसरों को नग्न हो कर दिखाएं, यह दूसरी बात है। इन दोनों में फर्क है। आप का नग्न होना सहज हो सकता है। लेकिन आप नग्न हो कर दूसरे को दिखाने में उत्सुक हों कि कोई देखे, तो मनोविज्ञान में उसे वे कहते हैं, एक्जीबिसनिस्ट। वह प्रदर्शनवादी जो है, वह रोगी है।
इसे थोड़ा समझें। मनोविज्ञान दो तरह की बीमारियां बताता है इस संबंध में। एक को वह कहता है, व्योरिज्म--दूसरा नग्न हो, ऐसा देखने में रस लेना। एक को कहता है, एक्जीबिसनिज्म--हम नग्न हों और दूसरे देखें, इसमें रस लेना। ये दोनों बीमारियां हैं। ये दोनों सहज नहीं हैं। पुरुष अक्सर वोयूर होते हैं। पुरुषों को जो बीमारी होती है, वह झांक कर स्त्रियों को देखने की होती है। स्त्रियां एक्जीबिसनिस्ट होती हैं। उनकी जो बीमारी होती है, वह यह होती है कि उनको कोई झांक कर देखे। इसलिए स्त्रियां सारा उपाय करती हैं। ऐसे वस्त्र पहनती हैं, ऐसे गहने लगाती हैं, ऐसा सारा इंतजाम करती हैं कि कोई देखे। और पुरुष सारा इंतजाम करते हैं कि किस भांति देखें। मगर ये दोनों रोग हैं।
और आप जान कर हैरान होंगे कि दोनों रोग ही वस्त्रों के कारण पैदा हुए हैं। अगर आप एक आदिवासी समाज में चले जाएं, जहां पुरुष-स्त्रियां नग्न हैं, तो न तो वहां वोयूर होता है, और न एक्जीबिसनिस्ट होता है। वहां न तो कोई देखने में उत्सुक होता है, क्योंकि देखने को बचा क्या है? जिसमें उत्सुकता रखो। सभी नग्न हैं, देखने को है क्या? देखने की उत्सुकता तो जब कुछ छिपाया हो, तब होती है। जब बातें खुली ही हों, तो देखने को क्या है? तो आदिवासी समाज में, जहां स्त्री-पुरुष नग्न हैं, न तो कोई देखने में उत्सुक है, न कोई दिखाने में उत्सुक है। देखने-दिखाने का रोग वस्त्रों के साथ पैदा हुआ है। फिर रोग कितना बढ़ सकता है, उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। कितने चित्र, कितनी कहानियां, कितनी फिल्में, कितनी पत्रिकाएं, सिर्फ इसलिए छपती हैं और बिकती हैं कि उनमें नग्न चित्र छपते हैं। और सारी दुनिया की सरकारें रुकावट लगाती हैं कि यह न हो। लेकिन यह नहीं रुक पाता। अंडर-ग्राउंड प्रेस हैं, भारी प्रचार चलता है, करोड़ों रुपए का साहित्य नीचे-नीचे बिकता रहता है। कोई दुनिया की ताकत उस पर रोक लगा नहीं पाती। बल्कि जितनी रोक लगाई जाती है, उतना ब्लैक-मार्केट में वह सारा का सारा साहित्य बिकता है।
पर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आदमी क्यों किसी को नग्न देखने में इतना उत्सुक है?
आप जान कर चकित होंगे कि आप उन्हीं हिस्सों को देखने में उत्सुक होते हैं, जो ढंके हैं। जो उघड़े हैं, उनको देखने में उत्सुक नहीं होते। जिन लोगों ने वस्त्रों की ईजाद की, शायद आप सोचते होंगे कि वे लोग कामवासना के बड़े विपरीत थे, इसलिए ईजाद किए, तो आप गलती में हैं। जिन्होंने वस्त्रों की ईजाद की, उन्होंने आदमियों को कामातुर बनाने का बड़ा भारी उपाय किया। क्योंकि जो अंग छिपा दिए गए हैं, उनमें बहुत रस पैदा हो गया है, रुग्ण रस पैदा हो गया है। इस रस का कोई भी कारण नहीं है, शरीर सहज बात है। लेकिन उसको छिपा-छिपा कर हमने, निषेध कर-कर के बहुत रस पैदा कर दिया। सारी दुनिया इस रस से ग्रस्त हो गई है।
तो आप दोनों बातें ख्याल रखें। न तो दूसरे को नग्न देखने में उत्सुकता लेनी कोई समझदार व्यक्ति की बात है। और न ही कोई उसे नग्न देखे, इसमें कोई रस लेना किसी समझदार व्यक्ति की बात है। ये दोनों रोग हैं। और ये दोनों रोग आपके वस्त्रों के साथ ही रख दिए जाने चाहिए। तो ही आपकी नग्नता में अध्यात्म प्रविष्ट होता है। तो ही आपकी नग्नता अश्लील नहीं रह जाती।
लेकिन यह तो आपकी बात है। समाज इसके लिए राजी होगा, जरूरी नहीं है। क्योंकि समाज तो उन्हीं रुग्ण बातों से भरा हुआ पड़ा है। अखबार राजी होंगे, यह सवाल नहीं है। अखबार छापने वाला, पत्रकार, वे सब उन्हीं रुग्ण बातों से भरे पड़े हैं। उनकी भी तकलीफ वही है, उनकी भी अड़चन वही है। सरकार राजी हो

जाएगी, ऐसा नहीं है। क्योंकि सरकार के पदों पर जो लोग बैठे हैं, उन्हें कोई अध्यात्म की जरा सी भी झलक होती, तो वहां नहीं होते, कहीं और होते। इसलिए वे कोई राजी हो जाएंगे, यह सवाल नहीं है। उनको राजी करने की कोई जरूरत भी नहीं है, कोई प्रयोजन भी नहीं है। उनकी तरफ ध्यान भी देने की जरूरत नहीं है कि वे क्या कर रहे हैं। लेकिन इतना तो तय है कि वे बाधा और अड़चन डाल सकते हैं। लेकिन बाधा और अड़चन वे तभी डाल सकते हैं, जब आप भी नग्नता को रोग की तरह पकड़ लें। नहीं तो वे भी बाधा और अड़चन नहीं डाल सकते। यह हमारी निजी साधना की बात है, और निजी स्थल पर है।
मैं तो पक्ष में नहीं हूं कि इस बात के भी कि जैन मुनि भी सड़क पर नग्न निकलें। क्योंकि सड़क निकलने वाले की ही नहीं है, सड़क पर जो लोग रहते हैं, उनकी भी है; जिनको दिखाई पड़ता है, उनकी भी है। अगर वे नहीं देखना चाहते हैं, तो उनकी आंखों पर हमला करना उचित नहीं है। वे ठीक हैं या गलत, यह सवाल नहीं है। लेकिन आंख मेरी है और मैं आपको नग्न नहीं देखना चाहता हूं, तो आपको ऐसी जगह खड़े नहीं होना चाहिए, जहां से आप मुझे नग्न दिखाई पड़ें। और आप ऐसी जगह खड़े होते हैं, तो उसका मतलब ही यह है कि आपको नग्न होने में रस कम है, कोई आपको नग्न देखे, इसमें ज्यादा रस है। तब तो बात ही व्यर्थ हो गई। तब तो यह हुआ कि हम एक रोग को छोड़ कर दूसरे रोग में पड़ गए। कुएं से बचे तो खाई में गिर गए।
मैं कोई नग्नतावाद का प्रचारक नहीं हूं। लेकिन नग्नता का एक उपयोग हो सकता है साधना में, उसमें जरूर मेरी सहमति है। लेकिन समाज का ध्यान रखना सदा ही जरूरी है। इसलिए नहीं कि आप समाज से कोई डरते हैं, यह डर का कोई सवाल ही नहीं है। लेकिन यह तो ऐसा ही हुआ कि जैसे कोई हार्न बजा रही हो बस और आप सामने ही खड़े रहें, कि हम डरते थोड़े ही हैं, जो रास्ते से हटें? तो आप पागल हैं। हार्न बज रहा हो और बस आ रही हो, तो कोई डर की वजह से थोड़े ही हटता है। कि जो हट जाए उसको आप कहेंगे कि डरपोक हो, क्योंकि जब बस आ रही थी, तब आप हटे क्यों? जब हार्न बज रहा था, तब खड़े रहना था। तो कोई पागल होता तो खड़ा रहता। जीवन में झुकने की कोई जरूरत नहीं है, लेकिन जीवन में व्यर्थ अकड़े रहने की भी कोई जरूरत नहीं है, और दोनों के बीच मार्ग खोज लेना जरूरी है। इसलिए यहां जो एक ही उपाय था कि शिविर हो सकता, तो नग्नता पर रोक लगानी जरूरी थी, नहीं तो शिविर नहीं हो सकता था। दोनों में यही उचित पाया कि नग्नता पर प्रतिबंध लगा देना उचित होगा। थोड़ी बाधा तो पड़ेगी ही, लेकिन उस बाधा से इतना नुकसान नहीं होगा, जितना शिविर के न होने से होता। और मैं किसी भी मामले में अंधा नहीं हूं। और किसी भी मामले में मुझे किसी तरह का पागलपन नहीं है। जो उचित हो, और जो सुगम हो, और जिस भांति अधिक लोगों को लाभ हो सके, सदा उस पर ही विचार कर लेना उचित है।
"आंतरिक इंद्रियों को उपयोग में लाने की शक्ति प्राप्त करके, बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीत कर, जीवात्मा की इच्छाओं पर विजय पा कर और ज्ञान प्राप्त करके, हे शिष्य, वास्तव में मार्ग में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो जा। मार्ग मिल गया है, उस पर चलने के लिए अपने को तैयार कर।" दसवां सूत्र, "पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से--उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं। तुम अपनी आंतरिक इंद्रियों के विकास के कारण यह कार्य कर सकोगे।"
दसवां सूत्र बहुत विचारणीय है। लंबी यात्रा के बाद, जिन सूत्रों की हमने बात की है, उनको समझ कर और उनको जीने के बाद, दसवें सूत्र पर प्रयोग किया जा सकता है, उसके पहले नहीं। उसके पहले तो यह बात ही बड़ी अजीब लगेगी, यह सूत्र बेबूझ मालूम पड़ेगा। कोई बहुत ही ज्यादा समझने की कोशिश करेगा, तो सोचेगा कि काव्य की बात है, सुंदर है, प्रतीक है। लेकिन यह काव्य नहीं है और न ही प्रतीक है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है। पर यह तथ्य विज्ञान का, सारे प्रयोग कर चुके हैं तो ही ख्याल में आ सकता है।
"पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से--उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।"
यह अध्यात्म की गुह्य विद्या के कुछ बुनियादी आधारों में से एक है।
इसे हम समझें।

इस जगत में जो भी श्रेष्ठतम सत्य की उदघोषणा होती है, वह शास्त्रों में तो संगृहीत होती ही है, लेकिन वह अस्तित्व में भी संगृहीत हो जाती है। शास्त्रों में तो भूल भी हो सकती है, क्योंकि आदमी संगृहीत करता है। लेकिन अस्तित्व में कोई भूल नहीं हो सकती, क्योंकि कोई संगृहीत करता नहीं, संगृहीत होती है।
बुद्ध बोले। पहला वचन बोधि-वृक्ष के नीचे प्रकट हुआ। उसके भी पहले बुद्ध को जो ज्ञान की परम-अवस्था हुई, वह बोधि-वृक्ष के नीचे घटित हुई। बौद्धों ने उस बोधि-वृक्ष को बचाने की कोशिश की है। वही बोधि-वृक्ष अब भी जीवित है। उसकी एक शाखा अशोक ने अपनी बेटी संघमित्रा और अपने बेटे महेन्द्र के हाथ लंका भेजी। बौद्ध भिक्षुओं ने, जो भविष्य में झांक सकते थे, उनको यह प्रतीति थी कि भारत में बौद्ध-धर्म बचेगा नहीं। बुद्ध ने भी घोषणा की थी कि मेरा धर्म अब पांच सौ वर्ष से ज्यादा भारत में न बच सकेगा। कारण? कारण था स्त्रियों का संघ में प्रवेश।
बुद्ध ने बहुत समय तक, स्त्रियों को संन्यास न दिया जाए, इसकी जिद्द पकड़े रखी। बहुत समय तक, वर्षों तक बुद्ध टालते रहे, कि स्त्रियों को संन्यास न दिया जाए। बौद्ध भिक्षुओं का संघ सिर्फ पुरुषों के लिए हो। लेकिन इसमें थोड़ी ज्यादती मालूम पड़ती थी। थी भी। और अनेकों, लाखों स्त्रियां भिक्षुणी होने को तैयार थीं, और उनकी प्रार्थना बढ़ती चली गई। और आखिर उनके दबाव में, और उनके प्रति करुणा के वश, बुद्ध राजी हुए। और बुद्ध ने स्त्रियों को संन्यास दिया। जिस दिन उन्होंने स्त्रियों को दीक्षा दी, उसी दिन उन्होंने कहा कि अगर मैं स्त्रियों को संघ में दीक्षा न देता, तो जो धर्म हजारों वर्ष चल सकता था, वह अब केवल पांच सौ वर्ष चलेगा। मैं भी बहुत सोचता था कि बुद्ध ने थोड़ी ज्यादती की, इतनी देर तक स्त्रियों को रोकना उचित न था। लेकिन जैसे-जैसे स्त्रियों से मेरा संपर्क बढ़ रहा है, वैसे-वैसे मुझे लगता है कि शायद उन्होंने ठीक ही किया था। स्त्रियों की जो भाव-दशा है, उनके काम करने का जो ढंग है, वह पुरुषों
से बहुत भिन्न है। और उसके कारण, अकारण ही बहुत से उपद्रव खड़े हो जाते हैं, जिनसे कि बचा जा सकता था। और वे उपद्रव इस ढंग से खड़ा करती हैं; और इतना जाल बुन लेती हैं, भावना का, कल्पना का; और उसको इतना सत्य मान लेती हैं कि उन्हें उस कल्पना के बाहर खींचना मुश्किल है। वह दूसरों को भी अपने कल्पना-जाल में फंसा डालती हैं। स्त्री और पुरुष के विचार का काम भिन्न है, विपरीत है।
पुरुष चलता है बुद्धि से, विचार से, तर्क से; तो उसके काम में एक व्यवस्था होती है, एक योजना होती है। स्त्रियां चलती हैं भाव से, कल्पना से, स्वप्न से; उनके काम में कोई व्यवस्था और कोई योजना नहीं होती। फिर तर्क और बुद्धि में तो दस लोग साथ राजी हो सकते हैं, कल्पना में कोई राजी नहीं हो सकता। कल्पना आपकी निजी होती है, तर्क सामूहिक हो सकता है। अगर मैं कोई तर्क दूं, तो हम निर्णय कर सकते हैं कि किस तरफ राजी हो जाना है। लेकिन अगर भावना की ही बात हो, तो निर्णय का कोई उपाय नहीं रहता। भावना निजी होती है।
इसलिए स्त्रियां कभी संघबद्ध नहीं हो पातीं। चार स्त्रियों को भी इकट्ठा करना बहुत मुश्किल है। स्त्रियों की कोई सेना खड़ी करनी हो तो असंभव है। क्योंकि हर स्त्री सेनापति बन जाएगी, सैनिक नहीं बन सकती। और हर स्त्री आदेश जारी कर देगी, और आदेश मानने वाला कोई भी नहीं होगा। और हर स्त्री अपनी बात में इतनी दृढ़ होगी कि झुकने को भी राजी नहीं हो सकती। और झुकाने का कोई उपाय भी नहीं है, क्योंकि तर्क का तो कोई सवाल ही नहीं है। तर्क में तो सुविधा है कि हम सोच-विचार कर लें, कोई निष्कर्ष निकाल लें, कि क्या ठीक है। लेकिन भावना में कोई सुविधा नहीं है। दस-पच्चीस स्त्रियां इकट्ठी हो जाएं, तो वे इतना उपद्रव मचा सकती हैं, जितना कि पचास हजार पुरुष भी इकट्ठे हो कर नहीं मचा सकते। और काम करने की प्रक्रिया भिन्न है, ढंग भिन्न है।
इसलिए कभी-कभी तो मैं भी सोचता हूं कि बुद्ध ठीक थे। उन पर जोर देना शायद उचित नहीं हुआ। पहले मैं सोचता था कि यह करुणा नहीं है उनकी, क्यों

स्त्रियों को रोकते हैं? अब मैं सोचता हूं कि शायद यही करुणावान हुआ होता कि स्त्रियों को वे रोक देते, तो धर्म उनका हजारों साल रह जाता। वह करुणा ज्यादा होती; कि स्त्रियों को दीक्षा दे कर पांच सौ साल में नष्ट हो जाए, यह करुणा ज्यादा होती--कहना मुश्किल है।
अशोक ने अपने बेटे और अपनी बेटी को बोधि-वृक्ष की एक शाखा ले कर लंका भेजा, ताकि यह बोधि-वृक्ष सुरक्षित रह सके। क्योंकि भारत में जिस दिन बुद्ध धर्म समाप्त होगा, उसी दिन बोधि-वृक्ष भी जला दिया जाएगा, तोड़ दिया जाएगा, मिटा दिया जाएगा--सूख जाएगा। वह बोधि-वृक्ष लंका में जिंदा रहा। और अभी कुछ ही वर्ष पहले उसमें से फिर शाखा ला कर वापस बोधि-वृक्ष को बुद्ध गया में पुनर्स्थापित किया।
इस वृक्ष के पीछे इतने लगाव का कारण सिर्फ भावना का नहीं है। इस वृक्ष
ने बुद्ध के जीवन में जो परम-प्रकाश हुआ, वह अंकित किया है अपने में। यह वृक्ष उस प्रकाश को पी गया है। बुद्ध के अस्तित्व में जो विस्फोट हुआ, वह इस वृक्ष के रोएं-रोएं में समा गया है।
तो आदमी ने जो संग्रह किया है बुद्ध के बाबत, उसमें तो भूलें हैं। भूलें होंगी। बड़ी कठिनाई है। बुद्ध बोलते हैं, तो भी पच्चीस सुनने वाले पच्चीस अर्थ निकालते हैं। बुद्ध के मर जाने के बाद इकट्ठा हुआ संघ, बुद्ध की वाणी इकट्ठी करने को, तो बड़ी अड़चन आई, कोई तालमेल न था। जो लोग सदा से उनके साथ रहे थे, उनमें भी भेद था। वे कहते, यह कभी कहा नहीं। कोई कहता था, यह उन्होंने सदा कहा। कोई कहता था, उसका यह अर्थ है। कोई कहता था, उसका यह अर्थ हो ही नहीं सकता। बड़ी कठिनाई थी। फिर किसी तरह सब के बीच छान-बीन कर जो सब में ताल-मेल खाता था, वह इकट्ठा किया गया।
अगर बुद्ध आएं तो उसे बिल्कुल इंकार कर देंगे, क्योंकि वह मौलिक है ही नहीं। पहले तो पचास लोगों ने इकट्ठा किया, फिर उसमें भी जिन-जिन में तालमेल नहीं खाता था, वे हिस्से अलग कर दिए। फिर सबकी बात जिसमें सहमति होती थी, वह इकट्ठी कर ली। अगर बुद्ध आएं, तो वे कहेंगे, यह तो मैंने कभी कहा नहीं।
ऐसा ही समझें कि मैं यहां कुछ बोल रहा हूं, फिर आप सब लोगों का मंतव्य लिया जाए कि मैंने क्या कहा है। फिर उसमें से सार निकाला जाए, जिसमें कोई नाराज न हो, कोई असहमत न हो, ऐसा सार-बिंदु खोजा जाए। तो आप इतना पक्का समझ लें कि वह कुछ भी हो, जो मैंने कहा है, वह नहीं हो सकता है। क्योंकि आप इतने लोग मिल कर उसको नष्ट ही कर देंगे।
लेकिन यह बोधि-वृक्ष के पास तो कोई मन नहीं है, यह बोधि-वृक्ष तो मौन, मूक है। इसके नीचे जो बुद्धत्व की घटना घटी, वह इस बोधि-वृक्ष में प्रविष्ट हो गई है। न केवल बोधि-वृक्ष में, बल्कि पास से बहती निरंजना में भी वह समाविष्ट हो गई है। उस पृथ्वी में जिसके पास इतना ज्वलंत प्रकाश हुआ, उस पृथ्वी के कणों में भी समाविष्ट हो गई। उस आकाश में जो उसका गवाह और साक्षी हुआ, उसमें भी प्रविष्ट हो गई।
यह सूत्र यह कह रहा है कि "आंतरिक इंद्रियों को उपयोग में लाने की शक्ति प्राप्त करके, बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीत कर, जीवात्माओं की इच्छाओं पर विजय पा कर और ज्ञान प्राप्त करके, हे शिष्य, वास्तव में मार्ग में प्रविष्ट होने के लिए तैयार हो जा। मार्ग मिल गया है, उस पर चलने के लिए अपने को तैयार कर।"
"पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से--उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।"
शास्त्रों से पूछने की जरूरत इसीलिए है कि हम अस्तित्व से पूछने की कला नहीं जानते हैं। अन्यथा बोधि-वृक्ष कहेगा कि क्या हुआ। अन्यथा निरंजना नदी कहेगी कि क्या हुआ। अन्यथा यह पृथ्वी कहेगी कि क्या हुआ। बुद्ध जब इस पृथ्वी पर चले, महावीर जब इस पृथ्वी पर बैठे, कृष्ण जब इस पृथ्वी पर नाचे, तो इस पृथ्वी की क्या संजोई हुई स्मृतियां हैं।
अब तो धीरे-धीरे इसके वैज्ञानिक आधार भी मिलते जाते हैं। इसलिए यह बात समझनी आसान हो सकती है। वैज्ञानिक कहते हैं कि जैसे अभी मैं बोल रहा हूं, तो जो मैं बोल रहा हूं, वह वाणी कभी भी खोएगी नहीं। वह खो नहीं सकती, वह

गूंजती ही रहेगी, गूंजती ही रहेगी--वायु की तरंगों में मौजूद रहेगी। और आज नहीं कल, वैज्ञानिक कहते हैं, ऐसे यंत्र के बनने की संभावना है कि हम अतीत की वाणियों को पकड़ सकें। कृष्ण ने सच में ही गीता युद्ध के मैदान पर कही है या नहीं कही है, इसका निर्णय हो सकेगा। क्योंकि जो वाणी है, वह नष्ट नहीं होती, वह गूंजती रहती है। सूक्ष्म हो जाती है, लेकिन गूंजती रहती है। सूक्ष्मतर हो जाती है, लेकिन गूंजती रहती है। उसको पकड़ा जा सकता है।
ऐसा समझें कि अगर न्यूयार्क से रेडियो स्टेशन कुछ घोषणा करता है, तो
आप यहां सुनते हैं। लेकिन न्यूयार्क से यहां तक आने में समय लगता है। अगर न्यूयार्क में दो मिनट पहले घोषणा की गई, तो आप दो मिनट बाद सुनते हैं। इसका क्या अर्थ हुआ? इसका अर्थ हुआ कि जो बात दो मिनट पहले हुई, वह दो मिनट बाद सुनी जा सकती है। अतीत की बात हो गई वह। वह घटी दो मिनट पहले थी, सुनी दो मिनट बाद गई।
अगर दो मिनट बाद सुनी जा सकती है, तो दो दिन बाद क्यों नहीं? क्योंकि सैद्धांतिक रूप से तो बात साफ हो गई कि अतीत भी पकड़ा जा सकता है। दो मिनट पहले जो हुआ था, वह दो मिनट बाद पकड़ा जा सकता है। तो दो दिन बाद क्यों नहीं? थोड़े और विस्तीर्ण यंत्र चाहिए, तो दो दिन बाद भी पकड़ा जा सकेगा। जब तक रेडियो नहीं था, तो हम दो मिनट बाद भी नहीं पकड़ सकते थे। अब हम दो मिनट बाद पकड़ सकते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में इस पर काम चल रहा है। और वे कहते हैं कि असंभावना नहीं है कि हम अतीत को, दो हजार साल, दो लाख साल पहले भी जो वाणी प्रकट हुई हो, उसे हम पकड़ने में समर्थ हो जाएं। जटिलताएं हैं, लेकिन वाणी मौजूद है।
यह सूत्र उसी की बात कह रहा है। विज्ञान किस दिन पकड़ेगा पता नहीं। लेकिन जो व्यक्ति बाह्य इंद्रियों और अंतर इंद्रियों को विजय कर लेता है, इन सारे सूत्रों पर चल कर जो शून्य में विराजमान हो जाता है, जो ध्यान को उपलब्ध हो जाता है, वह व्यक्ति बिना किसी यंत्र के भी, सिर्फ ध्यान अपना फोकस कर ले, सिर्फ शांत हो जाए, और अपने ध्यान को अतीत में ले जाए, और उस जगह केंद्रित कर लें, जहां कृष्ण ने गीता कही, तो पुनः अंतर्वाणी में गीता सुनी जा सकती है।
क्योंकि उस अंतर-जगत के लिए समय का कोई फासला नहीं है। वहां समय है ही नहीं। वहां कोई स्थान का फासला नहीं है, वहां कोई स्थान है ही नहीं। वह जो भीतर का केंद्र है, वह सनातन है। उस जगह से आप अतीत में जा सकते हैं और भविष्य में भी। तो फिर वायु में जो रहस्य छिपे हों, वह आपको पता चल जाएंगे। यह सूत्र कहता है, पूछो वायु से, पूछो पृथ्वी से, पूछो जल से--इन तीनों
ने बहुत से रहस्य छिपाए हुए हैं।
हिंदुओं ने अपने मंदिर नदियों के किनारे बनाए हैं, खास कारणों से। क्योंकि हिंदुओं के साधना- स्थल सभी नदियों के किनारे थे। वह भी खास कारणों से। हिंदुओं के सभी तीर्थ नदियों के किनारे हैं, वह भी खास कारणों से। हिंदू-साधना की जो गहनतम प्रक्रियाएं हैं, हिंदू ऋषि-महर्षियों ने जल में उनको संरक्षित किया है, इसलिए तीर्थ इतने मूल्यवान हैं।
लोग तो नासमझी की तरह यात्रा करते रहते हैं, गंगा की, जमुना की। चले जाते हैं तीर्थों में, संगम पर पहुंच जाते हैं, मेले जुटा लेते हैं। लेकिन उन्हें पता नहीं है कि जब प्राथमिक रूप से यह घटना शुरू हुई थी, तो इसके पीछे बड़े रहस्य थे। गंगा में हिंदुओं ने अपने जीवन-रहस्य के अनुभवों का सब कुछ छिपाया हुआ है। और जो व्यक्ति भी गंगा से पूछने में समर्थ हो सकता है, उसे उत्तर उपलब्ध हो जाएंगे। तो गंगा के किनारे जा कर बैठ जाना, कोई परंपरागत बात ही नहीं है, गंगा के किनारे बैठना बड़ा अर्थपूर्ण है।
जैनों ने अपने सारे मंदिर और सारे तीर्थ पहाड़ों पर बनाए हुए हैं, जान कर। क्योंकि नदियों के किनारे हिंदुओं ने अपनी धारणाओं को काफी दूर तक प्रविष्ट किया था। और दोनों के मिश्रित होने की और दोनों के एक-दूसरे में उलझ जाने की संभावना थी। तो जैनों ने अपने सारे तीर्थ पहाड़ों पर चुने हैं। और पर्वतों में उन्होंने अपनी धारणा को आविष्ट किया है।
एक छोटे से पहाड़ पर, पार्श्वनाथ हिल पर, जैनों के बाईस तीर्थंकरों ने देह-त्याग की। चौबीस में से बाईस! आकस्मिक नहीं हो सकता। चौबीस

तीर्थंकरों में से, हजारों साल की यात्रा में, बाईस तीर्थंकर एक ही पर्वत पर जा कर देह को त्याग करें! वे दो भी नहीं कर पाए तो कुछ आकस्मिक दुर्घटनाओं के कारण। अन्यथा योजना यही थी कि चौबीस के चौबीस तीर्थंकर एक ही पर्वत पर देह को त्याग करें। क्योंकि देह के त्याग के वक्त, तीर्थंकर से जो ज्योति उत्पन्न होती है, वह पत्थरों पर सदा के लिए अंकित हो जाती है। जो उस रहस्य को जानता है, वह पार्श्वनाथ हिल पर जा कर आज भी पहाड़ से पूछ सकता है, कि जब पार्श्वनाथ ने देह त्यागी, तो इस पर्वत पर क्या घटा, इस पर्वत ने क्या अनुभव किया?
प्रक्रियाओं में फर्क है। क्योंकि नदी में अगर अंकित करना हो तो और ढंग से अंकित करना होता है, क्योंकि नदी सतत प्रवाहशील है। अगर पर्वत पर कोई चीज अंकित करनी हो तो और ढंग से अंकित करनी होती है। पूरी प्रक्रिया, पूरा तंत्र अलग होता है, क्योंकि पर्वत स्थिर है।
सारे धर्मों ने सिर्फ शास्त्र ही नहीं रचे हैं, क्योंकि शास्त्र तो बहुत ही कागजी चीज है, उसका ज्यादा भरोसा नहीं, उससे भी गहरे उपाय उन्होंने खोजे हैं। जैसे इजिप्त में पिरामिड बनाए हैं, इजिप्त के धार्मिक लोगों ने। उन्होंने पिरामिड की रचना में सब कुछ छिपा दिया है। पिरामिड की बनावट में, पिरामिड के पत्थर-पत्थर में, उसकी पूरी योजना में, सब छिपा दिया, जो उन्होंने जाना था। और जो पिरामिड को समझने वाले लोग हैं--अब कई तरह से खोज चलती है पिरामिडों की, वे चकित हैं कि कितना रहस्य! कहा जाता है कि इजिप्त ने जो भी जाना था, वह सब पिरामिड में डाल दिया है। लेकिन कुंजियां खो गई हैं। थोड़ा-बहुत कुछ कुंजी पकड़ में आती है कहीं से, तो थोड़े- बहुत रहस्य समझ में आते हैं। सारी दुनिया में किताब पर भरोसा पुराने धर्मों ने कभी नहीं किया। उन्होंने कुछ और उपाय किया। लेकिन पिरामिड भी आदमी की बनाई हुई चीज है, कितनी ही मजबूत हो, मिट सकती है। इसलिए भारत में हमने आदमी की बनाई हुई चीजों में छिपाने की कोशिश न करके प्रकृति के ही उपादानों में डाल देने की व्यवस्था की है।
"पूछो पृथ्वी से, वायु से, जल से--उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए छिपाए हुए हैं।"
एक विशेष ध्यान की अवस्था में, संपर्क स्थापित हो जाता है, उत्तर मिलने शुरू हो जाते हैं। लेकिन उसके पहले तुम्हारा हृदय इतना शांत हो जाना चाहिए कि तुम अपने उत्तर उसमें न डाल लो। नहीं तो सब विकृत हो जाएगा। तुम्हें इतना मौन हो जाना चाहिए कि तुम्हारी तरफ से जा.ेड़ने का कोई उपाय न रहे। तो ही तुम्हें पता चलेगा कि क्या कहा जा रहा है। अन्यथा तुम अपना ही मिश्रित कर लोगे।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि आपने स्वप्न में हमसे ऐसा कहा! मैं उनसे कहता हूं कि तुम पहले चुप होना सीखो। नहीं तो स्वप्न भी तुम्हारा है और तुम्हारे स्वप्न में आया हुआ मैं भी तुम्हारा ही हूं, मैं नहीं हूं। स्वप्न भी तुम्हीं निर्मित कर रहे हो, मुझे भी तुम्हीं निर्मित कर रहे हो, और मुझसे जो वाणी तुम बुलवा रहे हो, वह भी तुम्हारी ही है। लेकिन तुम होशियार हो, क्योंकि तुम अपने पर तो भरोसा नहीं कर सकोगे, इसलिए तुम मुझसे बुलवा रहे हो। और तुम जो चाहते हो वही बुलवा रहे हो।
आदमी को स्वयं के साथ छल करने की इतनी संभावना है कि जिसका कोई हिसाब नहीं, अंत नहीं। मेरे पास ही आ कर लोग मुझसे कहते हैं कि आपने ही आदेश दिया था, इसलिए हमने ऐसा किया! कब तुमने मुझसे आदेश लिया था? कहते हैं, स्वप्न में आपने कह दिया था! और किया उन्होंने वही, जो वे करना चाहते थे! और कई दफे तो मैं इतना चकित हो जाता हूं कि मैं सामने ही उनको आदेश दे रहा हूं कि ऐसा मत करना, वे उसको सुन ही नहीं रहे हैं! वे कह रहे हैं कि आपने आदेश दिया था स्वप्न में, उसको हमने किया! और मैं सीधा आदेश दे रहा हूं, वह उसको सुन ही नहीं रहे हैं, करने की तो बात ही अलग है! इसको कहता हूं मैं छल। पर इसका उन्हें पता भी नहीं कि वे क्या कर रहे हैं! मैं उनसे कह रहा हूं प्रकट में कि ऐसा करो, उसको वे सिर हिला रहे हैं कि यह हमसे न होगा! लेकिन स्वप्न में मैंने कहा था, उसको मान कर उन्होंने किया! निश्चित ही, जो वे करना चाहते हैं, वही कर रहे हैं।

जब तक तुम्हारा मन पूरी तरह शांत न हो गया हो, तब तक तुम वही सुनोगे, जो तुम सुनना चाहते हो। तब तक तुम वही करोगे, जो तुम करना चाहते हो। तब तक इस जगत के रहस्य तुम्हारे सामने न खुल सकेंगे। क्योंकि तुम अपनी ही भावनाओं, अपनी ही वासनाओं, अपनी ही कामनाओं से इस बुरी तरह भरे हो कि जगत कुछ प्रकट भी करना चाहे, तो प्रकट कर नहीं सकता है। लेकिन अगर ध्यान तुम्हारा सधता जाए और ऐसी घड़ी आ जाए, जब तुम अनुभव कर सको कि अब कोई भी विचार नहीं है, तो थोड़ा प्रयोग करना।
थोड़ा प्रयोग करना। ऐसे ध्यान की अवस्था में किसी वृक्ष के नीचे कुछ दिन प्रयोग करना। किसी भी वृक्ष के नीचे प्रयोग हो सकता है। लेकिन अगर कोई विशेष वृक्ष हो तो परिणाम बहुत शीघ्र और साफ होंगे। जैसे बुद्ध-गया का बोधि-वृक्ष है। अगर उसके नीचे बैठ कर तुम सात दिन ध्यान करते रहो। और तुम्हारा ध्यान जम गया हो, ठीक आ गया हो, तो फिर तुम वहां चले जाओ और सात रात बैठे रहो वृक्ष के नीचे, ध्यान करते हुए। और जब तुम्हें लगे कि तुम बिल्कुल शून्य हो गए हो, तब तुम वृक्ष को सिर्फ इतना कह दो, कि तुझे कुछ मेरे लिए कहना हो तो कह दे। और तब तुम मौन बैठ कर प्रतीक्षा करते रहो। तुम हैरान हो जाओगे कि वृक्ष तुमसे कुछ कहेगा। और कुछ ऐसा कहेगा जो तुम्हारे पूरे जीवन को रूपांतरित कर दे।
वृक्ष कुछ संजोए हुए है, कुछ संगृहीत किए हुए है, और केवल उन्हीं के लिए संजोए हुए है, जो पूछने की सामर्थ्य रखते हैं। वे पूछेंगे तो उनको उत्तर मिल जाएगा। लेकिन उतनी दूर जाने की भी कोई जरूरत नहीं है। यह आकाश सारे बुद्धों को अपने में समाए हुए है। इस पृथ्वी पर सारे महावीर और सारे जीसस और सारे कृष्ण चले और उठे हैं। इस पृथ्वी से ही पूछ सकते हो।
पूरी तरह ध्यान की अवस्था में पृथ्वी पर नग्न लेट जाओ, जैसे कोई छोटा बच्चा मां की छाती पर लेटा हो। और ऐसा ही ख्याल कर लो कि यह पूरी पृथ्वी तुम्हारी मां है, तुम उसके स्तन अपने हाथ में लिए हुए उसकी छाती पर लेटे हुए हो। बिल्कुल शांत और शून्य हो जाओ। और जब तुम्हें लगे कि अब तुम्हारे शरीर की मिट्टी में और उसकी मिट्टी में कोई फर्क न रहा, दोनों एक हो गई हैं, और तुम्हारे भीतर शून्य विराजमान हो गया है, तब तुम पूछ लो। यह पृथ्वी अगर तुम्हारे लिए कोई संदेश रखे है, तो तुम्हें उपलब्ध हो जाएगा। और तुम पाओगे कि ऐसा बलशाली संदेश तुमने कभी कहीं से नहीं पाया। उसके पाने के बाद तुम वही न रह जाओगे, जो तुम थे। और तब इस प्रक्रिया में गहरा उतरा जा सकता है। और इस तरह से बहुत सी चीजें उपलब्ध की जा सकती हैं, जो वैसे खो गई हैं।
यह किताब भी मैबल कॉलिन्स की इसी तरह खोज कर पाई गई है। क्योंकि इसकी मूल-प्रति संस्कृत में तो खो चुकी है, हजारों साल पहले खो चुकी है। इसकी कोई मूल-प्रति अब नहीं है। मैबल कॉलिन्स ने यह तो इसी तरह के रहस्य-सूत्रों से वापस ये सूत्र उपलब्ध किए हैं। इसलिए वह इसकी लेखिका नहीं है। यह पुस्तक मैबल कॉलिन्स की लिखी हुई नहीं है। यह उसके द्वारा पढ़ी हुई है। उसने यह पढ़ा है जीवन के किन्हीं गुप्त द्वारों से। उसको उसने संगृहीत कर दिया है। ये सूत्र, उसने इतना ही उल्लेख किया है कि किसी खो गए संस्कृत ग्रंथ के हैं। मैं लेखिका नहीं हूं, मैंने इन्हें रचा नहीं है, मैंने इन्हें सुना है। और उनको वैसा ही संगृहीत कर दिया है, जैसे वे हैं।
बहुत सी किताबें खो गई हैं। आदमी जो भी बनाता है, वह खो ही जाता है। लेकिन कोई और उपाय भी है, जिनसे जो खो गया है, उसे वापस पाया जा सकता है। बहुत सी किताबें प्रक्षिप्त हो गई हैं, उनमें बहुत कुछ डाल दिया गया है, जो बाद में लोग जोड़ते चले गए हैं। जब तक पृथ्वी से, आकाश से वापस उनकी मूल-प्रति न पाई जा सके, तब तक उन पुस्तकों पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उनमें बहुत कुछ जोड़ा हुआ है, वह मूल नहीं है। लेकिन हमें कुछ पता नहीं उन कुंजियों का, जिनसे वायु का ताला खुल जाए। एक कुंजी स्पष्ट है, उसको मैं मास्टर-की कहता हूं। उससे सभी ताले खुल जाते हैं। और वह है तुम्हारी एक शून्य-अवस्था। तब तुम महावीरों से बोल सकते हो, बुद्धों से साक्षात ले सकते हो, कृष्ण की बांसुरी फिर से सुनी जा सकती है। लेकिन तुम्हारा शून्य हो जाना जरूरी है।
"तुम अपनी आंतरिक इंद्रियों के विकास के कारण यह कार्य कर सकोगे।"

ग्यारहवां सूत्र, "पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से, उन रहस्यों को,
जो वे तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं। बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीत लेने से तुम्हें यह रहस्य जान लेने कर अधिकार प्राप्त हो जाएगा।"
"पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से।"
यह पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से पूछने की बात भी थोड़ी समझ लेने जैसी है।
इस जगत में, जो शरीर लिए हुए हैं, वे ही अकेले नहीं हैं। इस जगत में अशरीरी पुरुष भी हैं, अशरीरी आत्माएं भी हैं। जब भी कोई व्यक्ति मरता है, तो अगर साधारण व्यक्ति हो--साधारण वासनाओं से भरा, साधारण शुभ आकांक्षाओं से भरा, साधारण बुराई, साधारण अच्छाई--तो क्षण भर भी नहीं लगता, उसका नया जन्म हो जाता है। क्योंकि साधारण आदमी के लिए साधारण गर्भ निरंतर उपलब्ध हैं, उनकी कोई कमी नहीं है। उसे कभी क्यू में खड़े होने की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन अगर असाधारण बुराई से भरा हुआ आदमी हो, तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है। क्योंकि असाधारण बुरा गर्भ पाने में कठिनाई है। हिटलर मरे तो प्रतीक्षा करनी पड़ती है। कभी-कभी सैकड़ों वर्ष भी लग सकते हैं जब ठीक इतना ही उपद्रवग्रस्त गर्भ मिले, जिसमें हिटलर पैदा हो सके। या असाधारण रूप से अच्छी आत्मा हो, बहुत साधु आत्मा हो, तो भी हजारों वर्ष लग जाते हैं। क्योंकि उतना श्रेष्ठ गर्भ पाना भी मुश्किल है। श्रेष्ठ और अश्रेष्ठ मुश्किल हैं। सामान्य, बिल्कुल साधारण रोज उपलब्ध है। जो बुरी आत्माएं रुक जाती हैं बिना देह के, उन्हीं को हम प्रेत कहते हैं। जो भली आत्माएं रुक जाती हैं बिना देह के, उन्हें ही हम देवता कहते हैं। इसमें देवताओं का उल्लेख है।
"पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से, उन रहस्यों को, जो वे तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं।"
अगर तुम शांत हो सको, तो तुम पाओगे कि तुम एक दूसरे जगत में प्रवेश कर रहे हो। जहां बहुत सी अशरीरी आत्माएं तुम्हें सहायता करने को उत्सुक हैं, और बहुत सी बातें तुम्हें खोल सकती हैं, जो कि तुम अपने श्रम से जन्मों में भी नहीं उपलब्ध कर पाओगे। ये आत्माएं मोक्ष को उपलब्ध नहीं हो गई हैं, क्योंकि जो मोक्ष को उपलब्ध हो गई हैं, उनसे संपर्क स्थापित करना अति कठिन है। लेकिन जो आत्माएं अशरीरी हैं और केवल किसी शुभ जन्म की प्रतीक्षा कर रही हैं, उनसे संपर्क स्थापित कर लेना बहुत ही आसान है। सिर्फ एक ट्यूनिंग--जैसे रेडिओ पर तुम बटन को घुमाते हो, नॉब को घुमाते हो, ताकि ठीक स्टेशन पर कांटा रुक जाए। अगर जरा भी गड़बड़ हो, इधर-उधर हिला-डुला हो तो शोरगुल मचता है, कुछ पकड़ में नहीं आता है। अगर ठीक जगह रुक जाए, तो पकड़ में आना शुरू हो जाता है। ठीक तुम्हारा ध्यान भी, अगर ठीक जगह रोकने की कला आ जाए, तो तुम कहीं भी उस ध्यान को जोड़ ले सकते हो। बहुत सी आत्माएं उत्सुक हैं, जो तुम्हें सहायता कर दें और तुम्हारा बहुत सा काम हल कर दें। और बहुत सी आत्माएं उत्सुक हैं कि तुम्हें नुकसान पहुंचा दें, और तुम्हारा बहुत सा बना हुआ काम बिगाड़ दें।
जो लोग दुष्ट प्रकृति के हैं, वे दूसरे को परेशान करने में आनंदित होते हैं। जो भली प्रकृति के हैं, वे दूसरे को आनंदित करने में आनंदित होते हैं। तुम्हारे आसपास बहुत सी आत्माएं हैं, जो तुम्हें लाभ पहुंचा सकती हैं। और बहुत सी आत्माएं हैं, जो तुम्हें नुकसान पहुंचा सकती हैं। अगर तुम बहुत भयभीत हो, अगर तुम बहुत चिंताग्रस्त हो, अगर तुम्हारे मन में भीतर बहुत उत्पात चल रहा है, तो तुम्हारी बुरी आत्माओं से संबंधित होने की संभावना है। क्योंकि तुम तब बुरी आत्माओं के लिए खुले द्वार हो। अक्सर ऐसा होता है कि जब तुम भयभीत हो, तब तुम्हें भूत-प्रेत दिखाई पड़ जाते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि भय के कारण वे पैदा हो जाते हैं। भय के कारण तुम उनसे संबंधित हो जाते हो। भय तुम्हें खोल देता है उनके प्रति।
जब तुम अभय हो, शांत हो, आनंदित हो, तब तुम्हारा बुरी आत्माओं से कोई संपर्क नहीं बन सकता। उस तरफ से तुम्हारा द्वार बंद है। लेकिन उस क्षण में तुम्हारा अच्छी आत्माओं से संबंध बन सकता है। वह जो मैं निरंतर ध्यान में तुमसे कहता हूं कि आनंद के क्षण में ही, परम-आनंद के क्षण में ही तुम प्रभु

से संयुक्त हो सकते हो, और कोई उपाय नहीं है। वह ट्यूनिंग है। तुम जब पूरे आनंद से भरे हो, तब तुम इस जगत का जो आनंद का स्रोत है, उससे जुड़ सकते हो। जब तुम दुख से भरे हो, तो इस जगत में जहां-जहां दुख का विस्तार है, तुम उससे जुड़ सकते हो।
दुखी आदमी हम कहते हैं कि नरक में चला जाता है। जाने की कोई जरूरत नहीं है। दुखी आदमी सिर्फ नरक की तरफ खुल जाता है, नरक उसमें आ जाता है। सुखी आदमी स्वर्ग की तरफ खुल जाता है, स्वर्ग उसमें आ जाता है। आनंदित आदमी जीवन की परम-सत्ता की तरफ खुल जाता है, परम-सत्ता उसमें प्रवेश कर जाती है। तुम किस तरफ खुले हो? उसी तरफ तुम्हारे जीवन का विस्तार होना शुरू हो जाएगा।
यह सूत्र कहता है, "पूछो पृथ्वी के पवित्र पुरुषों से, उन रहस्यों को,
जो वे तुम्हारे लिए संजोए हुए हैं। बाह्य इंद्रियों की वासनाओं को जीत लेने से तुम्हें यह रहस्य जान लेने का अधिकार प्राप्त हो जाएगा।"

साधना-सूत्र
सोलहवां प्रवचन

पूछो--अपने ही अंतरतम से

12. पूछो अपने ही अंतरतम, उस एक से,
जीवन के परम रहस्य को,
जो कि उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है।

जीवात्मा की वासनाओं को
जीत लेने का बड़ा और कठिन कार्य युगों का है।
इसलिए उसके पुरस्कार को पाने की आशा तब तक मत करो,
जब तक युगों के अनुभव एकत्रित न हो जाएं।
जब इस बारहवें नियम को सीखने का समय आता है,
तब मानव मानवेतर (अतिमानव) अवस्था की ड्योढ़ी पर पहुंच जाता है।
जो ज्ञान अब तुम्हें प्राप्त हुआ है,
वह इसी कारण तुम्हें मिला है कि तुम्हारी आत्मा सभी शुद्ध आत्माओं से
एक है
और उस परम-तत्व से एक हो गयी है।
यह ज्ञान तुम्हारे पास उस सर्वोच्च (परमात्मा) की धरोहर है।
इसमें यदि तुम विश्वासघात करो,
उस ज्ञान का दुरुपयोग करो या उसकी अवहेलना करो,
तो अब भी संभव है कि तुम जिस उच्च पद तक पहुंच चुके हो,
उससे नीचे गिर पड़ो।
बड़े पहुंचे हुए लोग भी अपने दायित्व का भार न सम्हाल सकने के कारण
और आगे न बढ़ सकने के कारण
ड्योढ़ी से गिर पड़ते हैं और पिछड़ जाते हैं।
इसलिए इस क्षण के प्रति श्रद्धा और भय के साथ सजग रहो
और युद्ध के लिए तैयार रहो।

सूत्र के पहले दो छोटे प्रश्न हैं।

कोई पूछ रहा है कि क्या कारण है कि मीरा जहर पी कर भी नहीं मरी? कैसी भक्ति थी वह? कैसा प्रेम था? प्रहलाद के बारे में भी ऐसा ही कहा जाता है, अग्नि में नहीं जला। लेकिन सुकरात जहर पी कर क्यों मर गए? और सूली पर चढ़ने पर जीसस बचे क्यों नहीं?

कुछ बातें समझ लेनी उपयोगी होंगी।
एकः दो प्रबुद्ध पुरुषों के बीच तुलना भूल कर भी नहीं करनी चाहिए। क्योंकि कोई एक-दूसरे का अनुकरण नहीं है। जीसस जैसा व्यक्ति दुबारा नहीं हुआ, होगा भी नहीं। मीरा जैसा व्यक्तित्व भी दुबारा नहीं होगा। सुकरात अनूठा है, प्रहलाद भी। लेकिन हमारे मन में साधारण आदत है तुलना करने की। वे एक-दूसरे का अनुकरण नहीं हैं, इसलिए उनके व्यक्तित्व का प्रवाह, ढंग और अंत अलग-अलग होगा।
मीरा जहर पी कर नहीं मरी, क्योंकि मीरा जिस भाव-दशा में थी, वहां जहर
का प्रवेश नहीं हो सकता है। प्रेम की गहनतम अवस्था में जहर का प्रवेश नहीं हो सकता है। जहर शरीर में प्रवेश भी नहीं कर सकेगा। मीरा का मार्ग था प्रेम का--प्रेम जहर का एंटीडोट है।
अगर आप बहुत प्रेम से भरे हैं, तो आपके रक्त में जहर प्रवेश नहीं कर सकेगा। जहर के प्रवेश के लिए आपके रक्त में जहर होना जरूरी है। समान ही समान को आकर्षित करता है। अगर आप क्रोध से भरे हैं, तो जहर शीघ्रता से प्रवेश कर जाएगा। क्योंकि क्रोध आपके भीतर जो जहर की ग्रंथियां हैं, उनको सक्रिय कर देता है, और आपके खून में जहर पहले से ही मौजूद हो जाता है।

हम सब क्रोध और घृणा से भरे हैं। हमारे रक्त में जहर मौजूद ही है। उस जहर के कारण ही शरीर में जहर प्रवेश कर सकता है। जो आपके भीतर नहीं है, वह आपके भीतर प्रवेश नहीं कर सकेगा।
मीरा जैसा व्यक्तित्व इतने प्रेम में जी रहा है कि उसकी अपने भीतर की जहर-ग्रंथियां समाप्त हो गई हैं। उसका रक्त प्रेम से प्रभावित है, प्रेम से आच्छादित है; जहर प्रवेश नहीं कर सकेगा, जहर शरीर से बाहर हो जाएगा। लेकिन मीरा को इसका पता भी नहीं है। अगर इसका पता चल जाए, तो जहर प्रवेश कर जाएगा। मीरा को यह ख्याल भी नहीं है कि उसे जहर दिया जा रहा है, कि वह जहर पी रही है। वह अपने प्रेम में इस भांति लीन है कि क्या हो रहा है शरीर के तल पर, उसका उसे कोई स्मरण भी नहीं है।
इसे आप ऐसा समझें। अगर आपको चूहा भी काट ले और आपको ख्याल हो जाए कि सांप ने काटा है, तो जहर प्रवेश हो जाएगा; और चूहे में जहर था नहीं। आप मर भी सकते हैं। भ्रांति काफी है मार डालने के लिए।
आप जान कर हैरान होंगे, सर्प-विज्ञान को समझने वाले लोगों का कहना है
कि केवल तीन प्रतिशत सर्पों में जहर होता है। सौ में से तीन सांपों में जहर होता है, सत्तानबे सांप बिना जहर के होते हैं। लेकिन चमत्कार यह है कि बिना जहर के सांप के काटने से भी लोग मरते हैं। और इसीलिए तो सांप का जहर उतारने वाला सफल हो जाता है। क्योंकि जिस सांप ने काटा है, उसमें जहर था ही नहीं। वह सिर्फ भ्रांति है आपकी, इसलिए मंत्र से कट जाती है। मंत्रों से भ्रांतियां कटती हैं। सांप में तो जहर नहीं था, जिसने काटा है; लेकिन सांप ने काटा है, यह भाव-दशा जहर बन जाती है। आप मर सकते हैं, आपके भीतर की ग्रंथियां जहर छोड़ देती हैं इस भाव-दशा में। यह भाव-दशा मंत्र से कट सकती है, इसलिए सांप का काटा झाड़ा जा सकता है।
इससे विपरीत भी होता है। असली सांप भी आपको काट ले, लेकिन मंत्र अगर आपको यह भरोसा दिला दे, झाड़ने वाला यह भरोसा दिला दे कि उसने झाड़ दिया है, तो यह भरोसा दीवाल बन जाता है आपके भीतर। यह भरोसा सांप के जहर को आपके खून में मिलने से रोक देता है।
आपको अंदाज नहीं है कि आपके मन की कितनी ताकत है आपके शरीर पर! सम्मोहन के संबंध में खोज करने वाले लोगों के नतीजे बड़े चमत्कारी हैं। वे कहते हैं कि अगर सम्मोहित व्यक्ति को--और यह मैं अपने प्रयोग से भी कह रहा हूं, क्योंकि सम्मोहन पर इधर मैंने बहुत प्रयोग किए हैं--आपको बेहोश कर दिया जाए सम्मोहित करके, निद्रा में सुला दिया जाए, और आपके हाथ पर साधारण कंकड़ उठा कर रख दिया जाए और आपसे कहा जाए, यह अंगारा है। आप फौरन चीख मार कर उस कंकड़ को फेंक देंगे। और इस तरह चिल्लाएंगे, जैसे अंगारा आपके हाथ पर रखा हो। और साधारण ठंडा कंकड़ था। यहां तक तो ठीक है कि आप बेहोश हैं, आपने भरोसा कर लिया मेरी बात का। लेकिन आपके हाथ पर फफोला भी आ जाएगा! वह फफोला ठीक वैसा ही होगा, जैसा कि अंगारा रखने से आता है! आप होश में भी आ जाएंगे, वह फफोला टिकेगा उतनी ही देर, जितनी देर असली फफोला टिकता है। इससे उलटा भी हो जाता है कि आपको बेहोश करके आपके हाथ पर अंगारा रख दिया जाए और कहा जाए कि यह साधारण ठंडा कंकड़ है, आप चीख भी नहीं मारेंगे, और अंगारे को फेकेंगे भी नहीं और फफोला भी नहीं उठेगा!
अब इसके संबंध में तो वैज्ञानिक निर्णय एकमत हो गया है कि मन जो भाव
कर ले, शरीर उसके पीछे चलता है। तो मीरा इतने प्रेम से भरी है कि उसे जहर दिखाई ही नहीं पड़ता।
ध्यान रखें, आपको वही दिखाई पड़ता है, जो आपका भाव होता है।
मीरा को सारा जगत अमृतमय दिखाई पड़ता है, कृष्णमय दिखाई पड़ता है। वह जहर को भी कृष्ण देख कर पी गई होगी, उसमें भी कृष्ण का ही रस उसे आया होगा। यह जो भाव-दशा है, तो जहर का कोई परिणाम नहीं होगा। जहर अस्पर्शित रह जाएगा, मीरा तक नहीं पहुंच पाएगा।
और अगर हाथ में अंगारा रखने से फफोला न पड़ता हो, तो वैज्ञानिक बात तय
हो गई। प्रहलाद भी आग में जलने से बच सकता है। यह भाव-दशा की बात है। कोई भगवान प्रहलाद को बचा रहा है, यह तो कहानी है, यह तो विज्ञान नहीं है। कोई भगवान ऐसा एक-एक को बचाते और समझाते- बुझाते और जहर को रोकते फिर रहा हो, तो

बहुत बड़ा गोरखधंधा उसके पीछे हो जाएगा। कोई भगवान बैठ कर यह सब नहीं कर रहा है। लेकिन प्रहलाद की भाव-दशा। उसका यह भरोसा है कि वह नहीं जलेगा, भगवान उसे बचाएगा। भगवान बचा रहा है, यह सवाल नहीं है। लेकिन ध्यान रखिए, अगर आपको यह ख्याल हो कि कोई भगवान बचाने वाला नहीं, तो भरोसा पक्का नहीं हो पाएगा। प्रहलाद को यह पक्का भरोसा है कि भगवान है और वह बचाएगा, मैंने उसके हाथों में अपने को छोड़ दिया है, तो प्रहलाद को आग नहीं जला पाती। आपने सुना होगा कि लोग अंगारों पर नाच जाते हैं; अलाव भर लेते हैं, निकल जाते हैं, कोई पैर में फफोला भी नहीं आता। कुछ चमत्कार नहीं है। या चमत्कार है, क्योंकि मन की शक्ति है शरीर के ऊपर। आग से बचा जा सकता है। लेकिन अगर जरा सा भी संदेह हुआ तो जल जाएंगे।
तो आज प्रहलाद को पैदा करना मुश्किल है। वह जमाना गया, जब इतना भरोसा
था कि संदेह का रंचमात्र भी नहीं था। इतनी सरलता थी, इतना भोलापन था। आज तो एक छोटा सा बच्चा भी पूछेगा कि नहीं, यह हो नहीं सकता। आज छोटा बच्चा भी एकदम छोटा बच्चा नहीं है। पुराने जमाने में बूढ़ा भी छोटा बच्चा था। जीवन सरल था, प्रकृति के निकट था। सभ्यता न थी, शिक्षा न थी, तो संदेह भी कम था। जितना शिक्षित व्यक्तित्व होगा, उतना संदेह बढ़ जाएगा। क्योंकि शिक्षा के साथ प्रश्न उठते ही हैं--उठने ही चाहिए, नहीं तो शिक्षा आगे नहीं बढ़ सकती। इसे ऐसा समझें। अगर दुनिया में विज्ञान बढ़ता रहेगा तो संदेह बढ़ता रहेगा। क्योंकि संदेह के बिना विज्ञान नहीं बढ़ सकता। विज्ञान प्रश्नों से जीता है। पूछो, तभी तो उत्तर मिलेंगे। खोजो, लेकिन खोज में संदेह जरूरी है, जिज्ञासा जरूरी है; भरोसा जरूरी नहीं है।
धर्म भरोसे से चलता है, जैसे विज्ञान संदेह से चलता है। अगर दुनिया में धर्म होगा, तो विज्ञान का होना बहुत मुश्किल है। अगर दुनिया में विज्ञान होगा तो धर्म का होना बहुत मुश्किल है, बहुत कठिन है। क्योंकि दोनों की आधार-शिलाएं अलग हैं। लेकिन अगर भरोसा पूरा हो और भीतर कोई संदेह न हो, तो आपका भरोसा, इस जगत में ऐसा कोई भी नियम नहीं है जिसे न तोड़ दे। और आपका भरोसा इस जगत में कोई भी ऐसी घटना नहीं है, जिसको संभव न बना दे। लेकिन भरोसा पूर्ण होना चाहिए, उसमें रत्ती भर का छेद भी नाव को डुबा देगा।
इसलिए कोई अगर कोशिश करके प्रयोग करे तो दिक्कत में पड़ेगा। भूल कर मत करना। अगर आपने सोचा कि जब प्रहलाद आग से बच सकता है, तो मैं क्यों नहीं बच सकता, तो मैं आग में हाथ डाल कर देखूं! लेकिन आप जो आग में हाथ डाल रहे हैं, वह ढंग वैज्ञानिक का है, आस्तिक का नहीं है। आप परीक्षण कर रहे हैं कि देखें? लेकिन देखने का मतलब यह है कि आपको शक है, कि पता नहीं होगा कि नहीं होगा? आप जलेंगे।
इसीलिए धर्म के प्रयोग पुनरुक्त नहीं किए जा सकते। विज्ञान का प्रयोग पुनरुक्त किया जा सकता है। दुनिया के किसी कोने में प्रयोग हो, आप उसे कहीं भी दोहरा सकते हैं। क्योंकि वह संदेह पर खड़ा है, भरोसा उसका हिस्सा नहीं है। लेकिन जो प्रहलाद को हुआ है, वह अगर आप दोहराने की कोशिश किए तो आप दिक्कत में पड़ जाएंगे, क्योंकि दोहराया नहीं जा सकता।
धर्म का प्रयोग निजी और वैयक्तिक है। क्योंकि प्रहलाद की मनोदशा आपके पास नहीं हो सकती। दोहराने वाले के पास हो भी कैसे? प्रहलाद ने किसी का दोहराया नहीं था प्रयोग। वह कोई परीक्षण नहीं कर रहा था परमात्मा का। परीक्षण का मतलब ही यह है कि संदेह मौजूद है। वह तो अपने को छोड़ रहा था। उसको कोई पता ही नहीं था, वह तो मानता था कि यही होगा, इससे अन्यथा होने का कोई सवाल नहीं है। यह जो पूर्ण भरोसा है, आस्था है, वह आग से बचा सकती है। लेकिन जीसस की स्थिति बिल्कुल भिन्न है। जीसस सूली से नहीं बच सकते हैं, यह सवाल नहीं है। लेकिन अगर आप ठीक से समझें, तो जो लोग जीसस को गहराई से जानते हैं, वे मानते हैं कि सूली पर चढ़ाने का आयोजन जीसस का ही था। यह व्यवस्था जीसस की ही थी। जीसस चाहते थे कि उनको सूली पर चढ़ा दिया जाए। यह जीसस की योजना का हिस्सा था। प्रहलाद और मीरा के पास कोई योजना नहीं थी। जीसस के पास एक विराट योजना थी।

इसलिए प्रहलाद को मानने वाले कितने लोग हैं? और मीरा के पीछे चलने वाले कितने लोग हैं?
जीसस ने आधी दुनिया को ईसाई बना दिया। उसके पीछे एक विराट योजना है। जीसस के पास एक ख्याल है जगत के रूपांतरण करने का। और जीसस को यह बात साफ दिखाई पड़ गई थी कि जो मैं कह रहा हूं, अगर मैं सूली पर लटका दिया जाऊं, तो मेरा कहा हुआ मनुष्य के हृदय पर सदा के लिए अंकित हो जाएगा। सूली तो खेल थी, क्योंकि जीसस को कोई मरने का सवाल ही नहीं है। जीसस के लिए सूली तो खेल थी। लेकिन इस खेल का उपयोग किया जा सकता है। यह प्लान था। यह जीसस का पूरा का पूरा खेल सुनियोजित था। इसमें लोग सोचते हैं कि जीसस के दुश्मनों के हाथ में जीसस पड़े। जो जानते हैं, वे समझते हैं कि जीसस के हाथ में उनके दुश्मन पड़ गए। वे समझ नहीं पाए कि हो क्या रहा है!
जीसस के ही एक शिष्य जुदास ने खबर दी दुश्मनों को। लोग समझते हैं कि जुदास जीसस का दुश्मन था। ऐसा नहीं है। वह जीसस का गहरे से गहरा अनुयायी था। और उस सीमा तक अनुयायी था कि जीसस ने उसे आज्ञा दी कि तू मुझे सूली पर लटकवाने का इंतजाम कर दे, तो उसने वह इंतजाम भी कर दिया। वह आज्ञा जो थी, उसे पूरा करना था।
इसलिए जिस क्षण जुदास जीसस को छोड़ कर जा रहा है दुश्मन को खबर देने, उस समय जीसस ने उसके पैर छुए और उसे चूमा। लोग सोचते हैं कि यह दुश्मन के प्रति प्रेम का कारण था। यह नहीं है मामला। जो गहरी कथा है, वह कुछ और है। जुदास ही उनमें सबसे ज्यादा समझदार शिष्य था। और आपको पता नहीं कि जिस दिन जीसस को सूली लगी है, उस दिन बाकी शिष्य तो भाग गए, लेकिन जुदास ने आत्महत्या कर ली। उसने अपने को सूली पर खुद लटका लिया। लोग सोचते हैं कि पश्चात्ताप में ऐसा किया, कि मैंने फंसा दिया जीसस को, मैंने सूली लगवा दी। नहीं, उसका प्रेम गहरा था, बहुत आंतरिक था। वह इस सीमा तक था कि अगर जीसस कहें कि सूली पर लटकवाना है मुझे, तो वह इसका भी इंतजाम करेगा। लेकिन प्रेम के लिए बड़ी कठिनाई है। यह इंतजाम भी उसने किया और अपने को सूली पर भी लटका लिया। क्योंकि अब रहने का कोई अर्थ न था।
यह योजनाबद्ध था, जीसस सूली पर लटकना चाहते थे। क्योंकि सूली पर लटकने से ही वह घटना घटेगी, जो लोगों के जीवन को रूपांतरित कर देगी। इसलिए जीसस से भी ज्यादा महत्वपूर्ण प्रतीक ईसाइयत के लिए क्रास है। जीसस की मूर्ति नहीं लटकाते हृदय पर, क्रास लटकाते हैं। क्योंकि क्रास के कारण ही, सूली के कारण ही ईसाइयत का जन्म हुआ।
एक बहुत गहरा ईसाई संत हुआ, सोरेन कीर्कगार्ड। उसने तो क्रिश्चियनिटी
को कहा है कि क्रिश्चियनिटी नहीं कहना चहिए, क्रासियानिटी कहना चाहिए। इसको ईसाइयत नहीं कहना चाहिए, यह तो सूली पर निर्भर है। इसलिए क्रास ज्यादा महत्वपूर्ण है क्राइस्ट की बजाय। क्राइस्ट तो बन ही सके क्राइस्ट, जिस दिन वे सूली पर लटके। इसलिए सूली पर लटका हुआ चित्र ही जीसस का, सबसे ज्यादा प्यारा हो गया है। यह एक ऐतिहासिक आयोजन था।
सुकरात की मनोदशा और भी भिन्न है। तुलना कभी करनी नहीं चाहिए। तुलना मैं कर भी नहीं रहा हूं। मैं सिर्फ उनकी व्यक्तिगत खूबी की बात कह रहा हूं कि किसलिए ऐसा हुआ। सुकरात से कहा गया था कि तू अगर प्रवचन देना बंद कर दे, बोलना बंद कर दे, तो हम तुझे मुक्त कर देते हैं। न्यायाधीशों ने कहा था कि तू अगर बोलना बंद कर दे तो हम तुझे मुक्त कर देते हैं।
लेकिन सुकरात ने कहा कि अगर मैं बोलना बंद कर दूं तो मेरे होने का प्रयोजन ही क्या है? मेरे होने का एक ही अर्थ है कि मैं सत्य को कहूं। मेरा होना अर्थात सत्य का कहना, ये दोनों एक ही बात हैं। तो तुम ऐसा मत करो। या तो तुम मुझे सत्य को बोलने दो, तो मुझे जीने दो; या फिर तुम मुझे सत्य बोलने से रोकते हो तो बेहतर है कि तुम मुझे मार ही डालो, तुम मुझे जहर दे ही दो। क्योंकि अगर तुम मुझे जहर दे देते हो, तो याद रखना मैं कभी न मरूंगा। और तुम्हारे जहर के कारण मैं सदा के लिए अमर हो जाऊंगा। और तुम्हें भी लोग अगर याद करेंगे तो सिर्फ इसीलिए तुम्हारा नाम याद रहेगा कि तुमने सुकरात को जहर दिया था। तुम्हारा पूछने वाला भी कोई और नहीं होगा। इसी कारण तुम्हारा नाम लिया जाएगा कि तुमने सुकरात को जहर दिया था। लेकिन एक बात

सुकरात ने कहा कि साफ हो जानी चाहिए कि सत्य मुझे जीवन से भी ज्यादा प्रिय है। मेरे लिए मृत्यु का कोई मूल्य नहीं है, सत्य का मूल्य है। सत्य के लिए मैं मृत्यु स्वीकार कर सकता हूं।
और जो सत्य के लिए मृत्यु स्वीकार कर सकता है, वह अमृत को उपलब्ध हो जाता है। जब तक तुम सत्य के लिए मृत्यु स्वीकार न कर सको, तब तक सत्य का कोई मूल्य नहीं है। सत्य जब परम साध्य है, जिसके लिए हम जीवन भी खो सकते हैं, तभी सत्य है।
तो सुकरात जो कह रहा था, उसको उसने आचरण में उतार दिया। सुकरात मर रहा है, जहर तैयार किया जा रहा है। वह जो जहर तैयार कर रहा है, वह धीरे-धीरे तैयार करता है, क्योंकि वह भी सुकरात को प्रेम करने लगा है। जेल में सुकरात था, वह आदमी ऐसा था कि उसके पास जो भी रहता, वह उसे प्रेम करने लगता। जेलर भी उसको प्रेम करने लगा। वह धीरे-धीरे पीस रहा है जहर को, ताकि जितनी देर सुकरात जी सके, उतना अच्छा है। जितनी देर पृथ्वी पर ऐसा फूल खिला रह जाए, उतना अच्छा है।
तो सुकरात उससे कहता है, लेकिन तू देर लगा रहा है, तू अपने कर्तव्य से च्युत हो रहा है। मालूम होता है तू मेरे प्रति लगाव और आसक्ति से भर गया है। यह उचित नहीं है, तेरा जो काम है, तू पूरा कर। जल्दी जहर तैयार कर, छह बजने के करीब हो गए और ठीक छह बजे तुझे जहर ले आना है। तो वह जहर पीसने वाला कहता है, तुम कैसे पागल हो सुकरात! मैं थोड़ी देर लगा रहा हूं कि तुम थोड़ी देर और जी लो! और तुम्हें इतनी जल्दी क्या है?
तो सुकरात कहता है, जीवन तो मैंने जान लिया, मृत्यु को जानने का मन है। सुकरात है खोजी। ऐसा खोजी जमीन पर दूसरा नहीं हुआ। सुकरात कोई भक्त नहीं है। सुकरात है खोजी, अन्वेषक। वह कहता है कि मृत्यु के साथ आंखें मिलाने का मन है। मृत्यु को देखना चाहता हूं, मृत्यु कैसी है? कोई कहता है, सुकरात तुम घबरा नहीं रहे हो? मौत करीब है, तुम घबरा नहीं रहे हो? तो सुकरात कहता है, कि मुझे पता नहीं कि मैं बचूंगा या नहीं, इसलिए घबराने का कोई कारण नहीं है। अगर मुझे पता हो कि मैं बचूंगा, तब भी घबराने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि मैं बचूंगा। और अगर मुझे पता हो कि मैं बचूंगा नहीं, तब तो घबराने की कोई बात ही नहीं है, क्योंकि जो बचेगा ही नहीं, वह घबराएगा क्या? और मुझे कुछ पता नहीं, मैं अपनी मृत्यु में प्रवेश करूंगा और जानूंगा। सुकरात कहता है, जो मुझे पता नहीं, उसके संबंध में मैं कुछ भी न कहूंगा। ज्ञान की ऐसी सहज खोज पक्षपात-रहित बड़ी मुश्किल है। मीरा का भाव है, जीसस का भाव है, सुकरात की खोज है। सुकरात कहता है, मुझे पता नहीं है। ध्यान रहे, आपको अगर भरोसा है कि आत्मा अमर है, तो निर्भय मरना आसान है। लेकिन सुकरात की निर्भयता अनूठी है। वह कहता है कि मुझे पता नहीं कि आत्मा अमर है, यह तो मैं मर कर ही जानूंगा। इसके पहले जाना कैसे जा सकता है! मैं तो गुजरूंगा अनुभव से और जानूंगा। अगर मर जाऊंगा, तब तो डर का कोई कारण ही नहीं है; क्योंकि मर ही गया, डरेगा कौन? दुखी कौन होगा? पीड़ित कौन होगा? अगर बचूंगा, तब भी डर का कोई कारण नहीं, क्योंकि बच ही गया। तो सुकरात कहता है, दोनों हालत में मृत्यु से डरना फिजूल है। अगर तुम आस्तिक हो, तो भी फिजूल है, क्योंकि तुम बचोगे। अगर तुम नास्तिक हो, तो भी फिजूल है, क्योंकि तुम बचोगे ही नहीं। तो किसके लिए चिंता? किसके लिए दुख?
फिर उसे जहर ले कर आया देने वाला, तो उसका हाथ कांप रहा है। सुकरात जैसे आदमी को जहर देने में हाथ कंपेगा ही। तो सुकरात कहता है कि हाथ कंपना नहीं चाहिए, तुम जो कर रहे हो, उसे निष्कंप करो। हाथ मत कंपाओ। क्योंकि जब मैं नहीं डर रहा हूं मरने से, तो तुम क्यों डर रहे हो? मेरी तरफ देखो! सुकरात बूढ़ा है, लेकिन अपने हाथ में जहर का प्याला लेता है, तो हाथ कंपता नहीं। वह जहर पी लेता है, वह लेट जाता है। उसके सारे शिष्य रो रहे हैं। तो वह कहता है, रोओ मत, क्योंकि अभी तो मैं जिंदा हूं। रोना तो तुम पीछे भी कर सकते हो, इतनी जल्दी क्या है? अभी तो यह मृत्यु मेरे ऊपर आ रही है, उसका तुम दर्शन कर लो, शायद इससे तुम्हें कुछ बोध हो।
और फिर सुकरात बोलता जाता है कि मेरे पैर ठंडे पड़ गए, लगता है पैर मर गए। फिर मेरी जांघें ठंडी हो गईं, लगता है मेरी जांघें मर गईं। वह कहता

जाता है कि मृत्यु ऊपर की तरफ सरक रही है, लेकिन एक आश्चर्य है कि मेरा अपना होने का भाव पूरा का पूरा है। आधा शरीर जड़ हो गया है, लेकिन मेरे होने का भाव अब भी पूरा का पूरा है। उसमें से रत्ती भर नहीं कटा। मैं अब भी अपने भीतर अपने को उतना ही अनुभव करता हूं, जितना पहले अनुभव करता था। फिर उसके हाथ भी ढीले पड़ गए। फिर वह कहता है, अब मेरे हृदय की धड़कन भी डूबती जाती है। फिर वह कहता है कि मेरे ओंठ शिथिल होते जा रहे हैं, शायद अब मैं इसके आगे न बोल सकूंगा। इसलिए आखिरी वचन मेरा याद रखना कि अभी तक मैं पूरा का पूरा जिंदा हूं। इसलिए लगता है कि जब पूरा शरीर भी... जब इतना शरीर मरने के करीब हो गया है और मैं पूरा का पूरा हूं, तो शायद पूरे शरीर के मरने के बाद भी मैं नहीं मरूंगा। लेकिन यह भी अभी खोज है, अभी मैं कुछ कह नहीं सकता।
यह अलग तरह का व्यक्तित्व है। और इनको तौलना मत। इन्हें छोटा-बड़ा करने की कोशिश भी मत करना। वह क्षुद्र मन के लक्षण हैं। ये सब अलग शिखर हैं। हिमालय पर बहुत शिखर हैं, हर शिखर का अपना सौंदर्य है। मनुष्य चेतना में भी बहुत शिखर उठते हैं, हर शिखर का अपना सौंदर्य है। और अच्छा ही है कि एक से शिखर नहीं हैं, नहीं तो ऊब और बोरियत पैदा हो जाए। बहुत सी मीराएं हों, तो कोई मतलब की नहीं रह जाएंगी। और बहुत प्रहलाद हों, गांव-गांव में हों, तो वह कूड़े-करकट की तरह हो जाएंगे। बहुत सुकरात चाहिए भी नहीं। और हर आदमी को ख्याल रखना चाहिए कि वह स्वयं होने को पैदा हुआ है। और जिस दिन वह शिखर को छुएगा, तो उस जैसा आदमी न पहले कभी हुआ है, न फिर कभी होगा। वह अनूठी घटना है।
जगत मौलिक को प्रेम करता है। उधार, कार्बन-कापियां, उनका जगत में कोई मूल्य नहीं है।

एक और मित्र ने पूछा है कि कल नव-संन्यास अंतर्राष्ट्रीय की बैठक में वक्तव्य दिया गया कि हमारा भरोसा फ्री सेक्स, स्वतंत्र यौन में है। क्या आप इससे सहमत हैं?

मेरा भरोसा न तो स्वतंत्र यौन में है और न परतंत्र यौन में है। इस तरह
के भरोसे की कोई जरूरत भी नहीं है। यौन निजी और व्यक्तिगत बात है, उसके संबंध में कोई भी दृष्टिकोण रखना ओछे मन का सबूत है। आप नहीं पूछते कि भोजन के संबंध में आपका क्या दृष्टिकोण है? स्नान के संबंध में आपका क्या दृष्टिकोण है? स्वतंत्र स्नान कि परतंत्र स्नान? पूछेंगे तो आप भी लगेंगे कि मूढ़ हैं। यौन के संबंध में क्यों पूछते हैं? निजी बात है। एकदम निजी है। किसी के दृष्टिकोण का कोई सवाल नहीं है। समाज है परतंत्र यौन में भरोसा रखने वाला, कि यौन के चारों तरफ से दीवाल खड़ी करो, कानून खड़े करो, पुलिस और अदालत खड़ी करो। यौन के संबंध में व्यक्ति को स्वयं का निर्णय मत लेने दो। इसके विपरीत, इसकी प्रतिक्रिया में, इसके रिएक्शन में कुछ लोग हैं। वे कहते हैं, स्वतंत्र यौन चाहिए, कोई बाधा न डाल सके। कोई किसी तरह का नियम न बना सके। स्वच्छंदता चाहिए। यह प्रतिक्रिया है दूसरी भी। और दूसरी अति पर ले जाती है।
मेरी अपनी दृष्टि यही है कि हमें यौन को स्वाभाविक मानना चाहिए। और उसके संबंध में कोई दृष्टि नहीं लेनी चाहिए। दृष्टि लेते ही सब चीजें अस्वाभाविक हो जाती हैं। एक-एक व्यक्ति की अपनी समझ, अपने जीवन का भाव-बोध मार्गदर्शक बनना चाहिए। और मैं छोटी-छोटी बातों में मार्गदर्शन नहीं देता। क्योंकि मेरी मान्यता ऐसी है कि अगर आपके पास बुद्धि हो, ध्यान हो, थोड़ी प्रज्ञा का विस्तार हो, तो अपनी छोटी-छोटी बातों के संबंध में आप खुद ही निर्णय ले सकेंगे। और अगर एक-एक बात के संबंध में आप मेरे निर्णय पर निर्भर हैं, तो उसका अर्थ हुआ कि आपको मैं अंधे की तरह हाथ पकड़ कर सहारा दे रहा हूं। मैं कब तक सहारा दे सकता हूं? कौन आपको सहारा दे सकता है?
एक अंधा आदमी मेरे पास आता है और वह पूछता है कि रास्ता बाएं की तरफ है
कि दाएं की तरफ है? मैं स्टेशन की तरफ जाऊं, तो कहां मुडूं? और नदी की तरफ जाऊं तो कहां मुडूं? अगर मैं उसको यह सब विस्तार में मार्गदर्शन दूं, तो भी वह अंधा ही रहेगा। और हो सकता है कि कुछ रास्तों पर मजबूती से चलना सीख

जाए। लेकिन जगत में बहुत रास्ते हैं, और रास्ते रोज बदल जाते हैं। कभी नदी जाना है, कभी स्टेशन जाना है, और कभी इस गांव में और कभी किसी दूसरे गांव में। रोज परिस्थितियां बदलती हैं, रोज रास्ते बदलते हैं, रोज गांव बदल जाते हैं। तो मैं अंधे को कहूंगा कि तू रास्ते मुझसे मत पूछ, तू मुझसे आंख का इलाज पूछ। तेरी आंख ठीक हो जाए, तो तू कहीं भी होगा, रास्ता खोज लेगा। ध्यान को मैं आंख कहता हूं आपके जीवन की।
मुझसे क्षुद्र बातों के संबंध में मत पूछें। मुझसे लोग पूछते हैं, क्या खाएं? क्या न पीएं? ये सब व्यर्थ की बातें मुझसे मत पूछें। आपके पास देखने की खुद की आंख होनी चाहिए। वह आपको कहेगी कि क्या खाएं और क्या न खाएं। मेरे कहने से कुछ भी न होगा। अगर मैं कह भी दूं कि यह मत खाएं, यह मत पीएं, तो भी अगर आप अंधे हैं और अंधेरे से भरे हैं और ध्यान की क्षमता नहीं है, तो आप तरकीबें निकाल लेंगे।
बुद्ध से लोगों ने पूछा कि हम मांसाहार करें या न करें? तो बुद्ध ने कहा कि हत्या करना, हिंसा करना बुरा है, तो तुम किसी पशु-पक्षी को मार कर मत खाना। तो पता है आपको, सारे बौद्ध मांस खाते हैं, लेकिन वे कहते हैं, हम मरे हुए का, अपने आप मरे हुए का खाते हैं! बुद्ध ने कहा, हिंसा पाप है, तुम मार कर कुछ मत खाना। उसमें से तरकीब निकाल ली कि जो गाय अपने आप ही मर गई, अब उसको तो खाने में कोई हर्ज नहीं। क्योंकि बुद्ध ने यह तो कहा नहीं कि अपने आप मरे हुए को मत खाना।
तो चीन और जापान में होटलों पर, जैसे हिंदुस्तान में लगा रहता है, यहां शुद्ध घी बिकता है। जहां लिखा है, उसका मतलब ही साफ है। घी काफी है, शुद्ध होने की क्या जरूरत है? लेकिन शुद्ध है तो साफ ही है कि शुद्ध नहीं है। जापान और चीन में तख्ती लगी रहती है कि यहां मरे हुए जानवर का मांस मिलता है, अपने आप मरे हुए! इतने जानवर कैसे अपने आप मरते हैं, यह बड़ा मुश्किल है। पूरा मुल्क मांसाहार करता है।
तरकीब है। तुम निकाल ही लोगे। तुम्हें जो करना है, तुम करोगे ही। क्योंकि तुम्हारा जो अंधेरा है, वहां से तुम्हारा करना निकलता है। उसमें बचने का कोई बहुत उपाय नहीं है।
जैन हैं। तो महावीर ने कहा है कि किन्हीं दिनों में, पर्व और धर्म के दिनों में, तुम हरी शाक-सब्जी, ताजी शाक-सब्जी मत खाना। तो जैनी सुखा कर रख लेते हैं पहले से, फिर सूखी शाक-सब्जी खा लेते हैं! और मजे की तो हद हो गई। एक घर में मैं मेहमान था। पर्यूषण के दिन थे। तो वे मुझे केला देने ले आए। तो मैंने कहा कि आप लोग केला खाते हैं पर्यूषण में? पर उन्होंने कहा, लेकिन यह तो हरा नहीं है, पीला है; हरियाली के लिए मनाई है!
तुम महावीर को भी धोखा दोगे। तुम धोखा दे ही सकते हो, तुम और कुछ कर सकते नहीं हो। तुम जैसे हो, वहां से तुम गलत को खोज ही लोगे, क्योंकि तुम गलत हो।
अगर मैं कहूं परतंत्र यौन के पक्ष में हूं, तो तुम उसमें तरकीबें निकालोगे। अगर मैं कहूं स्वतंत्र यौन के पक्ष में हूं, तुम तत्काल उसमें तरकीबें निकालोगे। लेकिन तरकीब तुम्हीं निकालोगे। तो मैं तुमसे नहीं कहता कि मैं किस पक्ष में हूं, किस विपक्ष में हूं। मैं तो तुम्हारी आंख के पक्ष में हूं। तुम्हारी आंख खुलनी चाहिए, तुम्हारा बोध बढ़ना चाहिए। फिर तुम्हारा बोध ही निर्धारक होगा, कि तुम्हें जो करना हो, तुम करना। बोधपूर्वक करना, जो भी तुम करो। होशपूर्वक करना, विवेकपूर्वक करना, तुम जो भी करो। तो तुम्हारे जीवन में मार्ग खुलेगा।
मेरी बात को ठीक से समझ लेना। मैं किसी विस्तार में मार्ग-निर्देश देने के जरा भी पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि सभी मार्ग-निर्देश अगर विस्तार में दिए जाएं तो परतंत्र करते हैं, क्योंकि फिर तुम उन्हें मान कर चलोगे। और जब भी कोई चीज परतंत्र करती है तो तुम उसमें से छूटने का उपाय भी निकालते हो। तो तुम छूटने का उपाय भी निकाल लोगे।
तो मैं तुम्हें न तो बांधता हूं और न तुम्हें छूटने का उपाय निकालने
को मजबूर करता हूं। मैं तो तुम्हें तुम्हारी आंख देना चाहता हूं, जो तुम्हारे रास्ते को साफ करेगी। फिर तुम्हें जैसा ठीक लगे, तुम चलना। अगर

तुम गलत चलोगे तो तुम उसका फल भोगोगे। और अगर तुम ठीक चलोगे तो तुम उसका फल भोगोगे। अगर तुम्हें दुख में पड़ना है तो तुम गलत चलोगे। फिर मैं कौन हूं कि तुम्हें दुख में पड़ने से रोकूं। क्योंकि वह भी तुम्हारी स्वतंत्रता पर बाधा होगी। फिर अगर तुम ठीक चलोगे, तो तुम उसका आनंद भोगोगे। यह तुम्हारे ऊपर निर्णय है कि तुम्हें साफ-साफ दिखाई पड़ने लगे कि कार्य-कारण का संबंध क्या है। तुम्हें साफ-साफ दिखाई पड़ने लगे कि मैं क्या करता हूं, उससे दुख मिलता है। और क्या करता हूं, उससे आनंद मिलता है। फिर तुम्हारा मार्ग साफ है। आनंद की खोज तुम्हारी है। तुम अपनी आंख का उपयोग करके उस मार्ग पर चलते जाना। और सदा के लिए ख्याल रखना कि क्षुद्र बातों में मुझसे कोई मार्ग-दर्शन मत मांगना। और अगर कोई गुरु तुम्हें क्षुद्र बातों में मार्ग-दर्शन देता है, तो वह गुरु ही नहीं है। वह सिर्फ तुम्हें बांध रहा है और गुलाम कर रहा है।
अब हम सूत्र को लें।
बारहवां सूत्र, "पूछो अपने ही अंतरतम, उस एक से, जीवन के परम रहस्य को,
जो कि उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है। जीवात्मा की वासनाओं को जीत लेने का बड़ा और कठिन कार्य युगों का है। इसलिए उसके पुरस्कार को पाने की आशा तब तक मत करो, जब तक युगों के अनुभव एकत्रित न हो जाएं। जब इस बारहवें नियम को सीखने का समय आता है, तब मानव मानवेतर(अतिमानव) अवस्था की ड्योढ़ी पर पहुंच जाता है।"
"जो ज्ञान अब तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह इसी कारण तुम्हें मिला है कि तुम्हारी आत्मा सभी शुद्ध आत्माओं से एक है और उस परम तत्व से एक है। यह ज्ञान तुम्हारे पास उस सर्वोच्च की धरोहर है। इसमें यदि तुम विश्वासघात करो, या उस ज्ञान का दुरुपयोग करो, या उसकी अवहेलना करो, तो अब भी संभव है कि तुम जिस उच्च पद पर पहुंच चुके हो, उससे नीचे गिर पड़ो। बड़े पहुंचे हुए लोग भी अपने दायित्व का भार न सम्हाल सकने के कारण और आगे न बढ़ सकने के कारण ड्योढ़ी से गिर पड़ते हैं और पिछड़ जाते हैं। इसलिए इस क्षण के प्रति श्रद्धा और भय के साथ सजग रहो और युद्ध के लिए तैयार रहो।"
"पूछो अपने ही अंतरतम, उस एक से, जीवन के परम रहस्य को, जो कि उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है।"
पूछो पृथ्वी से, पूछो वायु से, पूछो आकाश से, जल से--लेकिन वे तुमसे बाहर हैं और उन्होंने जो भी छिपा रखा है, वह तुमसे बाहर की घटना है। वे तुम्हें बुद्धों के संबंध में बता सकेंगे, तीर्थंकरों के संबंध में, क्राइस्टों, कृष्णों के संबंध में, लेकिन असली रहस्य तो तुम्हारे भीतर ही छिपा है।
तुम्हारा अंतरतम अनंत से यात्रा कर रहा है। अनंत उसके अनुभव हैं। तुम क्या नहीं रहे हो? तुम कभी पत्थर थे, कभी तुम पौधे थे, कभी तुम पक्षी थे, कभी तुम पशु थे, कभी तुम स्त्री थे, कभी तुम पुरुष थे, कभी तुम साधु थे और कभी तुम चोर थे। ऐसा कोई भी अनुभव नहीं है, जो तुम्हें नहीं हो चुका है। ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जिससे तुम पार नहीं हुए हो। तुमने नर्क भी जाने हैं, तुमने स्वर्ग भी। तुमने दुख भी, तुमने सुख भी। तुमने पीड़ाओं का संताप झेला है और आत्महत्याएं की हैं। और तुमने विनाश भी किया है, हिंसाएं की हैं। तुमने सृजन का सुख भी जाना है। तुमने जन्म भी दिया है, तुमने निर्माण भी किया है, तुमने बनाया भी है। ऐसा कुछ भी नहीं है, जो तुमसे न गुजर गया हो, जिससे तुम न गुजर गए हो। तुम्हारे अंतरतम में वह धरोहर सुरक्षित है। तुमने जो भी जीया है, और जो भी जाना है, और जो भी किया है, उस सबका सार संचित है। उस सारे अनुभव का निचोड़ तुम्हारे गहन में छिपा है। इससे भी तुम पूछो, इसको भी तुम खोलो। इसके खुलते ही तुम्हें जीवन का सारा रहस्य खुल जाएगा। क्योंकि तुम जीवन को जीए हो, तुम स्वयं जीवन हो।
ऐसा कुछ भी नहीं है इस जगत में जो अपरिचित हो तुम्हें। लेकिन तुम भूल-भूल गए हो। और हर नए शरीर के साथ तुमने नया अहंकार निर्मित कर लिया है। और हर नए अहंकार के साथ तुम्हें विस्मृति हो गई है अतीत की। तुम्हें ख्याल नहीं रहा है कि पीछे क्या हुआ। इसलिए तुम अपनी ही धरोहर को भूलते चले गए

हो। तुमने ही जो संचित किया है, उसका भी तुम उपयोग नहीं कर पाते हो। और इसलिए तुम बार-बार वही भूलें दोहराते हो, जिनको तुम बहुत बार कर चुके हो। महावीर निरंतर अपने शिष्यों को जाति-स्मरण का आग्रह करते थे। वे कहते थे, पहले तुम पिछले जन्मों का स्मरण करो। उन्होंने इसे अपनी पद्धति का आधारभूत बना रखा था। वे कहते थे, जब तक तुम्हें याद न आ जाए पिछला जन्म, तब तक तुम वही भूलें दोहराओगे, जो तुम अभी दोहरा रहे हो। क्योंकि तुम भूल ही जाते हो कि तुम यह काम कर चुके हो।
तुमने बहुत बार धन इकट्ठा किया है, यह कोई पहला मौका नहीं है। और बहुत बार धन इकट्ठा करके तुम असफल हुए हो और फिर तुम वही कर रहे हो। तुमने बहुत बार मकान बनाए हैं और वे उजड़ गए हैं, और आज उनका कोई नामो-निशान नहीं है। लेकिन तुम फिर बड़े मकान बना रहे हो, और फिर तुम सोच रहे हो कि ये मकान सदा रहेंगे, और जैसे कि तुम सदा इन मकानों में रहोगे! तुमने पहले भी स्त्रियों को और पुरुषों को प्रेम किया है, और सब प्रेम व्यर्थ गए हैं, और तुमने कुछ उपलब्ध नहीं किया है। लेकिन तुम फिर वही कर रहे हो और तुम सोच रहे हो जैसे जीवन की संपदा स्त्री-पुरुषों के संबंध से उपलब्ध हो जाएगी! तुमने पहले भी बच्चे पैदा किए हैं, तुमने पहले भी उन्हें बड़ी महत्वाकांक्षा से बड़ा किया था और वे सब व्यर्थ गए। उन्होंने तुम्हें कभी तृप्त नहीं किया है। क्योंकि जो स्वयं को तृप्त नहीं कर पाता, उसे कोई दूसरा कैसे तृप्त कर सकेगा? लेकिन तुम फिर-फिर वही कर रहे हो! तुम चक्के की तरह घूम रहे हो, जिसके आरे बार-बार नीचे जाते हैं और बार-बार ऊपर आ जाते हैं, और चाक घूमता चला जाता है। हर बार जब तुम्हारा कोई आरा ऊपर आता है, तो तुम सोचते हो कि कोई नई घटना घट रही है। लेकिन तुम अनंत बार उन घटनाओं से गुजर चुके हो।
तो महावीर कहते थे कि तुम पीछे लौट जाओ, थोड़ा स्मरण कर लो अपने पिछले जन्मों का। तो फिर तुम उन भूलों को दोबारा न दोहराओगे। तब तुम समझोगे कि तुम जो कर रहे हो, वह पुनरुक्ति है। पुनरुक्ति व्यर्थ है, उसका कोई अर्थ नहीं है।
लेकिन तुम्हारे भीतर सब छिपा है। सब छिपा है, कुछ भी खोता नहीं। जो भी तुम्हारे ज्ञान में एक बार आ गया है, वह तुम्हारा हिस्सा हो गया है। यह तो है ही, इससे भी बड़ी चीज तुम्हारे भीतर छिपी है, और वह है इस जगत का प्रारंभ। क्योंकि तुम प्रारंभ में साक्षी थे। यह सृष्टि जब शुरू हुई, तब तुम साक्षी थे, क्योंकि तुम कभी शुरू नहीं हुए। तुम उसका हिस्सा हो, जो कभी शुरू नहीं होता। सृष्टियां बनती हैं और विलीन हो जाती हैं। सृष्टियां आती हैं, समाप्त हो जाती हैं। लेकिन तुम उस चैतन्य के हिस्से हो, तुम उस चैतन्य की किरण हो, जो सृष्टि के बनने के क्षण में मौजूद होती है, जो सृष्टि को बनाती है कहना चाहिए। और जब सृष्टि विसर्जित होती है, तब भी साक्षी होता है। चैतन्य कभी नष्ट नहीं होता। उस परम-चैतन्य के तुम हिस्से हो। तुम्हें सृष्टि के जन्म का क्षण भी मालूम है, क्योंकि तुमने ही इसे जन्म दिया है, तुम भागीदार थे। वह तुम्हारे गहरे अंतरतम में छिपी है घटना। तुम लोगों से पूछते फिरते हो कि जगत को किसने बनाया है? तुम्हें पता ही नहीं कि तुम भी भागीदार हो जगत को बनाने में।
लेकिन यह तो तुम भीतर प्रवेश करोगे, तो ही जान सकोगे। तुम्हारे भीतर जगत का अंत भी छिपा है। क्योंकि यह कथा तुमने ही लिखी है। इस कहानी के निर्माता तुम्हीं हो। इस सारी लीला के तुम भागीदार हो। यह परम गुह्य रहस्य भी तुम्हारे भीतर मौजूद है। तुम मृत्यु से भयभीत होते हो, क्योंकि तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे भीतर अमृत का केंद्र है। तुम डरते हो, कंपते हो क्षुद्र बातों से; जब कि कुछ भी तुम्हें कंपा नहीं सकता, कुछ भी तुम्हें डरा नहीं सकता, क्योंकि कुछ भी तुम्हें मिटा नहीं सकता। लेकिन वह तुम्हारे भीतर छिपा है।
यह सूत्र कहता है, "पूछो अपने ही अंतरतम, उस एक से, जीवन के परम रहस्य को, जो कि उसने तुम्हारे लिए युगों से छिपा रखा है।"
अपने से ही पूछो।
महर्षि रमण अपनी साधना-पद्धति को इस एक सूत्र पर ही खड़ा किए थे। वे कहते थे कि एक ही साधना है कि पूछो, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?

वे कहते थे, सारी शक्ति लगा कर, सारी प्राण-ऊर्जा को समर्पित करके, रोआं- रोआं, श्वास-श्वास एक ही सवाल भीतर पूछे, मैं कौन हूं? और पूछते ही चले जाओ और उत्तर मत देना, क्योंकि तुम्हारे दिए उत्तर सब झूठे होंगे। उत्तर को आने देना, तुम मत देना, क्योंकि तुम बहुत जल्दी उत्तर दे देते हो। तुम्हारे जल्दी में दिए गए उत्तर सब झूठे होते हैं, क्योंकि तुम्हारे उत्तर प्रश्न के पहले ही तुम्हें ख्याल में हैं।
मेरे पास लोग आते हैं। वे कहते हैं, हम पूछते हैं, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? फिर उत्तर आता है कि मैं आत्मा हूं, मैं परमब्रह्म हूं।
इतनी जल्दी नहीं आता। यह किसी किताब में तुमने पढ़ा है, यह किसी शास्त्र से तुमने सीखा है। और यह तो तुम्हें पूछने के पहले ही पता है! बड़ा मजा यह है। फिर पूछने की जरूरत ही नहीं है। तुम पूछ क्यों रहे हो? किससे पूछ रहे हो? यह तुम्हें मालूम ही है कि मैं आत्मा हूं! पूछना क्या है अगर मालूम है!
नहीं, तुम्हारी स्मृति से दिए उत्तर काम के न होंगे। तुम्हारी खोपड़ी
से आए उत्तर काम के न होंगे। तुम्हारे अंतरतम से उत्तर आएगा, वह बहुत भिन्न है। वह तुम्हें सुनाई पड़ेगा कि कोई और बोल रहा है, तुम नहीं। यह फर्क साफ होगा। पूछ रहे हो तुम, बोल रहा है कोई और। वह वाणी तुम्हारी नहीं होगी, वे शब्द तुम्हारे नहीं होंगे, वह ध्वनि तुम्हारी नहीं होगी। वह सब तरफ से अपरिचित होगा।
इसलिए तो फकीरों ने, सूफियों ने, भक्तों ने कहा है कि हमने पूछा और परमात्मा ने उत्तर दिया। कोई परमात्मा उत्तर नहीं दे रहा है। तुम्हारा अंतरतम ही उत्तर देता है, क्योंकि वहां तुम ही परमात्मा हो। लेकिन वाणी इतनी अपरिचित होती है, जो तुमने कभी नहीं सुनी। तुम्हारे शब्दों से उसका कोई मेल नहीं होता, तुम्हारे ओठों से उसका कोई संबंध नहीं होता। तुम्हारे कंठ से वह आती ही नहीं है। तुम्हारी स्मृति, तुम्हारी बुद्धि से उसका कोई लेना-देना नहीं है। वह बहुत दूर से आती मालूम पड़ती है, बहुत पार से आती मालूम पड़ती है। इसलिए सबको लगा है कि किसी और ने उत्तर दिया है। कोई और उत्तर नहीं देता है। उत्तर तो तुम्हारी ही अंतर-आत्मा से आता है। लेकिन तुम्हारी आत्मा तुमसे इतनी दूर हो गई है, तुम इतने दूर हो गए हो उससे, तुम दूर हटते-हटते इतने फासले पर आ गए हो, कि अपना ही उत्तर, किसी और का उत्तर मालूम पड़ता है।
पूछना, मैं कौन हूं? लेकिन उत्तर मत देना। अपनी सारी शक्ति पूछने में लगाना, उत्तर के लिए जरा भी मत बचाना। क्योंकि तुम्हारे उत्तर का कोई मूल्य नहीं है। तुम्हारा उत्तर या तो पढ़ा हुआ होगा, या सुना हुआ होगा, ऋषियों-मुनियों से, शास्त्रों से, संस्कारों से आया हुआ होगा। वह तुम्हारे ऊपर बाहर से आई धूल है, उसका कोई मूल्य नहीं है। तुम तो पूछना इस तरह कि तुम्हारे पास उत्तर ही न बचे। तुम्हारे पूछने की प्रक्रिया में तुम्हारे सब उत्तर गिर जाएं और सिर्फ प्रश्न रह जाए। और जिस दिन तुम्हारे पास सिर्फ प्रश्न होगा, उस दिन तुम्हारा प्रश्न तीर की तरह भीतर जाने लगेगा। क्योंकि जब उत्तर रोकने के लिए न होंगे परिधि पर, तब तुम भीतर की तरफ यात्रा करोगे।
इसलिए परम-ज्ञान के पहले सभी ज्ञान छोड़ देना पड़ता है--ज्ञान जो तुमने सीखा है। इसलिए परम ज्ञान घटित हो सके, उसके पहले सभी शास्त्र नदी में बहा देने पड़ते हैं। सभी बोझ उतार कर रख देने पड़ते हैं, सभी सिद्धांतों से छुटकारा पा लेना पड़ता है। क्योंकि जो भी बाहर से आया है, वह तुम्हें भीतर नहीं ले जा सकता।
अगर तुम एक शुद्ध प्रश्न पूछने में समर्थ हो जाओ और तुम्हारा पूरा प्राण नियोजित हो जाए उस प्रश्न में, कि मैं कौन हूं? और उत्तर देने की कोई जल्दी न रहे, कोई भाव ही न रहे; बल्कि यह साफ रहे कि उत्तर मुझे पता ही नहीं, उत्तर मैं दूंगा कैसे! तो तुम एक दिन पाओगे कि तुम्हारा प्रश्न तुम्हें अंतरतम की तरफ ले चला। वह नाव बन गया और तुम भीतर की यात्रा पर निकल पड़े। एक घड़ी ऐसी आएगी कि पूछते-पूछते-पूछते एक दिन प्रश्न भी गिर जाएगा।

क्योंकि जिस परिधि के उत्तर व्यर्थ हैं, उसका प्रश्न भी सार्थक नहीं हो सकता।
यह थोड़ा जटिल है। जिस परिधि के उत्तर व्यर्थ हैं, उसका प्रश्न भी क्या सार्थक होगा?
लेकिन पहले उत्तर गिरेंगे, पहले तुम्हारा ज्ञान गिरेगा और तुम अज्ञानी हो जाओगे। अज्ञान में प्रश्न बचेगा, उत्तर नहीं बचेंगे। फिर तुम्हारा अज्ञान भी गिरेगा, तुम्हारा प्रश्न भी गिर जाएगा। पूछते-पूछते एक घड़ी आती है, सब उत्तर गिर जाने के बाद, अचानक एक दिन प्रश्न भी तुम्हारे भीतर नहीं उठता। तुम बनाना भी चाहते हो प्रश्न, लेकिन नहीं बनता; तुम शून्य हो जाते हो। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूछते-पूछते शून्यता फलित हो जाती है। उसी शून्य में पहली बार तुम्हारी अंतर-वाणी प्रगट होगी और तुम्हें उत्तर सुनाई पड़ेगा।
यह बड़ी उलटी बात हो गई। जब तक तुम पूछोगे, तब तक उत्तर नहीं मिलेगा। जब पूछना भी गिर जाएगा, तब उत्तर मिलेगा। लेकिन तुम यह मत कहना, तो फिर पूछने की जरूरत क्या है? अभी हम आंख बंद करके बैठ जाते हैं, उत्तर मिल जाए! अभी तो तुम कितना ही कहो कि मैं नहीं पूछ रहा हूं, तुम पूछ ही रहे हो। अभी नहीं होगा। परिधि से हटने में प्रश्न सहयोगी हैं।
ठीक ऐसा ही जैसे एक कांटा गड़ जाए तो हम दूसरे कांटे से उसे निकाल लेते हैं। फिर दूसरे कांटे का आप क्या करते हैं? उसको घाव में रख लेते हैं पुराने? उसको भी फेंक देते हैं। अभी आपका मन बहुत से उत्तर से भर गया है, इसलिए रमण कहते हैं, पूछो। यह पूछने के कांटे से ज्ञान का कांटा निकाल बाहर करो। फिर दूसरे कांटे का क्या करोगे? बड़ा सहारा दिया उसने, ज्ञान से छुटकारा दिलाया, सम्हाल कर रखोगे? जब ज्ञान से छुटकारा ही हो गया, तो अज्ञान को क्या सम्हाल कर रखोगे? जो आदमी ज्ञान तक को छोड़ने में राजी हो गया, उसको अज्ञान पकड़ने का मोह होगा? जो उत्तर छोड़ सका, कि मैं आत्मा हूं, ब्रह्म हूं, फलां-ढिकां, अहं ब्रह्मास्मि; इस सब कचरे को जो फेंक सका, वह क्या इस प्रश्न को कि मैं कौन हूं, इसको पकड़े रखेगा? एक घड़ी आएगी, वह इसको भी छोड़ देगा। दोनों कांटे हट जाएंगे।
ज्ञान भी कांटा है, अज्ञान भी कांटा है। और जब ज्ञान, अज्ञान दोनों नहीं होते, तो परम-ज्ञान उपलब्ध होता है, तो प्रज्ञा प्रस्फुटित होती है। तब तुम जानोगे कि मैं ब्रह्म हूं। लेकिन तब तुम जानोगे, अनुभव करोगे; यह तुम्हारी प्रतीति होगी, यह तुम्हारा साक्षात्कार होगा। यह साक्षात्कार तुम्हारा निज का होगा। अब तुम यह किसी से सुन कर नहीं कह रहे हो। अब यह तुम अपने ही अनुभव से कह रहे हो। अब दुनिया की सारी ताकत भी तुमसे इस अनुभव को नहीं छीन सकती।
वह जो पहला तुम्हारा ज्ञान था कि मैं ब्रह्म हूं, वह तो कोई छोटा बच्चा भी सवाल उठाता, तो तुम्हें दिक्कत में डाल देता। वह तो यह कह सकता था, अच्छा तो तुम ब्रह्म हो, तो यह पत्थर का टुकड़ा है, इसको तुम समाप्त कर दो! बस तुम मुश्किल में पड़ जाते, तुम्हारा ज्ञान झंझट में आ जाता। वह कह देता है कि अभी मौसम नहीं है फूल का, इस वृक्ष पर फूल ला दो--ब्रह्म हो।
एक जैन मुनि हैं, मेरे पास आते हैं। उनकी बेचारों की एक ही तकलीफ है। उनको यह ख्याल है कि उनको परम-ज्ञान हो चुका है, कैवल्य की उपलब्धि हो गई है। लेकिन एक झंझट है। क्योंकि जैन-शास्त्रों में कहा गया है कि जिसको कैवल्य-ज्ञान होता है, वह त्रिकालज्ञ हो जाता है, उसको तीनों काल का ज्ञान हो जाता है। तो उनको कोई भी दिक्कत में डाल देता है। वह कहते हैं कि मुझे कैवल्य-ज्ञान हो गया। तो वे कहते हैं कि तीनों काल का ज्ञान? तो वह मेरे पास आते हैं कि यह एक बड़ी झंझट है। क्या कैवल्य-ज्ञान में तीनों कालों का ज्ञान बिल्कुल जरूरी है? क्या बिना त्रिकालज्ञ हुए कोई कैवल्य-ज्ञानी नहीं हो सकता? मैं कैवल्य-ज्ञानी तो हो गया हूं, लेकिन लोग मुझे दिक्कत में डाल देते हैं। वे कहते हैं कि अच्छा कैवल्य-ज्ञानी, तो हमारी मुट्ठी बंद है, उसके भीतर क्या है? इसमें मैं झंझट में पड़ जाता हूं। तो आप कुछ ऐसा समझाइए कि कैवल्य-ज्ञान हो सकता है, त्रिकालज्ञ होने की कोई जरूरत नहीं।

अब यह शास्त्र में पढ़ कर उनको कैवल्य-ज्ञान हो गया है! और उसी शास्त्र में पढ़ कर हुआ है, जिसमें त्रिकालज्ञ होना भी लिखा है। अब वह उसको झुठला भी नहीं सकते। तो मैं उनको कहता हूं कि तुम बेहतर हो कि अपने को अज्ञानी समझो। अभी जल्दी मत करो यह कैवल्य-ज्ञान की। क्योंकि जिस दिन तुम्हें कैवल्य-ज्ञान होगा, उस दिन तुम मुझसे गवाही लेने नहीं आओगे, मुझसे सर्टिफिकेट लेने नहीं आओगे, कि लिख दें आप कि इनको कैवल्य-ज्ञान हो गया है और त्रिकालज्ञ होने की कोई जरूरत नहीं है। यह तो तुम्हें कैवल्य-ज्ञान होगा, जब यह तुम्हारी प्रतीति होगी, तो ये सब बातें नहीं रह जाएंगी। अगर तुमको कैवल्य-ज्ञान हो जाएगा बिना त्रिकालज्ञ हुए, तो तुम कहोगे कि ठीक है, त्रिकालज्ञ मैं नहीं हूं, मुझे कैवल्य-ज्ञान हो गया है। लेकिन दूसरे को कहने की जरूरत क्या है? दूसरे को राजी करने की जरूरत क्या है? उसको राजी करना चाहोगे तो वह भी सवाल उठाएगा, वह भी तर्क उठाएगा। फिर उनके जवाब भी देने पड़ेंगे, फिर मुश्किलें खड़ी होती हैं।
अक्सर जिनके दिमाग थोड़े खराब हैं, उनको कैवल्य-ज्ञान, ब्रह्म-ज्ञान बड़े जल्दी हो जाते हैं। देर ही नहीं लगती। वह सिर्फ पागलपन के लक्षण हैं, उनका इलाज होना चाहिए। उनको मानसिक चिकित्सालय में रखे जाने की जरूरत है। उनको जो वहम हो रहा है, वह सिर्फ अहंकार की वजह से हो रहा है।
यह सूत्र कहता है, "जीवात्मा की वासनाओं को जीत लेने का बड़ा और कठिन कार्य युगों का है।"
यह कोई एक क्षण में नहीं हो जाता। अभी मेरे पास अनेक लोग आ जाते हैं,
वे कहते हैं कि हमारी कुंडलिनी जग गई है! कोई देवी ने हाथ लगा दिया और कुंडलिनी जग गई! और क्या हुआ? वे कहते हैं, और कुछ नहीं हुआ, बाकी सब वैसा का वैसा है। अभी एक देवी हैं बंबई में, वे दस-पच्चीस लोग, जितने उनके पास जाते हैं, सभी एनलाइटेंड हो गए! पच्चीस के करीब आदमियों को बुद्ध बना दिया उन्होंने, एकदम! और वे जो बुद्ध बन गए हैं, उनसे पूछो कि और क्या हुआ? वे कहते हैं, और कुछ नहीं हुआ, बस बुद्ध बन गए! क्योंकि उन्होंने कहा है कि तुम्हें परम-ज्ञान हो गया है।
आदमी सस्ते के लिए इतना उत्सुक है और कोई कह दे, इसकी कोशिश में रहता
है कि तुम्हें यह हो गया, वह हो गया! वह मान लेता है, वह मानना ही चाहता है। जीवन इतना सस्ता नहीं है। वहां युगों की तपश्चर्या है, युगों का श्रम है, युगों की भटकन है, तभी कुछ थोड़ा-बहुत हाथ में आता है। वह भी थोड़ा-बहुत।
यह सूत्र कहता है कि सब कुछ कर लेने के बाद भी, ड्योढ़ी पर पहुंचा हुआ आदमी, परमात्मा के दरवाजे पर पहुंचा हुआ आदमी भी, वापस गिर सकता है।
थोड़ी सी भूल, और दरवाजा जो सामने था, युगों के लिए खो सकता है। और जितने हम करीब पहुंचते हैं, उतनी ही भूल खतरनाक होने लगती है। क्योंकि जब आप मंजिल से बहुत दूर हैं, तो भटकाव का ज्यादा डर नहीं रहता। क्योंकि आप इतने दूर हैं कि भटकेंगे भी तो क्या होगा? दूर ज्यादा और क्या होंगे इससे, जितने दूर हैं? जितने करीब पहुंचते हैं मंजिल के, उतना एक-एक कदम मुश्किल का हो जाता है। क्योंकि अब एक कदम भी भटके, तो मंजिल चूक सकती है। महंगा सौदा हो गया। दायित्व बढ़ जाता है। बोध ज्यादा चाहिए। जितने निकट पहुंचते हैं, उतनी ज्यादा कठिनाई हो जाती है। लेकिन लोग बिना चले ही पहुंच जाते हैं! कोई उनको वहम दिला दे, बस वे राजी हो जाते हैं!
अमरीका में एक सज्जन हैं। उनके शिष्य का एक पत्र मेरे पास आया कि अनेक लोगों ने उनको कह दिया कि वे सिद्ध हो गए हैं, और हिंदुस्तान से भी दो-तीन ज्ञानियों ने उनको लिख कर सर्टिफिकेट भेज दिया है कि वे सिद्ध-अवस्था को प्राप्त हो गए हैं, बस आपके सर्टिफिकेट की और जरूरत है।
क्या पागलपन है! और जिन्होंने लिख कर भेजा है, उन तक ने सिद्ध कर दिया
है कि वे भी अभी सिद्ध नहीं हैं। कोई सर्टिफिकेट का मामला है? किसी से पूछने की जरूरत है? कोई निर्णय देगा कि तुम पहुंच गए हो? और पहुंच कर भी तुम दूसरे के निर्णय की प्रतीक्षा करोगे?
लेकिन आदमी बिना कुछ किए कुछ हो जाना चाहता है! और धर्म में जितनी आसानी है बिना कुछ किए हो जाने की, उतनी और कहीं भी नहीं है। क्योंकि कहीं

भी कुछ करना ही पड़ेगा, तभी कुछ हो पाएंगे। धर्म में तो ऐसा है कि आप हो ही सकते हैं, कोई अड़चन नहीं है, कोई कसौटी नहीं है, कोई बाधा नहीं डाल सकता। ध्यान रखना इसका, कि जैसे-जैसे ध्यान गहरा होगा, समाधि करीब आएगी, वैसे-वैसे उत्तरदायित्व बढ़ रहा है। खतरा भी बढ़ रहा है। क्योंकि पहले तो कुछ भी भूल होती, तो कुछ खास फर्क न पड़ता था। भटके इतने थे कि अब और क्या भटकना था? दूर इतने थे कि और दूरी क्या होगी? लेकिन अब तो इंच भर की भूल, और हजारों कोस का फासला हो सकता है। अब तो जरा सा दिशा का परिवर्तन और भटकाव हो सकता है। निकट पहुंच कर बहुत लोग भटकते हैं और गिर जाते हैं। और निकट पहुंच कर अगर अहंकार की जरा सी भी रेखा रह गई, तो वह अहंकार भटका देता है। वह समाधि के पहले ही घोषणा कर देता है कि समाधि हो गई, ध्यान के पहले ही घोषणा कर देता है कि ध्यान हो गया। और जब हो ही गया तो यात्रा उसी क्षण रुक जाती है।
"जो ज्ञान अब तुम्हें प्राप्त हुआ है, वह इसी कारण तुम्हें मिला है कि तुम्हारी आत्मा सभी शुद्ध आत्माओं से एक हो गई है और उस परम-तत्व से एक हो गई है। यह ज्ञान तुम्हारे पास उस सर्वोच्च (परमात्मा) की धरोहर है। इसमें यदि तुम विश्वासघात करो, उस ज्ञान का दुरुपयोग करो, या उसकी अवहेलना करो, तो अब भी संभव है कि तुम जिस उच्च पद पर पहुंच चुके हो, उससे नीचे गिर पड़ो।" यह मैं रोज देखता हूं कि जैसे-जैसे लोग करीब पहुंचते हैं, वैसे-वैसे अहंकार आखिरी बल मारता है। कल धन का अहंकार था, पद का अहंकार था, फिर वह ध्यान का अहंकार हो जाता है। कि मैं ध्यानी हो गया! जैसे ही यह अहंकार बल मारता है, वैसे ही तुम विश्वासघात कर रहे हो, वैसे ही तुम दुरुपयोग कर रहे हो, वैसे ही तुम अवहेलना कर रहे हो। और यह संभव है कि तुम वापस फेंक दिए जाओ।
"बड़े पहुंचे हुए लोग भी अपने दायित्व का भार न सम्हाल सकने के कारण और आगे न बढ़ सकने के कारण ड्योढ़ी से गिर पड़ते हैं और पिछड़ जाते हैं। इसलिए इस क्षण के प्रति श्रद्धा और भय के साथ सजग रहो और युद्ध के लिए तैयार रहो।" श्रद्धा और भय के साथ सजग--इसको थोड़ा समझ लेना चाहिए। क्या अर्थ हुआ? श्रद्धा और भय को एक साथ क्यों रखा? श्रद्धा और भय तो बड़े विपरीत मालूम पड़ते हैं। क्योंकि श्रद्धावान को कैसा भय? और भयभीत को कैसी श्रद्धा? लेकिन प्रयोजन इनका महत्वपूर्ण है। और दोनों का तालमेल बिठाने की बात नहीं है, दो अलग आयाम में दोनों की उपस्थिति है।
श्रद्धा भविष्य के प्रति और भय पीछे गिर जाने के प्रति। श्रद्धा आगे बढ़ने के लिए और भय कि कहीं पीछे न गिर जाऊं। दोनों का आयाम अलग है, दोनों साथ-साथ नहीं हैं। भय इस बात का सदा रखना कि मैं पीछे अभी भी गिर सकता हूं। भय रहेगा तो तुम सजग रहोगे। अभी भी गिर सकता हूं। अहंकार का स्वर जहां भी सुनाई पड़े, भयभीत हो जाना। अभी तुम पीछे खींचे जा सकते हो, अभी सेतु बिल्कुल नहीं मिट गया, अभी रास्ता बना हुआ है पीछे जाने का। अभी तुम रास्ते को पकड़ सकते हो।
और श्रद्धा भविष्य के प्रति। भविष्य के प्रति पूरा भरोसा। और अतीत के प्रति भय, जरा भी भरोसा नहीं। अगर ये दो बातें तुम्हारे ख्याल में रहें कि अभी और बहुत कुछ होने को है, सब नहीं हो गया है, भविष्य के प्रति यह बोध। और अतीत मिट गया है, लेकिन बिल्कुल नहीं मिट गया है, अभी लौटना संभव हो सकता है। रास्ते कायम हैं। और जरा सी भूल और तुम बहुत पीछे लौट जा सकते हो। चढ़ना बहुत कठिन है, उतरना कठिन नहीं है। एक क्षण में तुम न मालूम कितना उतर जा सकते हो, गिर जा सकते हो। उठने में युगों लग जाते हैं। यह भय है। और भविष्य के प्रति परिपूर्ण आस्था, आशा। ये दो बातें ख्याल में रहें।

साधना-सूत्र
सत्रहवां प्रवचन

अदृश्य का दर्शन

लिखा है कि जो दिव्यता के द्वार तक पहुंच चुका है,
उसके लिए कोई भी नियम बनाया नहीं जा सकता
और न कोई पथ-प्रदर्शक ही उसके लिए हो सकता है!
फिर भी शिष्य को समझाने के लिए इस अंतिम युद्ध का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैंः

13. जो मूर्त नहीं है और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलंबन लो।

14. केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।

15. जो बाह्य और अंतर दोनों च्रुओं से अदृश्य है,
केवल उसी का दर्शन करो। तुम्हें शांति प्राप्त हो।

प्रभु मंदिर की यात्रा सत्य के लिए वैसे ही कठिन है, उसे कहना मुश्किल है। जो अनुभव उस यात्रा पथ पर होते हैं, शब्दों में ढालते ही झूठे हो जाते हैं। क्योंकि शब्द बहुत छोटा है, अनुभव बहुत विराट है। जैसे कोई अपनी मुट्ठी में आकाश को भरने की कोशिश करे और असफल हो जाए, वैसा ही सत्य को शब्द में ढालने में असफलता मिलती है। शून्य से कहा जा सकता है, शब्द से नहीं कहा जा सकता। मौन में तो शायद मुखरित भी हो सके, लेकिन वाणी से अवरुद्ध हो जाता है। यह तो यात्रा पथ की बात है। लेकिन मंदिर के द्वार पर जब खड़ा हो जाता है साधक, तब तो शब्द बिल्कुल ही कठिनाई में डाल देते हैं। क्योंकि मंदिर के द्वार का अर्थ हैः द्वंद्व का हुआ अंत!
और हमारी सारी भाषा ही द्वंद्व से निर्मित है। हमारी भाषा में विपरीत
का होना जरूरी है। अगर हम अंधेरे का अर्थ समझ पाते हैं, तो सिर्फ इसीलिए कि प्रकाश है, नहीं तो अंधेरे का अर्थ खो जाए। अगर कोई अंधेरे की परिभाषा पूछे, तो क्या कहिएगा? यही कहिएगा न, कि प्रकाश का न होना। अंधेरे की परिभाषा में प्रकाश को लाना पड़े, बड़ी मजबूरी है! और, और भी मजबूरी तो तब पता चलती है, जब कोई पूछ ले कि प्रकाश की परिभाषा क्या है? तो आप को कहना पड़ता है, अंधेरे का न होना! यह तो बड़ा जाल हो गया। अंधेरे की परिभाषा में प्रकाश को लाना पड़ता है। प्रकाश की परिभाषा में अंधेरे को लाना पड़ता है! दोनों एक-दूसरे पर निर्भर मालूम पड़ते हैं। और दोनों अलग-अलग अस्तित्व में नहीं हो सकते, उनकी परिभाषा तक नहीं हो सकती।
भाषा द्वंद्व से भरी है, क्योंकि भाषा द्वंद्व-जगत के लिए निर्मित हुई है। यहां जन्म का अर्थ मृत्यु में छिपा है। उलटी दिखाई पड़ने वाली मृत्यु में जन्म का सारा अर्थ छिपा है! यहां प्रेम का अर्थ भी घृणा में छिपा है। और घृणा अगर संसार से मिट जाए, तो प्रेम मिट जाए।
मंदिर के प्रवेश द्वार पर द्वंद्व समाप्त हो जाता है।
तो द्वंद्व की भाषा फिर काम नहीं आएगी। तो क्या कहें? परमात्मा को प्रकाश कहें, तो परिभाषा अंधेरे से करनी पड़ती है। और ऐसा परमात्मा भी क्या जिसकी परिभाषा के लिए अंधेरे को लाना पड़े? फिर परमात्मा को क्या कहें? प्रेम कहें, तो घृणा से परिभाषा करती पड़ती है। परमात्मा को शाश्वत कहें, तो परिवर्तनशील से व्याख्या करनी पड़ती है। परमात्मा को स्रष्टा कहें, तो सृष्टि से ही संबंध जोड़ना पड़ता है। और जिसका होना सृष्टि पर निर्भर है, वह क्या स्रष्टा होगा?
विपरीत जब द्वार पर गिर जाता है, तो भीतर के संबंध में कहने को कुछ भी बचता नहीं।
इसलिए यह सूत्र शुरू होता है, "लिखा है कि जो दिव्यता के द्वार तक पहुंच चुका है, उसके लिए कोई भी नियम नहीं बनाया जा सकता और न कोई पथ-

202

प्रदर्शक ही उसके लिए हो सकता है। फिर भी शिष्य को समझाने के लिए इस अंतिम युद्ध का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं।"
जो दिव्यता के द्वार तक पहुंच चुका, उसके लिए कोई भी नियम नहीं बनाया
जा सकता। क्योंकि नियम तो सभी संसार के हैं। मंदिर के बाहर उनका परिणाम और प्रभाव है, मंदिर के भीतर उनका कोई प्रयोजन नहीं है। क्या ठीक है और क्या गलत है, वह भी द्वंद्व की ही दुनिया की बात है। वह भी परिभाषाओं पर निर्भर है। इस मंदिर के द्वार पर तो ठीक और गलत भी गिर जाएगा। यहां तो शुभ-अशुभ भी नहीं बचेगा, यहां तो धर्म और अधर्म भी नहीं बचेगा, नीति-अनीति भी नहीं बचेगी। यहां तो हमने दो के जगत में जो भी सीखा था, उसे हमें द्वार पर ही छोड़ देना होगा। तो इस निर्द्वंद्व, अद्वैत, इस मंदिर के भीतर के लिए क्या नियम हो सकता है?
इसलिए हमने परमहंस को नियमातीत कहा है। उसके लिए हम कोई नियम नहीं बना सकते! वह क्या करे, क्या न करे, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। वह जो करे, वही ठीक है। वह जो न करे, वही गलत है। हमारे लिए उलटी है बात। जो गलत है, वह हमें नहीं करना चाहिए। जो ठीक है, वह हमें करना चाहिए। परमहंस के लिए कहा है कि वह जो करे, वही ठीक है। वह जो न करे, वही गलत है। और उसके ऊपर कोई भी नियम नहीं है। क्योंकि जो मंदिर में प्रविष्ट हो गया, वह नियम के बाहर हो गया। नियम का अस्तित्व है परिधि पर, केंद्र पर नियम का कोई अस्तित्व नहीं है। और जब तक हम परिधि पर होते हैं, तब तक नियम लागू होते हैं। और जैसे ही हम केंद्र पर पहुंच जाते हैं, नियम लागू नहीं होते हैं।
फिर भी परमहंस नियम मान कर चल सकता है, यह उसकी मौज है। वह नियम तोड़ कर
भी चल सकता है, यह भी उसकी मौज है। और दायित्व उसका कोई भी नहीं है, उत्तरदायित्व उसका कोई भी नहीं है। क्योंकि अब कोई भी नहीं है, जिसके प्रति वह उत्तरदायी हो। अब वह स्वयं उस जगह खड़ा है, जिसके पार और कुछ भी नहीं है।
तो यह सूत्र कहता हैः कोई नियम नहीं है। कोई नियम बनाया नहीं जा सकता,
न ही कोई पथ-प्रदर्शन ही हो सकता है। न उससे कहा जा सकता है कि अब तू कैसे मंदिर में प्रवेश कर। इतना ही कहा जा सकता है कि तू जो भी है अब तक, द्वंद्व से सीखा हुआ, उसे तू द्वार पर छोड़ दे। उस मंदिर के द्वार पर निषेध की ही व्यवस्था हो सकती है। इसलिए उपनिषद कहते हैं, नेति-नेति। यह मंदिर के आखिरी चरण पर कहा हुआ वक्तव्य है। इसके पार फिर कोई वक्तव्य नहीं है। नेति-नेति का अर्थ है, यह भी नहीं, वह भी नहीं। तुम जो भी कहो, वैसा नहीं है। तुम्हारा सब इनकार कर देने का है। तुम्हारे पास अपना कुछ भी न बचे। तुमने जो भी सीखा था संसार से, अनुभव से, वह सब व्यर्थ हो रहा है। वह तुम द्वार पर ही छोड़ देना। उसमें से तुम कुछ भी ले कर भीतर मत जाना, अन्यथा तुम भीतर ही न पहुंच पाओगे।
तो नियम निषेध का हो सकता है कि जो भी सीखा है, वह द्वार पर छोड़ दो। और तुम अनसीखे, निर्दोष, कोरे कागज की तरह; जैसे कि संसार में गए ही नहीं कभी, जैसे कि तुमने कुछ जाना नहीं, जैसे कि तुमने कुछ जीया नहीं, जैसे कि तुम बिल्कुल कुंआरे हो, तुम पर कोई रेखा भी नहीं अनुभव की, ऐसे कुंआरे तुम प्रवेश कर जाना मंदिर में। यह जो कुंआरापन है, इसकी परिभाषा निषेध से ही हो सकती है। कि जो-जो तुमने सीखा है, पोंछ डालना, क्योंकि द्वंद्व से सीखा हुआ भीतर नहीं ले जाया जा सकता। और अगर जरा सा भी तुमने बचाया, तो तुम मंदिर में भीतर नहीं पहुंच सकोगे। तुम्हें द्वार ही नहीं मिलेगा।
नियम तो नहीं बनाए जा सकते और न कोई पथ-प्रदर्शन ही किया जा सकता है। कोई नक्शा भी हाथ में नहीं दिया जा सकता कि मंदिर के भीतर, प्रभु के मंदिर के भीतर या प्रभु के भीतर यह नक्शा तुम्हारा सहयोगी होगा। ये रास्ते, इन मार्गों से तुम भीतर यात्रा कर सकोगे।
इसे थोड़ा समझ लेने जैसा है।
चेतना का आकाश ठीक इस आकाश जैसा ही है एक अर्थों में। जमीन पर कोई चलता है तो चिह्न बन जाते हैं, पद-चिह्न बनते हैं। आकाश में पक्षी उड़ते हैं तो पद-चिह्न नहीं बनते हैं। जमीन पर तो रास्ते होते हैं, आकाश में कोई रास्ता नहीं बनता। जो तुमसे पहले चले हैं, उनके कोई चिह्न नहीं छूटते,

जिनके पीछे तुम अनुकरण कर सको! वह जो परमात्मा का मंदिर है, वह जो अंतिम घटना है अनुभव की, बोध की, चैतन्य की--वहां कोई पद-चिह्न नहीं हैं। वहां बुद्ध चले हैं, वहां जीसस चले हैं, लेकिन कोई पद-चिह्न नहीं छूट गए।
इसलिए नक्शा नहीं बनाया जा सकता। ऐसा नहीं कहा जा सकता कि नक्शा सम्हाल लो और इसके अनुसार तुम भी उसके भीतर चले जाना। तुम्हारा नक्शा भी इसी तरफ छूट जाएगा। क्योंकि नक्शे जिस पदार्थ के जगत में काम आते हैं, वह पदार्थ का जगत नहीं है। पदार्थ पर तो चिह्न बनते हैं, परमात्मा पर कोई चिह्न नहीं बनते। पदार्थ पर तो रेखाएं खिंचती हैं, आत्मा पर कोई रेखाएं नहीं खिंचतीं। इसलिए वहां कोई मार्ग नहीं है, कोई दिशासूचक व्यवस्था नहीं है, इसलिए कोई पथ-प्रदर्शन नहीं किया जा सकता।
वहां तो अज्ञात में उतरने का जिनके पास साहस है, वे ही केवल उतर पाते हैं। जो नक्शा मांगते हैं, उन्हें मंदिर के बाहर ही रुक जाना पड़ेगा। जो कहते हैं, आगे जा कर क्या होगा; जब तक हम यह न जान लें, तब तक हम आगे न बढ़ेंगे; वे आगे बढ़ ही नहीं सकते। वहां तो केवल वे ही प्रवेश कर सकते हैं, जो दुस्साहसी हैं, जो कहते हैं, कोई चिंता नहीं है कि आगे क्या होगा। जो कहते हैं कि कोई सुरक्षा की फिक्र नहीं। जो कहते हैं कि मृत्यु भी घटित होगी, तो भी हम राजी हैं। सदा के लिए खो जाएंगे और कभी कुछ न मिलेगा, तो भी हम राजी हैं।
मंदिर के द्वार पर जो इतना दुस्साहस करता है अपने को खोने का, वही प्रवेश करता है।
बाहर से लाया हुआ कोई ज्ञान सहयोगी नहीं हो सकता, क्योंकि कोई ज्ञान स्पर्श नहीं कर सकता उस परम अनुभव का। और इसीलिए जो भी वहां पहुंचता है, वह मौलिक अनुभव में पहुंचता है। हजारों बुद्ध पहुंचे हैं वहां, लेकिन फिर भी मौलिक, अभी भी अछूता है। मौलिक है अनुभव। जब भी कोई व्यक्ति पुनः पहुंचता है उस मंदिर में, तो वह अनुभव करता है कि कुछ भी बासा नहीं है। अगर तुम्हें नक्शे दिए जा सकें और शास्त्रज्ञ दिए जा सकें और गाइड दिए जा सकें, और तुम उनके हिसाब से भीतर जा सको, तो अनुभव झूठा हो जाएगा।
अमरीका में मनोवैज्ञानिक कहते हैं कि आज अमरीकन यात्री कहीं भी जाए,
तो उसे लगता है, जो भी वह देख रहा है, सब बासा है। मजा यह है कि आज अमरीका के पास ही सर्वाधिक सुविधा है दुनिया में चक्कर मारने की। दुनिया भर में यात्रियों का जो विराट दल घूमता है, उसमें अस्सी प्रतिशत अमरीका के निवासी हैं। सारी दुनिया में कोने-कोने तक यात्री पहुंचते हैं, वे अमरीका के निवासी हैं। लेकिन एक बड़े मजे की घटना घटी है, वे जहां भी पहुंचते हैं, उनको लगता है, सब बासा है।
क्योंकि ताजमहल को वे देख चुके हजार दफे चित्रों में, टेलीविजन पर, फिल्म में। जब वे ताजमहल पहुंचते हैं, तो वह हजार दफा देखा हुआ ताजमहल है। वह बासा है। वे बड़ी आशाएं बांध कर आते हैं ताजमहल देखने, लेकिन जब देखते हैं, तो वे अनुभव करते हैं, यह तो हजार दफे देख चुके हैं। और सच तो यह है कि फोटोग्राफी से, टेलीविजन पर, फिल्मों में, जितना सुंदर ताजमहल दिख सकता है, उतना खाली आंखों से दिख नहीं सकता। इसलिए जो असली ताजमहल है, वह फीका लगता है। जो देखा था फिल्मों में, वह कहीं ज्यादा रंगीन था, कहीं ज्यादा बहुमूल्य मालूम पड़ा था। उसको देख कर यह सोच कर कि मूल इससे भी मूल्यवान होगा, वे देखने आए। लेकिन मूल फीका मालूम पड़ता है। और फिर इतनी दफा देखा जा चुका है, तो मौलिकता तो कुछ है नहीं। इसलिए अमरीकन यात्री घूमता तो बहुत है, लेकिन पहुंचता कहीं भी नहीं, अनुभव उसे कुछ भी नहीं होता। क्योंकि वह जो भी है, सब देखा हुआ है, सब बासा है, सब चीजें उबाने वाली हैं।
अच्छा ही है कि परमात्मा के मंदिर का कोई नक्शा नहीं है। नहीं तो तुम वहां भी पहुंच कर सिर पीट लेते। यह वही का वही, जो गीता में पढ़ा था; यह वही का वही, जो पहले ही बुद्ध समझा चुके हैं! तुम वहां भी ऊब जाते। लेकिन उसका कोई नक्शा बन नहीं सका, बनेगा भी नहीं कभी। और उसके संबंध में जो भी खबरें दी गई हैं, वे कोई भी खबरें मंदिर के भीतर काम नहीं आतीं, मंदिर के द्वार तक ही ले जाती हैं। इसलिए मंदिर सदा अछूता और कुंआरा है। उसमें तुम जब भी पहुंचते हो तो अनुभव अनूठा है, अद्वितीय है। तुम भी उस अनुभव को करने के

बाद किसी को कह न सकोगे। तुम अचानक उस अनुभव के बाद पाओगे कि जो भी कहा जा सकता है, उससे इसका कोई संबंध नहीं। और यह जो देखा है, इसका कहने से कोई संबंध नहीं बनाया जा सकता।
इसलिए सूत्र कहता है कि न तो कोई नियम, न कोई पथ-प्रदर्शक ही उसके लिए
हो सकता है! फिर भी शिष्य को समझाने के लिए इस अंतिम युद्ध का वर्णन इस प्रकार कर सकते हैं।
यह जो अंतिम घटना, आखिरी घटना जीवन की घटेगी, मंदिर के द्वार पर सब छोड़
कर भीतर प्रवेश की; वह जो मंदिर के द्वार पर छोड़ने की घटना है, उसका वर्णन किया जा सकता है। वह भी कोशिश है, वह भी पूरी सफल नहीं होती, लेकिन इशारा हो सकता है। वह इशारा कठिन है।
तेरहवां सूत्र, "जो मूर्त नहीं है और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलंबन लो।"
जटिलता द्वंद्व की ही है--जो मूर्त नहीं है और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलंबन लो।
हम जानते हैं कि मूर्त क्या है, पदार्थ क्या है, साकार क्या है। पदार्थ का हमें पता है। हमें अमूर्त का कोई पता नहीं है। इसलिए लोग कहते हैं कि आत्मा अमूर्त है, पदार्थ के पार है। पदार्थ का आकार है, गुण है; आत्मा का आकार नहीं, गुण नहीं; निर्गुण है, निराकार है। तो पदार्थ से हम आत्मा की व्याख्या करते हैं। पदार्थ है मूर्त, आत्मा है अमूर्त। हमें तो मूर्त का ही पता है, अमूर्त तक का कोई पता नहीं है।
यह सूत्र कहता है, लेकिन अगर तुम्हें आत्यंतिक सत्य में प्रवेश करना है, तो मूर्त तो छोड़ ही देना पड़ेगा, अमूर्त भी छोड़ देना पड़ेगा; आकार तो छोड़ ही देना पड़ेगा, निराकार भी छोड़ देना पड़ेगा।
क्यों? थोड़ा कठिन है। इसीलिए इतनी झिझक के साथ ये सूत्र लिखे गए हैं। आकार तो छोड़ ही देना पड़ेगा, निराकार भी छोड़ देना पड़ेगा। क्योंकि निराकार में भी आकार मौजूद है। वह आकार से ही पारिभाषित होता है। अगर कोई पूछे कि निराकार क्या है? तो आप यही कहेंगे न कि जहां आकार नहीं। आकार से ही बंधा है निराकार भी। निराकार भी आकार से मुक्त नहीं हो पाता, क्योंकि निराकार की भी कोई व्याख्या नहीं हो सकती आकार के बिना। झगड़ा चलता है; आकारवादी हैं, निराकारवादी हैं; सगुणवादी हैं, निर्गुणवादी हैं! वे बड़ा विवाद करते हैं कि परमात्मा निर्गुण है कि सगुण। हजारों साल से विवाद चलता है।
लेकिन यह सूत्र कहता है कि परमात्मा न सगुण है, न निर्गुण है। यह सूत्र यह कहता है कि निर्गुण की भी परिभाषा जब गुण से ही होती हो, तो कितना सार रहा तुम्हारे निर्गुण में। अगर सच में ही परमात्मा निर्गुण है, तो उसको निर्गुण भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यह तो गुण का ही निषेध हो रहा है सिर्फ, गुण का ही इनकार हो रहा है। तो गुण के बिना तुम परमात्मा को भी कुछ नहीं कह सकते हो, तो इतना तो कम से कम तुम्हें मानना ही पड़ेगा कि परमात्मा में गुण भला न हों, लेकिन उसकी परिभाषा गुण के बिना नहीं हो सकती। और जिसकी परिभाषा गुण के बिना नहीं हो सकती, उसको निर्गुण कैसे कहिएगा?
यह सूत्र कहता है कि न वहां सगुण की गति है और न निर्गुण की; वहां न आकार बचता है, न निराकार; वहां न मूर्त बचता है, न अमूर्त; वहां न पदार्थ बचता है, न आत्मा।
जटिल है, कठिन मालूम पड़ेगा। क्योंकि पहले तो पदार्थ से आत्मा तक उठना कठिन है। और फिर आत्मा से भी उठना और भी कठिन हो जाता है। पदार्थ और आत्मा भी द्वंद्व का हिस्सा है। पदार्थ और आत्मा भी दो विरोध हैं। चेतना और पदार्थ दो विरोध हैं। पदार्थ तो छूट ही जाना है, चैतन्य भी। इसका यह अर्थ नहीं है कि आप अचेतन हो जाएंगे वहां। लेकिन जो कुछ भी आपने चेतना की तरह जाना था, वह पाएंगे कि सब व्यर्थ हो गया। और कुछ नई ही घटना घटी है, जो चेतना के भी पार जाती है; जो परा-चैतन्य है, चेतना के भी अतीत हो जाती है। "जो मूर्त नहीं है और अमूर्त भी नहीं है, उसका अवलंबन लो।"

इस द्वार के बाहर ही छोड़ देना। इसे हम ऐसा समझें कि यात्रा को हम बांट लें। एक तो यात्रा है, मूर्त को छोड़ो। जो-जो आकार है, उसको छोड़ो, ताकि तुम भीतर के निराकार में प्रवेश कर सको। यह पहली व्यवस्था है। जिस दिन तुम्हारा भीतर प्रवेश हो जाए पूरा--बाहर को छोड़ा था भीतर जाने के लिए-- लेकिन जब बाहर बिल्कुल छूट जाए, तो भीतर को भी छोड़ देना, क्योंकि भीतर भी बाहर का ही हिस्सा है। पदार्थ को छोड़ा था आत्मवान बनने के लिए और जब पदार्थ पूरा छूट जाए तो इस आत्मवत्ता को भी छोड़ देना।
इसलिए बुद्ध ने कह दिया कि आत्मा नहीं है। और बुद्ध की बात समझी नहीं
जा सकी, परम-ज्ञान की बात थी। तो उन्होंने कहा, आत्मा भी नहीं है--अनात्मा, अनत्ता। वह इसी अर्थ में है कि जिस पदार्थ को छोड़ कर आत्मा जानी थी, वह आत्मा भी छोड़ने योग्य है। उसके बाद जो बच रहेगा, तो बुद्ध ने उसके लिए कोई शब्द उपयोग नहीं किया। उन्होंने कहा कि कुछ भी शब्द उपयोग करूंगा तो जटिलता बढ़ती है; कुछ भी कहूंगा तो सीमा बनती है; कुछ भी कहूंगा तो उसके विपरीत भी होता है; इसलिए मैं कुछ भी न कहूंगा।
बुद्ध से जिंदगी भर लोग पूछते रहे कि क्या होता है उस परम घड़ी में? तो बुद्ध कहते थे, जैसे दीया बुझ जाता है, बस ऐसा ही होता है। तुम बुझ जाओगे, जैसे दीए की ज्योति बुझ जाती है, फिर कोई पूछता नहीं कि कहां गई ज्योति? ऐसे ही तुम भी बुझ जाओगे। ज्योति कहां गई, यह पूछना व्यर्थ हो जाएगा। इसलिए बुद्ध ने मोक्ष शब्द का उपयोग नहीं किया, निर्वाण शब्द का उपयोग किया। निर्वाण का अर्थ है, दीए का बुझ जाना। मोक्ष शब्द से ऐसा लगता है कि तुम बचोगे मुक्त हो कर, लेकिन तुम बचोगे जरूर। बुद्ध कहते हैं, तुम बचोगे ही नहीं, क्योंकि तुम द्वंद्व का ही हिस्सा हो। इसका यह मतलब नहीं कि कुछ भी नहीं बचेगा। सब कुछ बचेगा। जो बचने योग्य है, वह बचेगा। लेकिन उसके लिए बुद्ध कहते हैं, मैं कोई शब्द न दूंगा, क्योंकि सभी शब्द विपरीत से बने हैं, और विपरीत संसार का हिस्सा है।
"जो मूर्त नहीं और जो अमूर्त भी नहीं, उसका अवलंबन लो।"
चौदहवां सूत्र, "केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।"
जो भी वाणी हम सुनते हैं, वह सब आघात से पैदा होती है, दो चीजों की टक्कर से पैदा होती है, द्वंद्व से पैदा होती है। अगर आप मंजीरे को टकराते हैं तो आवाज पैदा होती है। अगर दोनों हाथों को टकराते हैं तो ताली पैदा होती है। अगर हवाएं वृक्षों से गुजरती हैं, तो सरसराहट पैदा होती है। अगर मैं बोल रहा हूं, तो मेरा कंठ टक्कर देता है, तो वाणी पैदा होती है। हम जो भी वाणी जानते हैं, वह सब नाद है। संघर्ष से पैदा हुआ है, दो की टक्कर से। लेकिन उस मंदिर में दो तो बचेंगे नहीं, तो वहां कोई वाणी नहीं हो सकती। वहां शब्द नहीं हो सकता। वहां दो की टकराहट हो नहीं सकती। क्योंकि जहां द्वंद्व नहीं है, वहां टक्कर कैसी? खाली आकाश है। जहां कोई दूसरा नहीं है, तो वहां कैसी वाणी होगी? वहां नाद आघात वाला पैदा नहीं हो सकता। तो दो बातें हैं--या तो हम कहें नाद-रहित वाणी, नाद-रहित स्वर, ऐसा स्वर
जो टक्कर से पैदा नहीं होता, जो दो चीजों के आघात से पैदा नहीं होता। और या फिर संतों ने एक और शब्द चुना है, वह भी बहुत कीमती है--अनाहत नाद। अनाहत का मतलब भी यही होता है कि जो आहत से नहीं, टक्कर से पैदा नहीं हुआ--अनाहत। क्या ऐसा कोई नाद है, जो अनाहत है? क्या ऐसा भी कोई नाद है, जो बिना टक्कर के पैदा होता है?
ऐसा अगर कोई नाद है तो वही जीवन का मूल-स्वर है। इसमें कई बातें समझ लेने जैसी हैं। क्योंकि जो चीज टकराहट से पैदा होती है, वह नष्ट हो जाएगी। क्योंकि टकराहट से एक शक्ति की मात्रा उपलब्ध होती है। लेकिन वह एक शक्ति की मात्रा कितनी देर चलेगी? मैं ताली बजाता हूं, तो मेरे दोनों हाथों की टक्कर से जितनी शक्ति पैदा होती है, वह शक्ति सीमित है। कितनी देर वह स्वर गूंजेगा? जो पैदा हुआ है, वह नष्ट हो जाएगा। जो बना है, वह मिट जाएगा। बुद्ध कहते थे, जो संघात से बना है, वह शाश्वत नहीं हो सकता, सनातन नहीं हो सकता। कैसे होगा? जो अभी नहीं था, अभी पैदा हुआ, वह सदा तो नहीं हो सकता। जिस डंडे में एक छोर है, उसमें दूसरा छोर भी होगा ही। तो जिसमें पैदा होने वाला छोर है, उसमें मरने वाला छोर भी होगा। सिर्फ वही हो सकता है

शाश्वत, जो पैदा ही न हुआ हो। जो अजन्मा हो, जो अनादि हो, वही अनंत हो सकता है। तो क्या ऐसा भी कोई स्वर, ऐसा भी कोई नाद, ऐसा भी कोई संगीत है, जिसे हम जीवन का संगीत कहें! जो पैदा नहीं हुआ और कभी मिटेगा भी नहीं। और जब तक हम उसे न जान ले, तब तक हमने जीवन की परम व्यवस्था को नहीं जाना।
"केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।"
वही होगी शक्ति। केवल नाद-रहित स्वर सुनो, वही है परम-संगीत। लेकिन कैसे इसे सुनेंगे?
मंत्र शास्त्र ने इसकी व्यवस्था की है। मंत्र शास्त्र कहता है, किसी मंत्र का उच्चार शुरू करो। तो पहले जोर से उच्चार करो, ओम का उच्चार शुरू करो, ओम सुनाई पड़ेगा, हवाओं में गूंजेगा। फिर जब यह उच्चार सध जाए और जब ओम इस तरह गूंजने लगे कि तुम्हारे भीतर कोई दूसरा शब्द, कोई दूसरा विचार न रह जाए, तभी तुम्हारा ओम शुद्ध होगा। नहीं तो तुम्हारे भीतर अगर कोई भी विचार चल रहा है, तो उसकी छाया तुम्हारे ओम की गूंज में भी मौजूद रहेगी। इसे थोड़ा समझना।
अगर तुम ओम कह रहे हो, और तुम्हारे मन में चल रहा है कि जा कर बाजार से कोई सामान खरीद लाएं, तो तुम्हारा ओम जो है, वह अशुद्ध हो रहा है। क्योंकि उसके पीछे यह स्वर भी जुड़ा हुआ है बारीक कि बाजार जाएं, सामान खरीद लाएं, यह स्वर उसे विकृत कर रहा है। तुम्हारा ओम तब शुद्ध हो जाएगा, जब सिर्फ ओम की ही गूंज होगी और भीतर कोई दूसरा विचार न होगा। उसे विकृत करने वाला कोई भी मौजूद न होगा। जिस दिन तुम्हारे ओम का यह गुंजार शुद्ध हो जाए, उस दिन तुम ओंठ बंद कर लेना और अब तुम भीतर ही ओम को गुंजाना। अब तुम जोर से मत बोलना, अब तुम सिर्फ भीतर ही गुंजाना। ओंठ बंद रखना, हवा की टक्कर से बचाना, तो भीतर ओम का गुंजार चलेगा। और जब भीतर ओम का गुंजार चलेगा, तब फिर ख्याल रखना, दूसरे गहरे तल पर भी तुम्हारे मन में कोई विचार तो नहीं है! कोई कामना, कोई वासना, कोई भावना तो नहीं है! अगर वह भावना और वासना और कोई विचार चल रहा है गहरे तल पर, तो वह अशुद्ध कर रहा है, उसको भी विसर्जित करना। और भीतर सिर्फ ओम की जब गूंज रह जाए, तब तुम तीसरा प्रयोग करना। तब तुम ओम को पैदा मत करना, तुम सिर्फ आंख बंद करके सुनना। जैसे कि ओम तुम्हारे भीतर गूंज रहा है, तुम कर नहीं रहे हो।
यह घटना घटती है, अगर दोनों चीजें शुद्ध हो गई हों पहले प्रयोग में। तुमने ओम का गुंजार किया और भीतर कोई विचार न बचे, तो तुम्हारे चेतन मन से विचार समाप्त हो गए। अब तुम ओंठ बंद कर लो, अब तुम ओम का गुंजार भीतर करो। अब तुम्हारे अचेतन मन में विचार बाधा डालेंगे। अब तुम गुंजार इतना करो कि तुम्हारा अचेतन मन भी उसमें गूंज जाए और कोई भीतर विचार न रह जाएं, तो तुम्हारा अचेतन मन भी शांत हो गया। तुम्हारे मन की दो पर्तें शांत हो गईं। अब तुम ओम का गुंजार बंद कर दो। क्योंकि मन जब शांत हो जाता है, तो तुम्हारे हृदय के अंतस्तल में जो गुंजार चल ही रहा है स्वभावतः--सदा से चल रहा है, जिससे तुम बने हो, जो तुम्हारी मूल प्रकृति है--वह अब तुम्हें सुनाई पड़ सकता है। तुम्हारे विचारों के कारण ही वह तुम्हें सुनाई नहीं पड़ता था। अब सुनाई पड़ सकता है।
तो तुमने जो पहले ओम का पाठ किया, वह असली मंत्र नहीं है। वह तो केवल तुम्हारे विचारों से छुटकारे का उपाय है। अब तुम चुप हो जाओ और सुनो। बोलो मत। अब तक तुम बोलते थे। पहले तुम जोर से ओम बोले थे, फिर तुमने धीमे से भीतर ओम को बोला था। अब तुम बोलो मत, अब तुम सुनो। अब तुम सिर्फ सुनो भीतर कि क्या वहां ओम गूंज रहा है? और तुम चकित हो जाओगे, ओम का गुंजार तुम्हारे प्राणों से आ रहा है। और तुम्हारे रोएं-रोएं, शरीर में फैलता जा रहा है। यह प्रतीति जैसे-जैसे तुम्हारी साफ होती जाएगी, तुम पाओगे कि ओम तुम्हारा जीवन-स्वर है।
यह जो स्वर तुम्हें सुनाई पड़ेगा, यह अनाहत है। क्योंकि वह किसी चीज के संघर्षण से पैदा नहीं हो रहा है। इसको कबीर और नानक अजपा कहते हैं, क्योंकि यह किसी जप से पैदा नहीं हो रहा है। यह सूत्र इसको नाद-रहित वाणी कहता है।
"केवल नाद-रहित वाणी ही सुनो।"

पंद्रहवां सूत्र, "जो बाह्य और अंतर दोनों च्रुओं से अदृश्य है, केवल उसी का दर्शन करो।"
जगत को हमने देखा--इंद्रियों का एक आयाम। जो बाहर था, वह हमने देखा। फिर हमने इंद्रियों का दूसरा आयाम खोला और हमने उसको देखा, जो भीतर है। आंख ने बाहर देखा जगत को, पदार्थ को। फिर आंख ने भीतर देखा और देखा आत्मा को।
यह सूत्र कहता है, अब तुम बाहर और भीतर दोनों की आंखें बंद कर लो। अब तुम उसे देखो, जो आंखों से देखा ही नहीं जाता। अब तुम उसे देखो, जो इंद्रियों से स्पर्शित ही नहीं होता है। अब तुम बाहर-भीतर से भी मुक्त हो जाओ और अब तुम उस परम को देखो, जो न बाहर है, न भीतर है। या दोनों में है, बाहर भी है और भीतर भी है।
यह जो तीसरा है--बाहर भी नहीं, भीतर भी नहीं या बाहर भी और भीतर भी--यही
है वह एक। इस एक की खोज में तुम्हें दोनों तरह के प्रयोग इंद्रियों के छोड़ देने पड़ेंगे।
इसे हम ऐसा समझें। बाहर की इंद्रियों से जो हम देखते हैं, वह है जगत, पदार्थ। भीतर की इंद्रियों से जो हम देखते हैं, वह है आत्मा, चेतना। और दोनों को छोड़ कर जो हम देखते हैं, वह है परमात्मा।
या ऐसा समझें। बाहर की इंद्रियों से जो हम देखते हैं, वह है विचार। भीतर की इंद्रियों से जो हम देखते हैं, वह है ध्यान। और बाहर और भीतर दोनों इंद्रियों को छोड़ कर जो हम देखते हैं, वह है समाधि।
बाहर से जो देखा, वह भी आधा है। भीतर जो देखा, वह भी आधा है। बाहर और भीतर दोनों को छोड़ कर जब हम देखते हैं, तो वही पूरा है, वही पूर्ण है। और जब तक पूर्ण को नहीं देखा, तब तक मुक्ति नहीं है। अधूरा बांधता है, पूर्ण मुक्त करता है।
"तुम्हें शांति प्राप्त हो।"
परम-शांति उसी क्षण प्राप्त होती है, जब तुम बचे ही नहीं। जब तक तुम हो, तुम अशांत रहोगे।
इसलिए आखिरी बात ख्याल में ले लेनी चाहिए। तुम कभी भी शांत न हो सकोगे, क्योंकि तुम्हारे होने में ही अशांति भरी है। तुम्हारा होना ही अशांति है, उपद्रव है। जब तुम ही न रहोगे, तब ही शांत हो पाओगे।
इसलिए जब कहा जाता है कि तुम्हें शांति प्राप्त हो, तो इसके बहुत अर्थ हैं। इसका अर्थ है कि तुम न हो जाओ, तुम समाप्त हो जाओ, ताकि शांति ही बचे। तुम्हीं तो उपद्रव हो।
सागर में तूफान आता है। फिर तूफान शांत हो जाता है। तो हम कहते हैं, तूफान शांत हो गया। लेकिन इसका क्या मतलब है? क्या शांत तूफान वहां मौजूद है? शांत तूफान का अर्थ ही होता है कि तूफान न रहा। कोई आदमी बीमार पड़ता है। फिर ठीक हो जाता है। हम कहते हैं, बीमारी ठीक हो गई। इसका क्या मतलब है? बीमारी ठीक हो कर वहां मौजूद है? बीमारी ठीक हो गई, इसका अर्थ ही यह है कि बीमारी नहीं हो गई, बीमारी अब नहीं है। बीमारी थी, अब नहीं है।
आप जो भी अभी हैं, बीमारी का जोड़ हैं। तुम कभी शांत न हो सकोगे, जब तक
कि यह "तुम" शांत ही न हो जाए, जब तक कि यह "तुम" खो ही न जाए।
तुम्हें शांति प्राप्त हो, इसका एक ही अर्थ है कि तुम उस जगह पहुंच जाओ, जहां तुम न रहो। जब तक तुम हो, तुम अशांति का स्वर खींचते ही चलोगे। इसलिए धर्म महा-मृत्यु है। उसमें तुम पूरी तरह मर जाते हो, तुम बचते नहीं। जो बचता है, वह तुम्हारा अंतरतम है, तुम्हारा केंद्र है। लेकिन उससे तुम्हारा अभी कोई परिचय नहीं है। वह शांत है, वह अभी भी शांत है। अगर तुम चुप हो जाओ अभी भी, तुम न रहो, तो अभी भी तुम उस शांति को सुन सकोगे। तुम हो कोलाहल, भीड़, उपद्रव, विक्षिप्तता। तुम्हारे कारण वह जो भीतर का शांत अनाहत नाद है, वह जो नाद-रहित वाणी है, वह जो शून्य-स्वर है, वह सुनाई नहीं पड़ता।
एक क्षण को भी तुम न रहो, तो उसका दर्शन हो जाए। और एक बार उसका दर्शन
हो जाए, तो तुम फिर वापस न लौट सकोगे। क्योंकि तब तुम जान ही लोगे कि इस बीमारी को वापस बुलाने का कोई प्रयोजन नहीं।

लेकिन अभी हम कोशिश करते हैं। अभी हम कोशिश करते हैं कि मैं शांत हो जाऊं, बिना इसकी फिक्र किए कि मैं ही तो अशांति है। अभी हम कोशिश करते हैं कि मैं कैसे मुक्त हो जाऊं, बिना इसकी फिक्र किए कि मैं ही तो अमुक्ति हूं। इसलिए मैं तुमसे कहता हूं, तुम्हारी मुक्ति नहीं, तुमसे मुक्ति। तुम्हारी कोई मुक्ति न होगी, तुमसे ही मुक्ति होगी। और जिस दिन तुम अपने को छोड़ पाओगे, जैसे सांप अपनी केंचुल छोड़ देता है, उस दिन अचानक तुम पाओगे कि तुम कभी अमुक्त नहीं थे। लेकिन तुमने वस्त्रों को बहुत जोर से पकड़ रखा था, तुमने खाल जोर से पकड़ रखी थी, तुमने देह जोर से पकड़ रखी थी, तुमने आवरण इतने जोर से पकड़ रखा था कि तुम भूल ही गए थे कि यह आवरण हाथ से छोड़ा भी जा सकता है।
ध्यान की समस्त प्रक्रियाएं, क्षण भर को ही सही, तुमसे इस आवरण को छुड़ा लेने के उपाय हैं। एक बार तुम्हें झलक आ जाए, फिर ध्यान की कोई जरूरत नहीं। फिर तो वह झलक ही तुम्हें खींचने लगेगी। फिर तो वह झलक ही चुंबक बन जाएगी। फिर तो वह झलक तुम्हें पुकारने लगेगी और ले चलेगी उस राह पर, जहां यह सूत्र पूरा हो सकता है, "तुम्हें शांति प्राप्त हो।"